(पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के नियमसार
शास्त्र पर सन् १९७१ के प्रवचन)

नियम का सार

भाग
६

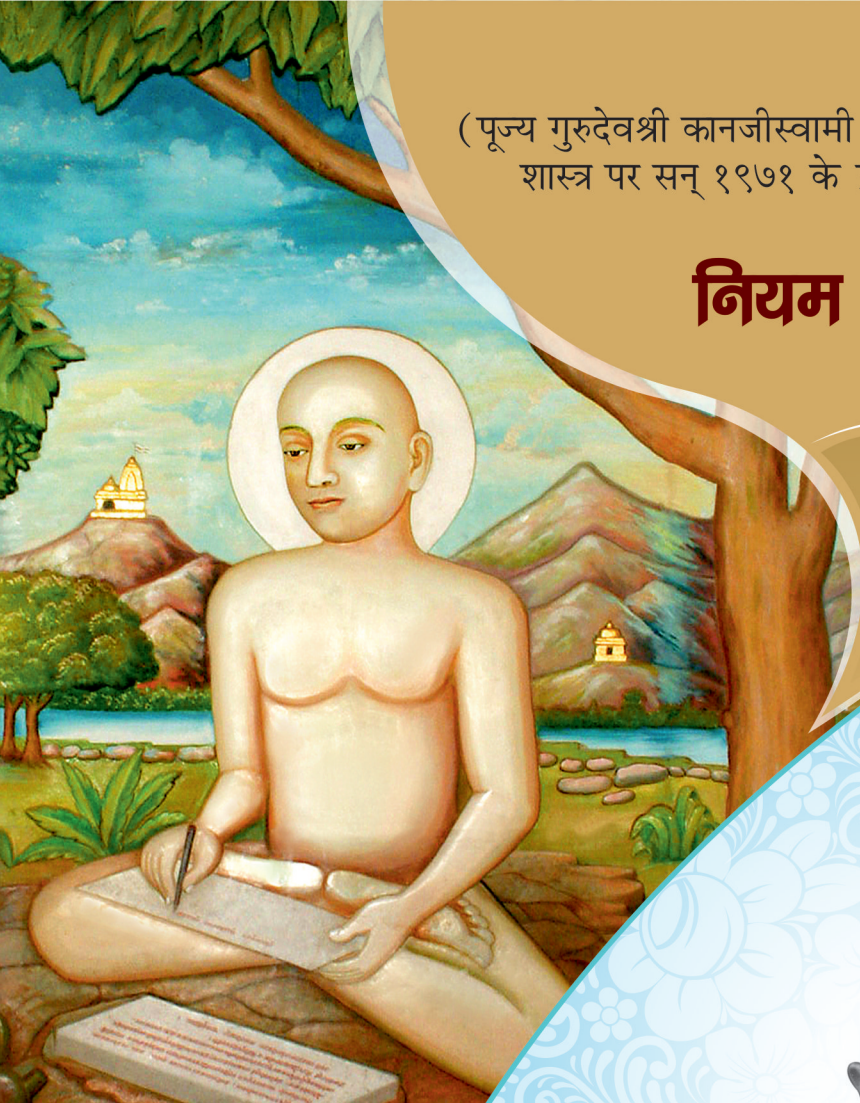

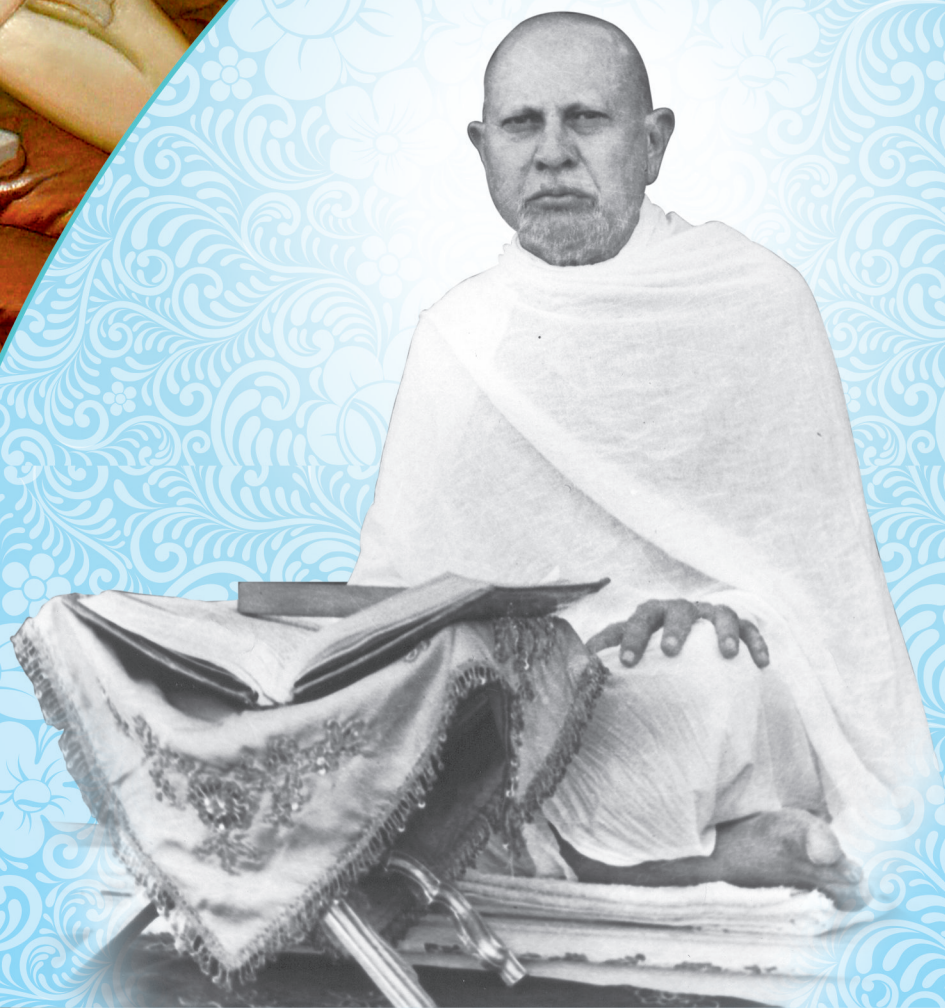

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

नियम का सार

(भाग 6)

श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री नियमसार परमागम
के निश्चय परम-आवश्यक अधिकार पर
अध्यात्म युगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
ईसवी सन् 1971 के वर्ष के धारावाहिक शब्दशः प्रवचन

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री दिग बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250

फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत	वीर संवत	ई. सन
2079	2549	2023

—: प्रकाशन :—

शाश्वत् पर्व दशलक्षण के अवसर पर

भाद्र शुक्ल पंचमी से चतुर्दशी, दिनांक 19 से 28 सितम्बर 2023
के अवसर पर

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250 फोन : 02846-244334

2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046
www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :
विवेक कम्प्यूटर
अलीगढ़।

ॐ

Hear Chidanand.

प्रकाशकीय

मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैन धर्मोस्तु मंगलं।।

भगवान महावीर और गौतम गणधर के बाद जिनके नाम का उल्लेख किया जाता है, ऐसे भरत के समर्थ आचार्य, साक्षात्, सदेह विदेहक्षेत्र जाकर सीमन्धर भगवान की दिव्यध्वनि का प्रत्यक्ष रसपान करनेवाले श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव महान योगीश्वर हैं। अनेक महान आचार्य उनके द्वारा रचित शास्त्रों के आधार देते हैं, इससे ऐसा प्रसिद्ध होता है कि अन्य आचार्य भी उनके वचनों को आधारभूत मानते हैं।

वे निर्मल पवित्र परिणति के धारक तो थे ही, परन्तु पुण्य में भी समर्थ थे कि जिससे सीमन्धरभगवान का साक्षात् योग हुआ। महाविदेह से वापस आने के पश्चात् पोन्नूर तीर्थधाम में साधना करते-करते उन्होंने अनेक शास्त्रों की रचना की। जिसमें श्री समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, अष्टपाहुड़—यह पाँच परमागम तो प्रसिद्ध हैं ही, परन्तु इनके उपरान्त भी अनेक शास्त्रों की रचना उन्होंने की है।

'श्री समयसार' इस भरतक्षेत्र का सर्वोत्कृष्ट परमागम है। उसमें नवतत्त्वों का शुद्धनय की दृष्टि से निरूपण करके जीव का शुद्धस्वरूप प्रकाशित किया है। 'श्री प्रवचनसार' में नाम के अनुसार जिन प्रवचन का सार झेला है और उसे ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन, ज्ञेयतत्त्व प्रज्ञापन और चरणानुयोगसूचक चूलिका नामक तीन अधिकारों में विभाजित किया है। 'श्री नियमसार' में मुख्यरूप से शुद्धनय से जीव, अजीव, शुद्धभाव, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना, प्रायश्चित, समाधि, भक्ति, आवश्यक, शुद्धोपयोग इत्यादि का वर्णन है। 'श्री पंचास्तिकायसंग्रह' में कालसहित पाँच अस्तिकायों का (अर्थात् छह द्रव्यों का) और नवपदार्थपूर्वक मोक्षमार्ग का निरूपण है। तथा 'श्री अष्टपाहुड़' एक दार्शनिक ग्रन्थ है, जिसमें सम्यक् रत्नत्रय एक ही मोक्षमार्ग है, इसकी दृढ़तापूर्वक स्थापना की गयी है।

श्री नियमसार परमागम मुख्यरूप से मोक्षमार्ग के निरूपचार निरूपण का अनुपम ग्रन्थ है। 'नियम' अर्थात् जो अवश्य करनेयोग्य हो, वह अर्थात् रत्नत्रय। 'नियमसार' अर्थात् नियम का सार अर्थात् शुद्ध रत्नत्रय। इस शुद्ध रत्नत्रय की प्राप्ति परमात्मतत्त्व का आश्रय करने से ही होती है। निगोद से लेकर सिद्ध तक की सर्व अवस्थाओं में—शुभ, अशुभ और शुद्ध विशेषों में—रहा हुआ जो नित्य-निरंजन टंकोत्कीर्ण शाश्वत् एकरूप शुद्धद्रव्य सामान्य, वह परमात्मतत्त्व है। वही शुद्ध अन्त:तत्त्व, कारणपरमात्मा, परमपारिणामिकभाव इत्यादि नामों से कहा जाता है। इस परमात्मतत्त्व की उपलब्धि अनादि काल से अनन्त-अनन्त दु:ख को अनुभव करते हुए जीव ने एक क्षणमात्र भी नहीं की और इससे सुख के लिये उसके सर्व प्रयत्न (द्रव्यलिंगी मुनि के व्यवहाररत्नत्रय तक) सर्वथा व्यर्थ गये हैं। इसलिए इस परमागम का एकमात्र उद्देश्य जीवों को परमात्मतत्त्व की उपलब्धि अथवा आश्रय कराने का है।

इस शास्त्र में भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव की प्राकृत गाथाओं पर तात्पर्यवृत्ति नाम की संस्कृत टीका लिखनेवाले मुनिवरश्री पद्मप्रभमलधारिदेव हैं। वे श्री वीरनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती के शिष्य हैं और विक्रम की १३वीं शताब्दी में हो गये हैं। श्री पद्मप्रभमलधारिदेव ने भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव के हृदय में रहे हुए परम गम्भीर आध्यात्मिक भावों को अपने अन्तर्वेदन के साथ मिलानकर इस टीका में स्पष्ट रीति से अभिव्यक्त किया है। इस टीका में आनेवाले कलशरूप काव्य अतिशय मधुर हैं और अध्यात्म मस्ती से तथा भक्तिरस से भरपूर हैं। टीकाकार मुनिराज ने गद्य तथा पद्यरूप से परमपारिणामिकभाव को तो बहुत-बहुत गाया है। पूरी टीका मानो कि परमपारिणामिकभाव का और तदाश्रित मुनिदशा का एक महाकाव्य हो, ऐसा मुमुक्षु हृदय को मुदित करता है। संसार दावानल समान है और सिद्धदशा तथा मुनिदशा परम सहजानन्दमय है—ऐसे भाव का एकधारा वातावरण पूरी टीका में ब्रह्मनिष्ठ मुनिवर ने अलौकिक रीति से सृजित किया है और स्पष्टरूप से दर्शाया है कि मुनियों की व्रत, नियम, तप, ब्रह्मचर्य, त्याग, परीषहजय इत्यादिरूप से कोई भी परिणति हठपूर्वक, खेदयुक्त, कष्टजनक और नरकादि के भयमूलक नहीं होती परन्तु अन्तरंग आत्मिक वेदन से होनेवाली परम परितृप्ति के कारण सहजानन्दमय होती है।

श्री नियमसार में भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने 187 गाथायें प्राकृत में रची हैं। उन पर श्री पद्मप्रभमलधारिदेव ने तात्पर्यवृत्ति नामक संस्कृत टीका लिखी है। ब्रह्मचारी श्री शीतलप्रसादजी ने मूल गाथाओं का तथा टीका का हिन्दी अनुवाद किया है। श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा इस नियमसार की मूल गाथायें, उनका गुजराती पद्यानुवाद, संस्कृत टीका और उस गाथा-टीका का अक्षरश: गुजराती-हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया गया है। इस शास्त्रजी में प्रतिपादित विषयवस्तु को निम्नानुसार बारह अधिकारों में प्रस्तुत किया गया है।

(1) जीव अधिकार, (2) अजीव अधिकार, (3) शुद्धभाव अधिकार, (4) व्यवहार चारित्र अधिकार, (5) परमार्थ प्रतिक्रमण अधिकार, (6) निश्चय प्रत्याख्यान अधिकार, (7) परम आलोचना अधिकार, (8) शुद्धनिश्चय प्रायश्चित्त अधिकार, (9) परम समाधि अधिकार, (10) परम भक्ति अधिकार, (11) निश्चय परमआवश्यक अधिकार, (12) शुद्धोपयोग अधिकार।

यह नियमसार ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री को अत्यन्त प्रिय था। आचार्यदेव ने निज भावना के निमित्त रचना की होने से कारणपरमात्मा को बहुत ही घोंटा है, जो गुरुदेवश्री को अपने आचार्य गुरुवर की उत्कृष्ट साधना स्मरण कराता था। उन्होंने इस पर बहुत ही गहराई से स्वाध्याय किया था और प्रसिद्ध में बहुत बार इस ग्रन्थ पर प्रवचन भी किये थे। इन प्रवचनों में से अपने पास छह बार के प्रवचन पूरे उपलब्ध हैं। यहाँ प्रस्तुत प्रवचन उनमें से एक बार के प्रवचन हैं, जो वीर संवत् 2497 (ई.स. 1971) वर्ष के दौरान नियमसार शास्त्र पर 202 प्रवचन हैं। पूज्य गुरुदेवश्री को निरन्तर ऐसी भावना रहती थी कि मुमुक्षु नितरते सत्धर्म का श्रवण करके निज कल्याण के मार्ग में आगे बढ़ें। इसी उत्कृष्ट भावना से ऐसे गहन शास्त्र कि जो कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने निज भावना के लिये रचा है, उसे पूज्यश्री ने छह-छह बार प्रसिद्ध सभा में लिया था। ये गहन प्रवचन यहाँ अक्षरश: शास्त्ररूप से प्रस्तुत किये जा रहे हैं। इस प्रकार यह शास्त्र वास्तव में पूज्य गुरुदेवश्री के प्रभावना का ही फल है। अध्यात्म का गहरा रहस्य समझाकर पूज्य गुरुदेवश्री ने जो अपार उपकार किया है, उसका वर्णन वाणी से करने में हम असमर्थ हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना की उपलब्धि सी.डी., डी.वी.डी., वेबसाईट (www.vitragvani.com) तथा ऐप (Vitragvani App) तथा सोशल मीडिया (www.youtube.com/c/vitragvani) जैसे साधनों द्वारा श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विलेपार्ला, मुम्बई द्वारा की गयी है। इस कार्य के पीछे ट्रस्ट की ऐसी भावना है कि वर्तमान के आधुनिक साधनों द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा समझाये गये तत्त्वज्ञान का अधिकतम लाभ सामान्यजन प्राप्त करें कि जिससे यह वाणी शाश्वत् बनी रहे। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचन अक्षरश: ग्रन्थारूढ़ हो, ऐसी भावना के फलस्वरूप नियमसार शास्त्र पर 1971 में हुए 202 प्रवचन यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं। उसमें से नियम का सार, भाग-6 में यहाँ (11) निश्चय परम-आवश्यक अधिकार पर हुए धारावाही 26 प्रवचन प्रस्तुत करते हुए हर्ष का अनुभव कर रहे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना को ओडियो टेप में उतारने का महान कार्य शुरु करनेवाले श्री नवनीतभाई झबेरी का इस प्रसंग पर आभार व्यक्त करते हैं तथा श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ ने इस पवित्र कार्य को अविरतधारा से चालू रखा और सम्हालकर रखा, तदर्थ उनके आभारी हैं।

सर्व प्रवचनों को सुनकर ग्रन्थारूढ़ करने में सावधानी रखी गयी है। वाक्य रचना को पूर्ण करने के लिये कहीं-कहीं कोष्ठक किया गया है। यह प्रवचन सुनकर गुजराती में ग्रन्थारूढ़ करने का कार्य श्री निजेश जैन, सोनगढ़ द्वारा किया गया है। प्रवचनों को जाँचने का कार्य श्रीमती पारुलबेन सेठ, विलेपार्ला; श्री दिनेशभाई शाह, विलेपार्ला; श्री अतुलभाई जैन, मलाड और श्रीमती आरतीबेन जैन, मलाड द्वारा किया गया है।

प्रस्तुत प्रवचनों का हिन्दी रूपान्तरण पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां, जिला-भीलवाड़ा (राज) द्वारा किया गया है। इस प्रसंग पर ट्रस्ट सभी के प्रति आभार व्यक्त करता है।

जिनवाणी प्रकाशन का कार्य गम्भीर तथा उत्तरदायित्व पूर्ण होने से अत्यन्त जागृतिपूर्वक तथा उपयोग की एकाग्रतापूर्वक किया गया है। तथापि प्रकाशनकार्य में प्रमादवश अथवा अजागृतिवश कोई भूल रह गयी हो तो त्रिकालवर्ती वीतराग देव-शास्त्र-गुरु के प्रति क्षमायाचना करते हैं। सभी मुमुक्षुओं से निवेदन है कि अशुद्धियों की नोंध ट्रस्ट को प्रेषित करें जिससे आगामी आवृत्ति में सुधार किया जा सके। यह प्रवचन vitragvani.com तथा vitragvani app पर उपलब्ध हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी तथा तद्भक्त प्रशममूर्ति भगवती माता पूज्य बहिनश्री के करकमल में सादर समर्पित करते हैं। पाठकवर्ग इन प्रवचनों का अवश्य लाभ लेकर आत्मकल्याण को साधे ऐसी भावना से विराम लेते हैं। इति शिवम्।

ट्रस्टीगण

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,

विलेपार्ला, मुम्बई

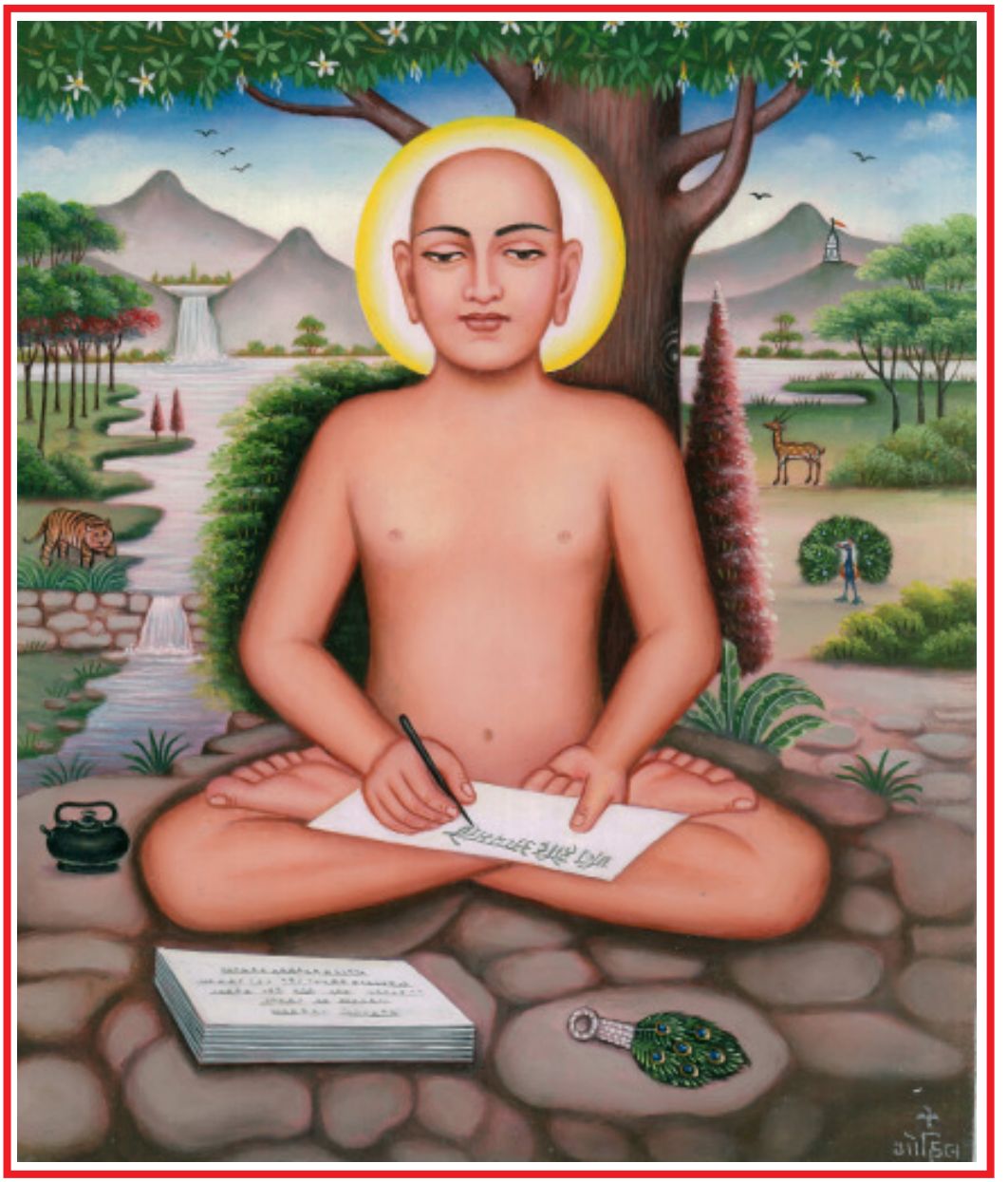

कलिकाल सर्वज्ञ श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव

अध्यात्मयुगसर्जक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म**

का श्रावक हूँ। सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल **'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर'** का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्‌घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्‌गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर,

पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त

पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन नं.	दिनांक	गाथा / श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
निश्चय परम-आवश्यक अधिकार			
१६०	२७-१०-१९७१	१४१	१
१६१	२८-१०-१९७१	१४२, २३८	१६
१६२	२९-१०-१९७१	१४३, २३९-२४१	२९
१६३	३०-१०-१९७१	१४४, २४२-२४४	४३
१६४	३१-१०-१९७१	१४४, २४५	५७
१६५	०१-११-१९७१	१४५	७२
१६६	०२-११-१९७१	१४६, २४६	८७
१६७	०३-११-१९७१	२४७-२५२	१०१
१६८	०४-११-१९७१	१४७, २५३-२५४	११४
१६९	०५-११-१९७१	१४७, २५५	१३०
१७०	०६-११-१९७१	१४८, २५६-२५७	१४४
१७१	०७-११-१९७१	१४९	१५८
१७२	०८-११-१९७१	१४९, २५८	१७३
१७३	०९-११-१९७१	१५०	१८९
१७४	११-११-१९७१	१५१, २५९	२०३
१७५	१२-११-१९७१	१५१, २६०-२६१	२१६
१७६	१३-११-१९७१	१५२, २६२	२३०
१७७	१४-११-१९७१	१५३, २६३	२४५

১৭৮	১৫-১১-১৯৭১	১৫৪	২৬০
১৭৯	১৬-১১-১৯৭১	১৫৪-১৫৫, ২৬৪	২৭৫
১৮০	১৮-১১-১৯৭১	১৫৫, ২৬৫-২৬৬	২৮৯
১৮১	১৯-১১-১৯৭১	১৫৫, ২৬৫	৩০৩
১৮২	২০-১১-১৯৭১	১৫৬, ২৬৬-২৬৭	৩২০
১৮৩	২১-১১-১৯৭১	১৫৭, ২৬৮	৩৩৬
১৮৪	২২-১১-১৯৭১	১৫৮, ২৬৯	৩৫২
১৮৫	২৩-১১-১৯৭১	১৫৯, ২৭০-২৭১	৩৬৬

ॐ

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

नियम का सार

(भाग - ६)

श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्यवर प्रणीत श्री निमयसार परमागम पर अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के ई.स. १९७१ वर्ष के अक्षरशः प्रवचन

— ११ —

निश्चय परम-आवश्यक अधिकार

कार्तिक शुक्ल ८, बुधवार, दिनांक - २७-१०-१९७१
गाथा-१४१, प्रवचन-१६०

निश्चय परम-आवश्यक। यहाँ तो, सामायिक, चौविसंथो (आदि) छह आवश्यक है न, वे सब आत्मा में होते हैं, ऐसा कहते हैं। सामायिक भी आत्मा के स्वभाव की शुद्धता प्रगट होने से वह आवश्यक कर्म अर्थात् कार्य है। लो, यह सामायिक। चोविसंथो यह। तीर्थंकर की स्तुति, वह भी यह आत्मा स्वयं ही परमात्मा है। ऐसे आनन्दस्वभाव में एकाग्र होना, ऐसा जो एकाग्रता का कार्य, वही आवश्यक तीर्थंकर की स्तुति कही जाती है। समझ में आया? (समयसार गाथा) ३१ में लिया है न कि '**जो इंदिया जिणित्ता....**' यहाँ डाला है ऐसा। चौबीस तीर्थंकर की स्तुति अर्थात् बाह्य तीर्थंकर हैं,

उनकी स्तुति तो विकल्प है, वह तो राग है, पुण्य है। वह आवश्यक कर्म—आवश्यकता का कार्य नहीं है। आहाहा! अपना आत्मा ही परमात्मा है। ऐसे परमात्मा के ऊपर अन्तर्दृष्टि करके उसमें लीनता (करना), वह चौबीस तीर्थंकर की स्तुति कही जाती है। कहो!

गुरुवन्दन, तीसरा आता है न आवश्यक। यह भी वह ही है। गुरु आत्मा परमानन्द की मूर्ति, उसमें अन्तर्मुख दृष्टि करके अन्तर एकाग्र होना, उसका नाम गुरुवन्दन तीसरा आवश्यक—आवश्यक का यह है, ऐसा यहाँ कहाँ जाता है। समझ में आया? वन्दन, प्रतिक्रमण। प्रतिक्रमण अर्थात् यह। विकल्प, निमित्त और पर्यायबुद्धि से हटकर अन्तर्बुद्धि में अन्तर में जाना... आहाहा! मार्ग वीतराग का बहुत अलौकिक है। भगवान आत्मा परिपूर्ण प्रभु है, उसके सन्मुख में एकाग्रता करना, निर्विकारी दशा प्रगट हो, उसे यहाँ प्रतिक्रमण (कहते हैं)। अवश्य कर्तव्य यह प्रतिक्रमण है। ऐसा प्रत्याख्यान। आत्मा के स्वभाव सन्मुख की एकाग्रता, वही प्रत्याख्यान और वही कायोत्सर्ग। लो, छहों आवश्यक इसमें समाहित किये। आहाहा!

विधि अनुसार... यह विधि। टीका है न। १४१ (गाथा)। २८३ पृष्ठ पर। यह विधि। भगवान आत्मा जैन का मार्ग **परमजिनमार्ग...** परम वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा, ध्रुवस्वरूप नित्यानन्द भगवान आत्मा, उसे अन्तरमार्ग में जाना, यह विधि अनुसार मार्ग है, यह परमजिनमार्ग है। आहाहा! भारी कठिन काम। लोग बेचारे मश्करी करते हैं, हों! हमारे व्रत और तप धर्म है, उन्हें उड़ाते हैं। आज बहुत आया है। बड़ा (लेख) आया है। अरे भाई! यह व्रत और तप आत्मा के... आत्मा में जो व्रत और तप है, वह अलग चीज़ है। इसके अतिरिक्त के व्रत अहिंसा आदि या अपवासादि, भाई! यह शुभराग है। यह जिनमार्ग नहीं, यह विधि का मार्ग नहीं। आहाहा! क्या हो? सत्य चाहिए हो उसकी बात है। बाकी तो हेय है। समझ में आया?

जिसका फल स्थिर हो, शाश्वत् रहे और अस्थिरता न हो, ऐसा फल चाहिए हो तो यह मार्ग है। बाकी बीच में आत्मा के ज्ञान बिना, आत्मा में स्थिर हुए बिना व्रत, नियम, पूजा, भक्ति, अपवास करे, राग की मन्दता हो तो पुण्य बँधता है और मिथ्यात्व तो साथ में है, क्योंकि दृष्टि तो राग के ऊपर पड़ी है। आत्मा प्रभु है, उसके ऊपर दृष्टि

है नहीं। आहाहा! मिथ्यात्वसहित पुण्य बँधे। बाहर के वेश में अन्तर पड़े। अन्दर तो दशा जो है, वह है। आहाहा! वह तो दशा है वह है। आहाहा! जिसकी दृष्टि राग की क्रिया के ऊपर है, वह तो दृष्टि है, वह है, अनादि का मिथ्यात्व है। उसमें कदाचित् राग की मन्दता के भाव से अघातिकर्म बँधे और बाहर के संयोग-वेश पलटे, वह कहीं उसकी चीज़ नहीं। आहाहा! इससे यह लोगों को कठिन पड़ता है, हों!

यहाँ तो **विधि अनुसार...** यही विधि जिनमार्ग की। अरे प्रभु! तूने तेरी शरण कभी ली नहीं। भगवान की शरण में गया, परन्तु वह भी विकल्प और राग है। वह कहीं धर्म, शरण नहीं है। आहाहा! ऐसे तो स्वयं पुकारता है। **विधि अनुसार परमजिनमार्ग...** परम वीतरागीमार्ग के **आचरण में कुशल...** उस स्वरूप में रहने को चतुर कुशल... आहाहा! बात बहुत ऐसी है न। **ऐसा जो जीव सदैव अन्तर्मुखता के कारण...** देखो! व्यवहार छह आवश्यक है, वह तो बहिर्मुखपने का विकल्प है। यह **सदैव अन्तर्मुखता... जिनमार्ग के आचरण में कुशल ऐसा जो जीव...** ऐसा। आहाहा! **सदैव अन्तर्मुखता के कारण...** वस्तु भगवान पूर्णानन्द प्रभु नित्यानन्द का रसकन्द आत्मा, उसके सन्मुख जिसकी दृष्टि है... आहाहा!

अन्यवश नहीं... वह जीव अन्य के आधीन नहीं। समझ में आया? व्रत, तप, भक्ति, पूजा का भाव, वह सब राग है। वह तो परवश है, आत्मवश नहीं। क्योंकि राग, वह आत्मा नहीं। आहाहा! बहुत सूक्ष्म मार्ग, भाई! सत्य ऐसा है, हों! अन-अभ्यास से इसे लगे अशक्य जैसा, परन्तु मार्ग तो यह है। जिसे जन्म-मरण के दुःख टालना हो... अरे! जरा थोड़ा दुःख हो, वहाँ सहन होता नहीं। पलंग में तड़फड़े। ऐसे पाँच-पच्चीस दिन, महीने-दो महीने चले रोग, कायर... कायर हो जाये। घर के भी कायर हो जायें। धन्धा करना या मुझे यहाँ रुकना? आहाहा! अरे! दो-चार महीने जहाँ रोग कठोर चले, वहाँ स्वयं कायर हो जाये और दूसरे हो जायें। यह तो अनादि का रोग... आहाहा!

भगवान आत्मा निरोगी, आत्मा आनन्दस्वरूप है। उसे राग की क्रियावाला मानना, वह बड़ा रोग है भाई! वह ऐसा मानता है कि यह धर्मक्रिया है। वह मिथ्यात्व की बड़ी क्रिया का रोग बढ़ा है उसे। वह मिथ्यात्व में तड़पता है चौरासी के अवतार में, हों!

कहीं सुखी नहीं। स्वर्ग में हो तो दुःखी। यह पैसेवाले कहलाते हैं न सब? वे सब दुःखी के सरदार कषाय के अंगारों में सुलग रहे हैं। भाई! उसे खबर नहीं। एक मार्ग यह... आहाहा! अन्तर्मुखपना। आहाहा!

जिसकी दशा पलट गयी है, कहते हैं। जो दशा एक समय की पर्याय, राग और निमित्त के ऊपर थी, वह बहिर्दृष्टि थी। पर्याय का अंश, वह भी बहिर्तत्त्व है। आहाहा! राग तो बहिर्तत्त्व है ही और दूसरे हों तो वह भी बाह्य ही है वे। आहाहा! उसके ऊपर की जो दृष्टि वह तो बहिर्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि है। सदा ही ऐसा जीव... अरे! अपना वीतरागस्वभाव, उसके रास्ते जाकर जिनमार्ग की विधि अनुसार आचरण करता है, वह यह आचरण करता है। आहाहा! दिक्कत सबको निमित्त की और व्यवहार की—दो की दिक्कत। यह तो दोनों एक ही चीज़ है। आहाहा! ऐसा व्यवहार उड़ जायेगा तो धर्म नहीं होगा। पहले छठवें गुणस्थान तक तो व्यवहार ही होता है, सातवें में निश्चय होता है। अरे भगवान! स्व के आश्रय बिना निश्चय आया कहाँ से? समझ में आया?

पहले तबक्के अन्तर्मुखपना। वस्तुस्वभाव जहाँ परिपूर्ण सत्ता से पड़ा है, भगवान महिमावन्त जिसका स्वभाव है, ऐसा जो पूरा अन्तर्मुख पड़ा है, उसके ऊपर अन्तर्मुख होना, आहाहा! उसका नाम जैनमार्ग का विधि अनुसार आचरण है। पण्डितजी! गजब भगवान! बापू! यह तो तेरे घर की बात है। परन्तु इसे ऐसा लगता है अन्दर कि अरर! यह सोनगढ़ ने तो व्यवहार का भुक्का उड़ाया है, एकान्त किया रे एकान्त किया। ऐसा यदि चलेगा तो जैनमार्ग खो जायेगा। जैनमार्ग तो यह है। आहाहा! क्या हो? अरे, प्रभु! तेरी महिमा की तुझे खबर नहीं। तू महाप्रभु है, परमेश्वर है। आहाहा! ऐसा परमेश्वर शक्तिरूप से पूरा तत्त्व तू है, उसमें झुक न प्रभु! यह क्रिया यहाँ बतलायी जाती है, लो! समझ में आया? इस क्रिया को जैनमार्ग की विधि अनुसार आचरण कहा जाता है। आहाहा! वह जीव भगवान आत्मा महाप्रभु चैतन्य सत्तावाला भाव, उसकी अन्तर्मुख... अन्तर्मुख हो, वह विधि अनुसार आचरण, उसे यहाँ आवश्यक कर्म कहा जाता है। आहाहा!

पहले तो ऐसा मस्तिष्क को लगे मानो... मस्तिष्क तो जड़ है। ज्ञान में ऐसा लगे, आहाहा! ऐसा यह? ऐसा मार्ग? भाई! मार्ग तो यह एक ही है। यह जन्म-मरण के

दु:ख... आहाहा! किसी को कुछ कहते थे कि ऐसी पीड़ा कि देख न सको। यह तुम्हारा दामोदर सेठ कहता था, परन्तु अभी कोई कहता था। ऐसी पीड़ा होती है शरीर में। कोई कहता था। बन्दूक मारो, कहे। मुझे मार डालो। मुझसे सहन नहीं होता। यह तो बहुत अल्प पीड़ा है, हों! वह दामोदर सेठ को हुआ था न एक बार वायु। बाँधते हैं न वह? डोरा नहीं, हाथ में क्या कहलाता है? पारा। पारा... पारा बाँधे। मादळिया नहीं। वह मादठिया अलग। यह तो पारा हो पत्थर। सहन नहीं होता था। कहे बेचारा। गोली से मारो। नहीं तो लौकिक में बड़ा बादशाह जैसा व्यक्ति। पैसा, बुद्धिवाला लौकिक अपेक्षा से। हाकीम जैसा व्यक्ति लौकिक में। ऐसे दु:ख के समय कहे, मुझे बन्दूक से उड़ाओ, मुझसे सहन नहीं होता। आहाहा! .....

क्या कहलाता है यह? कैंसर। पेट बड़ा फूला हुआ। सहन होता नहीं। ऐसे हाथ करे। अरे भगवान! तूने ऐसे दु:ख का वेदन किया प्रभु! यह तो अनन्तवें भाग है। नारकी के दु:खों की प्रतिकूलता नहीं, परन्तु उसकी आकुलता। समझ में आया? स्वभाव से विरुद्ध की आकुलता से अपार दु:ख... अरे, प्रभु! उसे टालने का उपाय तो यह एक है। बहिर्मुख के भाव को व्यय करने के लिये अन्तर्मुख के आश्रय में जाना, वह एक ही उपाय है। समझ में आया? वह **अन्यवश नहीं...** जो अन्तर्मुख सदा आचरण करता है, अन्तर में अन्तर्मुख भगवान स्वयं परमात्मा है, उसके अनुसार जिनमार्ग की दशा का अन्तर आचरण करता है, वह अन्यवश नहीं है।

परन्तु साक्षात् स्ववश है... आहाहा! वह अपने आधीन हुआ है। ज्ञान और आनन्द का धाम प्रभु, उसमें अन्तर्मुख हुआ है, वह स्ववश है। और उसे यहाँ आवश्यकरूपी कार्य कहा जाता है। आहाहा! वह तो सुना भी न हो कि ऐसा आवश्यक होता है। भगवान की स्तुति करना, लोगस्स... क्या कहलाता है? सामायिक, चोविसंथो, वन्दना, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग, प्रत्याख्यान... वह सब व्यवहार की क्रियाओं के प्रपंच से तो भगवान भिन्न है। यह कहेंगे अभी। आहाहा! कठिन लगे लोगों को। भाई! तेरी महत्ता की महिमा तुझे नहीं आती। ऐसे व्रत और विकल्प और राग की क्रियायें रंक जैसी, जो दु:ख के... दु:ख के ही अनुभव हैं, उस क्रिया का इसे माहात्म्य आता है। आहाहा! अनन्त आनन्द का धाम भगवान का अनादर कर डालता है, उसकी इसे खबर नहीं। मैं

ऐसा नहीं, मैं ऐसा नहीं, मैं अनन्त आनन्दवाला नहीं, मैं तो यह व्रत नियम, तप की क्रिया हो इतना (और) वह मैं। आहाहा! समझ में आया? अपने नित्यानन्दस्वभाव का इसने खून किया है।

यह (सम्यग्दृष्टि) जीव को जीवित रखता है। भगवान अन्तर्मुख में है और जिसने दृष्टि और स्थिरता अन्तर्मुख की है, वह अपने आधीन हो गया है—वश हुआ है, परवशपना उसे नाश हो गया है। आहाहा! हसुभाई! समझ में आता है यह? यह समझना पड़ेगा, हों! टाईल्स-बाईल्स धूल में भी नहीं कुछ। आहाहा! इसने देखा है न इसे तो। नजर से देखा है तब। अनुभव किया वह कैसा? बोलते थे कल। ऐसे स्वप्न आवे मारकाट के। माँ-बाप बैठे हैं, पैसे थे, सब था। पाँचों भाई वापस। क्या करे? वह चीज़ पर है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि पर की दया का भाव, भक्ति का भाव, भगवान के नामस्मरण का भाव, व्रत, तप, पूजा का भाव—यह सब व्यवहार का प्रपंच है। धन्धे का व्यवहार... वह तो सब पाप के परिणाम का प्रपंच—विस्तार है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि वह अन्यवश (नहीं) का अर्थ ही साक्षात् स्ववश है। अर्थात् कि राग की क्रिया के विकल्प के वश नहीं, परन्तु स्वयं भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसे अन्तर्मुख होकर वश हुआ है, वह साक्षात् स्ववश है। **उस व्यावहारिक क्रियाप्रपंच से पराङ्मुख जीव को...** आहाहा! ऐसे जीव को व्यवहारिक क्रियाप्रपंच (अर्थात्) दया, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य का विकल्प—राग, पूजा-भक्ति का राग, नामस्मरण का राग—ऐसी जो व्यवहारक्रिया, वह प्रपंच है (अर्थात्) उसका विस्तार है यह। व्यवहारक्रिया का राग वह प्रपंच—विस्तार है। आहाहा! पराङ्मुख जीव है। वह व्यवहार के विकल्प की क्रिया से पराङ्मुख है और स्व-आत्मा के सन्मुख है। आहाहा! यह विधि की पद्धति इसे कठिन पड़ती है। कहो, समझ में आया? अरे! इसके घर की बात सुनना ही इसे कठिन पड़ी और सुनते हुए इसे लगे, अरर! ऐसा? ऐसा मार्ग? वीतरागमार्ग ऐसा? पहला व्यवहार करे तो जैनधर्म टिकेगा। यहाँ कहते हैं कि वह जैनधर्म ही नहीं है। अरे, भगवान! भाई! छोटे में छोटा जैनधर्म का अंश भी वीतरागीभाव होता है। ऐसे व्यवहार के....

यहाँ तो कहते हैं, देखो! **व्यावहारिक क्रियाप्रपंच...** यह टीका कितनों को

पसन्द नहीं आती। बहुत स्पष्ट कर डाला है न! है ऐसा खुल्ला रख दिया। **पराङ्मुख जीव को...** यह शुभ आदि विकल्प है व्यवहार क्रियाप्रपंच, उससे पराङ्मुख हो गया है। उसका पक्ष इसने छोड़ दिया है। उसके पक्ष में खड़ा था, वह छोड़ दिया और भगवान आनन्दमूर्ति के पक्ष में चढ़ गया है। समझ में आया? यह जैनमार्ग है। तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर सौ इन्द्र के वन्दनीक—पूजनीक का कहा हुआ यह जैनमार्ग है। समझ में आया? व्यवहार की क्रिया, वह जैनमार्ग नहीं, ऐसा कहते हैं। वह तो राग की क्रिया का मार्ग है। आहाहा! **व्यावहारिक क्रियाप्रपंच से पराङ्मुख जीव को...** पराङ्मुख हुआ, परन्तु हुआ क्या तब अब?

स्वात्माश्रित-निश्चयधर्मध्यानप्रधान परम आवश्यक कर्म है,... आहाहा! टीका भी टीका की है न! पाठ में है न? '**अण्णवसो तस्स दु कम्मं भणंति आवासं**' आहाहा! एक-एक टुकड़ा... वस्तु ऐसी है वहाँ... जैसी वस्तु है, वैसा यह वाचक है। समझ में आया? कहते हैं कि अरे! धर्मी को तो इन्द्राणी के सुख का विकल्प भी दुःखरूप लगता है। समझ में आया? तो यहाँ तो पुण्यभाव दुःखरूप लगे, इसलिए पराङ्मुख है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! अनुकूलता के ढ़ेर देखे, वहाँ मन ललचा जाये कि आहाहा... कुछ न कुछ है इसमें... जहर है, कहते हैं। समझ में आया? बाहर की अनुकूलता अर्थात् क्या परन्तु? वह तो ज्ञेयपदार्थ है। 'अनुकूलता' ऐसी छाप लगायी है उसमें? राग के कारण 'यह अनुकूल' ऐसे भाग करता है...। आहाहा! उस राग से तो दुःखी है। उसे ऐसा लगे कि हम कुछ... हम कुछ हैं। कुछ जो अच्छे सुखी कहलाये, उसमें के हम भी हैं। हसमुखभाई! क्या होगा यह? ऐसा मार्ग... कहते हैं कि भगवान! सुन न प्रभु! तुझमें इस विकल्प की जाति की दुःख की भात ही नहीं। भाई! तुझे खबर नहीं कि तेरे घर की चीज़ में क्या है और क्या नहीं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि व्यवहार क्रियाप्रपंच... आहाहा! व्यवहार सामायिक, व्यवहार भगवान की स्तुति, व्यवहार गुरुवन्दन, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग... आहाहा! गजब परन्तु मुनि...! एक-एक बात ली है। कहते हैं, भाई! तुझे सत्यपन्थ में जाना हो और जिसका फल सत्यरूप से शाश्वत् रहे, वह तो यह मार्ग है। यह तो सन्ध्या के रंग

जैसा दिखाई दे और चले जायें। अथवा स्वयं बैठा हो, ऋद्धि जाये, ऋद्धि रहे और स्वयं चला जाये। आहाहा! यह कहीं उसकी चीज़ है? यहाँ तो व्यवहार क्रिया का राग उसकी चीज़ नहीं, ऐसा कहते हैं। इसीलिए तो उससे पराङ्मुख होना (ऐसा कहा)। आहाहा! उसके सामने नहीं देखना, ऐसा कहते हैं। शान्तिभाई! आहाहा!

थोड़ा सा दुःख आवे, वहाँ फिर रोवे। अरे! पूरा आकाश टूटा। ऐसे नहीं रोती महिलायें? आहाहा! पति मर जाये, पुत्र हो नहीं, गरीब मनुष्य हो, ...हो नहीं, सासु वृद्ध हो। अरे! अब तो आकाश फटा है मेरे ऊपर। अरे, भगवान! यह तो तू संयोग से कहता है, भाई! यह मुझे प्रतिकूल है और अनुकूल ठीक—ऐसा भाव ही पूरा दुःख का आकाश फटा है। वह तुझे दुःख दिखता नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसे जीव को... कितना स्पष्टीकरण किया है!

स्वात्माश्रित... (अर्थात्) निज आत्मा जिसका आश्रय है, ऐसा निश्चयधर्मध्यान परम-आवश्यक कर्म में प्रधान है। आहाहा! क्या कहते हैं? **स्वात्माश्रित...** भगवान स्व-चैतन्यमूर्ति शुद्ध आनन्दकन्द, ऐसा ध्रुव उसके आश्रित... स्व-आत्मा, वह नित्य ध्रुव, उसके आश्रित, वह पर्याय। ऐसा आश्रित **निश्चयधर्मध्यान...** वे कहे, धर्मध्यान में शुभभाव ही होता है, शुक्लध्यान में शुद्ध होता है। देखो! ऐसा कहते हैं। अरे, प्रभु! भाई! तुझे रास्ता नहीं मिले इसमें। आहाहा! फँस जायेगा भाई! तुझे खबर नहीं। ऐसा भगवान स्वात्माश्रित, जिसे स्व-आश्रित धर्मध्यान, सच्चा धर्मध्यान, वह निश्चय, वह मुख्य है। **परम आवश्यक कर्म है...** अवश्य करनेयोग्य कार्य में यह निश्चयधर्मध्यान परम कर्म... कर्म—कार्य है। यह पुस्तक वाँचने का समय न मिला हो। वहाँ कहाँ मिले? हाँ करता है। अमृत की तिजोरी खोली है इसमें। आहाहा!

अमृत की तिजोरी भगवान आत्मा है। अतीन्द्रिय अमृत में एकाग्र होने से जो अमृत प्रगट हो, वह स्वात्माश्रित निश्चय धर्मध्यान, वह **प्रधान परम आवश्यक कर्म है,...** वह मुख्य—परम कार्य है। जीव को सुखरूपी पंथ में जाने में यह कार्य है। आहाहा! भारी कठिन है लोगों को। यह बेचारे चिल्लाहट मचाये। अरेरे! यह सोनगढ़वालों ने... सोनगढ़वालों ने या भगवान ने ऐसा कहा है? भगवान अर्थात् आत्मा। भाई! आहाहा!

अभी आया था। आठ वर्ष के राजकुमार हों, अभी तो उगकर खड़े हुए हों, वे जब आत्मज्ञान पाते हैं, अन्दर अन्तर में गहरे उतरने के लिये, वे वनवास में जाते हैं। आहाहा! धन्य रे धन्य अवतार! आठ वर्ष के राजकुमार, जिन्हें नीलमणि की टाईल्स नीचे हों, ऐसे बँगले, नीलमणि की टाईल्स के बँगले। चल निकले।

माता! मुझे कहीं बाहर में चैन पड़ता नहीं। अरे, बेटा! अभी तो तेरा विवाह किया नहीं। मकान बनाये, पाँच करोड़ का बँगला अभी कल बसाया। माँ! मुझे कहीं चैन पड़ता नहीं। मेरी चैन की भूमिका अन्तर आत्मा है। अब लोगों के पगरव (आवागमन) रहित जंगल में अकेला जाना चाहता हूँ। आहाहा! और वनवास में जाकर हम आत्मा को साधेंगे अन्तर में। आहाहा! माँ रोवे... एकबार रो माता! फिर से माता नहीं बनायेंगे, कोलकरार करते हैं, हों! हम फिर से शरीर धारण नहीं करेंगे। माता! शरीर कलंक है। अशरीरी ऐसा हमारा आत्मा, उसमें हम गहरे-गहरे उतरना चाहते हैं। आहाहा! कहो, पोपटभाई! आहाहा! हमको कहीं बाहर में चैन नहीं पड़ता, कहीं ठीक नहीं लगता। इसलिए द्वेष है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? कहीं हमारा मन बाहर में स्थिर नहीं होता। लक्ष्मी और बँगला, धूल, जहाँ लक्ष्य जाये, वहाँ दुःख उत्पन्न होता है।

हमारा आत्मा स्वाश्रित... आहाहा! निश्चयधर्मध्यान (अर्थात्) धर्मी ऐसा भगवान, उसका ध्यान, उसका नाम धर्मध्यान। वह **निश्चयधर्मध्यानप्रधान परम आवश्यक कर्म है,...** परम आवश्यक कर्म में वह प्रधान है, ऐसा कहते हैं। आवश्यकवाला, आत्मा के आवश्यक अर्थात् जरूरियातवाला काम, उसमें यह आवश्यक मुख्य है। आहाहा! समझ में आया? धर्मध्यान परम आवश्यक कार्य है। परम आवश्यक का कार्य (अर्थात्) अवश्य करनेयोग्य तो यह है। जिसे सुखी होना हो, मार्ग में पड़ना हो... मार्ग में पड़े, तब पंथ का अन्त आवे, वहाँ कुछ मिले या नहीं मोक्ष? पंथ का अन्त पूरा हो, वहाँ मोक्ष होता है। ऐसे मार्ग में जाना हो, उसे तो यह रास्ता है। आहाहा! समझ में आया? परम आवश्यक कार्य है। अवश्य का, जीव को अवश्य करनेयोग्य हो तो, परम स्व-आत्मा का आश्रय लेकर जो एकाग्रता होती है, वही उसका परम आवश्यक कार्य है। आहाहा! जिसमें पर का कार्य तो नहीं, परन्तु जिसमें व्यवहार दया, दान, व्रत विकल्प का कार्य भी जिसमें नहीं। आहाहा!

अरे! लोगों को ऐसा लगे हों! बेचारों को। ... लख्या लख। बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! तेरे माहात्म्य की तुझे खबर नहीं। अरेरे! तूने बाह्य माहात्म्य बहुत किये, भाई! महीने-महीने के उपवास किये, करोड़ों खर्च करके मन्दिर बनाये। भाई! वे तेरे कहाँ थे? समझ में आया? अरेरे! अन्य पदार्थ के समूह से तुझे क्या फल है? (कलश २३७)। आया था न कल? आहाहा! करुणाबुद्धि का उपदेश है। भाई! तेरे अतिरिक्त अन्य पदार्थ से तुझे क्या फलेगा? उसका आश्रय लेने जाता है, उसका लक्ष्य करेगा तो क्या फलेगा? तुझे तो आनन्द चाहिए है, भाई! तो उसमें आनन्द कहाँ से फलेगा? आहाहा! दुनिया माने—न माने, परन्तु मार्ग तो यह है। तीनों काल का मार्ग... कोई कहे कि पंचम काल में ऐसा मार्ग नहीं होता। यह तो चौथे काल में होता है। भाई! यह पंचम काल के मुनि तो कहते हैं। पंचम काल के जीव को तो कहते हैं। जीव कहाँ पंचम काल का था? अरेरे! आहाहा! अरे! ऐसा परम आवश्यकवाला कार्य कि जो स्वात्माश्रित हो और स्ववश होकर हो, वह आवश्यक है, मोक्ष के कारण के लिये वह आवश्यक है। समझ में आया?

ऐसा कौन कहता है? कोई ऐसा कहे कि ऐसा मार्ग है, ऐसा कौन कहता है? है न? '**त्ति पिज्जुत्तो**' है न? 'प्ररूपित' है। अर्थ किया है न। गाथा, नहीं? '**णिव्वुदिमग्गो त्ति पिज्जुत्तो**' प्ररूपित है। किसका कहा हुआ यह मार्ग है? यह कहा जाता है, वह किसने कहा है? आहाहा! **निरन्तर परमतपश्चरण में लीन...** जिसे आनन्द में लीनता अन्दर वर्तती है, वह तपस्या, हों! (अर्थात्) मुनिपना, ऐसा। निरन्तर जिसे परम आनन्दरूपी मुनिपने में लीनता है, ऐसे **परमजिनयोगीश्वर कहते हैं।** ऐसे परम जिन योगीश्वर ऐसा प्ररूपित करते हैं। आहाहा! समझ में आया? कितना डाला है एक गाथा में! **ऐसा निरन्तर परमतपश्चरण...** तपस्या शब्द से आनन्दस्वरूप की उग्रता की दशा। अतीन्द्रिय आनन्द में लवलीन ऐसे भगवान सन्त, वे लीन, आनन्द में लीन हैं, आहाहा! जो स्व-आश्रित अतीन्द्रिय आनन्द के घूँट पीते हैं, समझ में आया? ऐसे परमजिन योगीश्वर वापस, ऐसा। अन्यमत में तो यह वस्तु होती नहीं। यह तो मार्ग है ऐसा स्वरूप है, ऐसा भगवान ने—सन्तों ने जाना और कहा। यह परम जिनयोगीश्वरों ने ऐसा कहा है। कोई कल्पित अज्ञानियों ने कहा है, (ऐसा नहीं है)। समझ में आया?

निरन्तर परमतपश्चरण में लीन परमजिनयोगीश्वर... परम अर्थात् उत्कृष्ट, जिन अर्थात् जीता है राग को, योगी अर्थात् स्वरूप में जुड़ान है, उसके भी ईश्वर हैं। आहाहा! लो, यह ईश्वर, परम जिनयोगीश्वर। भगवान आत्मा तो ईश्वरस्वरूप ही है, परन्तु यह तो पर्याय में जिनयोगीश्वर हैं। आहाहा! समझ में आया? जो आत्मा को शोधकर-खोलकर बाहर में पर्याय में प्रगट लाया है, ऐसी जिसकी वीतरागदशा प्रगट हुई है, ऐसे योगीश्वर ऐसा कहते हैं। अब दूसरे पामर दूसरे प्रकार से कहे तो वह मार्ग है नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? अब यह कार्य कहा न! स्व-आत्माश्रित शुद्धभाव, आनन्दभाव, वीतरागभाव कार्य कहा, उसे यहाँ सिद्ध करते हैं।

और, सकल कर्म के विनाश का हेतु... अज्ञान, राग-द्वेषादि आदि सब आठों ही कर्म के नाश का हेतु **ऐसा जो त्रिगुप्तिगुप्त-परमसमाधिलक्षण परम योग,...** आहाहा! त्रिगुप्तिगुप्त (अर्थात्) मन, वचन और काया से भी हट गया है और अन्तर में आया है। आहाहा! **त्रिगुप्तिगुप्त-परमसमाधिलक्षण...** परम... परम... आत्मा में लीनता ऐसी शान्ति, ऐसा लक्षण जिसका है। ऐसा योग... जिसे आवश्यक कर्म कहा था, वह यह योग। आहाहा! **वही साक्षात् मोक्ष का कारण होने से...** लो, यह योग साक्षात् मोक्ष का कारण है। यह आवश्यक क्रिया का कार्य, वह साक्षात् मोक्ष का कारण है। लोग पढ़ते भी नहीं, स्वाध्याय करते नहीं। स्वाध्याय करे तो, वह व्यवहार की बातें हों न, उसकी सज्झाय करे तो उसमें कुछ हाथ नहीं आता। ऐसा जहाँ सुने तो... आहाहा! सूरज की जैसे टीका स्पष्ट कर डाली है। आहाहा!

सकल कर्म के विनाश का हेतु... ऐसा जो वह आवश्यक कर्म। वह **त्रिगुप्तिगुप्त-परमसमाधिलक्षण...** ऐसा **परम योग, वही साक्षात् मोक्ष का कारण...** लो, ठीक! फिर व्यवहार भी मोक्ष का कारण (और) यह भी मोक्ष का कारण—ऐसे दो नहीं। व्यवहार की क्रिया, वह तो प्रपंच है, उससे तो पराङ्मुख है। (परम योग) व्यवहार से तो पराङ्मुख है। आहाहा! एक दृष्टान्त दिया है इसमें। एक महिला थी। उन लोगों की... महिला थी, वह आटे का पिण्ड बाँधकर बैठी थी। वह आया था, बहुत वर्ष पहले दृष्टान्त आया था। उसमें आया कुत्ता। उसने पिण्ड उठाया। बाई हाथ में बेलन लेकर दौड़ी। उसका पैर तोड़ दिया। पहुँच नहीं सकी। वह कुत्ता पिण्ड लेकर चला गया। वहाँ

ऐसा आया था कि पिण्ड जरा धूल में था... वह तो पिण्ड लेकर चला गया। जा, मेरे गुरुदेव कहते हैं कि आत्मा ज्ञाता-दृष्टा है। उसमें आया है।

अरे, भगवान! क्या करता है तू? तू किसकी मश्करी करता है? भाई! बापू! जननी की मश्करी नहीं होती। माता, जिसके गर्भ में नौ महीने रहा। तेरी उम्र की बीस की और उसकी हो चालीस की जवान और माँग-माँग पाड़कर बैठी हो और लड़का मश्करी करे, वह लौकिक सज्जन कहलाये? माता है, जननी है। जिसके गर्भ में नौ महीने रहा है, भाई! आहाहा! उसे यह... देखो! हमारे महाराज कहते थे... पहले तो मारने गया कि पैर तोड़ डालूँ। परन्तु हाथ नहीं आया, फिर 'ज्ञातादृष्टा है', ऐसा करना। अरे, भगवान! तू यह क्या करता है? सत्य का इस प्रकार से अनादर नहीं होता। भाई! तुझे यह शोभा नहीं देता। शोभा की बात आवे, उसे इस प्रकार खतौनी कर न? समझ में आया? आहाहा!

साक्षात् मोक्ष का कारण होने से निर्वाण का मार्ग है। यह छह आवश्यक की क्रिया जो स्व-आत्माश्रित हो, वही साक्षात् मोक्ष और निर्वाण का कारण है। आहाहा! नियमसार है न! निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का अधिकार है। आवश्यक कर्म, वही निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है और वही निर्वाण का मार्ग है। आहाहा! साक्षात् मोक्ष का कारण कहा है, परन्तु फिर दूसरा परम्परा से (है या नहीं)? इसका अर्थ ही यह कि वह नहीं। आहाहा! क्या हो? शास्त्र के अर्थों में भी बड़ा अन्तर करते हैं, ये ऐसा कहते हैं। स्वयं करते हैं, उसकी खबर नहीं। अरे, भाई! यह तो भगवान की पेढ़ी है, बापू! आहाहा! तीन लोक के नाथ जिन्हें इन्द्र पिल्ले की भाँति ऐसे वन्दन करे, ऐसे भगवान का मार्ग है, भाई! यह कोई पामर का कहा हुआ नहीं। यह तो कहा ऊपर। परम जिनयोगीश्वर ने कहा हुआ... भाई! उसकी मश्करी नहीं होती। समझ में आया? उसकी—आत्मा की मश्करी होती है (इसमें)।

ऐसी निरुक्ति अर्थात् व्युत्पत्ति है। ऐसा प्ररूपित का व्युत्पत्ति अर्थ किया। 'प्ररूपित' है न? और 'व्युत्पत्ति' अर्थ निकाला। ऐसे निरुक्ति-व्युत्पत्ति है, अर्थात् यही मार्ग है। आहाहा! एक-एक गाथा में सज्जडबिम्ब, निश्चय का मार्ग वह मोक्ष है, यह एक बात

सिद्ध की है। आहाहा! परन्तु आत्मा के कार्य में तो आत्मा का ही कारण होगा न? यह जो आवश्यक स्वात्माश्रित, वह पर्याय आत्मा की है, वह आत्मा है। रागादि आत्मा है? आहाहा! पूरा भगवान पूर्ण प्राप्त हो पर्याय में, तो उस पर्याय में आत्मा की पूर्ण आत्मलब्धि हुई, उसका कारण भी आत्मा का ही भाव होता है। अनात्मा का भाव होगा? होता है, बीच में राग आता है, (परन्तु) वह तो जाननेयोग्य है। भूमिका की कचाश में ऐसा भाव आता है। व्यवहार दया-दान हो, उसकी मर्यादा पुण्यबन्ध जितनी है। उसे—स्वभाव को सहायता करे (ऐसा नहीं है)। वे कहे, निमित्त उसे कहते हैं कि सहायता करे तो निमित्त कहते हैं, नहीं तो नहीं। आहाहा!

अकिंचित्कर का बड़ा वह आया है, निमित्त-उपादान का। सब उसमें यही आता है न जैनशासन में। उसे जो बैठा हो, वह कहे। उसके जो परिणाम में आया हो, ऐसा कहे। दूसरा कहे क्या? 'जामें जितनी बुद्धि हो इतनो दियो बताया, वाको बुरो न मानिये और कहाँ से लाये?' अन्दर में आता ही नहीं, वहाँ कहे क्या अब? उसके आत्मा में ही खटक-खटक होता हो कि यह.. यह... ऐसा... ऐसा... अर्थात् यह क्या कहते हैं? ऐसा ही कहे। समझ में आया? बहुत रास्ता कहा है, ओहोहो! '**कम्मविणासणजोगो**' यह **आवश्यक कर्म**, ऊपर था न। '**तस्स दु कम्मं भणंति आवासं**' लो, '**भणंति**' में यह आया। और '**त्ति पिज्जुत्तो**' इसमें 'प्ररूपित' अर्थ किया। '**भणंति**' और '**प्ररूपित**' दो शब्द डाले हैं संस्कृत में। '**भणंति आवश्यकं.... इति प्ररूपित...**' ऐसे दो निकाले।

लो, यह आवश्यक करना... आवश्यक करना। पोपटभाई! शाम-सवेरे करते थे न! शाम को प्रतिक्रमण। शाम को करते होंगे, सवेरे नहीं। शाम को फुरसत हो न! जाते थे, हों! हिम्मतभाई और ये दोनों दरियापरी उपाश्रय में प्रतिक्रमण करने (जाते थे)। आहाहा! अरे! एक सेकेण्ड का प्रतिक्रमण मुक्ति के कारणरूप से परिणमता है। आवश्यक है न! प्रतिक्रमण कहा न! आहाहा! भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु पूर्ण को जिस भाव से पकड़ा, वह स्वात्माश्रित भाव। वह भाव, वह आत्मा का कार्य और उस भाव को योग कहते हैं और उसे समाधि कहते हैं, वह साक्षात् मोक्ष का कारण है। कहो, इसमें स्थान है कुछ सन्देह का? शास्त्र में ऐसे स्पष्ट लेख पड़े हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : तो पण्डित उसका क्या अर्थ करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन जाने क्या करते होंगे? यह पण्डितजी रहे। ये विपरीत पण्डित में नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

भाई! तू आत्मा है न, प्रभु! यह शरीर नहीं, वाणी नहीं, यह सब आकाश-जड़ के, प्रभु! तू नहीं। आहाहा! अरे! तुझमें विकल्प उठे, वह तू नहीं। वह उठे तुझमें, वह तो पर में होता था सब। आहाहा! शुभ-अशुभराग, उसमें तो वह दुःख का समुद्र डोले। वह तो दुःख का मार्ग है, भाई! दुःख में ले जायेगा तुझे। आहाहा! सुख का मार्ग तो प्रभु! एक बार लक्ष्य को तो। लक्ष्य में तो ले। आहाहा! नजर में तो डाल कि यह भगवान पूर्णानन्द का नाथ मैं हूँ, उसका आश्रय वह धर्म है। समझ में आया? तेरी लक्ष्मी पूर्ण तुझमें पड़ी है, भाई! आहाहा!

इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री प्रवचनसार की तत्त्वदीपिका नामक टीका में पाँचवें श्लोक द्वारा) कहा है कि... प्रवचनसार का आधार देते हैं।

आत्मा धर्मः स्वयमिति भवन् प्राप्य शुद्धोपयोगं
नित्यानन्दप्रसरसरसे ज्ञानतत्त्वे निलीय।
प्राप्स्यत्युच्चैरविचलतया निःप्रकम्पप्रकाशां
स्फूर्जज्ज्योतिः सहजविलसद्रत्नदीपस्य लक्ष्मीम्॥

रत्नदीप—रतन का दीपक। आहाहा! **श्लोकार्थः इस प्रकार शुद्धोपयोग को प्राप्त...** भाषा बदली, देखा! उसमें 'आवश्यक कार्य' कहा था, उसे 'योग' कहा था, उसे यहाँ 'शुद्धोपयोग' कहा। आहाहा! शुभोपयोग रहित शुद्धोपयोग। जो स्व-आश्रय से परिणाम प्रगट हो, उसे यहाँ शुद्धोपयोग कहते हैं। आहाहा! ऐसे **शुद्धोपयोग को प्राप्त करके आत्मा स्वयं धर्म होता हुआ...** लो, स्वयं धर्मरूप से परिणम जाता है। आहाहा! **इस प्रकार शुद्धोपयोग को प्राप्त करके...** ऐसा कहा कि वह नयी दशा है न? शुभ-अशुभभाव की (दशा) तो अनादि की थी। शुद्ध-उपयोग (अर्थात्) ध्रुव नित्यानन्द अपना स्वरूप, उसकी ओर का व्यापार। स्वात्माश्रित शुद्ध उपयोग को प्राप्त करके

आत्मा स्वयं धर्म होता हुआ... आहाहा! क्या कहते हैं? वह व्यवहार के साथ मिलाना है न कि व्यवहार की अपेक्षा जिसे नहीं। व्यवहार के राग की मन्दता हो तो ऐसा शुद्ध उपयोग हो, ऐसी अपेक्षा उसे नहीं है।

स्वयं धर्म होता हुआ... भगवान स्वयं शुद्ध उपयोगरूप से परिणमता हुआ, धर्मरूप से परिणमता हुआ स्वयं धर्मरूप है। उसे कोई निमित्त और राग की अपेक्षा है नहीं। आहाहा! **अर्थात् स्वयं धर्मरूप से परिणमित होता हुआ...** आहाहा! ऐसा जैनधर्म का स्वरूप होगा? लोगों को कान में पड़ा न हो। पोपटभाई! आहाहा! वस्तु का स्वरूप ऐसा है, ऐसा जैनधर्म में कहा है। जैनधर्म कोई सम्प्रदाय नहीं, वह कोई वाडा नहीं कि हमारा मार्ग यह और तेरा मार्ग यह।—ऐसा नहीं है। वस्तु ही यह है। समझ में आया? अरे! **धर्मरूप से परिणमित होता हुआ नित्य आनन्द के विस्तार से सरस...** आहाहा!

कहते हैं कि अन्तर के वस्तु के—पूर्ण वस्तु के स्वीकार में जो आनन्द आया, वह परम **नित्य आनन्द के विस्तार से सरस (अर्थात् जो शाश्वत आनन्द के विस्तार से रसयुक्त हैं)...** आत्मा। उसे यह उपयोग में तो आनन्द आया, परन्तु वस्तु आनन्दसहित त्रिकाल है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसकी खान में नित्यानन्द के विस्तार से भरपूर है वह तो, (ऐसा कहते हैं)। **सरस,** लो। **ऐसे ज्ञानतत्त्व में लीन होकर...** लो, अकेला ज्ञान नहीं, आनन्दसहित है—ऐसा कहते हैं। अन्दर ज्ञानतत्त्व तो है आत्मा, परन्तु उसमें अतीन्द्रिय आनन्द का विस्तार भरा है। उसमें लीन हो, उसे जैनमार्ग प्रगट होता है, उसे योग और आवश्यक कहा जाता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल ९, गुरुवार, दिनांक - २८-१०-१९७१
श्लोक-२३८, गाथा-१४२, प्रवचन-१६१

यह नियमसार, निश्चय परम-आवश्यक अधिकार है। उसका कलश चलता है। प्रवचनसार का आधार दिया है। है न? नीचे २८३ पृष्ठ।

श्लोकार्थः इस प्रकार शुद्धोपयोग को प्राप्त करके आत्मा स्वयं धर्म होता हुआ अर्थात् स्वयं धर्मरूप से परिणमित होता हुआ... क्या कहते हैं? यह आत्मा परमानन्द और शुद्धस्वरूपी त्रिकाल है। उसका आश्रय लेकर शुद्धोपयोग, जो स्व-आश्रय से उत्पन्न हो, उस शुद्धोपयोग को प्राप्त करके धर्मरूप से परिणमित हुआ। शुभ-अशुभ विकल्प है, वह तो राग है, वह कहीं इसका स्वभाव नहीं। इस प्रकार... यह अन्तिम गाथा है न यह? प्रवचनसार की अन्तिम गाथा का कलश ज्ञानतत्त्व(प्रज्ञापन) का। स्वयं धर्म होता हुआ अर्थात् कि आत्मा ज्ञान और आनन्द का रूप, उसके सन्मुख होने से, उसे धर्मरूप परिणमन में—शुद्धोपयोगरूपी होने में पर की कुछ अपेक्षा है नहीं। स्वयं धर्म हुआ न? समझ में आया? ज्ञानतत्त्व (प्रज्ञापन) का अन्तिम कलश है। उसमें (गाथा) १४१ में आ गया है, उसका यह आधार देते हैं। स्व-आत्माश्रित निश्चय धर्मध्यान... स्व-आत्माश्रित निश्चय धर्मध्यान... अन्तर्मुख तत्त्व के आश्रय से प्रगट हुई दशा को सच्चा धर्मध्यान अथवा धर्मरूप परिणमन अथवा शुद्ध उपयोग अथवा मोक्ष का मार्ग कहते हैं।

वह **स्वयं धर्मरूप से परिणमित...** वस्तु के स्वभाव में उसका धर्म (रूप) स्वभाव तो है, परन्तु स्वभाव का आश्रय लेकर जो धर्मरूप परिणति हो, उस **नित्य आनन्द के विस्तार से सरस...** आत्मा है। जो ज्ञानतत्त्व... ज्ञानतत्त्व का है न यह? **नित्य आनन्द के विस्तार से सरस ऐसे ज्ञानतत्त्व में...** ज्ञानतत्त्व अर्थात् ज्ञानभाव—त्रिकाली ज्ञानभाव। वह नित्य आनन्द के फैलाव से—विस्तार से पड़ा हुआ ही है, ऐसा कहते हैं। उसके शाश्वत् ज्ञानतत्त्व में अतीन्द्रिय आनन्द के विस्तार से भरा हुआ वह पदार्थ है। आहाहा! उसमें **लीन होकर...** वह ज्ञानतत्त्व अर्थात् त्रिकाली द्रव्यस्वभाव। त्रिकाली ज्ञानतत्त्व जो आत्मा का ध्रुवतत्त्व, उसमें आनन्द के विस्तार से—फैलाव से भरपूर ज्ञानभाव, उसमें लीन

होता हुआ... '**लीन होकर**' यह पर्याय हुई। त्रिकाली ज्ञानतत्त्व में रहा हुआ आनन्द का विस्तार। ऐसा ज्ञानतत्त्व, उसमें लीन होकर **अत्यन्त अविचलपने के कारण,...** उसमें ऐसा एकाग्र हुआ कि अत्यन्त अविचलपना (अर्थात्) स्थिर हुआ है। गजब धर्म की व्याख्या!

दैदीप्यमान ज्योतिवाले और सहजरूप से विलसित (-स्वभाव से ही प्रकाशित) रत्नदीपक की... भाँति... रत्न का दीपक जैसे लबकझबक हुए बिना प्रकाशित होता है। रत्न का दीपक होता है, वह प्रकाश करता है, परन्तु ऐसे चमक-चमक (हो), लबक हुए बिना—क्षेत्र को बदले बिना (प्रकाश करे)। उसी प्रकार भगवान आत्मा चैतन्यप्रकाश का नूर, उसमें हुआ एकाग्रपना, वह दशा हीनाधिक हुए बिना—फेरफार हुए बिना—अविचलपने दैदीप्यमान ज्योतिवाले **सहजरूप से विलसित (-स्वभाव से ही प्रकाशित) रत्नदीपक की भाँति निष्कम्प-प्रकाशवाली शोभा को प्राप्त होता है...** यह पर्याय हुई। निष्कम्प अर्थात् अस्थिर न हो, ऐसी स्थिर जो चीज़ है, उसमें स्थिर हुआ—स्थिर में स्थिर हुआ। समझ में आया? गजब! स्थिर ध्रुव चीज़ आत्मा में जो स्थिर हुआ, वह सहज विलसती रत्नदीपक की प्रकाशवाली—निर्मल प्रकाशित करता है ज्ञाता-दृष्टा रूप से ऐसी—शोभा को प्राप्त होता है। आहाहा! इसमें व्यवहार की बात का एक भी शब्द नहीं आता।

मुमुक्षु : अलौकिक है.....

गुरुदेवश्री : अलौकिक है।

रत्नदीपक की भाँति स्वभाव से ही निष्कम्परूप से अत्यन्त प्रकाशित होता रहता है—जानता रहता है। आहाहा! ज्ञानतत्त्व का (कलश) है न यह। वस्तु ज्ञानस्वभावी है, उसमें लीन होने से स्थिरता निष्कम्परूप से प्रगट होती है, इसका नाम धर्मपर्याय कहा जाता है। गजब! यह आधार दिया है।

इस १४१वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभ-मलधारिदेव श्लोक कहते हैं:— लो, मुनिराज स्वयं श्लोक कहते हैं।

आत्मन्युच्चैर्भवति नियतं सच्चिदानन्द-मूर्तौ,
धर्मः साक्षात् स्ववशजनितावश्यकर्मात्मकोऽयम्।
सोऽयं कर्म-क्षय-कर-पटुर्निर्वृते-रेकमार्गः,
तेनैवाहं किमपि तरसा यामिं शं निर्विकल्पम्॥२३८॥

श्लोकार्थः- स्ववशता से उत्पन्न आवश्यक-कर्मस्वरूप यह साक्षात् धर्म... लो, भगवान आत्मा पूर्णानन्द, वह अकेला ज्ञान का कन्द प्रभु आत्मा है, उसके वश से उत्पन्न हुआ आवश्यक कर्म—जरूरियातवाला कार्य... आवश्यक कार्य—जरूरियात का कार्य, जिससे मोक्ष होता है। वह आवश्यक का कार्य स्ववशता से उत्पन्न होता है। त्रिकाली ज्ञायकभाव भगवान आत्मा ध्रुव अस्ति—सत्ता के आश्रय से जो यह धर्म उत्पन्न होता है, वह आवश्यक कार्य है। उस आत्मा के धर्म के लिये आवश्यक कर्म है। कर्म अर्थात् कार्य। समझ में आया? यह साक्षात् धर्म... यह साक्षात् धर्म। वीतरागी पर्याय वीतरागीस्वभाव के आश्रय से प्रगट होती है। 'जिन सो ही आत्मा...' वीतरागस्वभावी आत्मा, उसके आश्रय से—अवलम्बन से जो दशा जरूरियात की—आवश्यकरूपी काम... आवश्यकरूपी काम, वह साक्षात् धर्म है। लो, यह धर्म की व्याख्या। नियम से वह धर्म आत्मा में होता है, ऐसा कहना है।

नियम से (निश्चित) सच्चिदानन्दमूर्ति आत्मा में (सत्-चिद्-आनन्दस्वरूप आत्मा में) अतिशयरूप से होता है। ऐसा धर्म आत्मा में होता है, ऐसा कहते हैं। पुण्य-पाप के विकल्प में या पर में नहीं होता। अपना भगवान ध्रुवस्वरूप, ऐसा आत्मा, उसमें यह धर्म होता है। समझ में आया? मन्दिर में और उपाश्रय में और स्वाध्याय मन्दिर में, शत्रुंजय में धर्म नहीं होता, ऐसा कहते हैं। सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा—सत्-शाश्वत्... सत्-शाश्वत्, ज्ञान और आनन्द ऐसी जो चीज़—वस्तु उसमें धर्म होता है, अर्थात् कि उसकी पर्याय में धर्म का परिणमन होता है। सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा में खास अतिशयरूप से वह धर्म होता है।

ऐसा यह (आत्मस्थित धर्म),... ऐसा भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द और ज्ञान का भण्डार, उसमें स्थिर हुई दशा, वह आत्मा में हुआ धर्म, वह **कर्मक्षय करने में कुशल ऐसा निर्वाण का एक मार्ग है।** वह कर्म को नाश करने में कुशल, ऐसा निर्वाण का यह एक ही मार्ग है। समझ में आया? अब व्यवहारमार्ग भी दूसरा है और यह एक मार्ग है—ऐसा नहीं। समझ में आया? कर्मक्षय करने में यह चतुराईवाला यह धर्म है (अर्थात्) कुशल है, कहते हैं। ऐसा निर्वाण का—परम आनन्द की दशारूपी मुक्ति—परम आनन्द अनन्त आनन्द की प्राप्तिरूपी मुक्ति का—यह एक मार्ग है। इस मार्ग से जाने से यह मोक्ष

का परिणाम आता है। समझ में आया? परन्तु इसका कोई साधन होगा या नहीं? यह तो सब निश्चय की बातें हैं, ऐसा पूछते हैं। यही साधन है। (यहाँ) कहा नहीं? आत्मा में होनेवाली धर्मदशा, वही साधन—मोक्ष के साधन के लिये। आहाहा! समझ में आया?

उसी से मैं शीघ्र किसी (-अद्भुत)... मुनिराज अपनी बात डालते हैं। आत्मा के आश्रय से आत्मा में स्थिर हुआ शुद्धोपयोगरूपी धर्म, वह कर्मक्षय करने के कारण (रूप) एक ही मार्ग है। उससे... **उससे ही...** आहाहा! वस्तु के स्वभाव की एकाग्रता ऐसा निर्विकल्प सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो स्व के आश्रयवाली दशा है, **उससे ही मैं...** आत्मा **शीघ्र किसी (-अद्भुत) निर्विकल्प सुख को प्राप्त करता हूँ।** आहाहा! अभी ही मैं आत्मा के आनन्द को प्राप्त करता हूँ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **उसी से मैं शीघ्र किसी (-अद्भुत) निर्विकल्प सुख को....** पूर्ण (सुख) को तो प्राप्त करूँगा ही, परन्तु अभी मैं उसे प्राप्त करता हूँ (अर्थात्) पूर्णानन्दस्वरूप भगवान आत्मा में लिपट जाता हूँ। आहाहा! उसका—पर्याय का विस्तार द्रव्य में पसर जाता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कठिन भाषा एक-एक... उसमें नहीं आता होगा कहीं? अभी बाहर में नहीं आता तो वहाँ कहाँ से आवे? वाड़ा में भी आता नहीं न अभी। आहाहा! अरे, भगवान! तेरी चीज़, वह तुझमें होगी या तेरी चीज़ कहीं पर से होगी?

आहाहा! वस्तु ऐसी है नित्य भगवान ध्रुव सच्चिदानन्द प्रभु, उसमें हो, उसे धर्म कहते हैं। समझ में आया? क्योंकि स्वयं धर्मी, अनन्त-अनन्त गुण का धारक, ऐसे धर्मी के आश्रय से और धर्मी में... ऐसे धर्मी के आश्रय से और उस धर्मी में धर्म होता है। आहाहा! शान्तिभाई! आहाहा! वह धर्म कहीं निमित्त में, पुण्य-पाप के विकल्प में नहीं होता, (परन्तु) आत्मा में होता है, ऐसा। आत्मा जो त्रिकाली है, उसका आश्रय लेने से आत्मा में होता है। समझ में आया? यह मार्ग समझने में भी जहाँ अन्दर उकताहट जैसा लगे कि यह क्या? यह भारी सूक्ष्म है। प्रैक्टिस करना मुश्किल है, ऐसी भाषा (कुछ कहते थे)। ऐसी प्रैक्टिस करना कठिन है। प्रैक्टिस में नहीं रखा जा सकता। यही प्रैक्टिस में रखा जा सकता है। मार्ग ही यह है, दूसरा मार्ग ही नहीं।

ऐसा कि यह बाहर का हो न... जरा दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, भक्ति, दान, वह प्रयोग में रखी जा सकती है और विश्वास भी आवे कि कुछ दूसरे से अलग पड़कर

करते हैं। आत्मा से भिन्न पड़कर करते हैं। परन्तु (वह क्रिया) इसकी कहाँ है? बहुत दूसरे व्यापार-धन्धा करते हों, उसकी अपेक्षा अपन अलग पड़कर कुछ करते हैं। पूजा, भक्ति, दान, दया, व्रत, अपवास उसमें लगे कि दूसरे वे साधारण लोग करते हैं, उनसे हम अलग तो करते हैं। परन्तु वह अलग, वह तेरे आत्मा से अलग है। राग का कर्तव्य ही तेरा नहीं है। आहाहा! अपूर्व जिसका फल है, उसके कारण भी अपूर्व होंगे न! आहाहा! जिसका फल सादि-अनन्त अनन्त-अनन्त शान्ति, आनन्द है, जिसके आनन्द के एक अंश के समक्ष इन्द्र के इन्द्रासन सड़े हुए जैसे लगें, ऐसे पूर्णानन्द की प्राप्ति का उपाय भी ऐसा ही होगा न! समझ में आया? कहते हैं, अरे! इस मार्ग से ही मैं, ऐसा। शीघ्र कोई निर्विकल्प आनन्द को प्राप्त करता हूँ। ध्यानी हूँ। यह १४१ (गाथा) हुई।

(गाथा) १४२। आवश्यक... आवश्यक। सामायिक, चौविसंथो, वन्दन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान—यह सब आवश्यक निश्चय आत्मा में आत्मा के आश्रय से होता है, ऐसा कहते हैं। आता है न दूसरा (आवश्यक) चौबीसंथो (अर्थात्) भगवान की स्तुति। इन छह का एक—छह प्रकार का भेदवाला एक। यहाँ तो दूसरा कहना है। चौबीस तीर्थंकर की स्तुति किसे कहना? कि यह भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसमें स्थिर होना, उसे स्तुति कहना। उसकी स्तुति—आत्मा की स्तुति। आत्मा की स्तुति अर्थात् कि आत्मा के अन्तर गुण में एकाग्र होना, वह उसकी स्तुति की कहलाती है। उसमें लीन हुआ न। उसे प्रशंसकर लीन हुआ, वह आत्मा की स्तुति, उसे तीर्थंकर की स्तुति कहा जाता है। कहो, समझ में आया?

गुणगान करना। अर्थात् क्या? गुणगान का अर्थ गुणग्राम समूह। गुण का समूह भगवान का आदर किया, वह उसकी स्तुति की। समझ में आया? उसका अनादर करके राग की स्तुति, वह मिथ्यात्व की स्तुति है। समझ में आया? गुणग्राम—गुण का समूह भगवान ऐसा स्वयं ही तीर्थंकर है। समझ में आया? चौबीसंथो—चौबीस का स्तवन, वह यहाँ आया। चौबीसंथो नहीं आता लोगस्स में? 'लोगस्स उज्जोअगरे... चउवीसं पि केवली...' यह चउवीसं पि केवली, वह आत्मा। आहाहा! कहते हैं कि ऐसा आवश्यक कार्य—सच्चा जरूरियातवाला अवश्य कर्म, आत्मा के स्वभाव में एकाग्र होना, वह उसका आवश्यकवाला कार्य कहलाता है। समझ में आया?

ण वसो अवसो अवसस्स कम्म वावस्सयं त्ति बोद्धव्वा।
जुत्ति त्ति उवाअं त्ति य णिरवयवो होदि णिज्जुत्ती।।१४२।।

नीचे हरिगीत।

जो वश नहीं वह 'अवश' आवश्यक अवश का कर्म है।
वह युक्ति है वह यत्न है, निरवयव कर्ता धर्म है॥१४२॥

मुक्ति होने की युक्ति यह है। समझ में आया? आत्मा की परमानन्ददशा (अर्थात्) उसकी मुक्ति, उसकी यह युक्ति। दो शब्द प्रयोग किये हैं न! युक्ति अथवा उपाय, ऐसा। युक्ति कहो या उपाय कहो, उपाय कहो या उसे... कहो, यह युक्ति आती है कुछ, ऐसा कहते हैं न? फलाने की युक्ति आती है?—कि, हाँ। मुक्ति की युक्ति आती है? ऐसा कहते हैं। मुक्ति की युक्ति, आत्मा के आश्रय से पर्याय हो, वह मुक्ति की युक्ति। आहाहा! बहुत भिन्न-भिन्न प्रकार से नियमसार में मोक्ष के उपाय की उपमा बहुत प्रकार की दी है, भिन्न-भिन्न प्रकार से। यहाँ अन्त में कहा कि मोक्ष का मार्ग अर्थात् युक्ति, युक्ति अर्थात् उपाय। उपाय अर्थात् कि युक्ति, युक्ति अर्थात् मुक्ति का कारण। लोग नहीं कहते कि युक्ति सूझती है इसमें कुछ? कामकाज का आता है यह... युक्ति कुछ सूझती है? इसका कुछ हल आवे, ऐसी युक्ति सूझती है? ऐसा कहते हैं न? उलझन में आवे तब। इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि तुझे मुक्ति की युक्ति सूझती है? आहाहा!

यह मुक्ति की युक्ति अर्थात् मोक्ष का मार्ग। आवश्यक जो द्रव्य के आश्रय से स्वस्वभाव के सन्मुख—अवलम्बन से जो दशा हो, वह मोक्ष का मार्ग और वह युक्ति और वह एक ही युक्ति मुक्ति का कारण है। दूसरी कोई युक्ति मुक्ति का कारण नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग कठिन लगे। अपवास करना हो तो सरल लगे। आठ अपवास करे, लो। कोई करता था न? दस करने (थे), फिर आठ किये, नहीं? पोपटभाई का पुत्र। दस करने थे, फिर कुछ अटक गया। जवान व्यक्ति है। पैसा खर्च करने में तब वहाँ खर्च किये, अपवास में गये तो यहाँ किया। परन्तु यह अन्दर में जाना वह? यह तो सब बाहर की बातें हैं। आहाहा!

टीका : यहाँ, अवश... (अर्थात्) पर के आधीन नहीं हुआ, **पर के वश न हों ऐसे...** अर्थात् कि **स्ववश** अर्थात् **स्वाधीन, स्वतन्त्र**। आहाहा! यह स्वतन्त्र, देखो! कहते

हैं न अभी कि यह दुनिया स्वतन्त्र हुई। धूल भी स्वतन्त्र नहीं। स्वतन्त्रता का राज्य मिला। यहाँ तो स्वयं पर के वश न हो। 'पराधीन स्वप्ने सुख नाहीं' आता है न? राग और विकल्प के आधीन होना, उसमें कहीं सुख और धर्म नहीं। अवश—अपने वश हुआ योगी— **परमजिनयोगीश्वर ने...** उत्कृष्ट बात ली है न मुनि की। **परमजिनयोगीश्वर...** परम अर्थात् उत्कृष्टरूप से, जिन अर्थात् राग को जीता हुआ, योग अर्थात् स्वरूप में जुड़ानवाला, उसमें भी ईश्वर। ऐसे योगीश्वर को **परम आवश्यक कर्म अवश्य है,...** परम आवश्यक का काम उसे अवश्य है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब! नियमसार स्वयं की भावना के लिये बनाया है न! प्रत्येक गाथा में भगवान को घोला है। अन्त में ऐसा आता है न, यह मैंने मेरी भावना के लिये बनाया है। यह शास्त्र... कहा है। कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं कहते हैं। आहाहा! मेरा भगवान, उसमें एकाग्रता की घोलन की दशा में यह बात आयी है। समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि भी योगी है, परन्तु जघन्य श्रेणी का। मुनि उच्च श्रेणी का योगी है। समझ में आया? इसलिए बात उत्कृष्टरूप से कही है कि जो अवश है... आहाहा! अर्थात् कि स्ववश है, अर्थात् कि त्रिकाली ज्ञायक आनन्दमूर्ति के आधीन होकर पर्याय रही है। आहाहा! आधीन होकर हुई है। पर के आधीन होकर हुई दशा, वह कहीं धर्म नहीं। आहाहा! ऐसा **परम आवश्यक कर्म...** ऐसे आत्मा को आवश्यकवाला काम—उसका काम आवश्यकवाला बराबर है। समझ में आया? **ऐसा कहा है।** जो कोई धर्मात्मा, **जो योगी निज आत्मा के परिग्रह के अतिरिक्त अन्य पदार्थों के वश नहीं होता...** एक भगवान आत्मा अपना परिग्रह है। समझ में आया? निज आत्मा—अपना आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु शाश्वत्धाम, शाश्वत्फल, शाश्वत् शक्तियाँ, ऐसा जो आत्मतत्त्व, उसका परिग्रह (है अर्थात्) उसे पकड़ा है, इसके अतिरिक्त उसे कुछ परिग्रह है नहीं। आहाहा!

अन्य पदार्थों के वश नहीं होता... राग के भी वश नहीं होता। आहाहा! शरीर और कुटुम्ब-कबीला और देव-गुरु-शास्त्र, वे तो सब पर हैं, उनके वश नहीं होता। राग भी परद्रव्य है, उसके वश नहीं होता, (ऐसा) यहाँ कहा है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का विकल्प, वह भी अन्य पदार्थ है; वह आत्मपदार्थ नहीं। **अन्य पदार्थ के...** अर्थात् एक के वश हुआ, वह दूसरे के वश नहीं होता, ऐसा कहते हैं। धर्मी जीव का परिग्रह

अकेला आत्मा है। आहाहा! उसका परिग्रह पुंज, वह आत्मा है। यहाँ तो राग तो नहीं, परन्तु एक समय की पर्याय (भी) नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? निज आत्मा वापस, ऐसा। अरिहन्त का आत्मा, सिद्ध का आत्मा, वह तो पर है। अपने आत्मा के परिग्रह के अतिरिक्त.... उसे पकड़ा है दृष्टि से, ज्ञान से, वह उसका परिग्रह है।

अन्य पदार्थों के वश नहीं होता... आहाहा! शुभराग के भी आधीन नहीं होता। **और इसीलिए जिसे...** इसलिए ही जिसे, ऐसा। राग के वश नहीं होता और स्व के वश होता है, इसलिए ही उसे अर्थात् **जिसे 'अवश' कहा जाता है।** अपने वश है, पर के वश नहीं; इसलिए अवश कहा जाता है। आहाहा! लो, आवश्यक में से अवश किया। आवश्यक है न तो 'अवशपना' (अर्थ किया), अवशपना अर्थात् स्ववशपना। **उस अवश परमजिनयोगीश्वर को...** ऐसा जो स्ववश अथवा राग और व्यवहार के वश नहीं हुए को... ऐसा जैनधर्म होगा? 'दया वह सुख की वेलडी, दया वह सुख की खान, अनन्त जीव मुक्ति में गये, दया के निधान।' लो, कितना सरल निकाला। उसमें कुछ मेहनत पड़े? यह दया पर की नहीं। यह तो स्वदया की बात है। आहाहा!

पर की तो दया पाल सकता नहीं, परन्तु उसका भाव है, वह भी हिंसा है (क्योंकि) राग है। आहाहा! उसके आधीन होता नहीं। ओहो! दया तो भगवान की करुणा है, दया वह धर्म है, भगवान को भी दया होती है। वह दया कौन सी भाई? बड़ी चर्चा हुई थी। दया तो धर्म है, स्वधर्म है।

मुमुक्षु : कौनसी दया?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पर की कही वह। तब और स्वदया कहाँ से आयी? पर की दया हो न। वह मरता हो तो उसे बचाना। वह आत्मा कहाँ मरता है, वह उसे बचाना? ....भाई! परन्तु वह आत्मा राग से मरता है। उसे बचाना (अर्थात्) आत्मा में एकाग्र होकर, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कठिन भाई! जगत से उल्टी बात! पर की दया का भाव करे, वह शुभविकल्प है। इससे कहीं पर की दया पल सकती है, ऐसा नहीं। और वह शुभराग है, वह तो वास्तव में स्वरूप की हिंसा है। कठिन काम है जगत को। समझ में आया?

यहाँ तो भगवान आत्मा अनाकुल आनन्द का नाथ प्रभु, उसके आधीन होना, उसके वश रहना, पर और रागादि के वश न होना, उसे **अवश परमजिनयोगीश्वर को**

निश्चयधर्मध्यानस्वरूप... उसे वास्तविक धर्मध्यान का स्वरूप, ऐसा परम आवश्यक कार्य अवश्य है, ऐसा जानना। आहाहा! नये हों, उन्हें तो ऐसा लगे कि ऐसा धर्म होगा वीतराग का? आहाहा! लो, कुछ करना नहीं किसी का और किसी का करने का भाव हो तो कहे पाप। कुछ करना नहीं पर का। करना अपना पूरा, वह कहा न? आवश्यक कार्य अपना यह करना है। आहाहा! कर्म कहो, काम कहो, कार्य कहो, दशा कहो, अवस्था कहो।

कहते हैं कि अवश मुनियों को... प्रधानता मुनि की ली है न! **निश्चयधर्म-ध्यानस्वरूप...** देखो! यहाँ तो आत्मा के आश्रय से धर्मध्यान शुद्धोपयोग हो, उसे धर्मध्यान कहा है। वे कहते हैं कि धर्मध्यान अर्थात् शुभ उपयोग। शुद्ध उपयोग, वह शुक्लध्यान में जाता है, वह अभी नहीं है। अरे, भगवान! तू नहीं अभी? आहाहा! तू कब नहीं? और तू है तो कब उसका आश्रय लेने से पराधीनता होगी? बिल्कुल नहीं होगी। तू है, ऐसा स्वीकार जहाँ हो, पूर्णानन्द, ज्ञानानन्दघन प्रभु वह है, 'वह है', उस सत्ता का स्वीकार हुआ, वही उसकी दया है। आहाहा! (पर की) दया पालन की अर्थात् मार डाला कि मैं ऐसा नहीं, मैं ऐसा नहीं, वह हिंसा थी। समझ में आया? आहाहा!

मैं ऐसा त्रिकाल हूँ, ऐसे अभेदस्वभाव का आश्रय लेकर जो दृष्टि हुई, ज्ञान हुआ, उसे अपना 'मैं जिस स्वरूप से अस्ति था, उसे उस रीति से नहीं मानता था,' इसका नाम हिंसा। जिस स्वरूप से जो जैसा है, वैसा उसे स्वीकार किया, वह उसकी दया। उसे जीवित जैसा है, वैसा रखा। समझ में आया? जो जीवित तत्त्व नित्यानन्द प्रभु जैसा है, वैसा स्वीकार किया अर्थात् वैसा उसने रखा। आहाहा! समझ में आया? **निश्चयधर्मध्यानस्वरूप परम-आवश्यक-कर्म अवश्य है,...** अरे! उसकी समझण में 'ऐसी चीज़ है' ऐसा उसके लक्ष्य को तो ले जाये और फिर प्रयोग करे अन्तर में जाने का। इसके बिना यह वस्तु हाथ आवे, ऐसी नहीं है। आहाहा! लक्ष्य में जहाँ दूसरी चीज़ हो... समझ में आया? यह वस्तु ऐसी है, ऐसा लक्ष्य ही जहाँ नहीं, वह लक्ष्य बिना अन्दर जायेगा कैसे? आहाहा!

वह **परम-आवश्यक कर्म...** त्रिकाली भगवान ध्रुव के वश हुआ और पर के वश नहीं हुआ धर्मात्मा, उसके पास अवश्य परम-आवश्यक कर्म है और वही आवश्यक

कर्म, वह स्वस्वभाव के आश्रय से प्रगट हुई क्रिया—धार्मिक शुद्धोपयोग कार्य, वह एक ही **निरवयपने का उपाय है...** निर्-अवयवपने का उपाय है। आहाहा! अरे! यह अवयव शरीर, उससे रहित होने का यह एक उपाय है। यह अवयव जड़ के, उनसे रहित निर्-अवयव... यह अवयव अर्थात् यह शरीर के सब भाग, ऐसी जो काया, उससे रहित होने का... आहाहा! निःअवयवपने का... जिसमें काया मिले नहीं, अवयव मिले नहीं, ऐसा निरवयपने का—निर्-अवयवपने का... ऐसा निश्चय धर्मध्यानस्वरूप आवश्यक कार्य जो स्व के आश्रय से हुआ भाव, वही शरीररहित होने का उपाय है अर्थात् कि मुक्ति का मार्ग है और वही **युक्ति है।** दो शब्द पड़े हैं न? **उवा**—उपाय है और वही युक्ति है। दूसरी युक्ति वहाँ काम नहीं करती। आहाहा!

अरे! यह अनन्त जन्म-मरण के दुःख के दावानल में सुलग रहा है, उसकी खबर नहीं। आहाहा! दो-पाँच महीने जहाँ जरा सा शरीर को रोग हो और पलंग से खड़े होने की शक्ति न हो, वह फिर उसमें उलझता है। यह तो अनन्तकाल से यह बात है। शुभाशुभराग की अग्नि में यह सिंक रहा है, भाई! इसे उससे रहित होने का उपाय तो यह है। समझ में आया? **निरवयवपने का उपाय है,...** आहाहा! और यह **युक्ति है,** ऐसा। यह युक्ति है। यह उचित है और यह भी युक्ति है, ऐसा। समझ में आया? यह युक्त की युक्ति यह है। उचित तो यह है। मोक्ष का उपाय, वह यही युक्ति है। आहाहा! कितने ही और ऐसा कहते हैं कि यह निश्चय... निश्चय... नहीं। अपने तो व्यवहार के उपदेश का पोषण करो। व्यवहार की देशना दो, व्यवहार के प्राण पोषण करो। अरे, भगवान! यह तो तू करता ही आया है। क्या करता है? व्यवहार अर्थात् राग। राग को पोषण करो, राग को करो। यह बतावे उसके साधन। वह परवशपना तो अनादि से करता आता है। आहाहा! उसमें बहुत लोग जुड़ सकते हैं। यह बात तो अभी पकड़ सकते नहीं, जुड़े कहाँ से?

अरे! ... बापू! तेरे घर की—निजघर की बात है, वह न पकड़ में आवे, ऐसा कैसे कहलाये? जो सत्य बात है और प्रभु सत्यपने विराजमान त्रिकाल है। समझ में आया? चेतन साहेबा आनन्दकन्द का नाथ साहेब त्रिकाल विराजता है, उसके समीप में जाने से उसे ऐसा लगे, अरर! यह नहीं... यह नहीं। यह मार्ग लो, यह मार्ग दूसरा लो। दूसरा सध गया है अनादि से।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऊँचा मार्ग... ऊँचा अर्थात् मोक्ष का मार्ग, ऐसा। यह बन्ध का मार्ग हो, उसे ठीक लगे। आहाहा! अरे! उसका ज्ञान और श्रद्धा में 'ऐसा आत्मा है, उसका आश्रय करना, वह ठीक है' ऐसा न बैठे, तब तक उसका वीर्य पर में काम कर रखे। यह तो करता है अनादि से, उसमें नया क्या किया इसने? नयी मुक्ति होने का कारण नया क्या किया? वह तो बन्ध का कारण, बन्ध के फलरूप से कर रहा है। आहाहा! '**णिरवयवो होदि**' ऐसा है न? यह '**जुत्ति**' उसमें आयी न, निरुक्ति। १४२ में निरुक्ति आयी, इसलिए टीकाकार ने पहले (ले लिया)। अमृतचन्द्राचार्य की शैली है न! फिर आवे उसका पहले डाल देते हैं। उसमें निरुक्ति आयी, उसमें १४१ में डाला अन्त में। **इस प्रकार निरुक्ति अर्थात् व्युत्पत्ति है,** ऐसा डाला न टीका में। समझ में आया?

अवश जो आत्मा का कार्य... अर्थात्? अवश अर्थात् पर के वश नहीं हुआ अर्थात् कि स्व के वश हुआ आत्मा का कार्य, वही निरवयव होने का उपाय है। अवयव अर्थात् शरीररहित अर्थात् मुक्ति होने का यही एक उपाय है। आहाहा! वे कहे, दो मार्ग है।—ऐसा कहते हैं। दो मार्ग न माने, वे भ्रम में पड़े हैं। और यह कहते हैं कि दो मार्ग माने, वे भ्रम में पड़े हैं।—टोडरमलजी ऐसा कहते हैं। वस्तुस्थिति ऐसी है। वहाँ टोडरमलजी ने कहीं घर का कहा है? समझ में आया? आहाहा! स्व का मोक्ष होना है तो स्व का कार्य स्व से स्व में होगा न? आत्मा से मोक्ष होता है, तो आत्मा से उसका स्वभाव और कारण आता है। कारण भी आत्मा से आता है। उसमें कहा न ऊपर। सच्चिदानन्दमूर्ति आत्मा में कार्य होता है। धर्म आत्मा में होता है, ऐसा कहा न? ऊपर आया न! (कलश) २३८। सच्चिदानन्दमूर्ति आत्मा में धर्म होता है, ऐसा। आहाहा!

इतना बड़ा आत्मा है और ऐसा स्वभाव है, वह इसे अभी अन्दर में बैठे नहीं न, इसलिए फिर पर में शोधने-खोजने जाता है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि जहाँ गुण हैं, वहाँ गुण को खोज तो गुण मिले। परन्तु निमित्त में, राग में और एक समय के अंश में कहीं गुण नहीं है। समझ में आया? तेरे गुण, यहाँ जो अनन्त गुणों का पिण्ड प्रभु, वहाँ गुण हैं। जहाँ वस्तु हो, वहाँ नजर करे तो वस्तु हाथ आवे। इसी प्रकार जिसे गुण चाहिए हो तो जहाँ गुण हो, वहाँ नजर करे तो गुण मिले। गुण है कहाँ? अन्दर में।

उसका गुण नहीं राग में, नहीं निमित्त में, नहीं पर्याय में। एक अंश में गुण कहाँ आया? समझ में आया? अनन्त गुण का पिण्ड-धाम, ऐसा आत्मा, उसे अन्दर में देखे तो गुण मिले। जहाँ नहीं, उसमें देखने जाये, सहारा लेने जाये तो कहाँ से मिले? आहाहा! 'मोटाने उत्संग बैठाने शी चिंता...' भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसकी गोद में बैठा... आहाहा! उसे अब क्या चिन्ता? कहते हैं। भवभ्रमण की चिन्ता कैसी? आहाहा! समझ में आया? 'तेम प्रभु चरण पसाय, सेवक थया निचिंता।'

अवयव अर्थात् काय; उसका (काय का) अभाव,... अवयव अर्थात् शरीर। अवयवी काय हो... **उसका अभाव, वह अवयव का अभाव**—वह **निरवयवपना।** आहाहा! एक बात भी जैसी है, वैसे इसे बराबर बैठे... '**एगं जाणदि सव्वं जाणदि**' सब ज्ञात हो जाये। समझ में आया? आता है न, नहीं? टीका में आता है, नहीं? भाई! जयसेन आचार्य। जयसेन आचार्य की (गाथा ४९ की) टीका में। एक भाव बराबर जाने, उसे सब ज्ञात हो जाये। ऐसे यथार्थ वस्तु भगवान आत्मा एक को बराबर जिसने जाना, उसने सबको जाना। यह लोकालोक का ज्ञान उसे हो गया। शरीररहित हुआ जाये, भाषा ऐसी ली है। उसका अर्थ कि मुक्ति होने का उपाय। समझ में आया?

वह अवयव का अभाव... जिसमें शरीर न हो, ऐसी अशरीरीदशा को प्राप्त हो, उसे यहाँ उसके कारण को आवश्यक कार्य कहते हैं। **(अर्थात् निरवयवपना)। परद्रव्यों को अवश जीव निरवयव होता है...** राग और पर के वश न हो, वह अकाय होता है—वह निर्-अवयव होता है। आहाहा! जिसमें भव और भव का भाव त्रिकाली वस्तु में नहीं, उसके आश्रय से शरीररहित और मुक्ति होती है। उस राग के आधीन नहीं हो। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प उठे, उसके आधीन न हो, ऐसा कहते हैं। कठिन मार्ग!

५०-५० वर्ष, ६०-६० वर्ष, ९०-९० वर्ष हो गये हों कितनों को। कभी यह कान में पड़ा न हो उसे कि क्या मार्ग और क्या पद्धति है। ऐसा का ऐसा पूरे दिन उपधान करो, भगवान को वन्दन करो इतनी बार और सैकड़ों बार हजारों बार, खमासमणा दो। भाई! बापू! यह तो अन्दर भाव हो—राग मन्द हो तो शुभ है और दृष्टि तो मिथ्यात्व है। क्योंकि मेरा प्रभु स्वयं रागरहित है, उसका तो स्वीकार वहाँ है नहीं और यह भगवान का स्वीकार करने जाये तो राग है। यह तो एकान्त निश्चय हो जाता है, ऐसा (लोग)

कहते हैं। एकान्त सच्चा हो जाता है, ऐसा कहते हैं। कुछ खोटा होना चाहिए बीच में। यह तो कहते हैं यहाँ कि परद्रव्य के वश नहीं होना, खोटे के वश नहीं होना; सच्चे के वश होना। सच्चा तो भगवान स्वयं है। सत्-शाश्वत् वस्तु स्वयं है और वही सत् है और वही सत्य है। समझ में आया?

सत् का सत्पना है, वह सत्य। ऐसा भगवान आत्मा जिसमें राग का लेप नहीं, अरे! त्रिकाली में जिसका एक अंश नहीं। ऐसा भगवान आत्मा का आश्रय लेना, वह स्ववशपना है। यह भगवान तो ऐसा कहते हैं कि मेरे ऊपर लक्ष्य जायेगा, वह तुझे परवशपना है। ले! आहाहा! क्योंकि तेरा भगवान तेरे पास पूरा पड़ा है, उसका स्वीकार बिना मेरा स्वीकार करने जायेगा, वह तो राग है। आहाहा! समझ में आया?

परद्रव्यों को अवश जीव... वह कायारहित निरवयव होता है। **(जो जीव परद्रव्यों को वश नहीं होता, वह अकाय होता है)।** आहाहा! **इस प्रकार निरुक्ति-व्युत्पत्ति है।** शब्द की अर्थदशा भी ऐसी है, ऐसा कहते हैं। भाव की व्युत्पत्ति-युक्ति तो ऐसी है ही, (परन्तु) यह शब्द की व्युत्पत्ति भी ऐसी है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अरे! इस वास्तविक ज्ञान को अन्दर में संभाले तो सही कि यह चीज़ अन्दर परिपूर्ण है, वही आश्रय लेने योग्य है। आहाहा! उसके बिना शरीररहित दशा नहीं होती। शरीरवाली दशा हो, वह तो अनन्त बार की है, उसमें क्या है? ऐसा कहते हैं। रागादि करके परवश होकर शरीर मिले, भले देव के मिले। वे तो सब परिभ्रमण के कार्य हैं। आहाहा!

शरीररहित होने का भगवान आत्मा की अन्तर युक्ति अर्थात् जो उपाय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आवश्यक का कार्य उसे ही होता है। स्व के आश्रयवाले को ही आवश्यक का काम होता है। पर के आश्रयवाले को आवश्यक का कार्य होता नहीं। आहाहा! इसका अर्थ कि वह व्यवहार आवश्यक का कार्य नहीं, ऐसा कहते हैं। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत के विकल्प, शास्त्रज्ञान, वह सब आवश्यक का कार्य नहीं, ऐसा कहते हैं। इस प्रकार तो निरुक्ति अर्थात् व्युत्पत्ति है, लो। कायारहित होने की युक्ति हो तो स्व का आश्रय लेना वह है। वह युक्ति है। इस युक्ति से उसे मुक्ति मिलती है। दूसरी युक्ति से उसे मुक्ति मिलती नहीं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल १०, शुक्रवार, दिनांक - २९-१०-१९७१
श्लोक-२३९-२४१, गाथा-१४३, प्रवचन-१६२

नियमसार, १४२ गाथा की टीका हुई। आवश्यक, परम-आवश्यक अधिकार। आवश्यक का जिसे काम है, कि जिससे मुक्ति हो, ऐसा परम-आवश्यक का अधिकार है।

अब इस १४२ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:— २३९ श्लोक।

योगी कश्चित्स्वहितनिरतः शुद्धजीवास्तिकायाद्,
अन्येषां यो न वश इति या सन्स्थितिः सा निरुक्तिः।
तस्मादस्य प्रहत-दुरित-ध्वान्त-पुञ्जस्य नित्यं,
स्फूर्जज्ज्योतिःस्फुटितसहजावस्थयाऽमूर्तता स्यात्।।२३९।।

श्लोकार्थ : जो **कोई योगी...** योगी अर्थात् शुद्धस्वरूप चैतन्य निर्मल, उसमें जुड़ान करनेवला, उसका नाम योगी। अपना परम-आनन्द—ऐसा त्रिकाली स्वभाव, उसमें जिसका जुड़ान है, जिसकी वर्तमानदश का त्रिकाल स्वभाव में जुड़ान है, उसे योगी कहा जाता है। समझ में आया? **स्वहित में लीन रहता हुआ...** यहाँ तो स्वहित में लीन रहता हुआ, ऐसा। अपना भगवान अनाकुल आनन्द के स्वभाववाला तत्त्व, उसका रसीला योगी, ऐसा **स्वहित में लीन रहता हुआ...** अपना हित, स्वभाव-सन्मुख होकर एकाग्र रहना, वह उसका हित है। **शुद्धजीवास्तिकाय के अतिरिक्त...** शुद्ध-जीव-अस्ति... शुद्ध—पवित्र, जीव अस्ति अर्थात् है और काय अर्थात् असंख्य प्रदेशी। ऐसा शुद्ध-जीव-अस्तिकाय (अर्थात्) पवित्र जीव अस्तिपने का स्वभावाला असंख्य प्रदेशी, इसके अतिरिक्त **अन्य पदार्थों के वश नहीं होता।** निमित्त के वश नहीं होता, राग के विकल्प की वृत्ति के वश नहीं होता, एक समय की पर्याय के वश नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

शुद्धजीवास्तिकाय के अतिरिक्त अन्य पदार्थों के वश नहीं होता। अपना स्वभाव,

उसमें जिसकी एकाग्रता है, इससे उस आत्मा के त्रिकाली ज्ञायक असंख्य प्रदेशी स्वभाव के अतिरिक्त कोई पर्याय, रागादि के भी वश नहीं होता। यह गजब! प्रयोग में लाना, वह यह वस्तु है। समझ में आया? और यही हो सके ऐसा उसका स्वभाव है। पर में जुड़ान करना, वह कहीं उसका स्वभाव नहीं। वह तो कृत्रिम खड़ा करता है। वह अन्तरस्वभाव पूर्ण स्वरूप, उसमें एकाग्र होना, वह तो उसका स्वरूप—स्वभाव ही है। समझ में आया? ऐसा जो **अन्य पदार्थों के वश नहीं होता। इस प्रकार जो सुस्थित रहना, सो निरुक्ति है।** ऐसा सुस्थित... भगवान आत्मा नित्यानन्द सहजानन्दस्वरूप में जो सुस्थित—यथार्थरूप से एकाग्र होकर स्थित रहे, ऐसा निरुक्ति—इसका अर्थ है। **(अवशपने का व्युत्पत्ति-अर्थ)** यह है, ऐसा। पर के वश न होना और अपना भगवान आत्मा शुद्ध आनन्द के वश होना—ऐसा अवशपने की व्युत्पत्ति का अर्थ है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा करने से... भगवान आत्मा ध्रुव—नित्य स्वभाव में एकाग्र होने से **(-अपने में लीन रहकर पर को वश न होने से) दुरितरूपी तिमिरपुंज का जिसने नाश किया है,...** अर्थात् **(पाप तथा पुण्य दोनों वास्तव में दुरित हैं।)** वह आत्मा के स्वभाव में है ही नहीं। **दुरितरूपी तिमिरपुंज...** पुण्य और पाप जो अज्ञान अन्धकाररूप है। जब भगवान आत्मा ज्ञानस्वभावरूप सूर्य है, तब पुण्य के-पाप के भाव और कर्म, वह अज्ञान का पुंज है, अन्धकार है। **तिमिरपुंज का जिसने नाश किया है,...** अर्थात् कि जिसके स्वभाव में नहीं और स्वभाव का आश्रय करने से पर्याय में से भी जिसे पुण्य-पाप का भाव नाश हुआ है। आहाहा! कठिन बातें, भाई!

प्रेक्टिकल करना, वह कठिन होता है लड़कों को। प्रेमचन्दभाई का लड़का। लाठीवाले गये न कल। ऐसे प्रेक्टिकल करना—प्रयोग में लाना... परन्तु यही वस्तु है। समझ में आया? आहाहा! यह जन्म-मरण के दु:खों में अनन्त काल से आकुलता का वेदन करता है, वह भट्टी में सुलगता हुआ जलता है। आहाहा! तिमिर—पुण्य और पाप के अन्धकार, उसमें वह अनादि से जल रहा है। तड़पहाट करता है, हों! उसे उभरना हो तो यह एक ही रास्ता है। शुद्ध चैतन्य जीवास्तिकाय ऐसा स्वभाव, उसके आश्रय से उसमें लीन होना।

ऐसे उस योगी को सदा प्रकाशमान ज्योति द्वारा... ऐसा नित्यानन्दस्वभाव पूर्ण शक्ति से भरपूर (और) तिमिर के पुंज का जिसमें अभाव है—उसका आश्रय लेकर जिसने **सदा प्रकाशमान ज्योति द्वारा...** त्रिकाल प्रकाशमान **सहज अवस्था प्रगट होने से...** सदा प्रकाशमान ज्योति द्वारा सहज अवस्था प्रगट में से... आहाहा! गजब टीका! गजब बात है। मोक्ष के अमृत को नीचे उतारा है। भाई! तेरी मुक्ति का कारण, प्रभु! तुझे दुःख से मुक्त होने का उपाय... आहाहा! **सदा प्रकाशमान ज्योति...** चैतन्यज्योतिस्वरूप सदा प्रकाशमान आत्मा है। उसके द्वारा **सहज अवस्था प्रगट होने से...** उसके द्वारा—त्रिकाल ज्ञायक द्रव्यस्वभाव के आनन्दस्वभाव द्वारा—सहज अवस्था... अर्थात् कि यह पुण्य-पाप का तिमिर तो उसमें नहीं, और उससे वह अवस्था प्रगट होती नहीं। आहाहा! इतना तो स्पष्ट है। तथापि (कहते हैं कि) व्यवहार से निश्चय होता है। व्यवहार अर्थात् अज्ञान अन्धकार। शुभ विकल्प अर्थात् अन्धकार। वह जिसमें नहीं और जिसमें नहीं, उसका आश्रय करने से उन राग-द्वेष का नाश हो सकता है, ऐसा उसका स्वरूप है। राग-द्वेष को रखना, ऐसा उसका स्वरूप नहीं। उसके लक्ष्य में तो यह बात ले। समझ में आया?

भाई! तेरे उद्धर का रास्ता तो यह है। प्रतिकूल संयोग देखे, तब इसे लगे कि दुःखी हूँ। अनुकूल संयोग (देखे, तब इसे लगता है कि) सुखी हूँ, दोनों कल्पना-भ्रम है। अपने स्वभाव को छोड़कर राग का ध्यान और राग की एकता, वही महादुःख और अज्ञान अन्धकार है। ऐसे आत्मा को अपने **सदा प्रकाशमान ज्योति...** राग-द्वेष अज्ञान अन्धकार है, तब भगवान आत्मा सदा प्रकाशमान ज्योति चैतन्यसूर्य है। आहाहा! ऐसी सदा प्रकाशमान प्रभु चैतन्यज्योति द्वारा—ऐसे स्वभाव के आश्रय से और उस स्वभाव द्वारा **सहज अवस्था प्रगट होने से...** स्वाभाविक दशा प्रगट होने से **अमूर्तपना** अर्थात् सिद्धपना पाता है। आहाहा! बात को ग्राह्य होना, वह ही जहाँ मुश्किल, तो उसे प्रयोग करना तो अनन्त पुरुषार्थ (अपेक्षित) है। अनन्त काल में नहीं किया हुआ, जो कुछ करने का है, वह यह है। समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा अपने त्रिकाली चैतन्यप्रकाश के नूर के पूर द्वारा—उसकी दृष्टि वहाँ पड़ी है, इसलिए उसके स्वभाव द्वारा—जिसे वर्तमान दशा में सहज अवस्था अमूर्तपने की प्रगट **होती है।** आहाहा! समझ में आया?

लो, अमूर्तपना प्रगट होता है। अमूर्तपना तो त्रिकाल है, परन्तु पर्याय में राग का सम्बन्ध था, वह मूर्तपना था। उसका अभाव होकर जैसा स्वभाव है, ऐसी निर्विकारी अमूर्तदशा चैतन्यप्रकाश के पुंज द्वारा प्रगट होती है। लो, एक-एक श्लोक में बहुत भरते हैं, बहुत भरा है! देखो न! कितना डाला है इसमें! निमित्त द्वारा नहीं, व्यवहार द्वारा नहीं। व्यवहार का तो जिसमें अभाव है और व्यवहार का अभाव स्वभाव के आश्रय से होता है। आहाहा! समझ में आया? मार्ग तो, भाई! महापुरुषार्थ का है। समझ में आया? यह कायर का काम नहीं। शुभभाव का पुरुषार्थ, उसे तो यहाँ नपुंसक गिना है। व्यवहार का पुरुषार्थ—दया, दान, व्रत, पूजा, भक्ति के विकल्पों का पुरुषार्थ तो नपुंसक (पना) है। शान्तिभाई! आहाहा! जो वीर्य आत्मस्वभाव की प्रगट दशा पूर्णता को प्राप्त करे अथवा पूर्णता का आश्रय ले, उसे वीर्य कहा जाता है। आहाहा! इसमें वाद-विवाद को कहाँ अवकाश है? आहाहा! मैं और तू और... ऐसा और वैसा—सहज वस्तु में यह है नहीं। आहाहा!

ऐसे धर्मी जीव को... योगी अर्थात् स्वरूप में योग करनेवाला। योगी। कहा, क्या नाम है तेरा? मोहनभाई! तुम्हारे पौत्र को (पूछा)। योगी। कल आया था साथ में जंगल जाते हुए। तुम्हारा नाम क्या? कि योगी। योगीराज तो वे स्वामीनारायण में हुए वे? चन्दुभाई कहते थे। एक लड़के को बताया चन्दुभाई ने। चन्दुभाई डॉक्टर अपने। ...सौ में सौ प्रतिशत मिट जाये। यह तो कहे, मिट जाये ऐसी चीज़ ही है। उसका कुछ कहते हैं, दवा को क्या कहते हैं? ... हाँ, वह। सौ में सौ प्रतिशत बालक को मिट जायेगा। ऐसी चीज़ नहीं उसमें केंसर या... वह तो सौ में सौ प्रतिशत मिट जायेगा। कल कहते थे लड़के को देखकर, हों!

यह तो चीज़ की अवस्था है। यह क्षय (टीबी) आत्मा का है, वह सौ में सौ प्रतिशत मिट जाये, ऐसी चीज़ है। उसकी यह दवा है। आहाहा! राग के छिद्र पड़े हैं उसे, विकल्प के छिद्र पड़े हैं, वह क्षय हैं। आहाहा! चाहे तो शुभराग हो या अशुभराग हो—जाति तो बन्ध की एक ही है। आहाहा! समझ में आया? ओहोहो! परन्तु क्या कलश बनाये हैं न! अमृत से भरे कलश हैं। भाई! तेरा सदा प्रकाशमान ज्योति प्रभु है न ध्रुव। उस द्वारा सहज अवस्था प्रगट होती है। दूसरे किसी के द्वारा, आत्मा की अमूर्त

पूर्ण आनन्ददशा प्रगट होने की दूसरी कोई युक्ति और उपाय नहीं है। आहाहा! १४२ गाथा (का) कलश २३९ हुआ।

अब, गाथा १४३।

वट्टदि जो सो समणो अण्णवसो होदि असुहभावेण।
तम्हा तस्स दु कम्मं आवस्सय-लक्खणं ण हवे॥१४३॥

वर्ते अशुभ परिणाम में वह श्रमण है वश अन्य के।
अतएव आवश्यक-स्वरूप न कर्म होता है उसे॥१४३॥

आहाहा! कितना स्पष्ट किया है!

टीका : यहाँ, भेदोपचार-रत्नत्रयपरिणतिवाले... अर्थात् कि अकेले व्यवहार से देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि में रहा है, ऐसे **जीव को अवशपना नहीं है...** उसे स्ववशपना नहीं। अवश (नहीं) अर्थात् पर के वशपना है। पर के वशपना है, पर के आधीन हो गया। भेदोपचार अर्थात् व्यवहार ऐसे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि, मुनिपना—द्रव्यलिंग लिया है। समझ में आया? है वह अज्ञानी, हों! मिथ्यादृष्टि ऐसे जीव को अवशपना नहीं, अर्थात् आत्मा के आधीन नहीं, वह तो पर के आधीन है। आहाहा! लोगों को कठिन लगे। ऐसा कितने ही कहते हैं कि यह द्रव्यलिंगी और भावलिंगी की अभी खबर नहीं पड़ती।

मुमुक्षु : खबर न पड़े तो फिर उसे भावलिंगी मानना किसलिए?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं को भावलिंगी हूँ, इसकी खबर नहीं। फिर मानना किसलिए? अरे! क्या हो? अरे प्रभु! काल ऐसा आया। बाहर के वेश से लोग प्रभावित हो जाते हैं। अन्दर का वेश पलटा है या नहीं, इसकी खबर नहीं। खबर नहीं, इसका अर्थ ही कि वह अज्ञानी है। भावलिंग और द्रव्यलिंग वह है ही नहीं। आहाहा! कहो!

जो श्रमणाभास... नग्नपना अंगीकार किया है। **द्रव्यलिंगी** है... जिसे भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप की भेंट हुई नहीं अन्दर। **अप्रशस्त रागादिरूप अशुभभावसहित वर्तता है,...** उसे यहाँ अशुभभाववाला गिनने में आता है। **अप्रशस्त रागादिरूप अशुभभावसहित वर्तता है,...** क्योंकि शुद्धता का भान नहीं और फिर वह परवश है,

इसलिए जहाँ-तहाँ वह अशुभभाव करता है। यह मेरा मन्दिर, यह मेरी यात्रा और यह हमारा तीर्थधाम, उसे अपनापन मानता है अज्ञानी, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? जिनमन्दिर... आता है न अन्त में? जिनेन्द्रमन्दिर हमारा, यह हमारा तीर्थ है, यह हमारे रहने के स्थान हैं, यह हमारा क्षेत्र है, यह हमारा मकान है, हमारा धन है, धन अर्थात् पुस्तक आदि, इत्यादि जो हो वह, धान्यादि, वह सब हमारा—ऐसे अज्ञानी ने, आत्मा का स्वभाव परमानन्द है, उसे अपनेरूप से जाना, माना नहीं। इससे ऐसे लिंग धारण करके अशुभराग-भाव में वर्तता है।

वह निज स्वरूप से अन्य (-भिन्न) ऐसे परद्रव्यों के वश है;... आवश्यक अधिकार बहुत ही कठिन है। निजस्वरूप भगवान आत्मा से अन्य भाव के वह वश हो गया है (अर्थात्) वह परद्रव्यों के वश है। रागादि के वश है, वह परद्रव्य के वश है। आहाहा! **इसलिए उस जघन्य रत्नत्रय-परिणतिवाले जीव को...** जघन्य अर्थात् हल्के भाववाला, ऐसा। वहाँ सम्यग्दर्शन नहीं, परन्तु बाहर की व्यवहार श्रद्धा कुछ है देव-गुरु को मानकर... ऐसी **जघन्य रत्नत्रय-परिणतिवाले जीव को...** उसकी परिणति ही रागरूप से परिणमित है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **स्वात्माश्रित निश्चय-धर्मध्यानस्वरूप परम-आवश्यक-कर्म नहीं है।** ऐसे जघन्य—हल्का रत्नत्रयवाला मिथ्यादृष्टि जीव को, आहाहा! **स्वात्माश्रित**—भगवान पूर्णानन्द प्रभु के आश्रित **निश्चय**—सच्चा **धर्मध्यानस्वरूप...** लो, यह निश्चय-धर्मध्यानस्वरूप। ऐसा यह परमकार्य—ऐसा जो जीव का **परम-आवश्यक**—जरूरी काम, वह उसे नहीं। यह काम हैं बाहर के। समझ में आया? मन्दिर सम्हालना, क्षेत्र सम्हालने के झगड़े में पड़ना, वे सब काम हैं इसके, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भारी कठिन काम। कहो, समझ में आया?

ऐसा आवश्यक कार्य... स्व-आत्मा के आश्रय से जो वीतरागी पर्यायरूपी कार्य प्रगट होना चाहिए, वह राग के वश पड़े हुए को यह कार्य नहीं। समझ में आया? **(वह श्रमणाभास) भोजन हेतु द्रव्यलिंग ग्रहण करके...** आनन्द के लिये तो कहीं द्रव्यलिंग ग्रहण नहीं किया उसने। आहाहा! अच्छा आहार मिले, पानी मिले, तैयार मिले ऐसा, और आदरसहित मिले। भिखारी को तो अनादरसहित मिलता है। ऐसे **भोजन के लिये...** आत्मा के लिये तो है नहीं, इसलिए भोजन के लिये हुआ बाहर का, ऐसा कहते

हैं। राग के भोगने के लिये उसने मानो यह द्रव्यलिंग धारण किया है। **द्रव्यलिंग ग्रहण करके स्वात्मकार्य से विमुख रहता हुआ...** अपना आनन्दस्वभाव के सन्मुख का जो कार्य, उससे विमुख, स्वभाव के सन्मुख से विमुख है। समझ में आया? नियमसार तो गजब काम किया है, हों! प्रत्येक गाथा में स्व-आत्मा को—कारणप्रभु को गाया है। जिसमें नजर डालने से निधान नजर में पड़ें, ऐसे निधान (रूप) भगवान के आश्रित जो कार्य होना चाहिए, वह कार्य तो है नहीं। आहाहा!

ऐसे **द्रव्यलिंग ग्रहण करके...** बाह्य वेश ग्रहण कर... **स्वात्मकार्य...** भगवान पूर्णानन्द प्रभु का कार्य जो आनन्द का होना है, ऐसे कार्य से तो **विमुख रहता हुआ...** जगत के काम... ऐसे साधु जंजाल में व्यवहार में पड़े तो कहे, आहा... देखो! इनकी उपस्थिति में यह हुआ, एक वचन दिया उसमें कितने पैसे हो गये। ...चन्दा हुआ। भाई! यह तेरा काम है? स्वात्मा की सन्मुखता की विरुद्ध का कार्य वह तेरा कार्य है? प्रवचनसार में है। इतना तुमको करना पड़ेगा, ऐसा बोझ मुनि को नहीं होता। बोझा है उसे। आहाहा! क्रम-प्रक्रम अर्थात् ऐसा कार्य का बोझा अपने ऊपर लेना कि इतने में तुम्हारे उपस्थित रहना पड़ेगा और इतना तो तुम्हें कहना पड़ेगा हमारी सहायता के लिये। ऐसा बोझा धर्मी को नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह तो वस्तु के स्वरूप का वर्णन है। उसमें से कोई ऐसा मान ले, यह तो मुनि की निन्दा होती है। परन्तु मुनि की निन्दा होती ही नहीं। मुनि की निन्दा कैसी? मुनि तो परमेश्वर हैं। उनका तो लक्षण बताते हैं। आहाहा! मुनि तो परमेश्वर हैं। आहाहा!

यह तो आत्मा में जिसे स्वकार्य प्रगट हुआ नहीं, प्रगटने का कामी नहीं, स्वकार्य में रहा नहीं, वह परकार्य में जुड़ जाता है, ऐसा बताते हैं। आहाहा! अशुभभाववाला वह जीव लिया है। भले देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा हो। **परम तपश्चरणादि के प्रति भी उदासीन (लापरवाह) रहकर...** मुनिपना जो है चारित्रदशा—वीतरागदशा, उसके प्रति बेदरकार रहकर... दरकार नहीं, उसे आत्मा के वीतरागभाव की। आहाहा! यह तो द्रव्यलिंग, द्रव्यलिंग अर्थात् नग्नपना ग्रहण किया, उसकी बात है। जो वस्त्रवाले (वस्त्र)सहित हैं, उनकी तो बात है नहीं। वह तो द्रव्यलिंग भी नहीं। आहाहा! ऐसे अन्तर में परम मुनिपना, मौनरूप से स्थिर होना— ऐसी जो मुनिदशा, उसके प्रति बेदरकार है।

जिनेन्द्रमन्दिर... यह हमने मन्दिर बनाये हैं, पंच कल्याणक हम थे न, यह हुए हैं, यह हमने कराया है। ऐसे स्वकार्य को भूलकर पर के कार्य का अभिमान करता है, ऐसा कहते हैं। वस्तुस्वरूप तो हो, वैसा आवे न। दूसरा क्या हो? व्यक्ति में विरोध लगे, उसे (ऐसा हो कि) यह तो कहे हमारी ही लगायी है आचार्य ने। भाई! जिसका स्वरूप विरुद्ध है, उसकी बात करते हैं। तू उसमें खतौनी करे तो भले खतौनी कर।

मुमुक्षु : करुणाबुद्धि है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे कहे, बापू! भाई! तुझे न हो। तू दुःख के पंथ में गया है। भाई! तुझे सुख के पंथ की खबर नहीं। आहाहा! अरे! आनन्दस्वरूप भगवान, आनन्द का सरोवर... आहाहा! 'सरोवर कांठे रे मृगला तरस्या...' भाई ने—रमेश (ने) कहा न? 'सरोवर कांठे रे मृगला तरस्या...' चैतन्य आनन्द से भरपूर भगवान, वहाँ चोंच रखकर पीने के बदले राग में तेरी चोंच रखी है। आहाहा! भाई! तू भूला पड़ा है। भगवान को भूलकर भ्रमणा के रास्ते गया, भाई! तेरी भूल में जाती है यह दशा, ऐसा कहते हैं। करुणा है। आहाहा!

'कोई क्रियाजड़ हो रहे, शुष्कज्ञान में कोई, माने मार्ग मोक्ष का, करुणा उपजे जोई।' बापू! ऐसा नहीं होता, भाई! तेरी दया का पंथ कोई दूसरा है, प्रभु! तू पर की दया में चल निकला और पर की सेवा और पर के काम मेरी उपस्थिति में होते हैं, मैं कुछ अधिकरूप से दूसरों से गिनाऊँ। भाई! यह अधिकपना नहीं। आहाहा! जिनेन्द्रमन्दिर हमारे, तीर्थ के स्थानों की हम रक्षा करते हैं। ...२५-३० लाख इकट्ठे करके कुछ करना। कुछ होगा। हस्तगिरि। ऐसा है उसने कहा। हमारे हस्तगिरि में कुछ करना है। अहमदाबाद से सुना था। सेठिया को बुलाकर २५-३० लाख डालकर एक धाम बनाना है। आहाहा! यह तो नग्न मुनि दिगम्बर की बात है। समझ में आया? अरे प्रभु!

अथवा उसका क्षेत्र,... जितना क्षेत्र हो न। मन्दिर के साथ (रही हुई), जमीनें, उपज आने की जमीन, उसके खेत, लो, उनकी सम्हाल करने में रहे, सम्हाल करने का कहे। अरे! यह कहाँ गया वापस यहाँ? कहते हैं। आहाहा! **मकान...** लो, उस क्षेत्र में मकान बाँधे हों लोगों को रहने को, जैनमन्दिर को पालनेवाले... क्या कहलाये? धर्मशाला (जिसमें) लोग रहे। ऐसा करो, यहाँ धर्मशाला ऐसे बनाओ, ऐसा... **मकान,**

धन... उसकी लक्ष्मी। जिनेन्द्र की हो न अन्दर दी हुई लक्ष्मी, पैसा हो दो-पाँच लाख की उपज, उसकी सम्हाल करे। अरेरे! यह कहाँ गया? कहते हैं। घर में स्त्री-पुत्र की सम्हाल करता था, वहाँ से गया तो वापस यह सम्हाल करने आया। यह तो वह का वह हुआ। क्षेत्र बढ़ा। वे तो थोड़े थे बेचारे। आहाहा!

धान्यादिक सब हमारा है,... क्षेत्र में धान पके। अनाज पके लाखों, महँगा भाव होंगा तब इसे बेचना, ऐसा हो, वैसा हो, ढींकणा हो। आहाहा! अरे! **ऐसी बुद्धि करता है,...** वह स्व-आत्मकार्य से विमुख है। आहाहा! अधर्म के कार्य के सन्मुख है, ऐसा कहते हैं। कठिन भाई! बात आवे तब उसका... आवे न सब। मुनि लिख दे, राजा लिख दे, लो। क्या कहलाता है? पट्टा। लेख लिख दे, जाओ, यह क्षेत्र इतना तुम्हारा, यह क्षेत्र तुम्हारा। तुम यहाँ चाहे तो स्वतन्त्ररूप से सब कर सकते हो। वह प्रसन्न हो जाये। आहाहा!

मुमुक्षु : कितनी प्रभावना!

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी प्रभावना नहीं। आहाहा! क्या कहा जाता है? ताँबा के पत्र में लिख देते हैं न लेख! यह काम कहीं मुनि के हैं? आहाहा! वह तो द्रव्यलिंगी भी नहीं था। यह तो द्रव्यलिंगी नग्न मुनि हो, वह भी ऐसे में पड़े तो वह विमुख कार्य में है। अपना जो कार्य है, वह पड़ा रहा और पर के कार्य में गया, पराधीन है। **सब हमारा है, ऐसी बुद्धि करता है।** हम सब नायक हैं इतनी उपज के, इतने मकान के, इतने... आहाहा!

अब इस १४३वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज पाँच श्लोक कहते हैं:— २४० (कलश)

अभिनव-मिद-मुच्चैर्मोहनीयं मुनीनां,
त्रिभुवनभुवनान्तर्ध्वान्तपुञ्जायमानम्।
तृणगृहमपि मुक्त्वा तीव्रवैराग्यभावाद्,
वसतिमनुपमां तामस्मदीयां स्मरन्ति॥२४०॥

श्लोकार्थ : त्रिलोकरूपी मकान में रहे हुए (महा) तिमिरपुंज जैसा मुनियों का

यह (कोई) नवीन तीव्र मोहनीय है... कहते हैं। त्रिलोकरूपी मकान में रहे हुए महा तिमिरपुंज ऐसे मुनियों का यह नया तीव्र मोहनीय है। आहाहा! यह हमारे मकान और यह हमारी पूँजी और हमारे प्रचार को—प्रसारकों को उन्हें मदद करने के लिये इतना इकट्ठा करना पड़े, चन्दे में पड़े, यह पड़े। अरे, भाई! तेरा काम है? बापू! आहाहा! अरेरे! तीन लोकरूपी मकान में रहा हुआ तिमिरपुंज—अज्ञान अन्धकार, वह कोई मुनियों का तीव्र मोहनीय है, **कि (पहले) वे तीव्र वैराग्यभाव से घास के घर को भी छोड़कर (फिर)...** साधारण घर हो, उसे छोड़कर यह **'हमारा वह अनुपम घर!'** यह हमारे बँगले, हमारे तीर्थस्थान। आहाहा! वहाँ वापस गया, कहते हैं। समझ में आया?

हमारे लिये बनाये हुए हमारे भक्तों के मकान हैं। उसमें दूसरे का प्रवेश नहीं हो सकता। अरेरे! तीन लोक के मकान में तिमिरपुंज ऐसा तीव्र मोहनीय कहाँ से यह आया? कहते हैं। फिर से ऐसा मोह कहाँ से जागृत हुआ? घास के घर को तो छोड़ा, वहाँ ऐसे अच्छे अनुपम मन्दिर, मकान, धर्मशालायें, उनकी सम्हाल में गया, कोई नया मोह जागृत हुआ है मिथ्यात्व का, कहते हैं। आहाहा! पहले तो तीव्र वैराग्यभाव से घास के घर को... ऐसा कि इतना तीव्र बाह्यवैराग्य तो था। **'हमारा वह अनुपम घर!' ऐसा स्मरण करते हैं!** और याद करे। आहाहा! ऐसे घर में रहते थे, हवा-पानी अच्छे, उससे यह अच्छा घर मिला वापस। और याद करे (कि) वहाँ हमारे रहने के स्थान ऐसे हैं, हमारे मकान ऐसे हैं। ओहोहो! अरेरे! यह कहाँ से ऐसा मोह जगा है? स्वरूप में नहीं और क्या हुआ यह? ऐसा स्मरण करता है, वह तीव्र मोहनीय रागवाला है, कहते हैं। पर में सावधानवाला तीव्र मोहवाला है। अपना सावधानपना छोड़ दिया है। आहाहा!

वह एक दृष्टान्त आया था। एक व्यक्ति निकला, तो कुत्ता बहुत भौंका। बहुत भौंका तो कुत्ते को मारा। कोई दूसरा व्यक्ति निकला तो कहे, अरे! उसे मारा (इसलिए) इसे दण्ड दो। ऐसे कुत्ते को बेचारे को... कुत्ते को पूछा कि इसे—तुझे मारनेवाले को क्या दण्ड देना? कहो। कि इसे मठाधीश बनाओ। क्योंकि मैं मठाधीश था और गर्व किया, वहाँ कुत्ता हुआ। यह मठाधीश आया न मकान और... इसे मठाधीश बनाओ, कहे। वह कहे कि यह तो कुत्ते को मारा और कुत्ता इसे तो मठाधीश (बनाने का) कहता है। ...दयालु लगता है। जहाँ ... देखे तो मठाधीश बनाने का कारण? कि मकान-बकान का

अधिपति हो, फिर इसे गर्व चढ़ जाता है कि यह सब हम चलाते हैं, हमारे कारण यह सब है। मठाधीश था, वह मरकर मैं कुत्ता हुआ। इसलिए इसे भी मठाधीश बनाओ। आहाहा!

जहाँ हो वहाँ हमारे मकान, हमारे व्यक्ति, हमारे यह, हमारी पुस्तक की पेढ़ी, पुस्तक की अलमारियाँ, यह सब हमारे, हमने इकट्ठे किये हैं। मठ के अधिपति... आहाहा! ऐसे मठ के हम स्वामी हैं। कुत्ता होगा मरकर, कहे। इसे यह दण्ड दो, कहता है। ऐसा आया था। कल लेख आया था। उस जैन में... जैन में उसमें लेख में आया था। आहाहा! मोक्षमार्गप्रकाशक में भी आता है। मकान बनाये और रहे। गरीब का पुत्र था और फिर हो गया बड़ा धनी। दबावे सेठियाओं को। मोक्षमार्गप्रकाशक में छठवें अध्याय में आता है। आहाहा! अरे प्रभु! तू राग का भी स्वामी नहीं। आहाहा! उसके बदले ऐसी चीज़ का स्वामी मानकर क्या करना है तुझे? क्या हुआ यह? और नया तीव्र मोह कहाँ से जगा? ऐसा कहते हैं। पूर्व में तो था, परन्तु ऐसे लिंग धारण करके यह मठ के अधिपतियों के नाम से यह क्या हुआ तुझे? समझ में आया? यह मकान तो हो न। फिर उसके साधु को ऐसा कि इसको प्रमुख ठहराओ, जिससे यह ध्यान रखे।

श्लोक २४१।

कोऽपि क्वापि मुनिर्बभूव सुकृती काले कलावप्यलं
मिथ्यात्वादिकलङ्कपङ्करहितः सद्धर्मरक्षामणिः।
सोऽयं सम्प्रति भूतले दिवि पुनर्देवैश्च सम्पूज्यते,
मुक्तानेक-परिग्रह-व्यतिकरः पापाटवी-पावकः ॥२४१॥

'**सुकृती काले**' यह भाग्यशाली का अर्थ किया है न। '**सुकृती**' भाग्यशाली। यह उसके सामने है।

श्लोकार्थ : अरे! **कलिकाल में भी कहीं कोई भाग्यशाली जीव...** लो, धर्मी को यहाँ भाग्यशाली कहा। लो, ठीक! **सुकृती... सुकृती** समकिती को कहते हैं। आता है न समयसार में। **सुकृती** है, उसमें कहा है। अपने को कहाँ आता था? उसने लिखा है—किया है। भाई ने किया है समयसार में। **कलिकाल में भी कहीं कोई...** कहीं और कुछ। किसी काल में, किसी क्षेत्र में और कोई जीव भाग्यशाली होता है, ऐसा कहते हैं।

आहाहा! **मिथ्यात्वादिरूप मलकीचड़ से रहित...** मिथ्यात्व, अव्रत आदि परिणाम के मलपंकज से रहित होता है। आहाहा! कलिकाल में भी हो सकता है, ऐसा कहते हैं। ऐसा नहीं कि ऐसा भाव, पंचम काल है, इसलिए यह नहीं हो सकता।

और सद्धर्मरक्षामणि ऐसा समर्थ मुनि होता है। वह मकान आदि का रक्षा का था न! **सद्धर्मरक्षामणि ऐसा समर्थ मुनि...** आहाहा! **सद्धर्मरक्षामणि=सद्धर्म की रक्षा करनेवाला मणि। (रक्षामणि=आपत्तियों से अथवा पिशाच आदि से अपने को बचाने के लिए पहिना जानेवाला मणि।)** मणि पहनता है न भूतादि से बचने के लिये, कोई आपदा हो उसके लिये। इसी प्रकार यह सद्धर्मरक्षामणि... अपना स्वभाव आनन्द और शान्ति, ऐसा धर्म की रक्षामणि है, वह मुनि। आहाहा! **जिसने अनेक परिग्रहों के विस्तार को छोड़ा है...** अनेक परिग्रह का विस्तार—विकल्प से लेकर सब। आहाहा! वह परिग्रह, विकल्प भी एक परिग्रह है। बाहर की चीज़ तो बाहर में रह गयी। समझ में आया? ऐसा भगवन निर्विकल्प चैतन्यप्रभु निजघर में आकर जिसने ऐसे परिग्रह का विस्तार छोड़ दिया है। आहाहा! **सद्धर्मरक्षामणि ऐसा समर्थ मुनि होता है।** ऐसा समर्थ मुनि होता है, ऐसा कहा है। कलिकाल में भी ऐसे मुनि कोई कहीं भी होते हैं, हो सकते हैं। आहाहा!

और जो पापरूपी अटवी को जलानेवाली अग्नि है,... आहाहा! कैसा है धर्मात्मा मुनि? पुण्य और पाप के भाव और उनका कर्मबन्धन, उसे जलानेवाली अग्नि है। अपने स्व-आत्माश्रित अनुभव, दृष्टि और स्थिरता होने से वह पुण्य और पापरूपी अटवी... भवाब्धि कहते हैं न? भव-अब्धि—भवरूपी समुद्र। फिर उसे लागू पड़े भवाब्धि अटवी? ऐसा लागू पड़े? भवाब्धि अटवी—भवरूपी अब्धि—समुद्र। भवाब्धि में समुद्र की उपमा तो आ गयी। फिर अटवी की उपमा क्यों की? भवाटवी। एकरूप होता है न वह 'अब्धि' निकाल डाले तो। भवाटवी, भवाब्धि। **पापरूपी अटवी को जलानेवाली अग्नि...** विशाल वन लेना है न? विस्तार—विकल्प से लेकर बड़ा संसार, उसे जलानेवाला, वह मुनि अग्नि है। आहाहा!

शुद्ध चैतन्य के रत्न के मणि के आश्रय से पड़ा हुआ जो ऐसे राग के भाग को जलाने को अग्नि समान है। ओहो! पंचम काल कलिकाल में भी ऐसे कोई मुनि हो सकते हैं। आहाहा! स्वयं मुनि है न, इसलिए अपनी बात भी करते हैं। उस समय ९००

वर्ष पहले तो मुनि थे—सच्चे मुनि थे, धर्मात्मा थे। **ऐसा यह मुनि इस काल...** ऐसे मुनि जो अन्तर स्वकार्य में लवलीन हैं, अतीन्द्रिय आनन्द की मौज में क्रीड़ा करते हैं, उन्हें परकार्य होता नहीं। आहाहा! **ऐसा यह मुनि इस काल**—यहाँ **भूतल में...** भूतल में... इस भव में अभी भी **तथा देवलोक में देवों से भी भलीभाँति पुजता है।** लो! यहाँ भी देवों से भी पुजते हैं और वहाँ भी (पुजते हैं)। मनुष्य आदि से यहाँ भी पुजते हैं और देवलोक में देवों से पुजते हैं। क्योंकि अभी का मुनि देवलोक में जाता है, अन्यत्र नहीं जाता। मोक्ष नहीं, इसलिए यह बात ली है। समझ में आया? सच्चे मुनि हों सन्त कुन्दकुन्दाचार्य जैसे, अमृतचन्द्राचार्य जैसे भी हों तो अभी तो स्वर्ग में है। आहाहा! समझ में आया?

यह मुनि इस काल भूतल में तथा देवलोक में... भूतल में—जमीन पर और ऊपर **देवलोक में देवों से भी भलीभाँति पुजता है।** आहाहा! उसको तीव्र मोह उत्पन्न होता है। वैराग्य से घर छोड़ा हो, वापस नया मोह उत्पन्न होता है। ऐसे (सच्चे) मुनि अपने आनन्द के कार्य में रमते हुए स्वहित के कार्य को करनेवाले... आहाहा! एक तो ऐसा कहता था, स्व के काम करना, वह तो कुत्ते भी पेट भरते हैं। दूसरे के काम करना (चाहिए)। वह खतरगच्छ का था। नाम भूल गये। सतपाल। यहाँ आया था, वहाँ हीराभाई के मकान में। अपना काम तो कुत्ते भी पेट भरते हैं। .... क्या कहता है यह? कुछ खबर नहीं होती। पर के काम करना, वह इस जगत में विशेषता है, कहते हैं। ऐसा बोला हों! ... उपाध्याय था। अरे भगवान! अपना काम तो कुत्ते भी पेट भरते हैं, कहते हैं। अरे भगवान! क्या कहता है तू यह? किसके काम कौन करे? आहाहा! परन्तु लोगों की ऐसी लाईन पूरी बदल गयी है। ऐसा मार्ग इसे हाथ आना, सुनना मुश्किल पड़े वहाँ... आहाहा!

यह मुनि इस काल भूतल में तथा... भू-तल—पृथ्वी का तल और वह देवलोक। मुनि तो वहाँ जाये न स्वर्ग में। अभी केवलज्ञान की पुरुषार्थदशा नहीं है, इसलिए यह बात ली है। सच्चे सन्त आत्मा के आनन्द के कार्य को करनेवाले, निश्चयरत्नत्रय का कार्य साधनेवाले, यह उनका आवश्यक कार्य है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! देवों से भी, ऐसा। मनुष्य तो पूजते हैं, कहते हैं। 'देवाधि तं नमं संते' आता है न? देवाधि धम्मो

मंगलं... आता है। यह श्लोक है, इसमें भी है अपने दिगम्बर में। 'नमो मंगलं ... अहिंसा संजमो तपो देवादि तं नमं संते जस धम्मं...' यह दशवैकालिक की पहली गाथा है श्वेताम्बर की। दिगम्बर में यह गाथा है। धम्मो मंगलं... धर्म वह उत्कृष्ट मांगलिक है। अहिंसा, संयम और तप। अहिंसा—राग रहित दशा, संयम—इन्द्रिय का दमन अथवा इन्द्रिय की प्रगटता और तप—उग्रता आनन्द की शोभा। वह अहिंसा संजमो तपो देवादि तं नमं सन्ते। देव भी तुझे नमते हैं, ऐसा। दशवैकालिक की पहली गाथा है। मनुष्य तो नमे, परन्तु देव (नमे)।

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं, **देवलोक में देवों से भी...** ऐसा। मनुष्य में तो पुजाये। बाहर से बात की है। **भी भलीभाँति पुजता है।** आहाहा! स्वयं भलीभाँति स्वयं को पूजता है। बाहर से पुण्य हो तो भलीभाँति पुजता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसा कहने का आशय कि यह सब बाहर के देव जिनेन्द्र और मकान को रखें तो हम बड़े गिनायें और पुजाते हैं, हमको अधिकरूप से गिनकर यह सब काम करनेवाला है—ऐसा हम करके पुजाते हैं—यह तेरी पूजा खोटी है, ऐसा कहते हैं। किसी का कार्य करते नहीं तथापि, धर्मात्मा को मनुष्य और देव भी बहुमान देते हैं, ऐसा कहते हैं। वे मानते हैं न, हम करते हैं, तुम्हारा कर दें, ऐसा करें, देखो! यह सब धर्मशालायें बना दी, लाईन से सबको ऐसे रहना, फलाना करना, ढींकणा करना, तुम्हें चिन्ता नहीं, इसके लिये आवक बाँध दी है, यह मकान-बकान का किराया आयेगा, आवक तुम्हारे, जाओ, दीपक करो। हो गया। तेरा कुछ हुआ नहीं। कहते हैं कि ऐसे को बड़ा गिनकर मान दे। तो यहाँ तो कहते हैं कि गुणी को गुण देखकर भी मान देंगे। तुझे क्या काम है बाहर का? आहाहा! समझ में आया?

३५२ पृष्ठ पर कुछ गया है। ३५२ इसमें है? सद्धर्मरक्षामणि है। वहाँ सद्धर्मरक्षामणि आया है। वहाँ आया है। रक्षामणि है। यह २९२ कलश में है। **सद्धर्म के रक्षामणि हैं। रक्षामणि=आपत्तियों से और पिशाच इत्यादि से अपनी जाति को बचाने के लिये पहने जानेवाली मणि। (केवली भगवान सद्धर्म के रक्षण के लिये—असत् धर्म से बचने के लिये—रक्षामणि है)।** है न? यह २४१ कलश हुआ। २४२ (आयेगा)।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल ११, शनिवार, दिनांक - ३०-१०-१९७१
श्लोक-२४२-२४४, गाथा-१४४, प्रवचन-१६३

निश्चय परम-आवश्यक (अधिकार)। आत्मा को आवश्यक कार्य, परम आवश्यक अर्थात् जरूरी कार्य, मोक्ष का कारण हो, उसे आवश्यक—जरूरी कार्य कहा जाता है। यहाँ २४२ कलश है। २४१ आ गया है।

तपस्या लोकेऽस्मिन्निखिलसुधियां प्राणदयिता,
नमस्या सा योग्या शतमखशतस्यापि सततम्।
परिप्राप्यैतां यः स्मर-तिमिर-संसार-जनितं,
सुखं रेमे कश्चिद्भत कलिहतोऽसौ जडमतिः॥२४२॥

श्लोकार्थः इस लोक में तपश्चर्या... अर्थात् चारित्रस्वरूप भगवान आत्मा आनन्दमूर्ति में रमणता, आनन्द में रमना, ऐसा जो चारित्र, उसे भगवान चारित्र कहते हैं। ऐसा चारित्र अर्थात् मुनिपना। **समस्त सुबुद्धियों को प्राणप्यारी है;...** वह तपश्चर्या। आत्मा के शुद्ध आनन्दस्वभाव में एकाग्रता करके जो अतीन्द्रिय वीतराग आनन्द का प्रगटपना हो, उसे चारित्र कहते हैं, उसे मुनिपना, उसे तपस्या कहते हैं। समझ में आया? वह **समस्त सुबुद्धियों को प्राणप्यारी है;...** सम्यग्दृष्टि को तो वह चारित्र—तपस्या प्राणप्यारी है। यह अपवास करना एक-दो-तीन-चार, वह नहीं, वह तपस्या नहीं। तपस्या तो आत्मा, अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द का सागर आत्मा, उसमें अन्तर डुबकी लगाकर लीनता प्रगट करना, अतीन्द्रिय आनन्द की क्रीड़ा में रमना, उसे यहाँ चारित्र अथवा तपस्या कहा जाता है। गजब बात! दुनिया से उल्टी है, भाई!

यह तपस्या तो समस्त सम्यग्ज्ञानियों को तो प्राणप्यारी है, वह मुक्ति का कारण है, ऐसा कहते हैं। चैतन्य भगवान आत्मा अन्तर में पूर्ण ज्ञान और आनन्द और स्वच्छता और प्रभुता के स्वभाव से भरपूर प्रभु के आश्रय में जाकर, उसमें एकाग्र होकर जो दशा—वीतरागी निर्मल निर्विकल्प रमणता आनन्द की प्रगट हो, वह सर्व प्राणियों

को—ज्ञानियों को तो प्राणप्यारी है, कहते हैं। क्योंकि वह चारित्र मुक्ति का कारण है। **वह योग तपश्चर्या सो इन्द्रों को भी सतत वन्दनीय है।** आत्मा के आनन्द की लीनता अन्तर चरना, चारित्र अर्थात् चरना, अनुभवना, आनन्द में चरना और अतीन्द्रिय आनन्द को अनुभव करना, इसका नाम चारित्र है। परमात्मा के मार्ग में—तीर्थंकर त्रिलोकनाथ परमेश्वर जिनेश्वर के पंथ में उसे चारित्र और तपस्या कहते हैं। भारी कठिन! वह **सो इन्द्रों को भी सतत वन्दनीय है।** इन्द्र भी वह भावना भाते हैं कि अहो! कब हम मनुष्यपना पायेंगे और ऐसी अन्तर आनन्द की रमणतारूपी चारित्र-तपस्या कब अंगीकार करेंगे! ऐसे इन्द्रों को भी वह चारित्रदशा सतत्—निरन्तर वन्दनीय है। आवश्यक की बात चलती है यह। समझ में आया?

उसे प्राप्त कर... अरे! ऐसे स्वभाव के भान को पाकर **जो कोई जीव कामान्धकारयुक्त संसारजनित सुख में रमता है,...** कहते हैं कि ऐसा स्वभाव है, उसे छोड़कर जो कोई राग में रमता है (कि जो) कामान्धकार संसार जनित सुख है, शुभभाव में या अशुभभाव में ठीक है, ऐसा मानकर रमता है, **वह जड़मति...** है। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द में रमना छोड़कर, जो कोई अशुभ और शुभराग में—विकल्प में रमता है, वह जड़मति है। उसमें से मुझे सुख मिलेगा... समझ में आया? शुभभाव दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह शुभभाव है—राग है। उसमें से मुझे सुख मिलेगा, उससे मुझे सुख की प्राप्ति (होगी)—ऐसा जो कामान्धकार (अर्थात्) राग में अन्ध हो गया है, जिसे रागरहित भगवान आत्मा के स्वरूप की दृष्टि और ज्ञान की खबर नहीं। आहाहा!

अरे रे! कलि से हना हुआ है (-कलिकाल से घायल हुआ है)। राग में जिसे रुचि है, वह कलिकाल में घायल हुआ है, वह दुःखी है। समझ में आया? कलिकाल में हना हुआ दुःखी है, वह तो घायल है। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द के सन्मुख न जाकर, राग के सन्मुख होकर राग में रमता है, वह सब कलिकाल में पीड़ा प्राप्त दुःखी जीव हैं। गजब बात, भाई! समझ में आया? २४२ कहा। अब, २४३।

अन्यवशः सन्सारी मुनिवेषधरोऽपि दुःखभाङ्नित्यम्।
स्व-वशो जीवन्मुक्तः किञ्चिन्न्यूनो जिनेश्वरा-देषः॥२४३॥

'**दुःखभाङ्नित्यम्**' हाँ, 'न' रह गया है। इसमें डाला है। भांगी का 'न' रह गया है। डाला है इसमें? सुधारा है।

श्लोकार्थः जो जीव अन्यवश है,... क्या कहते हैं? जो कोई आत्मा पुण्य और पाप के भाव के वश है, वह आत्मा आनन्दस्वरूप के वश नहीं। आहाहा! जो कोई अन्यवश है, अर्थात् कि विकल्प दया, दान, व्रत, भक्ति, काम आदि—ऐसा राग, उसके वश है, **वह भले मुनिवेषधारी हो,...** भले नग्न दिगम्बर हो, मुनिवेशधारी (अर्थात्) नग्न दिगम्बर हो, **तथापि संसारी है,...** आहाहा! शुभ और अशुभराग, उपयोग—शुभ और अशुभ उपयोग में जिसकी रुचि का रंग है, वह भले नग्न दिगम्बर साधु का लिंग हो, तो भी वह संसारी है। समझ में आया? चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा मुक्तस्वरूप आत्मा है। उसका अन्तर में आश्रय न करके, जो राग की क्रिया का आश्रश करके, राग के आधीन हो गया है, वह मुनि का वेश होने पर भी, वह संसारी है। आहाहा! समझ में आया?

संसार अर्थात् ज्ञानानन्दस्वभाव भगवान आत्मा, उसमें से संसरना—हट जाना और उदयभाव अर्थात् राग के प्रेम में पड़ना, उसका नाम संसार। ऐसी व्याख्या गजब। समझ में आया? क्योंकि संसार अर्थात् रागभाव, चाहे तो शुभभाव हो या चाहे तो अशुभ हो, दोनों संसार और विकार और दुःख है। वीतरागमार्ग में ऐसा है। समझ में आया? वह संसारी है। आहाहा! भगवान आत्मा आनन्दमूर्ति प्रभु, जिनस्वरूपी आत्मा वीतरागमूर्ति आत्मा है। उसे अन्दर वश हुआ नहीं, उसमें अन्दर एकाग्र हुआ नहीं और मात्र क्रियाकाण्ड के राग के... आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, भगवान का नामस्मरण आदि वह सब राग है, उस राग के वश में हुआ प्राणी मिथ्यादृष्टि संसारी है। पण्डितजी! हजारों रानियाँ छोड़ी हों, दीक्षा ली हो, नग्नपना हो। कहते हैं कि जो राग का विकल्प है... वह महाव्रत का विकल्प है, यह अहिंसा, सत्य, अचौर्य (आदि) वह राग है। उस राग के आधीन होता है और वह राग मेरा कर्तव्य है, ऐसा जो मानत है, अनुभवता है, वह प्राणी संसारी है। उसने जरा भी त्याग नहीं किया। आहाहा! समझ में आया?

जिसे राग के विकल्प की एकताबुद्धि है, वह पूरा संसारी प्राणी है। मिथ्यात्वी अर्थात् संसारी, ऐसा। राग से पृथक् भगवान आत्मा का जिसे अन्तर में भान होकर

अनुभव और आनन्द की दशा प्रगट हुई है, वह मुनि है, वह चारित्रवन्त है, वह मुक्ति के पंथ में पड़ा हुआ पथिक है। आहाहा! **जो जीव अन्यवश है,...** वह **नित्य दुःख का भोगनेवाला है;...** भारी कठिन काम! कहते हैं कि शुभभाव हो, परन्तु वह दुःख है। आहाहा! गजब बात है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा—यह सब भाव राग है, यह दुःख है। अरे! गजब बात ऐसी बात! सुनी जाये नहीं साधारण मनुष्य को। सुनी नहीं कभी कि वीतराग का सत्य क्या है। समझ में आया?

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय अनाकुल आनन्द का नाथ, उसकी दृष्टि और आश्रय छोड़कर, जो ऐसे शुीाभाव का आश्रय लेकर पड़ा है, वह दुःखी है, वह संसारी है। आहाहा! कहो, भीखाभाई! ऐसा गजब! ऐसा होता होगा? ऐसा मार्ग कठिन, भाई! यह तो इसे लोग धर्म मानते हैं। व्रत पालो और यह अपवास करना, यात्रा करना, पूजा करना, लाख-दो लाख रुपये दान में डालना—यह सब भाव राग है, शुभविकल्प है, दुःख है, वह स्वयं ही भव है। आहाहा! ऐसा वीतरागमार्ग! सर्वज्ञ के पंथ में परमेश्वर का ऐसा कथन है। त्रिलोकनाथ भगवान वीतरागदेव इन्द्रों के और गणधरों के समक्ष की सभा में ऐसा फरमाते थे। आहाहा!

जो जीव स्ववश है,... अब एक बात ऐसी की। एक ही गाथा में दो। जो अन्यवश है अर्थात् पुण्यादि के परिणाम के वश है। वे परिणाम मेरे हैं, उनसे मुझे लाभ है—ऐसा जो पुण्य के आधीन मिथ्यादृष्टि है, वह संसारी है और निरन्तर दुःख का अनुभव करनेवाला है। आहाहा! समझ में आया? अपूर्व बात है, भाई! धर्म, वह कोई अपूर्व चीज़ है। एक समय का धर्म जिसे मुक्ति दे। आहाहा! यह विकल्प जो है राग, उससे पृथक्स्वरूप भगवान आत्मा में अन्तर एकाग्र होकर आनन्द की दशा प्रगट करे, वह आनन्दित है और वह मोक्ष के पंथ में है। समझ में आया? **जो जीव स्ववश है,...** आत्मा—भगवान आत्मा का स्वरूप ज्ञान और आनन्द, उसके जो वश हुआ है, अन्तर में एकाग्र हुआ है (और) राग का—विकल्प का वशपना जिसने छोड़ दिया है। समझ में आया?

जो जीव स्ववश है,... स्व अर्थात् आत्मा; आत्मा अर्थात् ज्ञान और आनन्द, अतीन्द्रिय सुख का सागर। आहाहा! ऐसा जो यह भगवान आत्मा, जिसमें पुण्य और

पाप के विकल्प का अभाव है और आनन्द, शान्ति और वीतरागता का जिसमें सद्भाव है। ऐसा आत्मा स्वयं अपने वश होता है। आहाहा! द्रव्य अर्थात् आत्मा के वश होता है। राग का वशपना अनादि का है, उसे छोड़ दे। आहाहा! **वह जीवन्मुक्त है,...** वह जीवतां—आयुष्य होने पर भी वह मुक्त ही है, कहते हैं। वह संसारी लिया, इस मुक्त के सामने लिया। सामने-सामने लिया। आहाहा! कठिन बातें, भाई! यह वह। अब आत्मा कहे, मेरा ऐसा आत्मा। आत्मा अर्थात् कि जिसमें पुण्य और पाप के विकल्प और राग नहीं, वह आत्मा और जिसमें ज्ञान और आनन्द से भरपूर, उसे आत्मा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? वीतराग का मार्ग कठिन है, भाई! अनन्त काल में इसे सच्ची बात सुनने को मिली नहीं। सब उल्टी बातें और उसमें धर्म। करते-करते परम्परा से धर्म होगा। आहाहा!

कहते हैं कि वह मुनिवेशधारी दुःखी है। समझ में आया? दुःख की व्याख्या ऐसी नहीं कि प्रतिकूल संयोग, वह दुःख। वह दुःख नहीं। आत्मा के स्वभाव में से हटकर, विकार में आना, वह दुःख। आहाहा! समझ में आया? भगवान अनाकुल आनन्द सिद्धस्वरूपी प्रभु आत्मा में से हटकर—संसरणकर... संसरणं इति संसार, वहाँ से संसरण कर—हटकर पुण्य और पाप के भाव में आना, वह दुःख। कहो, शान्तिभाई! ऐसा मार्ग तो बापू! कठिन है। अपने से... आहाहा! अरे भाई! तुझे खबर नहीं। क्या तू करता है? तेरे रक्षण के लिये तो तत्त्व अन्दर पड़ा है। उसे तू राग के रक्षण से और राग का रक्षण करके धर्म माने तो मिथ्यात्व का दुःख है। समझ में आया? **जो जीव स्ववश है,...** भगवान आत्मा का अपना स्वभाव अनाकुल आनन्द का धाम... है। उसके जो आधीन, एकाग्र होता है, वह जीवनमुक्त है। भले देह में दिखाई दे, थोड़ा आयुष्य दिखाई दे, परन्तु वह अन्तर से मुक्त है। समझ में आया?

वे **जिनेश्वर से किंचित् न्यून है (अर्थात् उसमें जिनेश्वरदेव की अपेक्षा थोड़ी-सी कमी है)।** वीतराग अरिहन्त परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी से यह मुनि जरा से न्यून हैं। समझ में आया? अरिहन्त सर्वज्ञ परमेश्वर परमात्मा से—जो आत्मा के आनन्द के वश होकर रहते हैं और विकल्प के दया, दान आदि के वश नहीं होते, वे **जिनेश्वर** से—किंचित् न्यून हैं। **थोड़ी-सी कमी है।** पूर्ण आनन्द नहीं, पूर्ण

केवलज्ञान नहीं। गजब बात, भाई! ऐसा पंचम काल में मार्ग ऐसा होगा? पंचम काल का मार्ग कोई अलग नहीं होगा कुछ? तीनों काल का मार्ग तो एक ही है। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ...' गजब कलश, भाई! एक में तो सब समाहित कर दिया, संसार और मोक्ष दोनों।

अपना निर्मल परमानन्द प्रभु, उसे छोड़कर जो कुछ शुभराग में भी वश रहता है, वह संसारी है, वह मिथ्यादृष्टि है, तब वह नित्य दुःख का ही भोगनेवाला है। समझ में आया? उसे महाव्रत के परिणाम हों, किसी को दुःख देना नहीं, शरीर से ब्रह्मचर्य पालना, झूठ न बोलना इत्यादि—वह सब विकल्प का रागभाव है। वह राग है, वह दुःख है। सुख तो आत्मा में है। ऐसे सुखस्वरूपी भगवान आत्मा के जो वश होता है, वह नित्य सुखी है। 'जीवन्मुक्त' कहा न? और शुभराग के वश हो और आत्मा अन्तर निष्क्रिय आनन्दकन्द पड़ा रहे, दृष्टि में जिसका आश्रय ही नहीं, दृष्टि में उस राग की क्रिया का ही आश्रय है, वह संसारी नित्य दुःख का भोगनेवाला है। आहाहा! कहो, शान्तिभाई! गजब मार्ग ऐसा। मानो बड़ा मेरु पर्वत उठाया हो, ऐसा लगे हों! लोगों को। बापू! तेरे घर की बात है। भाई! मार्ग तो ऐसा है अनादि का, उसकी इसे खबर नहीं।

यह शुभ-अशुभराग के पक्ष में चढ़ जाना और उसमें रुकना, बस यह संसार है। और उसके पक्ष से हटकर भगवान आनन्दस्वरूप के पक्ष में अन्तर में आनन्द का आश्रय लेकर स्ववश हो, वह जीवन्मुक्त है, जीवित सुखी है। सुख की व्याख्या यह नहीं कि पाँच-पचास लाख मिले, शरीर रूपवान मिला, बड़ी इज्जत मिली, इसलिए सुखी। दुःखी हैं लोग, अब सुन न! समझ में आया? पाँच-पचास लाख हो, करोड़-दो करोड़ हो, लड़के अच्छे हों, निरोग शरीर हो। वह सुखी कहलाये या नहीं, नटु? नहीं? दुःखी है। क्योंकि पर के आश्रय की वृत्ति रखता है। इसलिए वह वृत्ति ही दुःखरूप है। आहाहा! समझ में आया? सुखी तो, भगवान आत्मा के आश्रय में जाये, वह सुखी है। ऐसी बात है, बापू! वीतरागमार्ग में तो (ऐसी बात है)। दुनिया फिर चाहे जिस प्रकार से उसे खतौनी करे। तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ परमात्मा का पंथ तो ऐसा है। यहाँ न्यून कहा है। आगे निकाल देंगे २९६ पृष्ठ पर। आहाहा!

एक आत्मा आनन्दस्वरूप ज्ञानस्वरूप चैतन्यपुंज में अन्तर में आश्रय लेकर पड़ा है, वह तो जिनेश्वर जैसा ही है, कहते हैं। समझ में आया? तब वह द्रव्यलिंग नग्नपना हो, पंच महाव्रत के परिणाम हो, परन्तु वह राग के आधीन है। वही मेरा स्वरूप है और वही मेरा कर्तव्य है, (ऐसा मानता है)। वह बाहर से त्यागी दिखाई दे, तथापि वह अन्दर में संसारी और भोगी है। आहाहा! ऐसे माप निकालना... क्या है, बापू? अनन्त काल में अनन्त-अनन्त काल से चौरासी के अवतार में भटकता है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो...' मुनिव्रत लिया अनन्त बार, परन्तु वह तो विकल्प था। आहाहा! 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो...' ग्रैवेयक में अनन्त बार गया, 'पै निज आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' यह पंच महाव्रत का पालन, वह दुःखरूप है, राग है। गजब बात है, बापू! आहाहा!

जिसे लोग चारित्र कहें, जिसे महाव्रतधारी कहें, आहाहा! उसे त्रिलोकनाथ कहते हैं, तू दुःख के पंथ में पड़ा है, भाई! आहाहा! यह राग की दशा की एकताबुद्धि में पड़ा, वह दुःखी है, कहते हैं और राग की एकता तोड़कर भगवान आनन्द की एकता जिसने अन्तर में अनुभव की, वह जीवन्मुक्त, जिनेश्वर जैसा है। आहाहा! इतना अधिक अन्तर होगा? बेचारे स्त्री-पुत्र छोड़े, दुकान-धन्धा छोड़े, पाँच-पाँच लाख की आमदनी को छोड़े, तो भी कहते हैं कि अन्दर में राग के शुभभाव के आधीन है, वह मिथ्यादृष्टि संसारी है। कठिन बात, भाई! ऐ भीखाभाई! ऐसा सत्य होगा? वापस आया। उसमें है। उसमें है या नहीं उसमें? मार्ग तो ऐसा है। क्या हो? दुनिया ठगा गयी है। दुनिया ठगाई में धर्म मान रही है। आहाहा! समझ में आया? २४४ (कलश)।

अत एव भाति नित्यं स्ववशो जिननाथमार्गमुनिवर्गे।
अन्य-वशो भात्येवं भृत्य-प्रकरेषु राज-वल्ल-भवत्॥२४४॥

आहाहा! दृष्टान्त कैसा दिया, देखो न! **श्लोकार्थः ऐसा होने से ही जिननाथ के मार्ग में...** वीतराग त्रिलोकनाथ जिननाथ परमेश्वर, जिन्हें सौ इन्द्र पूजें, ऐसे अरिहन्तदेव जिननाथ के मार्ग में **मुनिवर्ग में स्ववश मुनि सदा शोभा देता है;...** जो अन्दर राग के वश नहीं होता और अपने आनन्द के वश होता है, उस मुनिवर्ग में वह मुनि शोभता है।

आहाहा! **जिननाथ के मार्ग में...** वीतराग परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव के मार्ग में—पंथ में मुनिवर्ग में स्ववश मुनि अन्तर के आनन्द के वश है, वह दया, दान के विकल्प के वश नहीं है। आहाहा! एक-एक श्लोक में... वह मुनिवर्ग में सन्त आनन्दकन्द के अनुभव करनेवाले, वे स्ववश मुनि शोभते हैं। आहाहा!

और अन्यवश मुनि... परन्तु राग के वश, राग की क्रिया के कर्तव्य में पड़ा हुआ वह अन्यवश है। आहाहा! वह मुनि **नौकर के समूहों में राजवल्लभ नौकर समान शोभा देता है...** खुशामतिया। राजा का खुशामतिया होता है न! ऐसे मक्खन चोपड़े। कितने ही खुशामतिया होते हैं। अपने को जहाँ लाभ देखे, महत्ता आवे, वहाँ खुशामद करे। है न? **(अर्थात् जिस प्रकार योग्यता रहित, खुशामदी नौकर शोभा नहीं देता; उसी प्रकार अन्यवश मुनि...)** नौकर के समूह में राजवल्लभ नौकर समान। राजा का प्रिय हो, राजा को ऐसा मक्खन चोपड़े, ओहो अन्नदाता! आपने तो भारी काम किये हैं, आपने तो ऐसा किया है।

एक बार कहते थे लीलाधरभाई जामनगर। दिग्विजय थे न। दिग्विजय, नहीं उसके पिता ... बात कुछ होगी। कुछ था अवश्य। बचाये थे कुछ। रणजीतसिंह ने कुछ बचाये थे। फिर महिमा करते थे, ओहो अन्नदाता! आपने तो भारी दया के काम किये। आप तो महान हो। ऐसा सुना था। लीलाधरभाई कहते थे। आहाहा! आओ दरबार! उसने किसी समय मछलियाँ बचायी होंगी... फिर कहे अन्नदाता! आप तो महा धर्म के प्रिय, तुमको धर्म प्रिय है। (ऐसे तो) अब शिकार करता था। किसी जगह ऐसा कुछ दिया होगा पैसा। ऐसे खुशामतिया है...। तब बात हुई थी, बहुत वर्ष पहले लीलाधरभाई के साथ (बात हुई थी)। उसे लगे कि इसमें से अपने को कुछ ठीक रहेगा, (इसलिए) उसकी बहुत खुशामती करे। बुलाये बिना सामने जाये। अन्नदाता! ऐसा काम है, हमारा ऐसा फलाना हो गया था, ऐसा है... आहाहा!

वह खुशामतिया जैसे शोभित नहीं होता, उसी प्रकार मुनिवर्ग में वीतरागी मुनि रागरहित दशावाला शोभता है (और) राग की एकतावाला वह मुनि शोभता नहीं। वह खुशामतिया है। आहाहा! राग की क्रिया, वह मेरी है, मुझे ठीक है, उससे मेरा कल्याण

है—यह सब राजवल्लभ नौकर जैसे खुशामतिया है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा होता है, हों! प्रत्येक राज में। सेठिया के पास ऐसे लोग होते हैं। हमने तो बहुत समय से देखा है। सेठिया बड़ा हो, करोड़-दो करोड़ हो, एक-दो ऐसे खुशामतिया होते हैं, उसकी महिमा करे। भले दूसरे पाप चाहे जैसे करते हों, परन्तु कहीं-कहीं दान दिया हो, कुछ फलाना किया हो तो ओहोहो... आहाहा! ऐसे राग की क्रिया कुछ करे (तो) अज्ञानी उसकी महिमा करे। आहाहा! भारी किया तुमने, हों! आहाहा! यह आता है...

वीतरागमार्ग के अन्दर आत्मा के आश्रय से वीतरागता प्रगट हो, वही मुनि शोभता है। सम्यग्दर्शन भी उसे कहते हैं कि जो आत्मा त्रिकाली आनन्द की मूर्ति का अनुभव होकर प्रतीति होना, वह वीतरागी सम्यग्दर्शन है। वह वीतरागी समकिती जगत में शोभता है। राग से लाभ माननेवाला अज्ञानी राजवल्लभ नौकर जैसा वह शोभता है, अर्थात् उसे कुछ लाभ है नहीं। आहार किसी दिन मिले, दे।

पारसी थे न जामनगर? दीवान महेरबान सेठ। महेरबान सेठ एक थे पारसी। व्याख्यान में आये थे। उसका वेतन था कोई आठ सौ या हजार। राजा ने एक बार दो सौ बढ़ा दियो। बारह सौ (किया)। गये वहाँ। क्यों साहेब? क्यों दो सौ बढ़ाये? राजा को दबावे। क्यों बढ़ाये? अधिक देकर वापस राज का काम ऐसा आवे तो सिफारिश करो, यह नहीं हो सकता। मैं तो जिस प्रमाण... होगा, उस प्रमाण करूँगा, राज का काम होगा तो भी। निकाल दो वापस। किसने बढ़ाये दो सौ? तुम्हारे राज के काम आवे तब, यह दो सौ देते हैं, इसलिए हमारी हाँ में हाँ करके काम लेने के लिये... ये काम मैं नहीं कर सकूँगा। यह बातें होती थी। वीरजीभाई कहते थे। वहाँ आये थे, व्याख्यान में आये थे। (संवत्) १९९१ में मगसिर में।

इसी प्रकार यह .... खुशामतिया, झूठी महिमा करे और खुशामद के कारण अच्छे-बुरे उसे कुछ मिले वह पहेरामणी... क्या कहलाता है? किरण। .... मिले। यहाँ कहते हैं कि **अन्यवश मुनि...** आहाहा! गजब बात है न! एक शुभ का विकल्प है महाव्रत का या दया का या पूजा का, उस विकल्प के आधीन हुआ है कि यह मेरा कर्तव्य है और यह मेरा धर्म है। आहाहा! वह अन्यवश मुनि मिथ्यादृष्टि... आहाहा!

बहुत मार्ग... अभी आयेगा (गाथा) १४४ में। अन्यवश... उसमें कहा न 'सदा शोभता है'—ऐसा कहा। आहाहा! **अन्यवश मुनि नौकर के समूहों में राजवल्लभ नौकर समान शोभा देता है (अर्थात् जिस प्रकार योग्यता रहित, खुशामदी नौकर शोभा नहीं देता; उसी प्रकार अन्यवश मुनि...)** जैनधर्म के मुनिमार्ग में शोभता नहीं। समझ में आया? आहाहा!

दो पहलू। एक तो दया, दान, व्रत, भक्ति के विकल्प का पहलू, एक ओर पूरा आत्मा भगवान का पहलू। यहाँ पक्ष में गया वह स्ववश है, राग के पक्ष में गया वह परवश है। आहाहा! वह विकल्प भले चाहे तो भगवान की भक्ति का हो... 'णमो अरिहंताणं' वह भी एक विकल्प है, राग है। 'णमो अरिहंताणं' यह तो वाणी है, परन्तु अन्दर विकल्प है 'णमो अरिहंताणं' के स्मरण में। उस राग के आधीन होता है कि यह मेरा कर्तव्य है और यह मेरा धर्म है। आहाहा! समझ में आया? तो कहते हैं कि अन्यवश मुनि राजवल्लभ की भाँति शोभता नहीं। गजब ... यह पानी उतर जाये लोगों का। मुनि हो, कुछ-कुछ सब... उसमें ऐसा सुनते, ऐसा मार्ग? बापू! तेरी भ्रमणा मिटने का मार्ग है यह। समझ में आया? यह वीतराग का मार्ग है। इसमें, राग का कण भी लाभदायक माने, वह जैन नहीं। वह जैन नहीं, जैन का सेवक नहीं; राग का सेवक है। आहाहा! समझ में आया? अब (गाथा) १४४। १४४ में बहुत भरा है बहुत। हाँ, ठीक, यह कलश था।

जो चरदि संजदो खलु सुहभावे सो हवेइ अण्णवसो।
तम्हा तस्स दु कम्मं आवासयलक्खणं ण हवे॥१४४॥

नीचे हरिगीत।

संयत चरे शुभभाव में वह श्रमण है वश अन्य के।
अतएव आवश्यक-स्वरूप न कर्म होता है उसे॥१४४॥

टीका : यहाँ भी (इस गाथा में भी), अन्यवश ऐसे अशुद्धअन्तरात्म... अर्थात् मिथ्यादृष्टि **जीव का लक्षण कहा है।** अशुद्ध अन्तरात्मा अर्थात् मिथ्यादृष्टि। **जो श्रमण—** साधु होकर **वास्तव में जिनेन्द्र के मुखारविन्द से निकले हुए...** (अर्थात्) भगवान (के)

मुखकमल से निकले हुए **परम-आचारशास्त्र...** वास्तव में जिनेन्द्र के वदन अरविन्द—मुखरूपी कमल से **निकले हुए परम-आचारशास्त्र के क्रम से (रीति से) सदा संयत रहता हुआ शुभोपयोग में चरता—प्रवर्तता है;...** वह भी परवश और पराधीन है। आहाहा! गजब बात है। भाषा ऐसी कही, 'जिनेन्द्र के वदन अरविन्द में से निकले हुए', ऐसा। दूसरे का अर्थ व्यवहार तो नहीं, परन्तु परमेश्वर जिनेन्द्रदेव ने (कहे हुए) आत्मा के अनुभव की दशा में जो कुछ कमजोरी का राग आता है, उसका वर्णन जो शास्त्र में भगवान ने कहा, तत्प्रमाण आचार को पालता हो, आहाहा! तथापि वह परवश है। वह राग है, वह परवश है, वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया?

जो कोई साधु वास्तव में जिनेन्द्र के वदन-अरविन्द में से निकले हुए... मुखकमल में से दिव्यध्वनि भगवान की आयी। ऐसे जो **परम-आचार...** व्यवहार आचार का कथन तो ज्ञान कराने के लिये भगवान के मुख में आवे तो सही न! आहाहा! ऐसे परम-आचार शास्त्र... परम-आचार शास्त्र भगवान के कहे हुए, हों! आहाहा! उसकी **(रीति से) सदा संयत...** रहता है (अर्थात्) वह बराबर शुभभाव को पालने में तत्पर रहता है। भगवान ने कहे हुए व्यवहार आचार प्रमाण पालने पद्धति से—क्रम से—आवश्यक के क्रम से **सदा संयत रहता हुआ...** परन्तु वह शुभभाव है। **प्रवर्तता है...** है वह शुभ-उपयोग, राग। आहाहा! वह भी परवश है। समझ में आया? एक बोल। ग्यारह बोल है न! ग्यारह क्रिया है न, ग्यारह। अन्त में है न। **ग्यारह क्रियाओं में तत्पर रहता है...** उसमें यह एक बोल आया। कैसे हुआ? उसमें पहला बोल आया, ऐसा कहता हूँ। ग्यारह में एक बोल आया, ऐसा। ग्यारह बोल है न, ग्यारह क्रिया। उसमें पहला यह।

दूसरा, **व्यावहारिक धर्मध्यान में परिणत रहता है, इसीलिए चरणकरणप्रधान है;...** ग्यारह बोल हैं न यह! वहाँ से निकाला। वरना तो ग्यारह ऐसे भी होते हैं। होते हैं, देखो! **शुभोपयोग में प्रवर्तता है; व्यावहारिक धर्मध्यान में परिणत रहता है,...** अर्थात् कि **चरणकरणप्रधान है;...** ऐसा। उस चार आहार को लेने को लिये चार बोल, हों! **स्वाध्याय काल का अवलोकन करता हुआ (स्वाध्याययोग्य काल का ध्यान रखकर) स्वाध्यायक्रिया करता है,...** यह तीन। **प्रतिदिन भोजन करके चतुर्विध आहार का प्रत्याख्यान करता है,...** सात। तीन सन्ध्या का करते हैं—दस। और तीनों काल नियम

परायण रहता है, यह ग्यारह, ऐसे। आहाहा! आमने-सामने बैठता है। ऐसी क्रिया करता है तथापि वह परवश है। आत्मा उस राग की क्रिया रहित है, ऐसा जिसे भान नहीं, समकित नहीं, पहिचान नहीं, (और) ऐसी क्रिया में प्रवर्ते, वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया?

व्यावहारिक धर्मध्यान में परिणत रहता है,... व्यवहारिक धर्मध्यान—शुभभाव, उसमें परिणत रहता है (अर्थात्) शुभरूप परिणमता है, कहते हैं। **इसीलिए चरण-करणप्रधान है;...** ऐसा। चरणकरणप्रधान है। चरण अर्थात् शुभ आचरण के परिणाम जिसे मुख्य है। करण अर्थात् परिणाम। चरण अर्थात् व्यवहार आचरण शुभराग के जो परिणाम, उसे मुख्य है। शुभ के ही परिणाम उसे मुख्य है। आत्मा उससे रहित है, उसका भान नहीं। क्रिया में रच गया है। आहाहा! भारी कठिन बात, भाई! **सदा संयत रहता हुआ शुभोपयोग में चरता है;...** आहाहा! शुभ उपयोग तो राग है और व्यवहार धर्मध्यान, वह भी राग है। भगवान का स्मरण करना, 'णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं' अरिहन्त को लक्ष्य में लेना—ध्यान में रहना, वह भी राग है। आहाहा! सिद्ध भगवान को लक्ष्य में लेकर ध्यान करना, वह भी राग है।

चरणकरणप्रधान... देखा! उसमें—शुभ आचरण में करण अर्थात् परिणाम जिसे मुख्य है। वह शुभाचरण परिणाम, वही उसे मुख्य वस्तु है। भगवान आत्मा तो एक ओर पड़ा रहा। सब आचरण, वह हमारा कर्तव्य और वह हमारा कल्याण। समझ में आया? **स्वाध्याय काल का अवलोकन करता हुआ...** स्वाध्याय करे शास्त्र की बराबर। प्रथम पोरसी सज्झायं.... कहाँ है अभी ठिकाना? व्यवहार का भी कहाँ ठिकाना है? यहाँ तो कहते हैं कि व्यवहार आचरण के परिणाम—शुभभाव जिसे मुख्य है। समझ में आया? स्वाध्याय काल को अवलोके... स्वाध्याय का काल आया, अभी स्वाध्याय करनी चाहिए। प्रथम पोरसी सज्झायं। सवेरे उठकर पहले पहर में स्वाध्याय करना, ऐसा है, दूसरे पहर में ध्यान करना, तीसरे पहर में गोचरी जाना, चौथे पहर में फिर सज्झाय करना, ऐसा आवे। ... हो गया? सवेरे के उठे तो सीधे चाय, यह स्वाध्याय। आहाहा! सब बात ही बदल गयी। क्या हो? व्यवहार का मार्ग भी बदल गया, निश्चय तो है नहीं। सत्य तो है नहीं, परन्तु उपचारिक जो ऐसा व्यवहार, उसका भी ठिकाना नहीं। यहाँ तो वीतरागमार्ग में बापू! .....

कहते हैं न, जिसे चरणकरण प्रधान है, शुभोपयोग बराबर है, ऐसा। जिसे शुभ उपयोग की ही मुख्यता है। अशुभ नहीं, तथा आत्मा की मुख्यता नहीं। समझ में आया? वह भी, कहते हैं कि परवश है। वीतराग ने कहे हुए आचार के शास्त्र, प्रमाण शुभाचरण में... हो, तो भी वह परवश है। वह धर्म नहीं, राग है। राग किसे कहना, यह समझना कठिन पड़े, इसलिए स्पष्टीकरण किया है। स्वाध्याय काल का ध्यान रखे। स्वाध्याय क्रिया करे, लो। सवेरे के उठे जल्दी, एक पहर सज्झाय करे। सोने से पहले एक पहर सज्झाय करे, दूसरे पहर में ध्यान करे, ऐसा है। यह क्या है? ... ऐसा आता है श्वेताम्बर में। तीसरे पहर में... उसमें तो चौथे पहर शास्त्र...

सच्चे भावलिंगी सन्त वीतरागी हों, उन्हें रात्रि के अन्तिम भाग में जरा पौन सेकेण्ड की निद्रा हो। बहुत सूक्ष्म एक-एक बात। वीतराग के मार्ग के साथ मिलान करने जाये तो कठिन पड़े। स्वाध्याय क्रिया करे, लो, वह शुभभाव है। शास्त्र की स्वाध्याय करना, वह शुभभाव है। आहाहा! वह धर्म नहीं। गजब! यह सुनने के भाव हो, वह शुभ है, वह धर्म नहीं। अरे! गजब बात! वीतराग का मार्ग... आहाहा!

मुमुक्षु : ....तो धर्म ही है ऐसा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो वह का वह हुआ। धर्म नहीं न... यह तो मीठी भाषा में ऐसा कहते हैं कि पुण्य है। सत्य भाषा की स्पष्टता से तो वह अधर्म है। धर्म का अभाव, वह अधर्म और अधर्म का अभाव, वह धर्म। समझ में आया?

प्रतिदिन भोजन करके चतुर्विध आहार का प्रत्याख्यान करता है,... प्रतिदिन एक आहार लेकर... एक ही आहार होता है मुनि को। फिर चौबीस घण्टे चार (प्रकार के) आहार का त्याग। दूसरे दिन आहार लेने का विकल्प आवे। **प्रतिदिन भोजन करके चतुर्विध आहार का प्रत्याख्यान करता है,...** यह भी एक शुभभाव है। **तीन सन्ध्याओं के समय (-प्रातः, मध्याह्न तथा सायंकाल) भगवान अर्हत परमेश्वर की लाखों स्तुति मुखकमल से बोलता है,...** लो, यह सवेरे, दोपहर, शाम भगवान अर्हंत परमेश्वर की लाखों स्तुतियाँ (बोलना), परन्तु वह सब शुभराग। आहाहा! यह खबर ही नहीं कि क्या करने का है। यह करना है भगवान की स्तुति करना, लोगस्स करना। 'अेवं मये

अभिभुआ विहुयरयमळा पहीणजरमरणा...' लोगस्स में आता है न। बापू! यह तो परसन्मुख की स्तुति है, वह राग है, भाई! वह धर्म नहीं। आवे, हो, परन्तु वह धर्म नहीं। अशुभ से बचने के प्रसंग में ऐसे भाव होते हैं, परन्तु वह स्वयं धर्मरूप नहीं। आहाहा! समझ में आया?

तीन सन्ध्यायें... इतना सब भगवान की लाखों स्तुतियाँ... ठीक! लाखों अर्थात् बहुत, ऐसा। सवेरे, दोपहर, शाम को भगवान के गुणगान—स्तुति (करना), नये-नये काव्य बनावे, लिखे—वह सब शुभभाव है, पुण्यभाव है; धर्मभाव नहीं। उसके आधीन हो जाता है, वह मिथ्यादृष्टि, अज्ञानी है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **तीनों काल नियम परायण रहता है...** सवेरे-शाम नियम में तत्पर रहता है। **इस प्रकार अहर्निश (दिन-रात मिलकर) ग्यारह क्रियाओं में तत्पर रहता है;...** लो। ग्यारह प्रकार की क्रिया में तत्पर, वह सब शुभभाव है। आत्मा के आनन्द में तत्पर नहीं। अन्तर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान सहित तत्पर होना चाहिए, वह नहीं। यह क्रियाकाण्ड के शुभराग में तत्पर रहता है, वह भी परवश है, स्वाधीन नहीं। पराधीन सपने सुख नहीं। पर के आधीन राग में कहीं जरा भी सुख और धर्म नहीं है। आहाहा! उससे रहित—राग से रहित आत्मा का आश्रय ले और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट करे, इसका नाम धर्म है, इसका नाम सच्ची आवश्यक क्रिया है। विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल १२, रविवार, दिनांक - ३१-१०-१९७१
गाथा-१४४, श्लोक-२४५, प्रवचन-१६४

यह नियमसार सिद्धान्त है, निश्चय परम-आवश्यक (अधिकार)। आत्मा को सच्चा आवश्यक क्या कार्य है, उसका यह वर्णन है। कहते हैं कि यह आत्मा आनन्द और ज्ञान के स्वभाव से भरपूर पदार्थ। वह अपना स्वभाव, उसका आश्रय छोड़कर जितनी पर-आश्रय की क्रिया करे, वह सब परवशक्रिया है, वह धार्मिकक्रिया नहीं। चाहे तो शुभभाव करे, शुभभाव—दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि का भाव, वह राग है। उसरूप परिणमे तो भी वह पराधीन है। राग की क्रिया, वह पराधीन है। समझ में आया? ग्यारह क्रियाओं तक आ गया है।

पाक्षिक—पन्द्रह दिन में प्रतिक्रमण करे, परन्तु वह प्रतिक्रमण शुभभावरूपी राग की क्रिया है। आहाहा! पन्द्रह-पन्द्रह दिन में प्रतिक्रमण, शाम-सवेरे के प्रतिक्रमण, वह भी एक शुभराग है, पराश्रित क्रिया है। जयन्तीभाई (संवत्) २०१७ में आये थे न जामनगर? फिर नहीं आये। १७ में आये थे। अधिकार सत्य का है। ऐसे परम आनन्दस्वरूप भगवान ज्ञान की मूर्ति आत्मा के अन्तर अवलम्बन से ज्ञान का, आनन्द का आश्रय करके और जो कुछ स्थिरता और श्रद्धा-ज्ञान की क्रिया होती है, वह अवश्य कर्म और वह आवश्यक धर्मकार्य है। समझ में आया? पाक्षिक प्रतिक्रमण करे, **मासिक**—महीने में प्रतिक्रमण करे, **चातुर्मासिक** प्रतिक्रमण **और सांवत्सरिक प्रतिक्रमण**—यह सब शुभभाव है, राग है। ऐसे **प्रतिक्रमण सुनने से उत्पन्न हुए सन्तोष से...** ऐसा लगे कि आहाहा! **जिसका धर्म शरीर रोमांच से छा जाता है;...** आहा! धर्मशरीर। आहाहा! शुभभाव की क्रिया में उसका रोमांच खड़ा हो जाता है, परन्तु वह तो सब पुण्यबन्ध का कारण है, धर्म नहीं। धर्म बहुत सूक्ष्म चीज़ है। समझ में आया?

जिसका धर्म शरीर.... अर्थात् शुभभाव की क्रिया में **रोमांच** खड़ा हो जाता है। कहते हैं कि वह तो राग की क्रिया है। वह कहीं आत्मा के आश्रय से आवश्यक जो

मोक्ष के लिये कारण है, वह क्रिया नहीं। **अनशन** करे। एक अपवास से लेकर छह-छह महीने के अपवास करे, वह भी एक शुभभाव है; धर्म नहीं। एक अपवास, दो अपवास, तीन अपवास, चार (अपवास से लेकर) छह महीने के अपवास, परन्तु उसका लक्ष्य तो पर के ऊपर है, राग की मन्दता करने की क्रिया है। आहाहा! उसमें आत्मा नहीं आया। भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु जिसमें—आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द छलाछल भरा हुआ है। उसका शरण और आश्रय लिये बिना ऐसी क्रिया, वह धर्म की क्रिया नहीं। **अनशन, अवमौदर्य...** ऊनोदरी करे। दो-चार ग्रास खाये, कम खाये, पेट कम भरे, वह भी एक शुभराग की क्रिया है। आहाहा! गजब!

रसपरित्याग.. करे। दूध, दही, गुड़, खांड, शक्कर खाये नहीं। वह भी एक शुभराग की क्रिया है। आत्मा के आनन्दरस के भान बिना ऐसी क्रिया, वह राग की क्रिया है और पराधीनदशा, वह दुःखरूप रूप है, ऐसा कहते हैं। **रसपरित्याग...** कठिन बात है, भाई! वीतरागमार्ग को समझना। सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने कहा हुआ धर्म, वह तो अपूर्व और अलौकिक है। आहाहा! **वृत्तिपरिसंख्यान...** अमुक गली में जाना, अमुक न खाना, इतने ही द्रव्य लेना, इतने क्षेत्र में जाना, इतने काल में भिक्षा लेना—ऐसा कोई वृत्तिसंख्यान करे। वह भी एक शुभराग है, विकल्प है, वृत्ति है, राग है। वह आत्मा का धर्म नहीं। अरे, कठिन! **विविक्त शय्यासन...** एकान्त में रहे। स्त्री, पुरुष, नपुंसक का संग जिसे नहीं। एकान्तवास में बसे, वह भी एक राग की क्रिया है। आहाहा! **और कायक्लेश...** करे। छह-छह महीने तक ऐसे खड़ा रहे। वह भी एक शुभराग है। वह आत्मा का धर्म नहीं। पण्डितजी!

नाम के छह बाह्य तप में जो सतत उत्साहपरायण रहता है;... छह प्रकार के तप में—अनशन, ऊनोदरी, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्त शय्यासन, कायक्लेश—इनमें सतत उत्साहपरायण रहे, परन्तु यह तो परसन्मुख की क्रिया के राग में उत्साहपरायण है। भगवान आत्मा अन्तर आनन्दस्वरूप का आश्रय होकर जो क्रिया हो, उसका तो उसमें अभाव है। कहो, जयन्तीभाई! क्या बात है यह? यहाँ भगवान कहते हैं कि जितनी क्रिया अपवास की, ऊनोदरी की है, वह सब राग की क्रिया है, पुण्य की क्रिया है, शुभराग है और उसमें दृष्टि है कि यह धर्म है, वह मिथ्यात्वभाव है। चिमनभाई! क्या,

इसमें कुछ बाकी रखा नहीं। आहाहा! **सतत उत्साहपरायण...** ऐसी वापस भाषा कैसी प्रयोग की है! ऐसे अपवास करने में बेगार जैसा नहीं, (परन्तु) उत्साह से, तत्परता से करे, वह तो क्रिया—बाह्यक्रिया का राग है। कहो, भीखाभाई! अब आता है।

स्वाध्याय... करे शास्त्र की। रात और दिन स्वाध्याय.. स्वाध्याय.. स्वाध्याय.. शास्त्र... शास्त्र... शास्त्र... वाँचन करे, यत्ना करे, प्रश्न पूछे, चर्चा-वार्ता रखे। स्वाध्याय, वाँचन, पृच्दा, पर्यटन, अनुप्रेक्षा का विचार किया करे विकल्प से और धर्मकथा करे—यह सब बात शुभराग की क्रिया है। समझ में आया? इसमें आत्मा का आश्रय नहीं। यह पराश्रयभाव, वह राग की क्रिया है। आहाहा! **स्वाध्याय...** आत्मा जो आनन्दस्वरूप भगवान, उसका स्वाध्याय छोड़कर, मात्र शास्त्र का (स्वाध्याय करे)। परन्तु शास्त्र तो परवस्तु है। उसकी स्वाध्याय में रुके, वह भी एक शुभभाव है, पुण्यभाव है; धर्मभाव नहीं। कठिन! समझ में आया? **ध्यान** करे... अन्तर्मुख होकर विकल्प से चिन्ता (चिन्तन) किया करे कि आत्मा ऐसा है और आत्मा ऐसा है। समझ में आया? **ध्यान** (रूप) शुभभाव करे, वह भी पुण्य है; धर्म नहीं। आहाहा!

शुभ आचरण करते हुए कुछ दोष लगे तो फिर से और **प्रायश्चित** ले। वह भी शुभराग है, वह विकल्प का उत्थान—वृत्ति का उत्थान है, वह आत्मधर्म नहीं। आहाहा! यह तो लोग चिल्लाहट मचाये बेचारे। अभी अधिक आयेगा। **विनय...** देव-गुरु-शास्त्र की तो परमभक्ति और विनय... विनय... विनय... रोमांच खड़ा हो जाये। देव परमात्मा, गुरु निर्ग्रन्थ और शास्त्र। धर्मात्मा का विनय, ऐसा विनय कि ऐसे जरा भी न्यूनता न आने दे। वह विनय भी शुभराग है। पण्डितजी! सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकर, गुरु, शास्त्र, वे भी परवस्तु हैं। उनके विनय में तत्पर है, वह सब शुभराग है। गजब बात, भाई! यह तो कहे, भगवान की भक्ति और गुरु की भक्ति करे तो कल्याण होता है, लो। यहाँ तो कहते हैं कि नहीं, नहीं, कल्याण नहीं होता। आहाहा! भाई! तेरा स्वरूप... यह तो विकल्प है, राग है। यह राग कहीं इसका (आत्मा का) स्वरूप है नहीं। वह तो शुद्ध चिदानन्द सिद्धस्वरूप आत्मा, ज्ञान का पिण्ड, आनन्द का कन्द—रसकन्द प्रभु का आश्रय लेकर, उसके अवलम्बन से जो क्रिया हो, उस क्रिया को भगवान धार्मिक क्रिया कहते हैं। समझ में आया?

विनय में बहुत जुड़े, ऐसा कहते हैं। कुछ भी असातना न हो, ऐसा न हो—ऐसा विनय। समझ में आया? गुरु के आसन को भी पैर न लगाने देना, ऐसा हो, वैसा हो, बराबर—व्यवस्थित विनय बनाये रखे। वह भी एक परसन्मुख के आश्रयवाली राग की वृत्ति है। 'विनय... धम्मो' है न? यहाँ तो यह कहते हैं। ऐई! आहाहा! अपना भगवान आत्मा वीतरागता की मूर्ति प्रभु का अन्दर आदर करना, वह वास्तविक विनय है। आहाहा! समझ में आया? उसका ज्ञान करके उसमें स्थिर होना, वह विनय है। वह विनय आत्मा की क्रिया है और परद्रव्य का विनय, वह राग की क्रिया है। आहाहा! कठिन काम! जगत को अभी तो बाहर का ठिकाना नहीं, उसे अन्तर (में) तो कहाँ जाना? समझ में आया?

विनय करे, बहुत भक्ति... भक्ति ऐसी। देखो न! ऐसे भगवान की भक्ति और गुरु की भक्ति में ऐसा हो जाता है या नहीं? धुन चढ़ जाये धुन। ऐसी धुन चढ़े कि आहाहा.. कहते हैं, भूल गया आत्मा को। आत्मा को भूल गया और पर की धुन लगायी। कहते हैं कि वह तो पुण्यबन्धन का कारण है; धर्म नहीं। भाई! विनय में जुड़े, बहुत शास्त्र का विनय, वाँचन में भी पैर स्वच्छ करे, पानी से हाथ-पैर धोवे और छूने न दे शरीर... शास्त्र का बहुत ही विनय आवे, गुरु का विनय बहुत ही आवे, पीठ भी न दे, ऐसा न हो—परन्तु वह सब परद्रव्य आश्रय की क्रिया राग की है। है या नहीं उसमें? आहाहा!

वैयावृत्य करे। देव-गुरु-शास्त्र की वैयावृत्य, साधर्मी की वैयावृत्य, संघ जीमावे, वैयावृत्य करे, पैर दबावे, पगचम्पी करे धर्मात्मा की—यह सब शुभराग है। अरे, कठिन! उसको पगचम्पी करते-करते केवलज्ञान हो गया। ऐई! आता है या नहीं? मनसुखभाई ने लिखा है। श्रीमद् में .... है न, उसमें लिखा है। छोटी बुक प्रकाशित हुई है उसमें लिखा है। ... हाँ, उसमें लिखा है। आर्जिका थी, वह उसकी गोराणी के पैर दबाती थी। दबाते-दबाते केवलज्ञान हो गया। आहाहा! पैर दबाने की क्रिया में तो राग है, वह तो परसन्मुख का झुकाव है। राग की क्रिया से समकित होगा? केवल (ज्ञान) तो कहीं रहा, परन्तु समकित भी नहीं होगा। समझ में आया? भक्ति-भक्ति करते थे न? ऐई हैदराबाद! भटकने की। ऐसा... वीरचन्दभाई का पौत्र। वीरचन्द भूरा। सवेरे से बैठे नौ-साढ़े नौ बजे तक। श्रीमद् का फोटो। घी का... घी का क्या कहलाता है? दीपक घी

का और ऐसे अगरबत्ती रखे एक-दो। फिर वाँचे, भक्ति धुन चढ़ाये। देखा है या नहीं? देखा है? कहते हैं, वह सब शुभराग है। आहाहा! गजब बात है। कहो, समझ में आया? आहाहा!

वैयावृत्य करे और कायोत्सर्ग—**(व्युत्सर्ग)** करे। वह तो अभी विकल्प की वृत्ति से कायोत्सर्ग करता है। अन्तर में आनन्दस्वरूप में एकाग्र नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसे **अभ्यंतर तपों के अनुष्ठान में...** देखो! अभ्यन्तर तप के **(आचरण में) जो कुशलबुद्धिवाला है;**—बराबर चतुर है उसमें। उसकी होशियारी बराबर वहाँ काम करती है, कहते हैं। तथापि वह राग की क्रिया है, धर्म की नहीं। आहाहा! बड़े मन्दिर बनाना पाँच-पाँच लाख के, उसकी प्रतिमायें स्थापित करना, उनकी भक्ति, उनके पंचकल्याणक करना—यह सब शुभराग है, कहते हैं। कहो, समझ में में आया इसमें? आहाहा! **परन्तु...** ऐसा जो साधु ऐसी क्रिया करे, तथापि उसे धर्म नहीं।

वह निरपेक्ष तपोधन साक्षात् मोक्ष के कारणभूत... आहाहा! जिसे ऐसी क्रिया की भी अपेक्षा नहीं, ऐसे व्यवहार के राग की अपेक्षा (नहीं)। ऐसा तपोधन—मुनि **साक्षात् मोक्ष के कारणभूत स्वात्माश्रित आवश्यक-कर्म...** अपना भगवान, उसके आश्रय से, उसके अवलम्बन से, अन्तर्मुख के आधार से जो आवश्यक कर्म (अर्थात्) आवश्यक की निर्मलता—वीतरागी पर्याय, उसे वह जानता भी नहीं कि यह क्या है धर्म और उस क्रिया में स्वयं कुशल और चतुर है। **मोक्ष के साक्षात् कारणभूत...** तब कहते हैं कि वह परम्परा कारण आयेगा या नहीं इसमें? इसमें साक्षात् कारण कहा है न? यहाँ तो राग के आधीन होकर एकत्वबुद्धि जिसकी है, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि का राग, उसमें एकत्वबुद्धि है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! वह जैन नहीं। जैन तो उसे कहते हैं कि जो राग की क्रिया से पृथक् आत्मस्वभाव में एकत्व हो और राग से पृथक् हो, उसे जैन कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? जैन तो यह वस्तु का स्वरूप है। कहो, चन्द्रकान्त!

कहे, यह धर्म सच्चा और दूसरा सच्चा नहीं, उसका कारण? सवेरे प्रश्न किया था। यही वस्तु है। जैनधर्म कोई सम्प्रदाय नहीं। आत्मा का स्वभाव वीतरागमूर्ति आत्मा है उसका आश्रय लेकर वीतरागी परिणति प्रगट करना, वह धर्म, वह जैनधर्म। समझ में

आया ? ऐसा धर्म अन्य में कहीं नहीं हो सकता। क्योंकि आत्मा ही स्वयं अखण्डानन्द चिदानन्द का कन्द प्रभु है, जैसी वीतरागदशा और केवलज्ञानदशा प्रगट करनी है, वह प्रगट होने का धाम तो आत्मा स्वयं है। ऐसे आत्मा का जहाँ आश्रय नहीं, वह जैन नहीं। राग का आश्रय माने, वह जैन नहीं, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। आहाहा! गजब! समझ में आया ? वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा अकषायस्वभाव का कन्द, रसकन्द के सन्मुख होकर जो क्रिया होती है, उसे यहाँ जैन की क्रिया और धार्मिक क्रिया कहा जाता है। दुनिया के साथ कुछ मिलान खाये, ऐसा नहीं है। वाड़ा के साथ मिलान खाये, ऐसा नहीं है। शान्तिभाई! आहाहा!

अरे बापू! तू महाप्रभु है न! तुझमें अनन्त प्रभुता और अनन्त परमेश्वरता पड़ी है। परमेश्वर के पक्ष में जाकर जो एकाग्रता हो, उसका नाम वीतराग ने धर्म और जैनधर्म कहा है। कहो, कान्तिभाई! **साक्षात् मोक्ष के कारणभूत स्वात्माश्रित...** देखो! वह सब पराश्रित क्रिया थी। स्व-आत्मा भगवान सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ ने देखा, परमात्मा तीर्थंकरदेव ने इस आत्मा को देखा कि यह आत्मा पवित्र आनन्द का... है। ऐसे आत्मा के आश्रय से स्वात्माश्रित... वापस स्व-आत्माश्रित। पर आत्मा तीर्थंकर का केवलज्ञानी का नहीं। **आवश्यक कर्म को** (अर्थात्) आवश्यक आत्मा का काम। स्व का आश्रय लेना, वह आवश्यक का कार्य है। समझ में आया ?

यह छह आवश्यक, कहते हैं न, हमेशा (करना)। देव की भक्ति, गुरु को वन्दन। यह नहीं, यह नहीं। यह (मुनि के) छह आवश्यक। वे तो (श्रावक के) आवश्यक प्रतिदिन करना। प्रतिदिन छह आवश्यक श्रावक को आते हैं। अरिहन्त की भक्ति, गुरु की (सेवा), वन्दन, स्वाध्याय, दया, दान, तप यह छह आवश्यक आते हैं। वे भी शुभराग है। धर्मी को अन्तर में स्वभाव का आश्रय होने पर भी स्थिरता विशेष न हो, तब ऐसे भाव होते हैं, परन्तु वे भाव धर्म नहीं, पुण्य का कारण है। आहाहा! अरे! पूरे जन्म-मरण को उखाड़ डालना है, जन्म-मरण के भाव को जहाँ ध्वंस (करना है)—दबा देना है, वह क्रिया तो आत्मा के आश्रय से होती है। समझ में आया ? आहाहा! लोगों को समझना मुश्किल पड़े दिमाग में कि क्या कहते हैं यह! यह सब व्यवहार, वह धर्म नहीं। तब करने में तो व्यवहार आवे, देखनें व्यवहार आवे, आचरण में भी (व्यवहार)।

वह व्यवहार धर्म नहीं, सुन न! आहाहा! स्वात्माश्रित आवश्यक कार्य सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो आत्मा के अवलम्बन से होता है अन्दर से, ऐसे कार्य को जानता भी नहीं, ऐसा कहते हैं।

निश्चय से परमात्मतत्त्व में विश्रान्तिरूप... देखो! निश्चय से परमात्मतत्त्व भगवान सच्चिदानन्द प्रभु निजस्वरूप में विश्रान्ति, आनन्दधाम में विश्राम लेना, ऐसा निश्चय धर्मध्यान। समझ में आया? बहुत कठिन काम! भक्तिवाले को कठिन पड़े, व्रतवाले को कठिन पड़े। भक्ति करते-करते कल्याण हो जायेगा। धूल भी नहीं होगा, सुन न! ऐसी भक्ति तो अनन्त बार की है पर की। स्वात्माश्रित भक्ति इसने कभी नहीं की। **परमात्मतत्त्व में विश्रान्ति...** देखो! भाषा! यह राग है, वह अविश्रान्त है। परमात्मतत्त्व अर्थात् परमस्वरूप भगवान में विश्रान्ति—उसमें स्थिर होना, उसमें पसरना—ऐसा जो निश्चयधर्मध्यान—सच्चा धर्मध्यान, उसे ऐसी क्रियाकाण्डवाले जानते नहीं। यहाँ तो (कहते हैं), जानते नहीं। करते नहीं, ऐसा नहीं कहा। जानते भी नहीं। आहाहा! समझ में आया?

निश्चय-सच्चा धर्मध्यान, वह तो त्रिकाली आत्मा आनन्द का आश्रय लेकर एकाग्रता हो, वीतरागी निर्विकल्पदशा हो, यह स्वाश्रय हो, वह सच्चा धर्मध्यान है, वह मुक्ति का कारण है। आहाहा! यह परदेशवालों ने सब सुना न हो वहाँ। रुपया... रुपया... रुपया। ऐई देवजीभाई! वहाँ रुपये-रुपये हो अफ्रीका में तो। आहाहा! वह तो वीतराग तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी परमात्मा का धर्म, वह तो स्व-आश्रय से होता है। आहाहा! जयन्तीभाई! भारी कठिन पड़े। वाड़ावाले के तो (ऐसा) लगे कि अरर! यह व्यवहार का तो नाश हो जाता है। परन्तु यह व्यवहार अर्थात् राग, उसकी रुचि छोड़े बिना आत्मा की दृष्टि नहीं होती और आत्मा की दृष्टि हुए बिना धर्म नहीं होता। आहाहा!

ऐसे **निश्चयधर्मध्यान को तथा शुक्लध्यान को...** ऊँचा स्वात्माश्रित उसे **जानता नहीं...** उसके ख्याल में भी नहीं कि यह धर्म कुछ दूसरी चीज़ है। आहाहा! **इसलिए परद्रव्य में परिणत होने से...** लो, देखो! ऊपर जितनी क्रिया कही, वह राग की है और वह परद्रव्य में परिणमा है। राग, वह स्वद्रव्य नहीं, स्ववस्तु नहीं। आहाहा! वह **परद्रव्य में परिणत होने से उसे अन्यवश कहा गया है।** भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा... यह

पहले जो सब क्रिया कही—उपवास, उनोदरी, रसपरित्याग और कायक्लेश जो राग की और विनय की—उसे भगवान ने परवश कहा है, पर के आधीन हो गया है। आहाहा! वह दु:ख में पड़ना है, कहते हैं। आनन्दस्वरूप प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का रस, उससे (भिन्न) यह क्रियाकाण्ड के शुभराग के भाव सब दु:खरूप है, ऐसा कहते हैं। वह परवश है। है न? आहाहा! **अन्यवश कहा गया है।** भगवान ने उसे अन्यवश कहा है। तीर्थंकरों ने, सन्तों ने ऐसी राग की—शुभराग की क्रिया को परवश कहा है, वह पराधीन हुआ है। आहाहा! समझ में आया?

जिसका चित्त तपश्चरण में लीन है, ऐसा यह अन्यवश श्रमण देवलोकादि के क्लेश की परम्परा प्राप्त होने से... लो। ऐसी क्रिया में—परद्रव्य में परिणत होने से जिसका चित्त तपश्चरण अर्थात् शुभराग में लीन है। व्यवहार तपस्या। व्यवहार तपस्या अर्थात् शुभराग, व्यवहार मुनिपना। **अन्यवश श्रमण देवलोकादि के क्लेश...** वह तो देवलोक में क्लेश भोगेगा। इस पुण्य के फल में देवलोक में क्लेश को भोगेगा। देवलोक आदि और यह अरबोंपति, करोड़पति सेठिया जो है, वे (बेचारे) सब दु:खी हैं। पुण्य के फल में कषाय के अंगारों से सुलग रहे हैं, कहते हैं। समझ में आया?

वह **अन्यवश श्रमण देवलोकादि...** है न? देवलोक हो, मरकर सेठ हो, यह धूल, दो-पाँच करोड़, दस करोंड़। लो न, अरबोंपति है न अभी कितने ही अपने बनियों में भी। समझ में आया? कहते हैं, वह पूर्व के शुभराग के फल में कषाय की अग्नि सुलगती है। वह सुखी नहीं, वह दु:खी है। आहाहा! पूरी बात बड़ी। यहाँ तो कहते हैं कि ऐसे शुभभाव किये होंगे, उसके फल में यह अरबोंपति बनिया सेठिया होता है, या देव होता है। सब कषाय की अग्नि से सुलगेंगे। वहाँ कहीं भी छूटेंगे नहीं। उसमें आत्मा नहीं। आहाहा!

देवलोकादि के क्लेश की परम्परा... वापस देखो! शुभभाव से पुण्य बँधे, उससे देव हो, वहाँ से मरकर सेठ हो—ऐसी क्लेश की परम्परा। वह तो दु:ख की परम्परा में डूब गये हैं। आहाहा! दु:ख हैं, कहते हैं। आत्मा को आश्रय नहीं, वहाँ सब दु:खी हैं। आहाहा! पूर्व में शुभभाव किये हों, उसका पुण्य बँधे, उसके (फल में) बाहर में पैसे—धूल दिखाई दे और उससे माने कि हम सुखी हैं। दु:खी है। आहाहा! यहाँ तो

क्लेश की परम्परा कहा। नहीं कि उसके फिर और कुछ शुद्ध का लाभ होगा या भगवान का। आहाहा! **शुभोपयोग के फलस्वरूप...** देखो! यह शुभराग—शुभभाव है, उसके फलस्वरूप **प्रशस्त रागरूपी अंगारों से सिकता हुआ,...** उस शुभराग के अंगारों से सींकता हुआ... बस। शुभभाव से ऐसा होगा, ऐसा कहते हैं। जेठाभाई! वह तो सब धर्म था पूरा, वह सर्वस्व। गर्म पानी पीना, एकान्त में रहना, एक आसन में खाना, बराबर उपधान करना। उसमें राग की मन्दता का भाव (हो तो) वह पुण्य है।

शुभोपयोग के फलस्वरूप... शुभरागरूपी... देखो! यहाँ तो यह कहा। **प्रशस्त रागरूपी अंगारों से सिकता हुआ,...** आहाहा! समझ में आया? आत्मा की शान्ति वहाँ कहीं है नहीं। इसने शुभभाव की क्रियायें कीं, उनके फल में देवलोक और सेठाई के अंगारों में सुलगेगा, कहते हैं। चार गति में दुःख है, कहीं सुख है नहीं। सुख तो आत्मा में है। भाई! यह सेठिया को सुखी कहते हैं न? पैसेवाले हैं, इनके पास पाँच करोड़ है, दस करोड़ है, सुखी है। अंगारों से सिंकता है, कहते हैं यहाँ तो। आहाहा! कषाय की अग्नि है। अन्तर आत्मास्वरूप भगवान का जिसने आश्रय लिया नहीं, उसके फलरूप से तो यह सब अंगारों में सींकते हैं। आहाहा! समझ में आया? सब शुभभाव की क्रिया डाली है इसमें। पाठ में शुभभाव है सही न! '**आवासयलक्खणं ण...**' वह आवश्यक कार्य आत्मा का नहीं। क्रियाकाण्ड शुभभाव, वह आत्मा का आवश्यक कार्य नहीं। आहाहा!

अब सुलटा कहते हैं। ऐसा सिंकता था, वह (मुड़ता) है, कहते हैं। अब उसमें से कोई **आसन्नभव्यतारूपी गुण का उदय होने पर...** शुभराग की क्रिया से भिन्न पड़कर, मैं आत्मा आनन्दस्वरूप हूँ—ऐसा आसन्नभव्यतारूपी—जिसकी भव्यता नजदीक हो गयी है, मोक्ष के लिये, आनन्द की प्राप्ति के लिये जिसकी योग्यता अत्यन्त नजदीक है, ऐसे **गुण का उदय होने पर...** देखो! आहाहा! **परमगुरु के प्रसाद से प्राप्त...** परमगुरु ने कहा कि भगवान! इस राग की क्रिया को दृष्टि में से छोड़। आहाहा! परन्तु उन्होंने कहा, वैसा किया है न। किया वैसा कहा था और कहा वैसा किया है। आहाहा! भाई ने लिखा है एक जगह। सोगानी ने लिखा है। मैंने तो महाराज ने कहा था, वह कार्य किया है। ऐसा आया है उसमें—सोगानी में आया है। उन्होंने कहा, वह मैंने तो किया है। है

उसमें? याद नहीं? है। यह भगवान आत्मा इन पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न है। राग और ज्ञान दोनों भिन्न हैं—ऐसा कहा था न। लिखा है।

विकल्प और निर्विकल्प प्रभु भगवान—दो, वह राग और आत्मा—दोनों अत्यन्त भिन्न चीज़ है। ऐसा अन्तर में स्व का आश्रय लेकर जिसे गुण का उदय हुआ है। गुण का उदय। वह राग का उदय था अनादि से। अब गुण जिसे प्रगट हुए हैं। आहाहा! सम्यग्दर्शन में—आत्मा के अनुभव में गुण की दशा प्रगट होती है। समझ में आया? भारी महँगा! अभी बाहर से निवृत्त होने को समय नहीं मिलता। ऐ नटु! मुश्किल-मुश्किल से ऐसे दो दिन-चार दिन। धन्धा अभी-अभी अच्छा हो गया है। पौष महीने में, माघ महीने में शुरु हो जाये कपास-बपास, जीन। यह लोहे की दुकान की.... आहाहा! सीजन में कहाँ आवे? कौन आवे यहाँ? इसके ऊपर बहुत काम है तीनों के सिर पर। शरीर इसका अच्छा निरोगी, जुड़े दुकान के पाप में। आहाहा!

कहते हैं कि गुरु ने ऐसा कहा था कि उनकी कृपा में ऐसा आया था कि... 'प्रसाद' (शब्द) है न? आहाहा! **परमतत्त्व के श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठानस्वरूप...** परमतत्त्व ऐसा भगवान पूर्णानन्द सहजानन्द की मूर्ति प्रभु, ऐसा परमतत्त्व उसकी श्रद्धा-अन्तर्मुख आत्मा की श्रद्धा, निर्विकल्प अनुभव, ऐसा परमतत्त्व का ज्ञान... देखो! पर का, शास्त्र का ज्ञान निकाल दिया। आत्मा अन्दर है, उसका ज्ञान और उसका अनुष्ठान—स्वरूप में स्थिर होना / आचरण। स्वरूप में आनन्द में स्थिर होना, वह चारित्र। आहाहा! **शुद्ध-निश्चय-रत्नत्रयपरिणति द्वारा....** ऐसे शुद्धनिश्चय रत्नत्रय के द्वारा वह **निर्वाण को प्राप्त होता है...** वह (शुभरागवाला) सिंकता है और यह निर्वाण को पाता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? अपना आश्रय छोड़कर अकेली शुभक्रियायें करनेवाले कषाय के अंगारों से सिंकते हैं, कहते हैं। कब? भगवान आत्मा के आश्रय से चैतन्य की सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की क्रिया द्वारा, शुद्धनिश्चय परिणति—पर्याय द्वारा वह अत्यन्त शीतलीभूत निर्वाण को पाता है। आहाहा! समझ में आया?

जगत को पुण्य की मिठास ऐसी होती है। बाहर के संयोग—दो-पाँच करोड़ रुपये हों, लड़के अच्छे हों, इज्जत ठीक हो, शरीर ठीक हो। अंगारे हैं धूल के। आहाहा! उसकी जिसे मिठास है, उसे शुभभाव की मिठास पूरी पड़ी है। आहाहा! उसे आत्मा का

प्रेम नहीं। समझ में आया? ओहो! मुनि ने सुलटा डाला वापस। पाठ में तो यह ही है। '**आवासयलक्खणं ण हवे**' ऐसे जो शुभराग में वर्ते, उसे आवश्यक का स्वरूप नहीं है। तो फिर है किसे? ऐसा उसमें से निकाला। सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो धीर होकर अन्तर स्वरूप में जाना, उस विकल्प की क्रिया का भी निषेध करके मात्र भगवान आत्मा अन्तर्मुखतत्त्व में... अन्तर्मुखतत्त्व में अन्तर्मुखरूप से परिणति करना... आहाहा! वे जीव मुक्ति को पाते हैं। 'निर्वाण' शब्द प्रयोग किया है न। शान्ति... शान्ति... शान्ति... पूर्ण शान्ति। उसका संसार कषाय बुझ गया है। संसार का कषाय बुझ गया है, अकषायभाव पूर्ण हो गया है। निर्वाण... निर्वाण... निर्वाण... आहाहा! कहो, समझ में आया?

(कभी शुद्ध-निश्चयरत्नत्रयपरिणति को प्राप्त कर ले तो ही और तभी निर्वाण को प्राप्त करता है)। अर्थात् कि ऐसा सिंकते-सिंकते वह शुद्ध को पावे, शुभ करते-करते पावे—ऐसा नहीं है, ऐसा। कोई ऐसा ले लेवे कि इसमें सिंकता है, उसमें से आगे बढ़कर पा जायेगा। उससे नहीं। आत्मा महा अनन्त-अनन्त शान्ति का सागर है। जैसी महत्ता—महिमा इसने दूसरे को दी है उतनी महत्ता भासित नहीं होती। मैं अनन्त शान्ति का सागर हूँ, अभी। अनन्त आनन्द का समुद्र हूँ। ऐसी महिमा उसे भासित नहीं होती (इससे) उसकी महत्ता पर में जाती है। राग से या पुण्य से या फल से नष्ट हो गया, घात पाया हुआ... आ गया है न... **कलि से घाता गया...** आहाहा! कामान्धकारयुक्त संसारजनित सुख में रमते हैं, वे सब कलिकाल से दुःखी हुए हैं। आहाहा!

आनन्दधाम भगवान का आश्रय ले अन्तर्मुख जाकर, उसके भेंट करे, उसे निश्चय—सच्चे धर्मध्यान की परिणति प्रगट होती है, उसे मुक्ति मिलती है। समझ में आया? पहले समझण में तो ले कि मार्ग यह है। दूसरे मार्ग में मार्ग समाहित हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह टीका पसन्द नहीं करते कितने ही। शुभभाव है, उसमें इतना सब लम्बा-चौड़ा डाला बड़ा लम्बा। परन्तु पंचास्तिकाय में नहीं आता १७२ गाथा में? व्यवहाराभासवाले की यह सब बातें आती हैं। यह सब तोड़ डाला इसने। व्यवहाराभास का बहुत डाला है। आहाहा! बात तो सत्य-सत्य है। अपना भगवान, आहाहा! उसका जिसे अन्तर माहात्म्य आया नहीं, उसे एक समय की पर्याय से भी अधिक—भिन्न ऐसा माहात्म्य दिखता नहीं... आहाहा! समझ में आया?

अरे! केवलज्ञान की एक समय की पर्याय से भी अधिक अर्थात् भिन्न वह द्रव्य है। समझ में आया? ऐसे द्रव्य का माहात्म्य-महिमा—उसके गुणग्राम अर्थात् उसके ओर की एकाग्रता, वह अनन्त काल में इसने नहीं की। और उस एकाग्रता के बिना इसे धर्म का अंश भी जगता नहीं। आहाहा! समझ में आया? शुभभाव की बात थी, लो सब। '**जो चरदि संजदो खलु सुहभावे सो हवेइ अण्णवसो**' ऐसी क्रिया—शुभ में बसे, वह अन्यवश, परवश है। स्वप्न में उसे सुख नहीं। पराधीन, स्वप्न में सुख नहीं। ऐसी शुभराग की क्रिया वह पराधीन क्रिया है। आहाहा!

अब इस १४४ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:— लो!

त्यजतु सुरलोकादिक्लेशे रतिं मुनिपुङ्गवो,
भजतु परमानन्दं निर्वाण-कारणकारणम्।
सकल-विमल-ज्ञानावासं निरावरणात्मकं,
सहज-परमात्मानं दूरं नयानय-संहतेः॥२४५॥

आहाहा! **श्लोकार्थः मुनिवर देवलोकादि के क्लेश के प्रति रति छोड़ो...** आहाहा! 'शुभभाव की रति तजो' इसका अर्थ कि उसके फल की रति तजो। यह शुभभाव से, पुण्य से स्वर्ग मिलेगा। 'देवलोकादि' है न? सेठाई मिलेगी। धूल में भी नहीं, सुन न! पामर होकर प्रभु को भूल जाये। पूरा महाप्रभु चैतन्य आत्मद्रव्य स्वयं है, उसे पर्यायदृष्टि और राग की रुचि में भूल जाये, वह बड़ा अपराध है। समझ में आया? आहाहा! सेठिया आया हो बड़ा गृहस्थ और सामने न देखे, हो गया। उसे भान नहीं, कहे। हम सामने आये तो सामने देखता नहीं। चला जाये वह तो फिर, हो गया। यह भगवान तीन लोक का नाथ प्रगट—प्रत्यक्ष—प्रसिद्धरूप से पड़ा है अन्दर। समझ में आया? उसके सन्मुख न देखे, उसका काल चला जायेगा। राग की क्रिया में रुक जायेगा तो नहीं मिलेगा वह। समझ में आया?

अरे! **मुनिवर देवलोकादि...** 'आदि' शब्द है न। यह पैसेवाले अरबोंपति होते हैं न अभी बहुत। अपने बनिया में दो अरबोंपति हैं, कहा न। दुःखी। उसके प्रति रति तजो। उसका उत्साह छोड़ो, ऐसा कहते हैं। शुभभाव का उत्साह छोड़ो, ऐसा कहते हैं मूल

तो। बहुत सतत उत्साह में तत्पर है वहाँ। शुभभाव की क्रिया के (फल को) छोड़... छोड़... रति छोड़। उसके फल की रति छोड़, इसका अर्थ कि उसकी रति छोड़। क्योंकि उसके फलरूप से स्वर्ग मिलेगा। क्या तुझे चाहिए है? समझ में आया? दुःख मिलेगा। आहाहा! **और निर्वाण के कारण का कारण...** आहाहा! मोक्ष—आत्मा की परम सिद्धदशा का कारण निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र, उसका कारण आत्मा। स्व-आत्मा उसका कारण है। मोक्ष परमानन्द सिद्धदशा 'णमो सिद्धाणं' वह सिद्धदशा, वह मोक्ष, उसका कारण मोक्ष का मार्ग—निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञन-चारित्र (और) उसका कारण आत्मा। समझ में आया? त्रिलोक का नाथ परमात्मा स्वयं ही मोक्ष के कारण का कारण है। मूल कारण तो वह है।

ऐसा आत्मा महाप्रभु इतना बड़ा, वह कैसे बैठे? कभी नजर डाली नहीं, कभी उसकी ओर गया नहीं, उसकी गली में—रास्ते में गया नहीं कि यह क्या है? उसका ऐसा भगवान, कहते हैं कि सच्चे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का वह कारण है। आहाहा! वह किये बिना छुटकारा नहीं है। यह पैसे-बैसे में सुख नहीं कहीं तुझे। शिवलालभाई कमाये और भोगीभाई कमाये, लो। यह बड़ा होगा, फिर यह भी जुड़ेगा मजदूरी में। आहाहा! मजदूरिया है सब। नटु! क्या होगा? बराबर है? दुकान की मजदूरी करते हैं। यहाँ तो तीन लोक के नाथ परमात्मा कहते हैं कि हमारी भक्ति और हमारी पूजा और हमारा बहुमान, वह भी तेरी मजदूरी है, कहते हैं। आहाहा!

तेरा भगवान अन्दर स्थित है प्रभु! उसका बहुमान करके, सत्कार करके, आश्रय लेकर जो दर्शन-ज्ञान और चारित्र हो, वह मोक्ष का कारण और उस मोक्ष के कारण का कारण प्रभु तू है। उस सम्यग्दर्शन का कारण तू है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! सच्चे सम्यग्दर्शन का कारण तू और सच्चे सम्यग्ज्ञान का कारण तू और सच्चे चारित्र का कारण तू। आहाहा! ऐसी वस्तु है। ऐसा यह स्वरूप है। चन्द्रकान्त! जैन का ऐसा स्वरूप है। जैन अर्थात् कोई वाडा नहीं। यही धर्म है। दूसरा धर्म ऐसा हो सकता नहीं, तीन काल, तीन लोक में। यह जैन के वाड़ावालों को खबर नहीं तो अन्य को तो कहाँ थी बात? ऐसी वस्तु है न। आहाहा!

सच्चा सम्यग्दर्शन जो मोक्ष का अवयव—कारण का अवयव, उसका कारण तो

प्रभु स्वयं है। आहाहा! उसका कारण देव-गुरु-शास्त्र नहीं। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा भी समकित का कारण नहीं। यह पूर्व की पर्याय क्षयोपशम की इतनी उघड़ी हो, वह भी समकित का कारण नहीं। आहाहा! ऐ जयन्तीभाई! यह तो समझ में आये ऐसा है। भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु साक्षात् परमात्मतत्त्व स्वयं ही है, उस सम्यग्दर्शन का वह कारण है। उसका आश्रय लेने से सम्यक्त्व होता है। देव-गुरु के आश्रय से, व्यवहार विकल्प के आश्रय से निश्चय समकित होता नहीं। ऐसा कहते हैं, देखो! व्यवहार कारण और निश्चय कार्य, ऐसा भी नहीं लिया यहाँ तो। व्यवहार समकित कारण... 'कारण गणी प्रत्यक्ष' आता है न श्रीमद् में? 'स्वच्छंद मत आग्रह तजि, वर्ते सद्गुरु लक्ष, समकित तेने भाखीयुं, कारण गणी प्रत्यक्ष।' सब व्यवहार की बातें हैं।

ऐसा कि व्यवहारधर्म ... कारण प्रत्यक्ष भगवान है। परन्तु प्रत्यक्ष तो तू हो तब कहलाये कि यह है। यह है, ऐसा व्यवहार कब निश्चित हो? निश्चय में अन्तर स्वरूप में जा, भगवान का आश्रय ले—तेरे भगवान का आश्रय ले। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन का कारण तो तू स्वयं है, कहते हैं। वस्तु स्वयं है। ऐसे सम्यग्ज्ञान का कारण आत्मा वस्तु स्वयं है। देव-गुरु-शास्त्र, वह सम्यग्ज्ञान का कारण नहीं, ऐसा कहते हैं। उसमें आता है या नहीं उसमें? **निर्वाण के कारण का कारण...** देखो! नीचे। **निर्वाण का कारण परम शुद्धोपयोग है...** उस शुभोपयोग के सामने डाला है। **और परमशुद्ध उपयोग का कारण सहजपरमात्मा है।** आहाहा! सहजात्मस्वरूप निजात्मस्वरूप वह शुद्धोपयोग का कारण और शुद्धोपयोग, वह मोक्ष का कारण। उसमें ऐसा नहीं कहा कि शुद्धोपयोग का कारण व्यवहार। शुभराग, वह कारण और शुद्धोपयोग, वह कार्य। आहाहा!

जो कोई सन्त-मुनि, आत्मायें... इस पुण्य के भाव के प्रेम को छोड़ो और मोक्ष का मार्ग ऐसा जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र सच्चा, उसके कारण को भजो। आहाहा! वह परमात्मा स्वयं ही आत्मा है, उसका भजन करो अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान, वह उसका भजन है। आहाहा! तेरे परमात्मा को सम्हाले बिना तेरी परमात्मदशा प्रगट होगी नहीं। आहाहा! भगवान को देखेगा तब तक, वह सब वृत्तियाँ परसन्मुख हैं। उसमें कहीं मोक्ष का कारण नहीं। आहाहा! यहाँ तो व्यवहार को मोक्ष का कारण कहा ही नहीं, देखो! आहाहा! शुद्ध, वह तो शुद्ध-उपयोग है, वह तो स्व-आश्रय से हुई दशा है। वह कहीं

शुभ से या निमित्त के आश्रय से हुई दशा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? शुद्धोपयोग...

अरे! **निर्वाण के कारण का कारण...** मोक्ष का कारण मोक्ष का मार्ग और मोक्ष के मार्ग का कारण आत्मद्रव्य। पूर्णानन्द प्रभु स्वयं वह मोक्ष के कारण का कारण है। आहाहा! गजब बात करते हैं न! उसमें दूसरा कारण डालना नहीं। यह एक ही कारण है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **ऐसे सहजपरमात्मा को भजो...** ऐसा कहा न, लो, सहजात्मस्वरूप तेरा पूर्ण, उसका भजन कर, उसके सन्मुख देखकर उसमें स्थिर होना, वह उसका भजन है। कैसा है वह? **कि जो सहजपरमात्मा परमानन्दमय है,...** स्वाभाविक भगवान आत्मा तो परम आनन्द की मूर्ति है। **सर्वथा निर्मल ज्ञान का आवास है,...** आहाहा!

निरावरणस्वरूप है... भगवान स्वयं वस्तु है, वह निरावरणस्वरूप है। **तथा नय-अनय के समूह से (सुनयों तथा कुनयों के समूह से) दूर है।** विकल्प नहीं वहाँ। निश्चय ऐसा है और व्यवहार—ऐसे विकल्प वहाँ नहीं। ऐसा भगवान आत्मा—आत्मद्रव्य, उसे भजो। उसकी सन्मुखता हो, वह उसका भजन। उसकी विमुखता, वह उसकी अभक्ति। समझ में आया? उसे निर्वाण की प्राप्ति (होती है)। स्वद्रव्य का आश्रय करे, उसका मोक्ष का मार्ग (शुरु) होता है, मोक्षमार्ग हो, उसे मोक्ष होता है, दूसरे को मोक्ष नहीं होता।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल १४, सोमवार, दिनांक - ०१-११-१९७१
गाथा-१४५, प्रवचन-१६५

यह नियमसार सिद्धान्तशास्त्र है, निश्चय परम-आवश्यक (अधिकार), १४५ गाथा।

दव्वगुणपज्जयाणं चित्तं जो कुणइ सो वि अण्णवसो।
मोहंधयार-ववगय-समणा कहयंति एरिसयं॥१४५॥

जो जोड़ता चित द्रव्य-गुण-पर्याय-चिन्तन में अरे!
रे मोह-विरहित-श्रमण कहते अन्य के वश ही उसे॥१४५॥

टीका : यहाँ भी अन्यवश का स्वरूप कहा है। सूक्ष्म बात है विशेष। **भगवान अर्हत् के मुखारविन्द से निकले हुए (कहे गये)...** कहते हैं कि अन्दर में जो शुभभाव कहा—सामायिक, चोविसंथो, वन्दन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग इत्यादि का राग, वह कहीं धर्म नहीं। भाव जो विकल्प शुभराग हो—शुभोपयोग—दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, नामस्मरण, वह सब आचरण का भाव है, वह तो शुभराग है। वह निश्चय सत्यस्वरूप नहीं, वह धर्म नहीं, उससे धर्म होता नहीं। यहाँ तो विशेष बात अब अधिक ली है। भगवन्त—भगवान अरिहन्त के मुखारविन्द से... पहले तो यह सिद्ध किया। सर्वज्ञ परमात्मा तीर्थंकरदेव हैं। भगवान अर्हंत के मुखकमल से निकले हुए। **मूल और उत्तर पदार्थों का सार्थ (-अर्थसहित) प्रतिपादन करने में समर्थ...** क्या कहते हैं?

भगवान तीर्थंकर ने छह द्रव्य कहे—अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति और आकाश। यह भगवान के मुख से निकले हुए छह द्रव्य और उनके उत्तरभेद—उनके उत्तरभेद गुण... सामान्य छह, उनके अन्तर्भेद अनन्त और प्रत्येक के द्रव्य, गुण और पर्याय, भगवान तीर्थंकर ने देखा, वैसा कहा। उसमें जो द्रव्य-गुण-पर्याय को कहने में समर्थ... उसका कथन करने में—उपदेश देने में समर्थ **ऐसा जो कोई द्रव्यलिंगधारी (मुनि)...** जिसने नग्नपना धारण किया है और

ऐसे भगवान के मुख से कहे हुए छह द्रव्य सामान्यरूप से और अन्तर्भेद अनन्त है, उसे कहने में समर्थ है, वह भी **कभी छह द्रव्यों में चित्त लगाता है,...**

अन्यमत में कही हुई बात तो सच्ची नहीं, परन्तु सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहे हुए छह द्रव्य यहाँ लिये हैं। भगवान तीर्थंकरदेव के ज्ञान में तीन काल ज्ञात हुए, उसमें अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, ऐसे जातिरूप से छह संख्या और संख्यारूप से अनन्त ज्ञात हुए। ऐसा जानकर जो साधु हो द्रव्यलिंगी नग्न मुनि... ऐसे छह द्रव्य में चित्त को जोड़ता है, वह भी विकल्प है, राग है, वह बन्धन का कारण है। वह जीव परवश है। आहाहा! भगवान आत्मा पूर्णानन्द सहजानन्द मूर्ति आत्मा एकरूप अभेद की दृष्टि करता नहीं और ऐसे भगवान ने कहे हुए छह द्रव्य के विकल्प में और चिन्ता में रुका हुआ है, वह शुभभाववाला भी पराधीन है, वह दुःखी है। आहाहा! 'हे भगवान' कहकर... है या नहीं परन्तु अन्दर? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं... पहले तो ऐसा कहा था न कि जिनेन्द्र के वदन-अरविन्द में से निकले हुए परम-आचार शास्त्र... आचारशास्त्र के प्रमाण जो व्यवहार आचरण करता है, वह भी पराधीन, दुःखी है। आहाहा! ऐसा आया था न पहला? जिनेन्द्र के वदन—अरविन्द में से निकले हुए—त्रिलोकनाथ परमात्मा तीर्थंकरदेव के मुख से निकले हुए आचारशास्त्र... समझ में आया? उस आचारशास्त्र में भगवान ने जो व्यवहार कहा, ऐसे व्यवहार की क्रिया करे, वह भी पराधीन, परवश और दुःखी है। समझ में आया? यहाँ उससे आगे ले गये हैं कि भगवान अरिहन्त के मुखारविन्द—मुखरूपी कमल में से निकले हुए मूल पदार्थ छह द्रव्य (और) उत्तर अनन्त—ऐसे पदार्थों को अर्थ सहित प्रतिपादन करने में समर्थ साधु होते हैं, तथापि वह राग है पुण्य, वह परवश है—ऐसा यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया? बहुत कठिन।

वस्तु का स्वभाव ऐसा है कि लोगों को सुनने को मिला नहीं। लोग बाहर के क्रियाकाण्ड यह भक्ति, पूजा, व्रत, नियम और अपवास, आंबेल और ओळी—इन सब क्रिया में राग मन्द हो तो पुण्य हो, धर्म नहीं। उससे धर्म होगा, ऐसा भी नहीं। यहाँ तो इससे आगे जाकर परमात्मा ने कहे हुए छह द्रव्य, उसके एक-एक द्रव्य के अनन्त गुण

और एक-एक द्रव्य की अनन्त गुण की अनन्त पर्यायें, उन्हें कहने में भी कोई समर्थ साधु हो... ऐसी प्ररूपणा में समर्थ हो, वह कह सके, वह कभी छह द्रव्य में चित्त जोड़ता है। छह द्रव्य जो अनन्त हैं संख्या से और जाति से छह, उसमें चित्त को जोड़ता है, वह शुभराग है, वह अधर्म है। कठिन काम। आहाहा! वह शुभराग—छह द्रव्य का विकल्प उठे, छह द्रव्य की चिन्ता उठे कि यह छह द्रव्य ऐसे हैं... ऐसे हैं... ऐसे हैं। ऐसी प्ररूपणा में समर्थ है और मन को उसमें—छह द्रव्य में जोड़ता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

द्रव्यलिंगधारी... द्रव्यलिंग का अर्थ नग्न मुनि। समझ में आया? दिगम्बर मुनि नग्न हो, अट्ठाईस मूलगुण पालता हो, तथापि वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! क्योंकि वह अट्ठाईस मूलगुण विकल्प है—राग है और राग की एकताबुद्धि, वह मिथ्यात्व है। आहाहा! इससे आगे जाकर कहते हैं कि नग्न मुनि इतना विद्वान है कि भगवान के कहे हुए मूल पदार्थ और उनके अन्तर्भेदों को कहने में समर्थ है वाणी द्वारा और मन को उन छह द्रव्यों में जोड़ता है। पण्डितजी! तो भी कहते हैं, वह अधर्म है। गजब बात है! यह शुभचिन्ता है, राग है। ऐ सुमनभाई! सुमन का मन को जोड़ना छह द्रव्यों में, तो भी कहते हैं, राग है। मार्ग कोई ऐसा है। **छह द्रव्यों में चित्त लगाता है,...** तो भी वह राग-विकल्प है। शुभराग है, वह धर्म नहीं और छह द्रव्य में मन को जोड़ना, वह धर्म का कारण भी नहीं। आहाहा!

छह द्रव्य में अरिहन्त का आत्मा भी आ गया, गुरु का आत्मा आ गया। समझ में आया? उन दूसरे छह द्रव्यों में चित्त को जोड़ता है, कहते हैं, वह तो विकल्प है, राग है, वह धर्म नहीं, तथा धर्म का कारण भी नहीं। आहाहा! गजब बात है। राग है न! विकल्प है, वृत्ति उठती है। मार्ग तो ऐसा है, भाई! वीतराग मार्ग है न! सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा वह मार्ग! वह मार्ग कोई अलौकिक है। दुनिया को बाहर से मिली है शिक्षा। अन्दर की बात क्या है, इसकी उसे खबर नहीं। जैन के नाम से—'जैनधर्म ऐसा है' ऐसा कहकर—परोसा है। आहाहा! समझ में आया?

कभी उनके मूर्त-अमूर्त चेतन-अचेतन गुणों में मन लगाता है... भगवान ने

मुखारविन्द से कहे हुए, हों! सर्वज्ञ ने कहे हुए ऐसे छह द्रव्य उसमें कितने ही मूर्त और कितने ही अमूर्त, ऐसे विचार-चिन्ता को जोड़ता है। परमाणु, वह मूर्त है और उसके अतिरिक्त पाँच अमूर्त है। परन्तु वह सब उसके साथ विचार में मन को जोड़ना, वह राग है। **चेतन-अचेतन गुणों...** मूर्त-अमूर्त गुण और चेतन-अचेतन गुण। परमाणु मूर्त है, उसके गुण मूर्त हैं। चेतन आत्मा... अचेतन धर्मास्ति आदि, अचेतन के गुण भी अचेतन हैं। आत्मा चेतन है, उसके गुण चेतन हैं, अमूर्त हैं, उसमें जो मन को जोड़े... वह भेद पाड़कर जोड़ते हैं न! आहाहा! समझ में आया? वह जीव परवश है, वह राग के आधीन हो गया है। भगवान आनन्दमूर्ति प्रभु निष्क्रिय अभेद चैतन्य के आधीन नहीं होता। आहाहा! कठिन बात! शान्तिभाई! ऐसा... स्वरूप?

अभी इसके छह द्रव्य के नाम के और भाव का भी ठिकाना न हो। यह तो छह द्रव्य बराबर जाने, उनके गुण जाने, मूर्त के मूर्त गुण और अरूपी के अरूपी गुण, ऐसा जाने, उसका विचार करे अन्दर में। वह भी शुभविकल्प है, राग है, चिन्ता है, वह संसार है तब तक। भीखाभाई! गजब बात! पूरी दुनिया से दूसरी बात है, इसलिए लोग बातें करे। यह क्या? यह क्या? और... 'कभी-कभी' कहा है न? विकल्प में है न, इसलिए कभी यहाँ जोड़े और कभी यहाँ जोड़े, ऐसा। **और फिर कभी उनकी अर्थपर्यायों...** वस्तु है, उसके गुण हैं, जो प्रदेशत्वगुण के अतिरिक्त के, उन सब गुणों की पर्यायें, वह अर्थपर्याय कही जाती है। समझ में आया? जैसे आत्मा के ज्ञान-दर्शन-आनन्दगुण—शक्तियाँ त्रिकाली, उसकी अवस्था, वह अर्थपर्याय कहलाती है। परमाणु, यह रजकण—पॉईन्ट का वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श गुण की पर्याय, वह अर्थपर्याय कहलाती है। उसके अन्दर विचार में रुके, मन को जोड़े।

तथा व्यंजनपर्यायों में बुद्धि लगाता है... आकृति। आत्मा के प्रदेश की आकृति ऐसी होती है, धर्मास्ति की ऐसी होती है, परमाणु की ऐसी आकृति होती है। प्रदेशत्वगुण की आकृति—वस्तु का आकार—वस्तु का प्रदेशत्वगुण से हुआ आकार, उसमें बुद्धि जोड़ता है। वह शुभराग में है और उस शुभराग में एकत्वबुद्धि है, वह मिथ्यादृष्टि है। भारी कठिन काम।

मुमुक्षु : इतनी बुद्धिवाला जीव है, वह स्वभाव-सन्मुख क्यों नहीं झुकता और.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दरकार नहीं। उस भेद पर लक्ष्य है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? 'ऐसे भेद विचारुं तो लाभ होगा' ऐसी उसकी बुद्धि है उसमें।

यह तो तीर्थंकर का मूल मार्ग है। यह मार्ग लोगों ने सुना नहीं। वे कहें कि छह काय की दया पालो, दूसरे कहे कि व्रत पालो, तीसरा कहे कि अपवास करो, चौथा कहे कि यात्रा करो। उसकी बात तो निकाल दी पहले। यह सब विकल्प और राग है, वह कहीं धर्म है नहीं। परन्तु यहाँ तो भगवान ने कहे हुए छह द्रव्य, उनके अनन्त गुण, उनकी अनन्त वर्तमान दशा—हालत—पर्यायें, अर्थपर्याय और व्यंजनपर्याय... प्रदेशत्वगुण के अतिरिक्त सब गुणों की दशा को अर्थपर्याय कहते हैं। प्रदेशत्वगुण की पर्याय को आकृति और व्यंजनपर्याय कहते हैं। जैनसिद्धान्त प्रवेशिका में आता है। आती है न जैनसिद्धान्त प्रवेशिका?

उसके विकल्प में जुड़े, परन्तु भगवान आत्मा **त्रिकाल निरावरण...** प्रभु आत्मा है... त्रिकाल निरावरण चैतन्यसत्ता आनन्दकन्द प्रभु। द्रव्य अर्थात् वस्तु, त्रिकाल निरावरण—जिसमें आवरण ही नहीं। **नित्यानन्द जिसका लक्षण है,...** नित्य-आनन्द जिसका स्वरूप है। भगवान आत्मा त्रिकाली वस्तु स्वयं निरावरण है। वह तो पर्याय में राग का निमित्त है, उसे आवरण का निमित्त कहा जाता है। वस्तु को आवरण है नहीं। वस्तु अर्थात् त्रिकाली सत्... सत्... चिदानन्दमूर्ति ऐसा जो नित्यानन्द जिसका लक्षण और त्रिकाल ऐसा निरावरण तत्त्व, **ऐसे निजकारण-समयसार के स्वरूप में...** ऐसा जो निज कारणसमयसार... आहाहा!

ध्रुव... नित्यानन्द अर्थात् ध्रुव आनन्द, ऐसा एकरूप त्रिकाल निज कारणसमयसार, निज कारणपरमात्मा के स्वरूप में **लीन सहजज्ञानादि शुद्धगुणपर्यायों के आधारभूत...** निज कारणसमयसार के स्वरूप में लीन क्या? सहज ज्ञानादि शुद्धगुणपर्यायें। ऐसा जो आधारभूत **निज आत्मतत्त्व में कभी भी चित्त नहीं लगाता,...** नित्यानन्द प्रभु ऐसा जिसका त्रिकाल एकरूप है, उसमें जो मन को जोड़ता नहीं, वह अन्यवश है, पराधीन है। इन भगवान को लक्ष्य में लेकर ध्यान करे तो भी परवश है। आहाहा! कठिन काम, भाई! साधारण लोगों ने तो न सुना हो, उन्हें ग्रीक-लेटिन (अटपटा) जैसा लगे। ऐसा

मार्ग होगा वीतराग का? शिवलालभाई! प्रौषध और प्रतिक्रमण कितने किये हों, लो! अब उसे कहे कि तुम्हारा सब शुभराग था, उसमें धर्म माना तो मिथ्यात्व था।

यहाँ तो छह द्रव्य वीतराग ने कहे हुए, उसके मूर्त-अमूर्त के गुण और मूर्त-अमूर्त के भाव और चेतन-अचेतन जाति, उसकी पर्यायें अर्थपर्यायें और (व्यंजनपर्याय)— ऐसे छह बोल लिये न! मूर्त-अमूर्त, चेतन-अचेतन गुण और अर्थपर्याय-व्यंजनपर्याय छह प्रकार लिये। उसके जो अन्दर विचार में रुकता है, कहते हैं, वह राग है, दुःख है। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा! भगवान अपना निज आत्मा ध्रुव नित्यानन्द एकरूप निरावरणस्वरूप में एकाग्र नहीं होता, उसमें दृष्टि नहीं देता, तब तक उसे धर्म नहीं होता। समझ में आया?

मुमुक्षु : कठिनाई आती होगी इसे?

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिनाईयाँ वहाँ कहाँ? इसे ठीक पड़ जाता है भेद में। अभ्यास नहीं अनादि का।

पहले स्त्री-पुत्र के निमित्त में था, फिर देव-गुरु-शास्त्र के निमित्त में आया, निमित्त बदला परन्तु वस्तु बदलती नहीं। वहाँ चिपका वापस। स्त्री-पुत्र, धन्धे में था, तो अशुभराग था निमित्त में। यहाँ देव-गुरु-शास्त्र को चिपट तब शुभराग था। निमित्त पलटा, वस्तु पलटाई नहीं इसने। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! सूक्ष्म बात, हों! अरे! दुनिया को ऐसा मनुष्यभव मिला और उसमें जिनेन्द्रदेव के सम्प्रदाय के वाडा में जन्म, परन्तु उसे ऐसा जिनेन्द्र का वास्तविक तत्त्व सुनने को मिले नहीं, आहाहा! जिन्दगी व्यर्थ जाये सब। यह साधु हुआ, पंच महाव्रत पालता हो, नग्न मुनि हो। दूसरे को तो यहाँ गिना नहीं—द्रव्यलिंगी भी नहीं गिना। आहाहा! आहाहा! अट्ठाईस मूलगुण पाले, महाव्रत पाले, समिति-गुप्ति—सब शुभराग है, वह तो क्रिया का राग है। आहाहा! भगवान... भगवान...

इसके अतिरिक्त यहाँ तो छह द्रव्य के गुण-पर्याय के विचार में रुक जाता है, कहते हैं, वह राग है, वह चिन्ता है, वह दुःख में खड़ा है, वह दुःखी है। अरे! गजब व्याख्या की है! परन्तु भगवान आत्मा सहजानन्द प्रभु, अनन्त आनन्द आदि गुणों के भेद

का आधारतत्त्व एकरूप अभेद चैतन्यस्वरूप, अन्तर्मुखस्वरूप ऐसे चैतन्यद्रव्य में दृष्टि देता नहीं, चित्त को वहाँ जोड़ता नहीं, वह सब अधर्मी, अज्ञानी, परवश और दुःखी हैं। कहो, समझ में आया? **निज कारणसमयसार के स्वरूप में लीन...** है... क्या? अनन्त गुण और पर्यायें अभेद हैं। उनका आधारभूत भगवान आत्मा एकरूप अभेद चैतन्यद्रव्य, ऐसा निज आत्मतत्त्व... ऐसा अपना—निज आत्मतत्त्व—वस्तु में चित्त को कभी भी जोड़ता नहीं। इस ओर झुकता ही नहीं, यहाँ (राग में) ही ढला करता है।

उस तपोधन को भी उस कारण से ही (अर्थात् पर विकल्पों के वश होने के कारण से ही) अन्यवश कहा गया है। नग्न मुनि दिगम्बर हजारों रानियाँ छोड़कर बैठा हो, पंच महाव्रत के विकल्प में रुक गया हो, जंगल में बसता हो, महीने-महीने के अपवास में जुड़ गया हो... आहाहा! समझ में आया? परन्तु वह सब विकल्प की दशा में रहा हुआ है, वह राग की दशा में है, वह धर्म की दशा में नहीं। आहाहा! समझ में आया? वह विकल्प की वृत्ति रहित चीज़ जो है त्रिकाल निरावरण भगवान आत्मा निजतत्त्व आत्मस्वरूप ध्रुव अभेद, उसमें दृष्टि देता नहीं, वे सब पराधीन दुःखी जीव चार गति में भटकनेवाले हैं। समझ में आया? कहो, इसमें समझ में आता है या नहीं? ऐ दामोदरभाई! ऐसा सूक्ष्म है। आहाहा! वह पराधीन है। फिर यह व्यापार-धन्धे के भाव की बात तो क्या करना? ऐ नटु! यह नटु वहाँ दुकान में होशियार गिना जाता है। कहो, समझ में आया? आहाहा!

अरे भगवान! यह सब अशुभराग की बातें तो कहीं गयी, परन्तु यहाँ तो पंच महाव्रत और शुभ-अनुष्ठान और महीने-महीने के अपवास, छह-छह महीने के अपवास—वह भी एक मन्द राग की क्रिया है, वह आत्मा की क्रिया नहीं। आत्मा की क्रिया तो उस विकल्प से रहित त्रिकाल भगवान आत्मा में अन्तरस्वरूप में नित्यानन्द में निर्विकल्प दृष्टि से एकाग्र होना, उसका नाम धर्म है। आहाहा! कहो, सुमनभाई! भारी कठिन! '**वह तपोधन**' कहा वापस। छह द्रव्य के विकल्प में ही रुकता है, दूसरी कोई दुनिया की उसे पड़ी नहीं। जंगल में रहनेवाला हो मुनि। जैन के साधु द्रव्यलिंगी भी जंगल में ही रहते थे। मार्ग तो यही था व्यवहार से भी। वह तो और देव-गुरु-शास्त्र कहा, वह तो विचार में बदलाये... है। वह पाप के विचार थे, यह पुण्य के विचार हैं। समझ में आया?

अरे! अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु... इससे नित्यानन्द कहा न? भगवान आत्मा में तो नित्य अतीन्द्रिय आनन्द ही भरा है। जिस आनन्द के एक समय के स्वाद के समक्ष इन्द्र के इन्द्रासन भी सड़े हुए तिनके जैसे दिखाई दें, ऐसा नित्यानन्द भगवान आत्मा है। परन्तु इसे कहाँ खबर नहीं होती, सुनने को न मिले कि मैं इतना हूँ। समझ में आया? इसलिए शब्द ऐसा प्रयोग किया है न, 'नित्यानन्द' कहा न? **त्रिकाल-निरावरण, नित्यानन्द जिसका...** स्वरूप है... वह ध्रुव नित्यानन्द अविनाशी आनन्द से भरपूर तत्त्व है, उसे यहाँ त्रिकाली आत्मा कहा जाता है। वह त्रिकाली आत्मा जो निज कारणस्वरूप, उसमें झुकाव करता नहीं, वर्तमान पर्याय को वहाँ झुकाता नहीं और वह पर्याय राग के विकल्प में रही हुई है, भगवान ने कहे हुए ज्ञान के जानपने में—भेद में रुका हुआ है। आहाहा!

यह बहियों का ज्ञान न, सुमनभाई! तुम्हारा तेल का ज्ञान—वह (ज्ञान) नहीं। क्या रह गया? कहते हैं। यह संसार के पुस्तकों का तुम्हारे क्या था उसका? ऑडिटर। यह ऑडिटर का जानना, वह तो पाप का विकल्प है, परन्तु यह तो छह द्रव्य और उसके गुण और रूपी-अरूपी और मूर्त-अमूर्त, चेतन-अचेतन की जाति का विचार रखे... आहाहा! समझ में आया? उसकी ऐसी पर्याय होती है, उसकी पर्याय ऐसी होती है। आहाहा! गजब बात, है! कहते हैं कि वह भी एक विकल्प की—राग की जाति है। वह परवश है, पराधीन, स्वप्न में सुख नहीं। ऐसे विचारवाला पराधीन, उसे स्वप्न में आत्मा का सुख नहीं। आहाहा! समझ में आया?

पाठ में है न, देखो! '**दव्वगुणपज्जयाणं चित्तं जो कुणइ सो वि अण्णवसो' उस तपोधन को...** इतना उसे शुभभाव है। व्यवहार से मुनि कहलाता है, परमार्थ से तो अज्ञानी है। आहाहा! गजब बात है! लाखों शास्त्र बनावे, पुस्तक बनावे, वह सब विकल्प है, राग है, वह कहीं धर्म है नहीं। आहाहा! मन्दिर करोड़ों बनावे। बनावे तो कहाँ से? बने, उसमें उसका शुभभाव हो कदाचित्। आता है न तुम्हारे वह क्या राजा? सम्प्रति राजा। करोड़ों बिम्ब भराये। हराम उससे धर्म होता हो तो, ऐसा कहते हैं। वह तो परवस्तु है। उसमें भाव हो तो शुभ हो, पुण्य का हो, राग है। वह पराधीन, दुःखी है

वह। दुनिया तो ऐसा कहे, आहाहा... इतने बिम्ब भराये, उसका ऐसा भराया। ऐसा उसका किया। अरे भगवान! कल्याण कोई दूसरे मार्ग से है, भाई!

ऐसा भगवान आत्मा का जो त्रिकाली स्वरूप, उसमें ज्ञान को जोड़ता नहीं, ऐसे त्रिकाली में अपनी वर्तमान पर्याय को एकत्व करता नहीं और ऐसे विकल्प में रुका हुआ है, इस कारण से तपोधन को भी, ऐसा। ऐसा त्यागी और ऐसा आचरण बाह्य में हो, ऐसा (होने) पर भी अन्यवश कहा गया है। पर विकल्प के वश होता होने से... आहाहा! पण्डितजी! गजब ऐसा। अन्यवश अेव। 'प्रभु का मारग है शूरों का, कायर का नहीं काम...' अन्यमति में कहते हैं, नहीं? 'हरि का मारग है शूरों का...' हरि अर्थात् आत्मा, हों! पाप के-पुण्य के ओघ को हरे, वह हरि, ऐसा यह भगवान आत्मा स्वयं। 'हरि का मारग है शूरों का, कायर का नहीं काम।' हींजड़ा जैसे—पावैया जैसे शुभराग को रचनेवाले और शुभराग मेरा है, (ऐसा) माननेवाले तो नपुंसक हैं। जेठाभाई! आयेगा, अभी तीसरे भाग में आयेगा। शुभराग को रचे और स्वभाव को भूल गया है, वह नपुंसक है, हींजड़ा है, पावैया है, उसे आत्मा के स्वभाव की खबर नहीं। आहाहा! और उस शुभभाव को अपना माने, वह तो नपुंसक में नपुंसक है। समझ में आया?

उसे **अन्यवश कहा गया है।** ऐसा कहा। अर्थात्? त्रिलोकनाथ परमात्मा ने—अरिहन्तदेव ने उसे परवश कहा है। समझ में आया? पहले समझण में तो सच्ची बात ले कि यह चीज़ क्या है? यह तो तीर्थंकर—अनन्त तीर्थंकरों का यह मार्ग है। यह कहीं कायर का—ऐरे-गैरे का मार्ग नहीं है, यह कोई कल्पित मार्ग नहीं है। यह तो शाश्वत् परमात्मा त्रिलोकनाथ... तीनों काल में तीन लोक के जाननेवाले जगत में न हो, ऐसा नहीं होता। जब से तीन काल है, तब से तीन काल के जाननेवाले तीर्थंकर भी अनादि से हैं। समझ में आया? वे तीर्थंकर ऐसा कहते थे, ऐसा कहते हैं अथवा महाश्रमण श्रुतकेवली ऐसा कहते थे। श्रुतकेवली की व्याख्या ली है। **अन्यवश कहा गया है।** आहाहा! जो अपने नित्यानन्द स्वभाव का अनादर करके उसे विकल्प में रुका है, वही पराधीन दुःखी प्राणी है, संसारी प्राणी है। भले नग्न मुनि द्रव्यलिंग में बराबर निरतिचार महाव्रत पालता हो तो भी वह संसारी है। आहाहा!

ऐसा कौन कहते थे? ऐसा किसने कहा? **जिन्होंने दर्शनमोहनीय और**

चारित्रमोहनीय कर्मरूपी तिमिरसमूह का नाश किया है... आहाहा! सम्यग्दर्शन जिसे प्रगट हुआ है (और) दर्शनमोह का नाश हुआ है, चारित्रमोह का नाश होकर जिसे चारित्र—वीतरागदशा प्रगट हुई है **और परमात्मतत्त्व की भावना से उत्पन्न...** आहाहा! यह तो व्यय से बात की कि नाश किया अहंकार को। परन्तु परमात्मतत्त्व भगवान निजस्वरूप परमात्मा की—तत्त्व की भावना (अर्थात्) अन्तर की एकाग्रता... देखो! उससे **उत्पन्न वीतरागसुखामृत के पान में जो उन्मुख (तत्पर) हैं,...** लो, यह उन्मुख। उन्मुख का अर्थ 'तत्पर' किया। उन्मुख आता है न दर्शन-उपयोग में? दर्शन-उपयोग में आता है तत्त्वार्थसूत्र में। स्वसन्मुख को उन्मुख कहा है।

ऐसा किसने कहा है? कि कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि हम नहीं कहते, परन्तु अनन्त श्रुतकेवलियों ने ऐसा कहा है। महाश्रमण, जिन्हें सम्यग्दर्शन से अज्ञान का नाश हुआ है, चारित्र से जिन्हें चारित्रमोह का नाश हुआ है और परमातत्त्व भगवान आत्मा ध्रुवतत्त्व, अभेदतत्त्व एक स्वभावी अपना भगवान आत्मा, उसकी भावना... देखो! यह भावना अर्थात् विकार और विकल्प की (भावना) नहीं। ऐसे स्वभाव में एकाग्र होकर उससे उत्पन्न हुआ क्या? **वीतराग सुखामृत...** वीतरागी आनन्द के अमृत के पान में वह लीन है। आहाहा! तत्पर है। वीतराग के शासन के महाश्रमण, सन्त, वे तो वीतरागभाव में प्रगट हुए, वे तो अपने वीतराग सुखामृत के पान में जो तत्पर हैं। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का जिन्हें उछाला आया है अन्दर से। मुनि है, श्रुतकेवली है, छद्मस्थ है। समझ में आया?

परमात्मतत्त्व की भावना से उत्पन्न... वह छह द्रव्य का विकल्प है, वह तो राग है, दुःख है, ऐसा कहते हैं। उसमें एकाग्र होता था। यहाँ परमात्मतत्त्व अपना निजस्वरूप, उसमें एकाग्रता से जो दशा उत्पन्न हुई वीतराग सुखामृत—वीतरागी अकषाय आनन्द अमृत का पान, वह अमृत के पेय पीते हैं वे। आहाहा! समझ में आया? **ऐसे श्रमण वास्तव में महाश्रमण हैं;...** ऐसे को महाश्रमण और श्रमण कहा जाता है। आहाहा! वे **परम श्रुतकेवली हैं;...** ऐसे आत्मा को महाश्रमण कहते हैं, साधु कहते हैं और वे परमश्रुतकेवली हैं। **वे वास्तव में अन्यवश का ऐसा (उपरोक्तानुसार) स्वरूप कहते**

हैं। लो, ऐसे श्रुतकेवली, मुनि—सच्चे सन्त (कि जो) वीतराग परमानन्द के अमृत के पेय में लीन—तत्पर हैं, वे वास्तव में अन्यवश का ऐसा स्वरूप कहते हैं।

छह द्रव्य, उनके गुण मूर्त-अमूर्त, चेतन-अचेतन, अर्थपर्याय-(व्यंजनपर्याय), उसमें रुका है, वह परवश है, अन्यवश है, दुःखी है—इस प्रकार ऐसे श्रुतकेवली महाश्रमण कहते हैं। समझ में आया? अरे, गजब बातें, भाई! बहुतों को तो ऐसा हो जाये, अभी तक ऐसे कितने प्रौषध किये, कितने प्रतिक्रमण किये सवेरे-शाम, बारह महीने में कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा और चैत्र शुक्ल पूर्णिमा की दो यात्रा कभी छोड़े नहीं शत्रुंजय की और कितने उपधान किये हों। कितने दिन के? ४५-४५ दिन के। तीन बार। तुमने किये हैं? इन्होंने तीन बार किये हैं, लो! योगफल वह राग में परवश है। वहाँ कहाँ धर्म था? समझ में आया? आहाहा! ऐसा महाश्रमण श्रुतकेवली कहते हैं। है न भाषा कैसी है!

ऐसे श्रमण वास्तव में महाश्रमण... बाकी द्रव्यलिंगी यह द्रव्य-गुण-पर्याय के विचार, विकल्पों में रुकनेवाले, वे पराधीन, दुःखी हैं—ऐसा भगवान कहते हैं, ऐसा श्रुतकेवली महामुनि कहते हैं। ऐसी वीतराग की वाणी—त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव का ऐसा कथन अन्यत्र कहीं होता नहीं। समझ में आया? आहाहा! उनके सम्प्रदाय में जन्मे, उन्हें ऐसा सुनने को मिलता नहीं, वे बेचारे धर्म का क्या स्वरूप है, वह कब जाने और कब दरकार हो। आहाहा! समझ में आया? ऐसे छह द्रव्य भगवान ने कहे हुए, उसके विचार में रुके, उनके गुणों आदि के विचार में रुके, वह पराधीन है अर्थात् दुःखी है। वह राग में रुकता है, वह आत्मा में आया नहीं, ऐसा परम श्रमण—श्रुतकेवलियों के कथन हैं। कोई साधारण ऐरे-गैरे ने बात की है, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अरे! इसे अभी श्रद्धा की—व्यवहार की खबर नहीं होती। समझ में आया?

वे वास्तव में अन्यवश का ऐसा (उपरोक्तानुसार) स्वरूप कहते हैं। द्रव्य-गुण-पर्याय, वह जैनदर्शन में ही होता है, अन्यत्र होता नहीं। पर्याय किसे कहना, द्रव्य-गुण-पर्याय? वह जैन में जन्मे, उसे द्रव्य-गुण-पर्याय किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती कि जैनदर्शन की जगत की चीज़ है। एक किसी ने पूछा साधु को, यह तुम्हारा साधुपना वह क्या? चारित्र, वह क्या कहलाता है? द्रव्य कहलाता है? गुण कहलाता है? त्रस कहलाता है या स्थावर कहलाता है? दो में से एक कहे तो भी खोटा था। कहा,

यह तुम्हारा साधुपना तुम नाम देते हो कि यह सामायिक... सामायिक करते हैं न, वह सामायिक और साधुपना, वह त्रस कहलाता है या स्थावर कहलाता है ? परन्तु हमारे गुरु ने हमको समझाया नहीं।

यह तो बहुत वर्ष की बात है। (संवत्) १९७६। हमारे गुरु ने समझाया नहीं। ऐ! अभी त्रस और स्थावर की खबर नहीं तुझे ? मूल बात है, वह पूरी विस्मृत हो गयी है। जैन के वाड़ा में भी खाली (उपयोगहीन) कुँआ जैसे हो गये हैं सब। खाली कुँआ समझ में आता है ? नहीं समझे ? वह कुँआ होता है न कुँआ ? पानी खींचे और प्रयोग करे, उस बिना के पड़े हों खाली, उसे खाली कुँआ कहते हैं। हमारी काठियावाड़ी भाषा है। खाली पड़ा हो, पानी हो अन्दर, परन्तु निकाले और खींचे (नहीं)। ऐसी की ऐसी काई, पानी के ऊपर कूचा पड़े हों। कोई (पानी) भरने आवे नहीं, कोई पानी निकाले नहीं, कोई उलेचे नहीं। श्रीमद् ने कहा है। अभी जैन में खाली कुँआ जैसा हो पड़ा है। यह श्रीमद् ने कहा है। आहाहा! ऐसा मार्ग, बापू! अलौकिक है, भाई!

कहते हैं कि ऐसे सब शुभाचरण की क्रिया तो भिन्न रहो, वह तो परवश है ही, परन्तु ऐसे ज्ञान के विचारों के भेद में—द्रव्य-गुण-पर्याय के भेद में विकल्प से रुक जाना, वह भी पराधीन और दुःखरूप दशा है। उसमें आत्मा के आनन्द का एक अंश भी नहीं होता। आहाहा!

मुमुक्षु : श्वेताम्बर शास्त्र में द्रव्य-गुण-पर्याय की बात ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : है, परन्तु वह विशेष नहीं, थोड़ी साधारण है। २८वाँ अध्ययन। हम उसमें से निकालते थे। २८वाँ अध्ययन वाँचते थे व्याख्यान में। मोक्षमार्ग का अध्ययन... थोड़ा-थोड़ा कण्ठस्थ... उत्तराध्ययन का २८वाँ अध्ययन मोक्षमार्ग अध्ययन है। हमने तो सब पढ़ा हुआ है न व्याख्यान में। बोटाद (संवत्) १९८० के वर्ष। कितने वर्ष हुए ? ४८ हुए। वह पढ़ा था। समयसार का पढ़ा हुआ। समयसार के (नाम से) नहीं लिया जा सकता, इसलिए २८वाँ अध्ययन का नाम लेकर कहते थे। समझ में आया ?

उसमें आता है, २८वें अध्ययन में द्रव्य-गुण-पर्याय। परन्तु कौन यह विचारता है ? ठाणांग में दूसरे ठाणे आता है। द्रव्य-गुण-पर्याय का अज्ञान, वह मिथ्यात्व है।

परन्तु वह तो किसकी चीज़... क्रियाकाण्ड में... वह क्रियाकाण्ड भी साधारण बिना ठिकाने का। यह २८ मूलगुण नग्न मुनि के होते हैं, वे कहाँ हैं अभी?

मुमुक्षु : बिल्कुल नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं। यह तो वस्तु का स्वरूप ऐसा है। उसके हित के मार्ग की उसे खबर नहीं। अरे! ... ऐसा अवतार। मुश्किल से अनन्त काल में निगोद में से, एकेन्द्रिय में से निकलकर मनुष्य में आया है। अरे! मनुष्य में तो भव के अभाव की क्रिया करने की वह वस्तु है। उसकी उसे खबर नहीं होती।

श्रीमद् ने कहा है। 'तो भी अरे भवचक्र का फेरा न एक कभी टला।' ऐसा मनुष्यपना मिला तुझे, भाई! 'बहु पुण्यपुंज प्रसंग से शुभ देह मानव का मिला, तो भी अरे भवचक्र का फेरा न एक कभी टला।' बापू! भवचक्र न टले, तब तक तेरा क्या किया तूने? यह सब पैसेवाले सेठिया, वे बेचारे दुःखी हैं। वीरचन्दभाई! बेचारे दुःखी हैं, हों! परन्तु यह तो जो धर्म के नाम से सामायिक, प्रौषध, प्रतिक्रमण और अपवास करते हैं बेचार, वे दुःखी हैं। उन्हें स्वाधीन क्या और पराधीन क्या, इसका कुछ भान नहीं। आहाहा! ऐसे छह द्रव्य के गुण और मूर्त-अमूर्त के विचार में अभेद... अन्तर भगवान आत्मा वह अभेदस्वरूप नित्यानन्द है, उसकी ओर के झुकाव बिना ऐसे झुकाव में रुकना उसे परवश, महासन्त—वीतरागी मुनि—श्रुतकेवली अर्थात् श्रुत में पूरे ऐसे केवली उसे परवश कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

इसी प्रकार (अन्यत्र श्लोक द्वारा) कहा है कि:— आधार देते हैं।

आत्मकार्यं परित्यज्य दृष्टादृष्टविरुद्धया।
यतीनां ब्रह्मनिष्ठानां किं तया परिचिन्तया॥

अरेरे! **श्लोकार्थः आत्मकार्य को छोड़कर...** अपना भगवान आत्मा नित्यानन्द में एकाग्र होना, वह आत्मा का कार्य है। पर के कार्य कर सके, वह तो नहीं, परन्तु रागादि दया, दान के विकल्प का कार्य, वह भी जीव का—आत्मा का नहीं है। अज्ञानी उसे अपना कार्य मानता है। समझ में आया? **आत्मकार्य को छोड़कर...** सहजानन्दमूर्ति प्रभु के ओर की एकाग्रता, वीतरागी पर्याय, वह आत्मा का कार्य। पंच महाव्रत के विकल्प,

वह भी आत्मा का कार्य नहीं। आहाहा! नये लोगों को तो ऐसा लगे कि यह ऐसा कहाँ से निकाला? ऐसा मार्ग है? अरे भगवान! अनादि का मार्ग है, बापू! तीर्थंकर अनन्त काल से होते आये हैं और अभी भी विराजमान हैं, उन सब तीर्थंकरों का यही कथन है। समझ में आया? उनके नाम से दूसरा चलावे, इसलिए दूसरा हो जाये सत्य? आहाहा!

भगवान सच्चिदानन्द प्रभु सत् अर्थात् शाश्वत्, ज्ञान और आनन्द की खान आत्मा। उसके सन्मुख होकर एकाग्र होना, वह आत्मा का कार्य है। वह निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति, वह आत्मा का कार्य है। समझ में आया? अरेरे! **आत्मकार्य को छोड़कर दृष्ट तथा अदृष्ट से विरुद्ध ऐसी उस चिन्ता से (-प्रत्यक्ष तथा परोक्ष से विरुद्ध ऐसे विकल्पों से) ब्रह्मनिष्ठ यतियों को क्या प्रयोजन है?** आहाहा! मुनि तो ब्रह्म अर्थात् आनन्द में निष्ठ अर्थात् तत्पर हैं, अतीन्द्रिय आनन्द में लीन हैं। उन्हें मुनि कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? जैनशासन के मुनि—वीतरागी मुनि कैसे होते हैं? कहते हैं कि वे प्रत्यक्ष या परोक्ष से विरुद्ध... वस्तु वास्तविक जो है, उससे विरुद्ध कल्पना, ऐसे विरुद्ध विकल्प से ब्रह्मनिष्ठ... ब्रह्म अर्थात् आत्मा आनन्द भगवान ने कहा वह, हों! तीर्थंकर ने कहा, सर्वज्ञ ने कहा, वह आत्मा। वह ब्रह्म अर्थात् आनन्द में निष्ठ, ऐसे आनन्द में लीन ऐसे सन्तों को क्या प्रयोजन है? दूसरी चिन्ता से काम क्या है? आहाहा! समझ में आया?

दुनिया में पड़े, मन्दिर बनावें, उसके महोत्सव कराना, जहाँ हो वहाँ अटकना, यह वह कहीं तेरे काम हैं? कहते हैं। सुन न! आहाहा! अरे! पुस्तक बनाना, पुस्तकें बेचना, लो यह एक सेट, इतनी कीमत है। इस उपाधि का भार न मिले बेचारे को। समझ में आया? मुनि-परमात्मा के सन्त तो उसे कहते हैं कि वे तो अतीन्द्रिय आनन्दमूर्ति में लीन होते हैं। भले कोई दूसरा विकल्प आवे, परन्तु तो भी उसमें लीन नहीं होते, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात भी महाभाग्य हो, उसके कान में पड़े, ऐसी बात है। आहाहा! यह तो परमेश्वर के हीरा कसौटी पर चढ़ाते हैं। समझ में आया? परम सत्य मार्ग, भगवान का त्रिलोकनाथ तीर्थंकरों का वीतरागियों का यह मार्ग है। प्रभु आत्मा ऐसा ब्रह्म अर्थात् आनन्द की मूर्ति में निष्ठ, प्रीतिवाला, प्रेमवाला,

लीनवाला है। मुनियों को तो ऐसा कहते हैं कि तुम पंच महाव्रत के विकल्प में लीन (हो तो) वह मुनि नहीं।

यहाँ तो अभी पंच महाव्रत का ठिकाना न हो और पाले, उसे माने कि यह तो पंचम काल है, सब व्यवस्थित कहाँ से हो? पाँच अँगुलियाँ समान नहीं होती, और ऐसी बातें करे। तुम जैसे श्रावक, वैसे हम (मुनि)। तुम्हारे में कहाँ ठिकाना है? हम भी ऐसे हैं, ऐसा कहते हैं। अरे भगवान! ऐसा नहीं होता भाई! ऐसा वीतरागमार्ग में बचाव नहीं होता। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य ने तो गजब काम किया है! दुनिया में सत्य का ढिंढोरा पीटकर, केवली, तीर्थंकर अनन्त परमात्माओं ने कहा, उसका ढिंढोरा जगत में प्रसिद्ध किया है कि मार्ग यह है। समझ में आया? दुनिया ईर्ष्या करे, निन्दा करे, तो भी मार्ग तो यह है भगवान! ईर्ष्या, निन्दा से तू ऐसे मार्ग की अभक्ति नहीं करना। मार्ग तो यह ही है। यह मार्ग पावे, अनुभव करे, उसे मुक्ति होती है; इसके अतिरिक्त उसे मुक्ति नहीं होती। आहाहा!

ब्रह्मनिष्ठ यतियों को क्या प्रयोजन है? आहाहा! मुनियों को तो आत्मा के आनन्द के कार्य में प्रयोजन है। दूसरे विकल्प के प्रयोजन का उसे क्या काम है? ऐसा कहकर जरा उलहाना दिया है। भाई! तुझे तो आनन्द के कार्य में रहना, वह तेरा कार्य है। ऐसे विकल्प के जाल में रुकना, दुनिया का अच्छा होगा, ऐसा चन्दा करा दूँ, पैसे इकट्ठे कराऊँ, पाठशाला बनाऊँ। बापू! ऐसे काम में तुझे क्या काम है? भाई! यह सब विकल्प है, राग है। वह तुझे किस काम के हैं? तुझे तो आनन्द में रहना, वह काम है। उसे यहाँ मुनि और धर्म कहते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल १५, मंगलवार, दिनांक-०२-११-१९७१
श्लोक-२४६, गाथा-१४६, प्रवचन-१६६

नियमसार, निश्चय परम-आवश्यक अधिकार। गाथा १४५ का कलश है। **और (इस १४५वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं):—**

यावच्चिन्तास्ति जन्तूनां तावद्भवति सन्सृतिः।
यथेन्धन-सनाथस्य स्वाहा-नाथस्य वर्धनम्॥२४६॥

यहाँ गाथा यह आयी न कि आत्मा के द्रव्य, गुण और पर्याय अथवा छह द्रव्य के द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद से, विकल्प से विचार करना, वह भी परवशपना है। आहाहा! शुभ-आचरण जो है व्रत आदि की क्रियायें, वे तो परवशपना है ही, परन्तु छह द्रव्य भगवान के श्रीमुख से निकले हुए छह द्रव्य, उनके अनन्त गुण, उनकी पर्यायें, मूल छह और अन्तर्भेद अनन्त—उसके भी भेद के विचार में रुकना, वह भी एक पराधीन—परवशपना है, उसमें स्ववशपना नहीं। जेठाभाई! यह तो द्रव्य-गुण-पर्याय के भेद के विकल्प करना, वह भी परवशपना है। आहाहा! ऐसा मार्ग है, लोगों को जरा (कठिन) लगे ऐसा। वस्तु ऐसी है। अखण्ड अभेद चैतन्यवस्तु की अन्तर्दृष्टि करना, उसका नाम स्ववशपना, स्वाधीनपना, उसका नाम सम्यग्दर्शन और ज्ञान, चारित्र। बाकी पंचमहाव्रत आदि के परिणाम, समिति, गुप्ति आदि के परिणाम, वे तो विकल्प हैं और उनके आधीन हो जाये तो फिर मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! यहाँ तो आत्मा द्रव्य-गुण और पर्याय—ऐसे तीन भेद के विकल्प में रुके तो भी, आहाहा! कहते हैं कि वह दुःखदशा है। समझ में आया? वह आत्मा के स्वभाव के साधन का कारण नहीं, ऐसा कहते हैं।

श्लोकार्थः जिस प्रकार ईंधनयुक्त अग्नि वृद्धि को प्राप्त होती है... लकड़ी सहित की अग्नि वृद्धि पाती है... **(जब तक ईंधन है, तब तक अग्नि की वृद्धि होती है);** जब तक लकड़ी, तब तक अग्नि बढ़े। **उसी प्रकार जब तक जीवों को चिन्ता (विकल्प)**

है,... पर की चिन्ता तो नहीं, देव-गुरु-शास्त्र की चिन्ता, वह भी (स्व)जीव नहीं, अपने स्वभाव से एकरूप है, उसमें राग और विकल्प से तीन प्रकार के भेद की विचारणा में रुकना, वह भी संसार है, कहते हैं। मार्ग बहुत (कठिन)! '**च्चिन्तास्ति**' है न? आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा अत्यन्त अभेद निर्विकल्प चीज़ की दृष्टि में तो अकेला ध्रुव अभेदरूप से आवे, उसमें 'यह दृष्टि और ध्रुव यह' ऐसा (भेद) भी नहीं। वह भिन्नता रह गयी। अन्तर्मुख ध्रुव चीज़ अभेद के ऊपर दृष्टि का जाना, उसका नाम निर्विकल्पता और उसका नाम सम्यग्दर्शन, उसका नाम स्वाधीनता और उसका नाम धर्म। आहाहा!

वह बात सुनी न? भाई! कल की उत्तमचन्द की... वह उत्तमचन्द नहीं था? कहाँ का? अखबार में आया था। कल ही आया है। बात की थी। मक्खनलालजी के साथ चर्चा हुई। यह पहले तो यह प्रश्न था। ... बहुत होशियार व्यक्ति है। वह नहीं उत्तमचन्दजी वह सिवनी के? अपने आये थे उसमें—कक्षा में (शिविर में)। लड़का बहुत होशियार। मास्टर है। वाँचते होंगे और यह मक्खनलालजी बाहुबली की वहाँ प्रतिमा है, उनके दर्शन करने गये होंगे।.... उनने पूछा कि निश्चय पहला या व्यवहार? यह कहे, देखो! निश्चय हो, उसे व्यवहार होता है, निश्चय बिना व्यवहार होता नहीं। ऐसा उत्तर दिया। गजब जवाब... निश्चयवाले को व्यवहार होता है, निश्चय हो वहाँ व्यवहार होता है। पण्डितजी! गजब बात है। आहाहा!

दृष्टान्त में दिया कि शादी करनी हो तब तो उसकी सब तैयारी करे, परन्तु शादी ही निश्चित नहीं, वह फिर बारात को जोड़ना, यह कहना, यह किसका परन्तु? किसका व्यवहार? ऐसा दृष्टान्त दिया है। दूसरा दृष्टान्त दिया। मिट्टी का घड़ा ही न हो, वस्तु ही न हो—उसे निश्चय नहीं होता तो घी का घड़ा कहने का व्यवहार रहा कहाँ से? ऐसा दृष्टान्त स्पष्ट है। मिट्टी का घड़ा है, घड़ा है, वस्तु है। (वह न हो) तो फिर उसे घी का (घड़ा) कहना, वह किसका व्यवहार? चन्दुभाई! बात तो बहुत सरस दी है। उसे स्वीकार करना पड़ा। यह निश्चय का ज्ञान तो चाहिए, इतना स्वीकार किया। इतना तो इतना। निश्चय का ज्ञान तो चाहिए, इतना स्वीकार किया। भले इतना ... आहाहा!

अरे भगवान! भाई! यह व्यवहार किसका? ऐसी जिसे निर्विकल्प दृष्टि और अनुभव निश्चय स्वआश्रय से हुई है, उसे फिर जो विकल्प हो, उसके आधीन नहीं,

इसलिए उसे व्यवहार कहा जाता है। और विकल्प के आधीन हो जाये, उसे तो निश्चय भी नहीं और व्यवहार भी नहीं। आहाहा! समझ में आया? वस्तु ऐसी है तो वस्तु स्वयं पुकार करती है। कहते हैं कि भाई! तुझमें एकरूपता चैतन्य की है, उसमें तुझे भेद पाड़कर विकल्प करना, उस विकल्प से तुझे क्या लाभ है? वह विकल्प है, वह तो बन्ध है और बन्ध, वह संसार है। आहाहा! **जब तक जीवों को चिन्ता है, तब तक संसार है।** राग स्वयं संसार है। आहाहा! अब वह संसार स्वयं मुक्ति का साधन कैसे हो? समझ में आया?

'**स्वाहानाथस्य वर्धनम्... इंधनसनाथस्य...**' जहाँ लकड़ी हो, वहाँ अग्नि बढ़ती है। '**स्वाहानाथस्य वर्धनम्... स्वाहा**' अग्नि की वृद्धि ही होती है वहाँ तो। आहाहा! भगवान आत्मा अत्यन्त निर्विकल्प चैतन्यबिम्ब प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का सनाथ प्रभु है, उसके कारण सनाथ है। समझ में आया? उसका आश्रय लेना और उस काल में जो दृष्टि प्रगट हो, उसे यहाँ स्वाधीन आवश्यक क्रिया कहा जाता है। अवश्य करने की क्रिया यह है। आहाहा! क्या हो? जगत को ऐसे रास्ते चढ़ा दिया है न पहले। खोटे को सच्चा और सच्चे को खोटा ठहराते हैं। उसे स्वयं को... उसे (सच्चा) बैठा है कहाँ? आहाहा!

यह सब क्रियायें करें और यह सब करें, वह सब मोक्ष का कारण है। यहाँ तो कहते हैं कि द्रव्य-गुण-पर्याय के भेद का विकल्प भी संसार है। आहाहा! राग है, उदयभाव है। भगवान तो परिणामीभाव से सहजभाव से त्रिकाली चीज़ है। ऐसी चीज़ का आश्रय लिये बिना मात्र भेद के विकल्प में रुकना, वह तो संसार है। जेठाभाई! '**तावद्भवति सन्सृतिः**' '**यावच्चिन्तास्ति जन्तूनां तावद्भवति सन्सृतिः**' जब तक राग के विकल्प उठते हैं, वह स्वयं संसार है। आहाहा! इस कारण से—उसके आश्रय से धर्म कैसे हो? समझ में आया? १४६ गाथा।

परिचत्ता परभावं अप्पाणं झादि णिम्मल-सहावं।
अप्पवसो सो होदि हु तस्स दु कम्मं भणंति आवासं॥१४६॥

'**णिम्मलसहावं**' का अर्थ 'विशुद्धस्वभाव' किया है हरिगीत में।

जो छोड़कर परभाव ध्यावे शुद्ध निर्मल आत्म रे।
वह आत्मवश है श्रमण, आवश्यक करम होता उसे॥१४६॥

टीका : यहाँ वास्तव में साक्षात् स्ववश... भगवान आत्मा आनन्द की मूर्ति के वश रहा हुआ—होता हुआ, ऐसे **परमजिनयोगीश्वर का स्वरूप कहा है।** समझ में आया? व्यवहार के छह आवश्यक—सामायिक, चोविसंथो, वन्दन, प्रतिक्रमण—वह भी विकल्प है। तीर्थंकर की स्तुति करना, वह भी विकल्प और राग है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भगवान कहते हैं कि हमारी स्तुति, वह भी तुझे राग है, वह आवश्यक नहीं। वह निश्चय आवश्यक—सच्चा आवश्यक नहीं। आहाहा! छह आवश्यक है न दूसरे। यह तो सामायिक, चोविसंथोवाले आवश्यक हैं। परन्तु यह देवपूजा, गुरुभक्ति, दया, दान, संयम और तप (स्वाध्याय)—छह आवश्यक हैं न छह! वह तो विकल्प है, राग है। हो, परन्तु उसके वश ज्ञानी होता नहीं। आहाहा! यहाँ तो वश-अवश की बात आवश्यक में है न! विकल्प के वश होता है, वह तो एकत्वबुद्धि है, मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया?

वास्तव में साक्षात् स्ववश... भगवान आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञान का पुंज प्रभु के वश वर्तता है, उसके आश्रय वर्तता है, **ऐसा परमजिनयोगीश्वर का स्वरूप कहा है। जो (श्रमण) निरुपराग निरंजन स्वभाववाला होने के कारण...** आहाहा! रागरहित और अंजनरहित (अर्थात्) मैल कुछ नहीं। ऐसे स्वभाववाला होने के कारण **औदयिकादि परभावों के समुदाय को परित्याग कर,...** भगवान आत्मा अभेद चीज़ राग और रंगरहित चीज़ है। ऐसे स्वभाववाला होने के कारण औदयिकादि परभावों का समुदाय छोड़कर (अर्थात्) पर्याय की बुद्धि छोड़कर .... चाहे तो दया, दान का विकल्प औदयिकभाव हो, चाहे तो उपशम और क्षयोपशम आदि भाव हो, क्षायिक पर्याय हो—उसकी दृष्टि भी छोड़कर... समझ में आया? **औदयिकादि परभावों...** वह तो परभाव है, त्रिकाली स्वभावभाव नहीं। आहाहा! त्रिकाली स्वभावभाव निरुपराग निरंजन स्वभाव ऐसा तत्त्व जो **निज कारणपरमात्मा...** वह अपना भगवान कारणप्रभु है। केवलज्ञानादि मुक्ति का कारण वह है। समझ में आया?

औदयिकादि परभावों के समुदाय को... दो बात—एक और एक=दो। त्रिकाली

स्वभाव में वर्तमान पर्याय के भेद नहीं। इससे पर्याय के भेदों को लक्ष्य में से छोड़कर अकेला निज कारणपरमात्मा, उसके आश्रय में जाये, उसे धर्म और उसे स्ववशी साधु कहा जाता है। गजब! परन्तु वह तो व्यवहार करते-करते निश्चय होगा न? व्यवहार करते-करते, राग करते-करते, भेद करते-करते अन्दर में जाया जायेगा? बात तो ऐसी... है। अन्दर अभिप्राय में बड़ा अन्तर है न? आहाहा! मूल चीज़ पूरी परमात्मस्वभाव से भरपूर चीज़ है। उसमें पर्याय का भी अभाव है। आहाहा! कहते हैं कि उदयादि चार परभाव हैं। त्रिकाली स्वभावभाव की अपेक्षा से एक समय की राग की या निर्विकारी दशा, उसे परभाव कहा जाता है। अकेले राग को परभाव (कहना), ऐसा नहीं। सब परभाव है। आहाहा!

निरुपराग निरंजन स्वभावभाव नित्यानन्द प्रभु ध्रुव त्रिकालीतत्त्व ऐसे स्वभाववाला भगवान आत्मा होने के कारण, उसके ऊपर दृष्टि देने से चार भाव की हेयबुद्धि हो जाती है, ऐसा कहते हैं। **परभाव को परित्याग कर...** ऐसा कहा है न? **'परिचत्ता परभावं अप्पाणं झादि'** ऐसा लिया है न? पर्याय परभाव है, द्रव्य **'अप्पाणं'** त्रिकाली स्वभाव है। आहाहा! आवश्यक क्रिया यह है। समझ में आया? **निज कारणपरमात्मा को—कि जो (कारणपरमात्मा) काया, इन्द्रिय और वाणी को अगोचर है,...** इन्द्रिय को अगम्य है, वाणी को अगम्य है और काया को—शरीर को अगम्य है। आहाहा! लो, जीवित शरीर की क्रिया द्वारा धर्म होता है, (ऐसा) प्रश्न है खानियाचर्चा में। तुम थे या नहीं वहाँ? आहाहा! मौजूद थे। भगवान! कहाँ गया तू? आहाहा! यहाँ तो पर्याय को परभाव गिनकर छोड़नेयोग्य कहा। उसका अंश है, परन्तु वह अंश है, वह कहीं सच्चा तत्त्व नहीं। वास्तव में तो अंश है, वह तो व्यवहार आत्मा है। निश्चय से वह वास्तव में तो अनात्मा है। आहाहा! समझ में आया?

नियमसार तो नियमसार है न! आहाहा! उसका सत्य... नियम-सत्य, नियम-सत्य स्वरूप है यह। भाई! तेरा स्वरूप तो त्रिकाली प्रभु एकरूप नित्यानन्द ऐसे स्वभाव के कारण से, ऐसे निज कारणपरमात्मा के आश्रय में गया (इस कारण से) उसकी पर्याय का समुदाय लक्ष्य में से छूट जाता है। इसलिए उसे छोड़कर यहाँ आश्रय ले, ऐसा कहने में आता है। काया, वाणी, इन्द्रिय को अगोचर है। निजस्वरूप भगवान पूर्णानन्द

वह तो वाणी, विकल्प को भी अगम्य है। **सदा निरावरण होने से...** भगवान वस्तु है न, स्वभाव है न, सत्त्व है न! ज्ञान सत्, ऐसा सत् का सत्त्व है न! ज्ञानपुंज, आनन्दपुंज स्वभाव का पुंज ऐसा तत्त्व जो है, वह तो सदा निरावरण है। आहाहा! समझ में आया? ज्ञान, आनन्द, शान्ति आदि स्वभाव ही शाश्वत् है और शाश्वत् रहनेवाले हैं, ऐसी जो चीज़, वह तो त्रिकाली निरावरण है। उसे आवरण कैसा? वस्तु को आवरण हो तो अवस्तु हो जाये। समझ में आया?

सदा निरावरण होने से निर्मल स्वभाववाला है... पाठ में है सही न '**णिम्मलसहावं**'। फिर यह हरिगीत में '**णिम्मलसहावं**' का 'विशुद्धस्वभाव' किया (अर्थात्) त्रिकाल शुद्धस्वभाव, ऐसा। यह तो वह विशुद्धभाव शुभभाव को लागू पड़ता है, पर्याय को लागू पड़ता है और त्रिकाल को भी लागू पड़ता है, इस अपेक्षा से (विशुद्धस्वभाव कहा)। विशुद्धस्वभाव, वह पुण्यभाव शुभ को भी कहा जाता है और एक निर्मल वीतरागी पर्याय हो, उसे भी विशुद्धस्वभाव (कहा जाता है) और त्रिकाली को भी विशुद्धस्वभाव कहा जाता है। तीनों को इस अपेक्षा से कहा जा सकता है। समझ में आया? **ऐसा निर्मल स्वभाववाला है...** भगवान निरावरण है और निर्मल स्वभाववाला है। आवरण नहीं, इसलिए ऐसा निर्मल स्वभाववाला उसका तत्त्व ही है। स्वभाव वस्तु... वस्तु... वस्तु... सत्... सत् का सत्त्व, सत्त्व अर्थात् स्वभाव और सत् अर्थात् स्वभाववान। वह वस्तु स्वयं निर्मल स्वभाववाली है। समझ में आया?

और समस्त दुरघरूपी वीर शत्रुओं की सेना के ध्वज को लूटनेवाला है... दुरघ=दुष्ट अघ; दुष्ट पाप। (अशुभ तथा शुभ कर्म दोनों दुरघ हैं।) पाप है। वह उसमें है ही नहीं, ऐसा। उसमें है ही नहीं। **दुरघरूपी वीर शत्रुओं की सेना...** देखो! इसने जीता है अनादि से, ऐसा कहते हैं। आहाहा! आस्रव (अधिकार) में आया है, आस्रव ने जीता है, जड़ हो गया है। विकल्प की दृष्टि है, वह आस्रव की ही दृष्टि हुई, उसने बड़े मानधाता को भी पछाड़ा है। महाव्रत हम पालते हैं, बाहर का त्याग किया है, आचरण-शुभाचरण चुस्त करते हैं, (ऐसा माननेवाले) सब आस्रव के अभिमानी हैं, कहते हैं। समझ में आया? कठिन मार्ग, भाई! यहाँ तो अभी निवृत्त घर का हो नहीं, पाप की

प्रवृत्ति छोड़ी नहीं, उसे और कहते हैं कि यह सब पुण्य और पाप की पर्याय सब परभाव है। समझ में आया? वीतराग का ऐसा मार्ग है। आहाहा!

वस्तु ऐसी निर्मल है कि जिसमें शुभ और अशुभकर्म का जिसमें त्रिकाल अभाव है अथवा ऐसी निर्मल चीज़ है कि उसका आश्रय लेने से पुण्य और पाप के भाव का नाश हो जाता है। वस्तु में नहीं, इसलिए उसका आश्रय लेने से उनका नाश हो जाता है। समझ में आया? ... होना इतना कठिन लगे, इसलिए वह प्रेक्टिस करनी कठिन पड़े। अरे भाई! इस ओर का अभ्यास कब किया है तूने? आहाहा! अन्तर्मुख चीज़ ऐसी है। है, उसे प्राप्त करनी है, वह तो वस्तु की स्थिति है। समझ में आया? परन्तु यह अभ्यास नहीं और बहिर्मुख का अभ्यास है—यह करना और यह करना, यह छोड़ना, यह रखना, यह करना और यह लेना और यह देना। और विकल्प के जाल में रुक गया है। उसे अन्तर वस्तु क्या है, उसकी दरकार करने का अवकाश है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

विद्यानन्दजी का लिखा है कैलाशचन्दजी ने। ऐसा कि उसका बहुत विरोध उठा है न कैलाशचन्दजी का। ...विरोध किया है साधु को। इसलिए उसका जवाब दिया... ...के भक्त बहुत हैं। परन्तु किसी ने विरोध नहीं किया। तुम्हें विद्यानन्दजी का विरोध लगता हो तो मैं तो उनकी कितनी बातों का... हूँ, ऐसा कहे। मैंने तो उन्हें ऐसा भी कहा था कि तुम यदि अध्यात्म के अच्छे प्रवक्ता हो सकते हो तो सोने में सुगन्ध मिले। ... आहाहा! अध्यात्म के अच्छा प्रवक्ता हो सकते हो तो सोने में सुगन्ध मिले अर्थात् अध्यात्म का प्रवक्ता नहीं। प्रवक्ता करना है या अध्यात्म जानना है? आहाहा! यह तो प्रवक्ता कहना है, ऐसा कहे। अर्थात् कथन करने जाये... आहाहा! वक्ता का क्या काम है यहाँ? है न इसमें।

'वे बहुत अच्छे वक्ता हैं। मैंने उनसे प्रार्थना की थी कि आप अध्यात्म के बहुत अच्छे प्रवक्ता हो सकते हैं।' इसका अर्थ सब आ गया। 'और यदि ऐसा हो जाये तो सोने में सुगन्ध की कहावत चरितार्थ हो जाये।' प्रवक्ता भी हो। कहो, वक्ता का क्या परन्तु... है? आत्मा का अध्यात्म यदि हो जाये तो तुझे आत्मा का कल्याण हो, ऐसा होना चाहिए। शान्तिभाई! आहाहा! बोलना आवे—न आवे, उसके साथ क्या सम्बन्ध है? कथन करना आवे या न आवे, लोगों को रंजन करना (आवे या न आवे) उसके साथ

आत्मा को क्या सम्बन्ध है ? आहाहा ! आत्मा में विकल्प जहाँ नहीं, वहाँ वाणी का यह सब कलबल हो तो अध्यात्म हो, ऐसा कुछ नहीं है। समझ में आया ?

कहते हैं कि भगवान आत्मा... ऐसा उसका स्वरूप सच्चिदानन्द प्रभु है। आहाहा ! परन्तु कैसे बैठे ? एक बीड़ी में बिक जाये, तम्बाकू में बिक जाये। घड़ीक में इज्जत जरा ठीक मिले, वहाँ उल्लसित हो जाये। आहाहा ! हम भी कुछ हैं। आहाहा ! अरे बापू ! हम कुछ हैं नहीं, परन्तु हम तो महा हैं, उसकी तो यह खबर नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? भगवान आत्मा का—वस्तु का ऐसा स्वभाव है कि जिसमें पुण्य और पापरूपी अघ अभी नहीं। उसमें है ही नहीं। यदि उसमें हो तो उसे तोड़ नहीं सकते। इसलिए यह तो पाप और पुण्य रहित चीज़ है और उसका आश्रय लेने से पाप और पुण्य का नाश होता है। पर्याय की अपेक्षा से बात है। आहाहा ! समझ में आया ? वह तो घर को लूटनेवाला है, भगवान !

उसे—ध्याता है,... ऐसा प्रभु परमात्मा निजस्वरूप को जो ध्याता है, उसमें एकाग्र होता है, **उसी को आत्मवश कहा गया है।** उसे ही आत्मवश कहा गया है। आहाहा ! यहाँ ऐसा नहीं कि उसे कहना आता है इतना बड़ा, इसलिए आत्मवश है। ऐसा जो भगवान आत्मा वस्तु है, अस्ति तत्त्व, सत्तारूप होनेवाला स्वभाव—स्वरूप एकरूप सत् और सत्त्व दोनों एकरूप त्रिकाल हैं। उसके वश जो होता है अर्थात् कि उसका जो ध्यान करता है, उसे जो लक्ष्य में लेकर लीन होता **उसे ही...** वापस व्यवहारवाले को नहीं, ऐसा कहते हैं। उसे—उस श्रमण को ही—उस साधु को ही आत्मवश कहा गया है। न्याय से—लॉजिक से—युक्ति से भी बात तो यह सिद्ध होती है। इसमें कहीं तोड़-मरोड़कर बैठाना, ऐसा नहीं है। भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द का नाथ है, जिसमें से केवलज्ञान और अनन्त आनन्द ऐसी अनन्त-अनन्त पर्याय के प्रवाह जिसमें से फूटें, आहाहा ! ऐसी वह मूल चीज़ आतमधाम, ऐसा सत्त्व भगवान, उसे जो ध्याता है, जो निज कारणपरमात्मा का ध्यान करता है, उसके जो वश होता है, वह आत्मवश है। वह आवश्यक की क्रिया यथार्थ करनेवाला है। आत्मा के वश होना, वह आवश्यक है। समझ में आया ? आहाहा !

निश्चय... वह व्यवहार हो तो निश्चय होता है। ... जवाब गजब दिया, हों ! ...

परन्तु इतना स्वीकार करना पड़ा उसे। यह निश्चय का ज्ञान तो पहले होना चाहिए। बस इतना तो इतना। अरे भगवान! बापू! तेरे घर की सत्य बात है, उसकी ना करते हुए तुझे शर्म आनी चाहिए। अरर! कि मैं ...वाला, वहाँ राग और दूसरा व्यवहार कहना किसे? आहाहा! मेरी चीज़ ही प्रभु! प्रभुता की एक-एक शक्ति, प्रभुता की शक्ति से परिपूर्ण है। ऐसी अनन्त-अनन्त प्रभुता की शक्तिवाला तत्त्व, उसका जो ध्यान करता है, अर्थात् दशा उसकी ओर झुकायी है, वह स्ववश है। कहो, समझ में आया? आहाहा! इतने मन्दिर बनाये और इतनी पुस्तकें बनायीं, इतने श्लोक किये। अरे! कौन करे? प्रभु! तू क्या करता है? भाई! उसमें तो विकल्प उठना, वह भी उसका स्वभाव नहीं। वहाँ यह और सब यह करे और यह करे, यह करे (यह कहाँ से लाया?)। तू तो तीन लोक, तीन लोक की चीज़ों को छुए बिना, उनके सामने देखे बिना जाननेवाला-देखनेवाला है। समझ में आया?

ऐसे साधु को ही आत्मवश कहा गया है। अकेली व्यवहारक्रिया करे और निश्चय का अनुभव का भान नहीं, उसे तो अकेला पराधीन दु:खी साधु कहा जाता है। आहाहा! यों ही नहीं कहा जाता अपने? 'परवश स्वप्न में सुख नहीं।' पराधीन सपने... पराधीन की व्याख्या क्या? आहाहा! शान्तिभाई! भाग्यशाली कि रह गये, हों! आहाहा! बापू! यह तो मार्ग की पद्धति ऐसी है। समझ में आया? मार्ग का स्वरूप ऐसा है। ऐसे बाहर के त्याग होकर राग की मन्दता हो, वह आस्रव का एकत्वपना... अभिमान अथवा एकत्वपना, वह तो महा मिथ्यात्वभाव है। वह तो पर के आधीन हुआ है, वह दु:खी है। आहाहा! भगवान आत्मा अन्तर्मुख तत्त्व निरावरण सदा है। शुभ और अशुभकर्म तथा शुभ और अशुभभाव जिसमें नहीं, उसका ध्यान करे, वह शुभाशुभपरिणाम अर्थात् संसार का नाश होता है। आहाहा!

उसे ध्याता है। आहाहा! **उसे—ध्याता है,...** उसे ध्याता है। .... बालक माता के स्तन को पीता है, उसी प्रकार भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसे जो पर्याय से पीता है, आहाहा! उसे चूसता है, उसे आनन्द आता है। आनन्द आता है, वह धर्म है। जेठाभाई! यह तो ज्ञायक से भी वस्तु प्रसिद्ध होती है। परन्तु अब क्या हो? वाद-विवाद में चढ़ने से पार नहीं आता, प्रभु! 'वाद विवाद करे सो अन्धा, सद्गुरु कहे सहज का

धन्धा।' मार्ग ऐसा है, भाई! दूसरे को हल्का करने के लिये यह चीज़ नहीं है। परन्तु तूने हल्का माना है उसे बड़ा मान उसकी यहाँ बात है। राग की क्रिया से मैं बड़ा हूँ, ऐसी जो हलकाई को बड़ा माना है, वह तुझे कलंक है। आहाहा! इसलिए जैसा तू बड़ा है, वैसा बड़े को तू स्वीकार कर। मैं तो राग भी नहीं, पर्याय भी नहीं, ऐसा त्रिकाली अस्ति—सत्तास्वभाव ऐसा मैं एकरूप, उसके लक्ष्य से जो ध्यान होता है, वही जीव स्ववश में आया है, ऐसा भगवान कहते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया?

इसका स्पष्टीकरण किया विशेष। **उस अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयात्मक श्रमण को...** आहाहा! (कोई) कहे, यह साधु की बात है। साधु शब्द से साधक। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि भी साधक है, श्रावक भी साधक है और साधु भी साधक है। उनकी श्रेणी भले जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट हो, परन्तु है तो साधक। बस ... है। मोक्षमार्ग में है न, छहढाला में। सम्यग्दृष्टि, श्रावक और मुनि तीनों मोक्षमार्ग में है। शब्द आता है। तीनों को शिवमार्ग कहिये, नहीं? शब्द आता है। 'तीनों शिवमगचारी... तीनों शिवमगचारी।' (तीसरी ढाल, पद ५, छहढाला)। आता है उसमें। चौथे गुणस्थानवाला... पाँचवाँ....

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह। तीनों शिवमगचारी। आहाहा! वे तीनों मोक्ष के पंथ में हैं, तीनों आत्मवश है। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं कि उस साधु को **अभेद अनुपचार....** ऐसा कहा है न? रत्नत्रय, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अभेद निश्चयरत्नत्रय। स्वद्रव्य के आश्रय से हुई दशा, वह निश्चयरत्नत्रय अभेद अनुपचार—जिसमें उपचार नहीं, परन्तु वास्तविक अभेदपना प्रगट हुआ है। आहाहा! समझ में आया?

अभेद अर्थात् कि जिसमें कुछ उपचार—कुछ व्यवहार, भेद है नहीं। ऐसा रत्नत्रयस्वरूप, ऐसी पर्याय की यह बात कही, हों! आहाहा! त्रिकाली ज्ञायक शुद्ध निरावरण सदा प्रभु, उसके सन्मुख की एकाग्रता की प्रतीति, उसके सन्मुख का ज्ञान, उसके सन्मुख की लीनता, वह अभेद अनुपचार रत्नत्रयस्वरूप परिणति को श्रमण कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? यह अभ्यास न हो, उसे सब ... लगे। गुणुभाई! ऐ शामजीभाई! वह लोहे के चद्दर फिराये हों उसमें मुश्किल से यह सुनते हों (उसे ऐसा

लगे कि) क्या होगा यह ? ऐसा मार्ग होगा ? अपने तो... अरे ! उसके सत्य के घर की बातें भी जहाँ सुनने का अवसर न मिले, सुनने को मिले नहीं। अरे ! उसे कहाँ जाना है ? कहाँ जाकर कहाँ रहना है उसे ? आहाहा ! अज्ञान में जाकर अज्ञान में रहना है, वह स्वच्छन्दता में अनादि से पड़ा है। आहाहा !

भगवान आत्मा... अभेद रत्नत्रयस्वरूप श्रमण को **समस्त बाह्यक्रियाकाण्ड-आडम्बर के विविध विकल्पों के महा कोलाहल से प्रतिपक्ष...** देखो ! आहाहा ! यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पाँच महाव्रत, समिति और गुप्ति और अनशन, ऊनोदर, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग—यह तो सब बाह्य क्रियाकाण्ड का आडम्बर है। आहाहा ! उसके आडम्बर के विविध विकल्प ऐसा जो महाकोलाहल। आहाहा ! उससे प्रतिपक्ष **महा-आनन्दानन्दप्रद निश्चयधर्मध्यान...** आहाहा ! देखो ! **परम आवश्यक कर्म...** नीचे नोट। **परम आवश्यक कार्य।** परम भगवान आत्मा के आश्रय से दर्शन-ज्ञान-चारित्र रत्नत्रय हुए, वह परम-आवश्यक कार्य है, वह जीव को आवश्यक कार्य यह है। व्यवहाररत्नत्रय, वह भी आवश्यक का कार्य नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? महा आनन्दानन्दप्रद ऐसा निश्चयधर्मध्यान... कहते हैं कि व्यवहाररत्नत्रय के आचरण के विकल्प का कोलाहल जाल, उससे प्रतिपक्ष... क्योंकि वह दुःख था। और द्रव्य-त्रिकालीद्रव्य के आश्रय से ध्यान हुआ, ऐसा जो निश्चय धर्मध्यान, वह तो महा आनन्दानन्दप्रद... महा आनन्दानन्दप्रद (अर्थात्) महा आनन्द का आनन्द देनेवाला धर्मध्यान है। आहाहा ! कहो, समझ में आया ?

व्यवहार क्रियाकाण्ड है, वह दुःखरूप है, ऐसा कहते हैं। उससे 'प्रतिपक्ष' कहा न। (वह) दुःख है, यह आनन्द है। परन्तु बात बैठना कठिन पड़े। ... बाहर के आडम्बर बड़े... आहाहा ! पाँच-दस हजार, लाख-दो लाख की आमदनी होती हो महीने में और जवानी पुष्ट हो सांढ़ जैसी और कमाऊ है, ऐसी बाहर कीर्ति आयी हो। ऐई नटु ! उसमें (ऐसा लगे कि) यह क्या कहते हैं ? पागल लगे। ऐ जेठाभाई ! वीतराग त्रिलोकनाथ तीर्थंकर परमेश्वर ऐसा फरमाते हैं कि व्यवहारक्रिया के कोलाहल से विरुद्ध ऐसी निश्चयरत्नत्रय परिणति, उसका जो निश्चय-धर्मध्यान महा आनन्दानन्दप्रद है। आहाहा ! कनुभाई !....

बीस वर्ष का लड़का हो, इकलौता हो, सत्रह वर्ष हुए हों, छह महीने का विवाहित भर जवानी में छोड़कर मर जाये, उस समय इसे जो शोक हो दुनिया को। आहाहा! अरेरे! इकलौता। उसे पूरी दुनिया शून्य श्मशान जैसी लगे। कहीं स्थिर होने का ठिकाना दिखाई न दे। इसी प्रकार धर्मी को विकल्प के जाल सब दुःखरूप और शान्ति को लूटनेवाले (लगते) हैं। वह भी साक्षात् भगवान आत्मा की ओर ढलता है तब, कहते हैं कि उसे व्यवहार के विकल्प के दुःख जाल में से, जो दुःख था, उससे विपरीत आत्मा के आश्रय से, आत्मा के वश हुई जो क्रिया सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र—वीतरागी परिणतिरूपी धर्मध्यान हुआ, वह तो आनन्दानन्दप्रद है। अरे! उसमें तो आनन्द के झरने झरते हैं, कहते हैं। कहो, भीखाभाई! आहाहा!

यह वस्तु को पहले समझण में तो लिया नहीं और ऐसा का ऐसा करो धर्म... करो धर्म। बापू! धर्म कहाँ है? भाई! अरे! अनन्त काल के जन्म-जरा के-मरण के दुःख इसने भोगे और सहे, वे भगवान जानते हैं और इसने भोगे हैं।... यह भूल गया है। यहाँ जरा ठीक मिले बाहर का, वहाँ भूल गया। मानता है कि ठीक है। (बाह्य)वस्तु कहाँ ठीक है? ठीक तो भगवान स्वयं है। आहाहा! भगवान त्रिलोकनाथ समवसरण में—धर्मसभा में ऐसा फरमाते हैं कि यह व्यवहार के क्रियाकाण्ड के कोलाहल से विरुद्ध ऐसी जो स्वद्रव्य के आश्रय से प्रगट हुई परिणति—निश्चयरत्नत्रय—सच्चा रत्नत्रय, ऐसा जो निश्चय स्व का धर्मध्यान, वह आनन्दानन्दप्रद है। वह आनन्द का देनेवाला है। वर्तमान, हों! भविष्य में बाद में। सुमनभाई! देखो! इसमें आनन्द आवे। वहाँ आठ हजार का बड़ा-बड़ा वेतन दुःख है, ऐसा कहते हैं। ऐई कान्तिभाई! आहाहा!

भाई! तेरी खान में—खजाने में कहाँ कमी है? आहाहा! तेरी नजर वहाँ पड़नी चाहिए। नजर में निधान आना चाहिए। यह राग भी नहीं और एक समय की पर्याय नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? पूरी दुनिया से उपेक्षा, उदास... उदास... और एक उद्-आसन चिदानन्द ध्रुव में जिसने आसन लगाया... आहाहा! भाई ने—सोगनी ने तो एक बार ऐसा भी कहा दिया है कि ध्रुव में पालथी लगाकर बैठ जाओ। कहा, यह कैसे...? है न छोटाभाई? पालथी लगाकर बैठने का अर्थ, वहाँ स्थिर होना, ऐसा। आहाहा! है उसमें। पढ़ा है न भाई ने? दिया है न? आहाहा! भाषा देखो न!

यह व्यवहार की क्रिया के जितने वीतराग ने कहे हुए आचार-विचार हों, ऐसा जो क्रिया (का) कोलाहल, वह दुःखरूप है। ऐसा मानेगा तो फिर करेगा नहीं। परन्तु करेगा कौन? सुन न अब! इन सब मन्दिरों को ताला लगाना पड़ेगा। ऐ जादवजीभाई! भगवान! ताला लगाने का अर्थ क्या तुझे कहना है? वह तो उस काल में वह चीज़ होती है। जिसे अन्तर स्थिरता न हो, तब ऐसा शुभभाव पर के लक्ष्य से उत्पन्न होता है, परन्तु वह (वास्तविक) चीज़ नहीं। होता अवश्य है, व्यवहार होता अवश्य है, परन्तु वह व्यवहार कोलाहल को उत्पन्न करनेवाला है। आहाहा! गजब बात है न! .... कठिन लगे यह मुनि की टीका। भाई! कठिन लगे... बापू! यह तो परमागम के झरने हैं। आहाहा! बापू! इसका अनादर नहीं होता। भाई! तेरे स्वभाव का अनादर होता है। महत्ता को तू हीन कर डालता है। समझ में आया?

मैं तो राग से पा सकूँ... अरेरे! ऐसा तू नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह विकल्प की क्रिया से मैं प्राप्त कराऊँ, मेरी भेंट हो—ऐसा तू नहीं भाई! साधारण गरीब व्यक्ति को चक्रवर्ती की भेंट करनी हो (तो) नहीं होती। भाई! उसे भेंट दूसरे प्रकार है। यहाँ कहते हैं, बापू! प्रभु! तेरा नाथ त्रिकाली भगवान, उसका आश्रय करके जो दशा प्रगट हो, वह तो विविध आडम्बर की क्रिया से भिन्न है। अब भिन्न है, उससे निश्चय प्राप्त होगा? भाई! कैसे बैठे? कैसे बैठे इसे बात? समझ में आया? दुःख की क्रिया से आनन्द की पर्याय प्रगट हो, व्यवहार से निश्चय हो?—(नहीं होगा)। आहाहा! समझ में आया? दुनिया को कठिन लगे।

अरेरे! भगवान ने कहा न आगे कि ऐसा तत्त्व है, वह बाहर आने पर कोई निन्दा, ईर्ष्या करे, परन्तु तू तत्त्व की अभक्ति नहीं करना, हों! वस्तु तो ऐसी ही है। अरेरे! परन्तु ऐसा है और लोग ऐसी निन्दा क्यों करते हैं? समझ में आया? बापू! वह तो उसकी प्रकृति में न बैठे, तब तक क्या करे? समझ में आया? परन्तु भगवान अनाकुल आनन्द का नाथ, उसकी शरण में आनन्द आया, वही धर्म है। ऐसा यदि दूसरे न कहें और निन्दा, ईर्ष्या करे तो अभक्ति नहीं करना। मार्ग तो यह ही है। ऐसे सब व्यवहार के करनेवाले आगे बढ़ गये, मान बढ़ गया, लाखों लोग (उनको) मानते हैं, करोड़ों रुपये उनकी जीभ से (भाषण से) पैदा हों-ढ़ेर हों। अरे! परन्तु वह क्या चीज़ है कुछ? समझ

में आया ? तेरा नाथ, तेरा रक्षण करनेवाला तत्त्व तुझमें है। उसका आश्रय करे, उसे परम आवश्यक क्रिया कहा जाता है। वह आवश्यक की क्रिया उसके पास है, कहते हैं।

ऐसा **महाआनन्दानन्दप्रद...** आनन्द... आनन्दानन्दप्रद, ऐसा। **निश्चयधर्मध्यान...** देखो! इसे निश्चयधर्मध्यान कहते हैं। वे कहते हैं कि धर्मध्यान तो शुभोपयोग ही होता है। शुद्धोपयोग हो, तब निश्चय शुक्लध्यान होता है। अरे भगवान! बापू! जिसका ध्यान... जिसका ध्यान बाद में भले अल्प धर्म हो, परन्तु वह तो निर्मल और आनन्ददायक ही है। उसमें शुभ का असर है नहीं। आहाहा! यह तो बात की। वह बाह्यक्रियाकाण्ड का आडम्बर है। बड़ा आडम्बर दिखे, ऐसा करे, ...खमासमणो वंदामि... ऐसा बोले, कण्ठ बोले, ऐसे चले। आहाहा! चार दिशा में चार सामायिक करते हुए नहीं करते ? सामायिक करे तब चार दिशा में करे। दिगम्बर में ऐसा आता है। चार दिशा में एक-एक दिशा में सामायिक करे न जब, मुख घुमाकर... ऐसा आडम्बर दिखाई दे न वहाँ! आहाहा!

एक भाई कहते थे। यहाँ थे न, कैसे ? जिनेन्द्र। यहाँ थे न। दो-चार महीने रहे थे। क्षुल्लकपना लिया था, छोड़ दिया। जिनेन्द्र (वर्णी) यहाँ था। क्षुल्लक है। परन्तु कृत्रिम था। बहुत कहा था। अब क्या करे ? शास्त्र बनाना आवे, पुस्तक कुछ लिखे... वह कौन बनावे और कौन लिखे ? भाई! उसका रचना का विकल्प भी दुःखदायक है। आहाहा! बाहर में आवे, लोक में प्रसिद्ध हो जाये। आहाहा! इतने लाखों, करोड़ों श्लोक बनाये, ऐसे पुस्तकें ५०-५० रुपये की एक पुस्तक... उसके साथ क्या है ? भाई! वह सब आडम्बर विकल्प का जाल है, कहते हैं।

ऐसा जो **निश्चयधर्मध्यान...** देखो! यह दोनों को ऐसा कहा है, हों! उसे निश्चय शुक्लध्यान... दोनों परमानन्दानन्दप्रद है, (ऐसा कहा है)। धर्मध्यान शुभवाला है और शुक्लध्यान शुद्धवाला है—ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसा **निश्चयधर्मध्यान तथा निश्चय-शुक्लध्यानस्वरूप परमावश्यक-कर्म है।** उसे, परम आवश्यकवाला कार्य ऐसे मुनियों को होता है। जो आत्मा अखण्डानन्द प्रभु को ध्येय बनाकर ध्यान में स्थित है। चाहे तो भले बाह्य विकल्प हो, परन्तु अन्दर एकाग्रता है, वह ही धर्मध्यान और शुक्लध्यानस्वरूप स्ववश साधु कहा जाता है। बाकी जितने व्यवहार की क्रियाओं में आधीन हो गये, वे तो परवश, दुःखी और मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा! विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण १, बुधवार, दिनांक - ०३-११-१९७१
श्लोक-२४७-२५२, प्रवचन-१६७

नियमसार, निश्चय-परम आवश्यक अधिकार। २४७ कलश है। वास्तव में धर्म का स्वरूप, उसे आवश्यक का क्या है, उसकी बात है। आवश्यक अर्थात् जरूरी कार्य। परमात्मा को जरूरी—आवश्यक कार्य क्या है और कैसे होता है, उसकी बात है। २४७।

जयत्यय-मुदार-धीः स्व-वश-योगि-वृन्दारकः,
प्रनष्ट-भव-कारणः प्रहत-पूर्व-कर्मावलिः।
स्फुटोत्कटविवेकतः स्फुटितशुद्धबोधात्मिकां,
सदाशिवमयां मुदा व्रजति सर्वथा निर्वृतिम्॥२४७॥

धर्मात्मा आवश्यक क्रियावाला कैसा होता है? मुनि को लक्ष्यकर बात है, उसमें गर्भित में समकिती भी आ जाता है। **श्लोकार्थः उदार जिसकी बुद्धि है,...** जिसे द्रव्यस्वभाव पकड़ने की बुद्धि उदार हो गयी है। वस्तु जो त्रिकाल ज्ञायक आनन्दस्वरूप, उसके स्वीकार में जिसकी बुद्धि उदार है। पूर्ण अखण्ड और अभेद ऐसा जो आत्मस्वभाव, उसका जिसे स्वीकार है। समझ में आया? **उदार जिसकी बुद्धि है, भव का कारण जिसने नष्ट किया है,...** आस्रव का जिसने नाश किया है। मिथ्यात्व, अव्रत आदि जो परिणाम, वे आस्रव हैं, उनका जिसने नाश किया है। **पूर्व कर्मावलि का जिसने हनन कर दिया है...** (अर्थात्) निर्जरा। पूर्व के कर्म जो हैं, उनकी श्रेणी जिसने नाश कर दी है। अर्थात् कि द्रव्य को स्वीकार किया है, संवर प्रगट किया है और पूर्व के कर्मों का नाश करके निर्जरा भी की है। कहो, समझ में आया?

और स्पष्ट उत्कट विवेक द्वारा... प्रत्यक्ष आत्मा के अनुभव द्वारा राग और पर से भिन्न पड़कर भेदज्ञान द्वारा... स्पष्ट—प्रत्यक्ष उत्कट विवेक द्वारा अन्दर ज्ञान की धारा को वेदन में लेकर प्रत्यक्ष पर से भिन्न पड़ गया है। **स्पष्ट उत्कट विवेक द्वारा...** उसे इस द्वारा

प्राप्ति क्या होती है ऐसा (अब) कहते हैं। **प्रगट-शुद्धबोधस्वरूप सदाशिवमय सम्पूर्ण मुक्ति को जो प्रमोद से प्राप्त करता है,...** बहुत उत्तम आया। प्रगट विवेक—उत्कृष्ट भेदज्ञान द्वारा जिसने... **उत्कट** और **स्फुटित** दो शब्द प्रयोग किये हैं न? विवेक में **उत्कट,** मुक्ति में **स्फुटित।** आहाहा! भगवान आत्मा पूर्ण है, नित्यानन्द ध्रुवस्वरूप है, (ऐसी) जिसकी बुद्धि में उसका स्वीकार हो गया है, जिसके ज्ञान की पर्याय में ऐसा ज्ञेय जिसे बस गया है, ऐसी जिसकी उदारवृत्ति है। भीखाभाई! ऐसा धर्म गजब! वस्तु यह है।

(१) परमस्वभाव पूर्ण जिसका स्वीकार हुआ है, ऐसी बुद्धि में जिसकी उदारता है। प्रगट में अल्पज्ञ होने पर भी, पूर्ण स्वरूप है, उसे उदार बुद्धि से स्वीकार किया है। समझ में आया? आहाहा! इतना तो सम्यग्दर्शन में भी होता है। आगे बढ़ना है न। (२) भव का कारण आस्रव जिसने नष्ट किया है। (३) पूर्व में कर्मावली पड़ी है, उसका नाश कर दिया है (अर्थात्) निर्जरा की है, ऐसा कहते हैं। हुआ? आत्मा, संवर, निर्जरा, भेदविज्ञान और मुक्ति इतना समा दिया है इसमें। ओहोहो! गजब परन्तु मुनियों ने काम किया है न! अल्प काल में अल्प दशा छोड़कर पूर्ण दशा प्रगट हो, ऐसी आवश्यक क्रिया को यहाँ अनुभव कहते हैं।

प्रगट-शुद्धबोधस्वरूप... पर से भेदज्ञान द्वारा प्रगट शुद्धबोधस्वरूप... शुद्धबोध-ज्ञानमय अकेली पर्याय। **सदा शिवमय...** सदा मुक्तिमय पर्याय, कल्याणमय। **सम्पूर्ण मुक्ति को...** द्रव्यदृष्टि में—सम्यग्दर्शन में मुक्ति तो हुई है, परन्तु पर्याय में **सम्पूर्ण मुक्ति को जो प्रमोद से प्राप्त करता है,...** आहाहा! वह आनन्द से मुक्ति को प्राप्त करता है। कष्ट सहन करके और दुःख सहन करके प्राप्त करता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? जो प्रगट—शुद्धबोधस्वरूप—पूर्ण ज्ञानमयस्वरूप ऐसी जो मुक्ति, सदा शिवमय—आनन्दमय, कल्याणमय, (ऐसी) सम्पूर्ण मुक्ति को जो आनन्द से प्राप्त करता है। आहाहा!

ऐसा वह स्ववश मुनिश्रेष्ठ जयवन्त है। ऐसा वह स्ववश—भगवान आत्मा के आधीन हुआ (है और) परवशपना जिसे छूट गया है, वह मुनि श्रेष्ठ है, जयवन्त है, ऐसा कहते हैं। दूसरे की ... से बताते हैं... जयवन्त है, ऐसे मुनियों की जय है। समझ में आया? आहाहा! यह स्ववश आवश्यक क्रिया करनेवाला है। भेदविज्ञान की क्रिया द्वारा

पूर्ण मुक्ति को इस प्रकार से स्ववश मुनि प्राप्त करता है। ओहोहो! वस्तु पूर्ण का स्वीकार, पर्याय में आस्रव का नाश, निर्जरा का—पूर्व के कर्म का अभाव का होना और उस भेदज्ञान द्वारा पूर्ण मुक्ति का प्राप्त करना। समझ में आया? इसलिए वह आनन्द से मुक्ति को प्राप्त करता है और पर से भेदज्ञान करके प्राप्त करता है। वह राग से और व्यवहार से प्राप्त नहीं करता, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया? व्यवहार जो विकल्प है, उससे तो भेद किया है। भेद किया है, वह उससे कैसे प्राप्त करे अब? समझ में आया?

राग के अभावस्वभाव स्वरूप को पकड़ा है (और) राग से तो भेद किया है, व्यवहार से भिन्न किया है। अब भिन्न किया, वह अपनी परिणति से आगे बढ़कर पूर्णता को प्राप्त करता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भारी कठिन जैनमार्ग। अलौकिक है। आहाहा! अरे! जिसके फल अनन्त आनन्द और वह सादि-अनन्त प्रगट हुआ, वह अनन्त काल ऐसी की ऐसी अनुभवदशा, अमृत के वेदन की सादि-अनन्त दशा, उसका कारण तो कैसा होगा? समझ में आया? ऐसे सन्त-मुनि में श्रेष्ठ अल्प काल में मुक्ति को प्राप्त करनेवाले हैं, वे जयवन्त हैं। उनका साधक स्वभाव सन्तों ने प्रगट किया, वह जयवन्त वर्तता है। समझ में आया? २४७ हुआ। एक में पूरा करते हैं, ऐसी शैली है। दिगम्बर सन्तों की शैली, पूर्णता को प्राप्त—पूर्ण वस्तु की दृष्टि प्राप्त और पूर्णता पाने की तैयारीवाले, पर्याय में पूर्णता पाने की—ऐसी बात ही सब एक-एक श्लोक में पूर्ण आती है। आहाहा! समझ में आया? (कलश) २४८।

प्रध्वस्तपञ्चबाणस्य पञ्चाचाराञ्चिताकृतेः।
अवञ्चक-गुरोर्वाक्यं कारणं मुक्ति-सम्पदः ॥२४८॥

श्लोकार्थ : अरे! कामदेव के पाँच बाण को तो जिसने नाश किया है (अर्थात्) पाँचों इन्द्रिय के विषय की ओर से हट गया है, ऐसा कहते हैं। अणीन्द्रिय ऐसा भगवान आत्मा, वह पाँच इन्द्रिय की ओर के विकल्प को जिसने नाश किया है और यहाँ पंचाचार से शोभित है। ऐसे पंचबाण (रूप) काम के विकल्पों का अभाव है और पंचाचार से वह शोभित है। समझ में आया? **(ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप-वीर्य...)** ज्ञानाचार—अन्तर ज्ञान में एकाग्रता; दर्शनाचार—समकित की एकाग्रता; चारित्र, वीर्य और तप—यह सब पंचाचार निर्विकल्प है। **पंचाचार से सुशोभित जिनकी आकृति**

है—जिनका स्वरूप है। ऐसे परम-आवश्यक के करनेवाले मुनि होते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **पंचाचार से सुशोभित...** वापस मात्र शोभित नहीं, सुशोभित है। अन्दर ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप-वीर्य पुरुषार्थ से अन्तर निर्-अवयव निर्विकल्पदशा से शोभित हैं।

ऐसे अवंचक गुरु का वाक्य—ऐसे मायाचार रहित गुरु का वाक्य मुक्तिसम्पदा का कारण है। वाक्य, लो, ठीक। वाक्य—वचनपने का भाव। ऐसा सिद्ध करते हैं कि ऐसे गुरु का वाक्य, ऐसा होता है कि पर की उपेक्षा कराकर स्व की अपेक्षा करावे, ऐसा उनका वाक्य होता है। समझ में आया? व्यवहार और निमित्त आदि की उपेक्षा और पूर्ण परमात्मस्वभाव की अपेक्षा—ऐसा जो बतावे, वह गुरु का वाक्य है। आहाहा! समझ में आया? उनके वाक्य में, राग करनेयोग्य है और राग से लाभ—ऐसा वाक्य नहीं होता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसे अवंचक... आहाहा! चैतन्यस्वभाव को जिसने खोल दिया है अन्दर से। निधान शक्तिरूप से था, परमात्मस्वरूप अपना निज शक्तिरूप से था, उसका सम्यग्दर्शन में स्वीकार करके 'पूर्ण मुक्त हूँ' ऐसा स्वीकार किया है और उसके साथ पंचाचार के परिणाम की निर्विकल्पदशा द्वारा जिनकी वर्तमान दशा सुशोभित है। आहाहा! नग्नपने से और पंच महाव्रत के परिणाम से वे शोभित हैं, ऐसा यहाँ नहीं कहा।

आहाहा! गजब बात है! दिगम्बर सन्तों की वाणी! यह तो पद्मप्रभमलधारि मुनि हैं, आचार्य नहीं। नीचे से... नीचे से... ठेठ सातवें गुणस्थान में वीतरागी पंचाचार की परिणति में स्थित हैं। आहाहा! उनका वाक्य **मुक्तिसम्पदा का कारण है...** अर्थात् कि गुरुओं का वाक्य ऐसा होता है, उनका उपदेश ऐसा होता है कि सब—निमित्त, राग और पर्याय से उपेक्षा कराकर तथा सारे—पूर्ण आनन्द के प्रति अपेक्षा करावे, ऐसा उनका वाक्य होता है। समझ में आया? वीतरागता प्रगट करे, ऐसा उनका वाक्य होता है। वीतरागता तो पर की उपेक्षा और स्व की अपेक्षा करे तो होती है। बहुत संक्षिप्त में (कथन है)। ज्ञान का पिण्ड प्रभु, अकेला ज्ञान का पुंज, ज्ञान की गाँठ, उसकी अपेक्षा करावे और पर्यायादि की उपेक्षा करावे, ऐसा गुरु का वाक्य है, वह मुक्ति का कारण है। आहाहा!

पंचम काल के मुनि की यह शैली है। काल कहाँ वहाँ अवरोधक था? काल से तो पार है, कहते हैं। समझ में आया? लो, (कलश) २४८ हुआ। संसार की सम्पदा मिले, ऐसा कि फल मिले, वह बात गुरु के वाक्य में नहीं होती, ऐसा कहते हैं। आहाहा! स्वर्ग मिले, समझ में आया? यह तीर्थंकरपना मिले, वह नहीं, कहते हैं यहाँ तो। गजब की बात है न! यहाँ तो मुक्ति की सम्पदा मिले, ऐसा उनका वचन—उपदेश होता है। क्योंकि स्वयं मुक्ति की सम्पदा को साध रहे हैं। समझ में आया? पंचाचार है न, वह साधक है। उनके वचन—उपदेश ऐसा ही आता है। उसे मोक्ष के साधक और वास्तव में आवश्यक क्रिया के करनेवाले, उन्हें कहा जाता है। बात तो न्याय से (और) सादी भाषा से बात की है। उसमें कहीं बहुत कड़क कठिन ऐसा कोई शब्द (नहीं है और) संस्कृत और व्याकरण और पढ़े हुए हों तो समझ में आये, ऐसा कुछ नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

यह परमात्मा होना चाहता है अर्थात् सिद्ध होना चाहता है। वह परमात्मास्वरूप जो आत्मा पूर्ण है, उसके स्वीकार में—पंचाचार में रमता है, बस उसे मुक्ति अल्प काल में प्राप्त होगी। पंचम काल के साधु हैं न, (तो) अभी तो मुक्ति नहीं। अरे, सुन न भगवान! आहाहा! स्वरूप पूर्णानन्दस्वरूप, उसका जिसे अन्दर में दुलार—आनन्द का अनुभव हुआ है, अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद का स्वादिया मुनि है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में वह स्वादिष्ट स्वाद लेते-लेते, कहते हैं कि पूर्ण मुक्ति को प्राप्त करेंगे, कहते हैं। उसे कुछ दु:ख होगा और ऐसा कठिन सहन करना पड़ेगा, ऐसा कुछ है नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसा एक-एक श्लोक वे ४५ (श्वेताम्बरों के सूत्र) वाँच जाये तो भी मिले नहीं। आगम किसके कहलायें तब? परन्तु ऐसा हो गया है, क्या करे? खबर रही नहीं, फेरफार कर डाला। आहाहा!

यह परमागम अमृत के झरने हैं न, देखो न! परमागम। अनादि से जो धारा चली आती है भावश्रुत की, वह परम आगम है, उसमें यह कथन है। व्यवहार आवश्यक की क्रिया, वह आवश्यकवाली है, ऐसा यहाँ नहीं बतलाया। बीच में व्यवहार होता है, परन्तु वह तो जाननेयोग्य है, ऐसा उसकी ज्ञान की पर्याय में ज्ञात हो जाये, इतनी बात है बस। समझ में आया? आचरण में तो अपने दर्शन-ज्ञान-चारित्र का आचरण ठीक है।

ओहोहो! सिद्ध समान स्वरूप को सिद्ध समान की पर्याय में अनुभवता है, उसे अल्प काल में सिद्धपना होता है। २४९ (कलश)।

इत्थं बुद्ध्वा जिनेन्द्रस्य मार्गं निर्वाणकारणम्।
निर्वाण-सम्पदं याति यस्तं वन्दे पुनः पुनः॥२४९॥

श्लोकार्थ : अरे! **निर्वाण का कारण ऐसा जो जिनेन्द्र का मार्ग,...** आहाहा! स्वरूप की पूर्ण दृष्टि करके पंचाचाररूप से परिणमना, वह जिनेन्द्र का मार्ग है, निर्वाण का कारण है, वही मार्ग मोक्ष का कारण है। मोक्ष अर्थात् पूर्ण आनन्द अथवा पूर्ण शान्ति। पूरा संसार सब जहाँ शमन हो गया है और अकेली शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति पूर्ण प्रगट हुई है, उसे निर्वाण (कहते हैं)। ऐसी पूर्ण शान्तिरूप निर्वाण, उसका कारण ऐसा जो जिनेन्द्र का मार्ग—वीतरागी भगवान आत्मा के आश्रय से प्रगट हुई दशा, वह जिनेन्द्र का मार्ग है। समझ में आया? ऐसा जिनेन्द्र मार्ग **उसे इस प्रकार जानकर...** ऐसा वापस। स्व के आश्रय से प्रगट हुई जो दशा, वह जिनेन्द्र का मार्ग है, ऐसा इसे निर्णय करना चाहिए। वीतरागी भगवान पूर्णानन्द के आश्रय से दशा प्रगट हो, वह जिनेन्द्र का मार्ग, वह आत्मा का मार्ग, वह वीतराग का मार्ग। समझ में आया?

उसे इस प्रकार जानकर... इस प्रकार अर्थात् आत्मा अपना स्वभाव पूर्ण है, उसके आश्रय से पंचाचार प्रगट हुए हैं, वह जिनेन्द्र का मार्ग है—ऐसा उसे जानना चाहिए। व्यवहार का विकल्प, वह कहीं जिनेन्द्र का मार्ग नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कहो, भीखाभाई! ऐसा सुना था कहीं? आहाहा! ऐसा मार्ग परमात्मा का, परमात्मा का अर्थात् कि तेरा। आहाहा! भाई! यह सब खदबदाहट इसमें कहीं है ही नहीं। यह तो प्रभु भगवान (आत्मा) तो शान्त शीतल, शान्त शीतल वीतराग का महा सरोवर—समुद्र है। उसके आश्रय से जो पंचाचार (रूप) वीतरागी परिणति प्रगट हो, बस वही परम आवश्यक, वह जिनेन्द्र का मार्ग। कहो, समझ में आया?

उसे इस प्रकार जानकर... अर्थात् ऐसा ही मार्ग है, इस प्रकार बराबर जानकर। दूसरे प्रकार से नहीं कि व्यवहार से होगा और ढींकणा से होगा। **जो निर्वाण सम्पदा को प्राप्त करता है,...** यहाँ तो (कहते हैं कि) इस प्रकार जानकर जो निर्वाण सम्पदा को

पाता है। जाना अर्थात् उस जाति का कारण भी प्रगट किया। आहाहा! निर्वाण शान्ति... शान्ति... पूर्ण अकषायपरिणति, यथाख्यात जो शक्तिरूप है, ऐसी पर्यायरूप प्रतीति पाता है। लो, यह सम्पदा। यह धूल की सम्पदा यहाँ नहीं आयी, कहते हैं। शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... ऐसी पूर्ण शान्तिरूपी निर्वाणपद को पावे **उसे मैं पुनः पुनः वन्दन करता हूँ।** कहते हैं। मेरा आदर वहाँ है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? राग में और निमित्त में (आदर) नहीं।

पूर्णानन्द प्रभु सच्चिदानन्द नाथ आत्मा, आहाहा! उसका आश्रय करके जो वीतरागपरिणति प्रगट हुई, वही निर्वाणसम्पदा को पाता है। ऐसा कि बड़ी-बड़ी बातें... बापू! तेरे घर की (बात) तो यह है। तू बड़ा, तेरी परिणति बड़ी, तेरा फल बड़ा। समझ में आया? जगत में तेरे अतिरिक्त महत्ता किसे है? आहाहा! और ऐसा बड़ा महाप्रभु, उसके आश्रय से प्रगट हुई दशा भी महा बड़ी है और उसके फलरूप से शान्ति की दशा(रूप) सम्पदा भी बड़ी है। आहाहा! उसे श्रद्धा-ज्ञान में तो यह बात ले कि मार्ग तो यह है। इसके अतिरिक्त कोई मार्ग दूसरा कहते हो तो वह मार्ग भगवान के मार्ग में नहीं है। आहाहा! दीनता, चार गति में भटकने का मार्ग है। ऐसी सम्पदा को पाता है, **उसे मैं पुनः-पुनः वन्दन करता हूँ।** इसका अर्थ कि बारम्बार मेरी निर्विकल्प आचरणदशा प्रगट होती है, उसका मैं आदर करता हूँ।

(कलश) २५०। एक गाथा के तो आठ श्लोक किये। '**परिचत्ता परभावं**' है न? '**अप्पाणं झादि णिम्मलसहावं**' दो ही बात। परभावों को छोड़कर आत्मा को ध्यावे, वह अल्प वश है, अपने वश है ऐसा। ऐसे कार्य को आवश्यक कहा गया है। ऐसी बात है यह। आहाहा! गजब बात है। कुन्दकुन्दाचार्य की शैली गजब है। परमात्मा के मार्गानुसारी... परमात्मा के मार्गानुसारी और परमात्मा होने की तैयारीवाले।

स्ववशयोगि-निकायविशेषक
प्रहतचारुवधूकनकस्पृह।
त्वमसि नश्शरणं भवकानने
स्मरकिरातशरक्षतचेतसाम्॥२५०॥

ओहो! **श्लोकार्थः जिसने सुन्दर स्त्री और सुवर्ण की स्पृहा को नष्ट किया है,...** जिसने सुन्दर ऐसा भगवान आनन्द का नाथ, उसका जहाँ शरण आया, उसे उनकी स्पृहा कहाँ रहे? अब तो पूर्णानन्द की प्राप्ति की स्पृहा एक ही है। आहाहा! समझ में आया? सुन्दर स्त्री, शरीर की नरमाई और कोमलता देखकर जो उल्लसित विकल्प होता है, वह तो महा भ्रम है। उसमें कहीं सुख है नहीं। सुख तो भगवान आत्मा के स्वभाव में पड़ा है। ऐसा जिसे भान हुआ, उसे तो सुन्दर स्त्री और स्वर्ण की स्पृहा जिसे छूट गयी है। जिसे अकेली पूर्णानन्द की प्राप्ति की स्पृहा रही है। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन में इन्द्र के इन्द्रासनों की स्पृहा छूट गयी है। समझ में आया? जहाँ परमानन्द स्वभाव, जिसका सत्त्व और अस्ति ही परमानन्दवाली है, ऐसा जो भगवान, उसकी जिसे दृष्टि और स्वीकार पूर्ण आत्मा का हुआ, उसे तो पूर्ण आनन्द की प्राप्ति की ही स्पृहा होती है। यह स्त्री और स्वर्ण की स्पृहा उसे नहीं होती। आहाहा! समझ में आया?

यह सब दुःख दावानल की इच्छा है। कषाय अग्नि में पड़ता है, विषय की वासनावाले कषाय की अग्नि में कूद पड़ते हैं। आहाहा! जैसे पतंगा दीपक को देखकर कूद पड़ता है, उसी प्रकार विषय के रसिया उन विषयों की अनुकूलतावाले निमित्तों को देखकर कूद पड़े (तो) सुलगते हैं, कहते हैं। यह स्पृहा धर्मी को नहीं होती। आहाहा! अरे! जिसे सुन्दर ऐसा भगवान आत्मा, आनन्द का... आनन्द के सागर का जहाँ स्वीकार हुआ, उसे वह स्त्री और स्वर्ण की स्पृहा क्यों हो? उसमें से उसकी सुखबुद्धि नष्ट हो गयी है। समझ में आया? **ऐसे हे योगीसमूह में श्रेष्ठ...** ऐसे अन्तर के स्वरूप के जुड़ानवाले और बाहर की स्पृहा के नाशवाले, ऐसा। आहाहा! **हे योगीसमूह में श्रेष्ठ स्ववश योगी!** तू तो भगवान तेरे अतीन्द्रिय आनन्दस्वभाव के वश हो गया है। तू तो आत्मवश है, हों! आहाहा! जरा मुनि को स्वयं को निर्बलता का विकल्प आवे न, ऐसी अपेक्षायें डालकर (कहते हैं)। हैं तो मुनि। आहाहा!

अरे! **स्ववश योगी!...** आत्मा आनन्दमय प्रभु है, ऐसा जिसे पर्याय में प्रगट हुआ है। वह आत्मा के वश है, विकल्प और निमित्त के वश छूट गया है। आहाहा! यद्यपि सम्यग्दृष्टि को (भी) राग और निमित्त का आधीनपना तो छूट गया है, परन्तु उसे जो अस्थिरता बाकी थी, वह भी आत्मा के वश हुए भगवान सन्त को वह अस्थिरता भी छूट

गयी है, ऐसा कहते हैं। आसक्ति भी छूट गयी है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन में पूर्ण आनन्द का जहाँ स्वाद आया, उसे राग का और निमित्त का भाव छूट गया है, उसका प्रेम अन्दर से विरक्त हो गया है। आहाहा! परन्तु मुनि समकिती जो है, (उन्हें) अस्थिरता का आसक्तभाव निर्बलता के कारण (था); निमित्त के कारण नहीं, परन्तु निर्बलता के कारण था, वह भी जहाँ नाश हो गया है। समझ में आया?

तू हमारा—कामदेवरूपी भील के तीर से घायल चित्तवाले का... आहाहा! अरेरे! किसी समय विकल्प की वृत्ति जरा अस्थिरता को पावे, उसे जरा घायल है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? अरे! हमारा ज्ञान आनन्दमय है, उसमें किसी समय ऐसी विकल्प की वृत्ति जरा उठे तो, कहते हैं कि **कामदेवरूपी भील के तीर से...** कामदेवरूपी भील, उसका जो तीर। आहाहा! **घायल चित्तवाले...** उस **भवरूपी अरण्य में...** तेरी **शरण है** मुझे। आहाहा! स्वरूप की शरण है उसमें, कहते हैं। समझ में आया? योगी! 'तेरी शरण है', ऐसा कहते हुए अपना स्वभाव अखण्डानन्द है, वह मुझे शरण है। इस वृत्ति से जरा अस्थिरता होती हो, घायल चित्तवाले हैं, परन्तु हमारा शरण तो हमको यह है, कहते हैं। समझ में आया? अरे! अध्यात्म की बातें भी कोई अलौकिक है!

है न इसमें। अध्यात्म की बात सुनी परन्तु... पद्मनन्दिपंचविंशति, नहीं? स्वरूप की वार्ता भी सुनी प्रीति (वाले) चित्त से... आहाहा! जिसने प्रेम से ऐसी बात सुनी है... जिसे विकल्प जरा निर्बलता का उठे, वह भी नुकसानकारक है। स्वरूप की शरण में जाने से जो दशा प्रगट होती है, वही आत्मा को आनन्ददायक और मुक्ति को देनेवाली है। यह बात जिसने चित्त से, प्रेम से, हृदय से सुनी, उसे रुचि है, तब वह बारम्बार सुनता है, ऐसा कहते हैं। वह 'भावि निर्वाण भाजनं।' आहाहा! वह अल्प काल में केवलज्ञान का पात्र होगा अर्थात् अल्प काल में केवलज्ञान लेगा। आहाहा! **भवरूपी अरण्य में...** विकल्प का बड़ा रण, उसमें शरण आत्मा है। समझ में आया? स्वरूप में जुड़ान होना, वह शरण है। २५० (कलश हुआ। अब), २५१ (कलश)।

अनशनादितपश्चरणैः फलं
तनुविशोषणमेव न चापरम्।

तव पदाम्बुरुहद्वयचिन्तया
स्ववश जन्म सदा सफलं मम ॥२५१ ॥

आहाहा! **श्लोकार्थः अनशनादि तपश्चरणों का फल शरीर का शोषण (सूखना) ही है,...** लो, अभी आये थे न ... बचुभाई। ... उनकी बहू वर्षीतप करती होगी। .... यह हमारे घर में अभी वर्षीतप करते हैं, बचुभाई कहे। मैंने कहा, लंघन है, कहा। वह लाखोंपति की बहू। बचु होशियार गिना जाता है न! हीराभाई का पुत्र लक्ष्मीचन्द, वह होशियार गिना जाता है। वह बचु के घर से वर्षीतप करती है, ऐसा करके बतलाया। ... ऐसा नहीं। यह जरा सी कुछ यह शैली... मैंने कहा, लंघन है बहिन! आहाहा! राग की मन्दता हो तो मिथ्यात्वसहित पुण्य बाँधे, बाकी दूसरा कुछ है नहीं। गजब बात है। ऐ गिरधरभाई! मिथ्यात्व किया है। मैं राग करता हूँ, राग करनेयोग्य है, क्रिया कर सकता हूँ—दृष्टि तो वहाँ है, मिथ्यात्व तो पड़ा है पूरा। उसे सुनाने के लिये पूछा था। वह चलता था न, माहात्म्य था न! आहाहा! उसने वर्षीतप किया ... होवे मूल तो। अरे! यह जीव कहाँ जाता है ?

यहाँ कहते हैं कि अरेरे! हमारे चित्त में कोई वृत्ति... सहज भी चित्त हो जाये इस ओर, हमारी शरण तो भगवान आत्मा में अन्दर जुड़ना, वह शरण है। समझ में आया ? और अनशनादि का फल तो शरीर को सुखाना है। कर्म सूखे और मैल सूखे, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। '**तनुविशोषणमेव न चापरम्**' आहाहा! अस्ति-नास्ति की है। अनशन, ऊनोदर, वृत्तिसंक्षेप, रसपरित्याग, कायक्लेश, प्रति..., प्रायश्चित्त इत्यादि ऐसे जो तपश्चरण... लोग कहे न कि तपस्या का फल तो निर्जरा होता है। अब कौनसी तपस्या ? सुन न! यह तो तेरी शरीर को पोसने की तपस्या है। आहाहा! समझ में आया ? शरीर का सुखाना है। शरीर सूखे, निर्बल पड़ जाये... **दूसरा नहीं...** ऐसा। दूसरा जरा भी लाभ नहीं, ऐसा कहते हैं। कर्म का जरा भी अभाव होता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! बहिर्बुद्धि से विकल्प की क्रियायें अनशन, ऊनोदर, रसपरित्याग, कायक्लेश बन्ध का कारण है। शरीर सूखने का कारण है। शरीर सूखता है। आहाहा!

बापू! आत्मा अन्तर वस्तु निर्विकल्प आनन्द का घन है, ऐसा तो जहाँ दृष्टि में

आया नहीं, ऐसी सत्ता का स्वीकार है नहीं, तो किस सत्ता के स्वीकार से तुझे यह करना है ? मैं यह राग हूँ, यह मैं हूँ और यह छोड़ता हूँ और रखता हूँ—यह सब विकल्प के जाल शरीर को सुखा डालते हैं, ऐसा है, कहते हैं। उसमें कहीं आत्मा को जरा भी राग घटे, राग घटे—ऐसा भी नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसमें ही पूरा जगत जीव मानकर बैठा है। आहाहा! देखो! ऐसे ...., अनशन करे, ऊनोदर करे, रस करते नहीं, पूरे दिन शास्त्र वाँचा करता है धर्मध्यान में... वाँचा करे, उसमें धर्म कहाँ आया ? सुन न! आत्मा को वाँचता नहीं और यह सब वाँचे, वह सब कायक्लेश है, ऐसा कहते हैं। ऐ कान्तिभाई! बहुत कामकाज भाई ऐसा। जो अपवास करते हों, वर्षीतप करते हों, वह सुने उन्हें ऐसा लगे यह। यह कब.... ? शरीर का पोसना है। आहाहा!

परलक्ष्यी क्रिया में राग की मन्दता कदाचित् हो, परन्तु उसमें शरीर सूखता है, बन्ध तो जरा भी सूखता नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा शुद्ध आनन्द का नाथ घन प्रभु का आश्रय और शरण बिना जो कुछ करे, उसमें कुछ भी—जरा भी आत्मा को लाभ नहीं। जादवजीभाई! वर्षीतप किया होगा न घर में ? किया था ? ठीक। .... के घर में करे तब उत्सव हो न हर्ष का ? .... रीति की खबर न हो। मोहनभाई ने किया होगा। ... अरेरे! भगवान त्रिकाली चिदानन्दस्वरूप का जहाँ आश्रय होकर, उसका भेंट होकर जो निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति भाव प्रगट हो, वह महा मोक्ष का कारण है, बाकी सब थोथेथोथा है। समझ में आया ? भगवान को समीप में रखा नहीं और राग की क्रिया को समीप में रखा, भगवान को दूर रखा और राग की, देह की क्रिया को नजदीक किया। गर्म पानी पीते थे न सब। तीन-तीन बार किये हैं न क्या ? उपधान। तीन बार ? चार बार किये। तीन बार तो भाई चेतनजी ने तीन बार, इन्होंने चार। आहाहा! लंघन करायी थी... आहाहा! वह धर्म ही नहीं।

हमारे हीराजी महाराज बेचारे... कषाय मन्द। देखो तो गम्भीर। हमारे सम्प्रदाय के गुरु ऐसे गम्भीर। लोग मन्दिरमार्गी देखे तो उन्हें ऐसा हो जाये कि स्थानकवासी में ऐसे साधु! शरीर शान्त गम्भीर। यह सब करना, वह धर्म। पर की दया पालना, वह धर्म; अपवास करना, वह निर्जरा। यहाँ तो सख्त बात है। अनशनादि तपश्चरणादि का फल शरीर का शोषण... शोषण... शरीर शोषित हो जाये। उसमें जरा भी कर्म और राग

शोषित हो, ऐसा है नहीं। आहाहा! शुभराग धर्म है, ऐसी बात नहीं ली। **हे स्ववश!** हे मुनि! मुनि को लक्ष्यकर कहते हैं, परन्तु अपनी जाति के लिये।

हे आत्मवश मुनि! पूर्ण आनन्द का नाथ ऐसा आत्मा, उसके वश हो गया है प्रभु, वह आत्मवश सन्त है। **तेरे चरणकमल-युगल के चिन्तन से...** तेरे चरणकमल के युगल के चिन्तन से **मेरा जन्म सदा सफल है।** आहाहा! मेरे स्वरूप के चिन्तन से— एकाग्रता से मेरा जन्म सफल है, ऐसा कहते हैं। अनशनादि से सफल नहीं, ऐसा। आत्मा के ध्यान की एकाग्रता से मेरा जन्म सफल है। समझ में आया? एकान्त है एकान्त, ऐसा लगे लोगों को, हों! राग करते-करते होगा, ऐसा अनशन-उपवास आदि का त्याग करे तो अन्दर आगे जाया जाये। परन्तु किसका अभ्यास? वह तो राग का अभ्यास करता है। समझ में आया? उसमें आत्मा का अभ्यास कहाँ आया वहाँ? आहाहा! लो, ऐसा अन्दर अनुभव में निर्णय होता है, ऐसा कहते हैं। भगवान को... पाँचवें काल के साधु हैं। परन्तु अन्तर आत्मा के स्वभाव का आश्रय लिया है (तो) मेरा जन्म सफल है। समझ में आया? इस चैतन्य भगवन की शरण में आया, उसका जन्म सफल है, बाकी सब ऐसे अनशन, ऊनोदरी करनेवाले, उनके सब जन्म अफल है।

बाह्यक्रिया का तो बहुत तिरस्कार है, ऐसा कहते हैं। तिरस्कार नहीं, उसके स्वरूप का आदर नहीं। वह शुभराग है न, भाई! पुण्य बँधे, वह तो अबन्धस्वभाव है, उसे बन्ध हुआ। उसमें जो स्वर्ग मिले, वह तो जन्म कलंक है। अरे! ऐसा चैतन्य अमृत का पुंज, उसे ऐसे संयोग में आना, चैतन्य भगवान अमृत की कातली, उसे ऐसे जहर के भव में अवतरित होना। आहाहा! कहते हैं, वह तो बन्ध के कारण तो सब जन्म को अफल करने के हैं। आत्मा का आश्रय करके जो पर्याय हो, वह जन्म सफल है। समझ में आया? २५२ (कलश)।

जयति सहजतेजोराशिनिर्मग्नलोकः,
स्वरसविसरपूरक्षालितांहः समन्तात्।
सहज-सम-रसेनापूर्ण-पुण्यः पुराणः,
स्ववशमनसि नित्यं सन्स्थितः शुद्धसिद्धः॥२५२॥

श्लोकार्थः जिसने निज रस के विस्ताररूपी पूर द्वारा पापों को सर्व ओर से धो डाला है,... ऐसा **सहज तेजराशि में मग्न जीव...** स्वाभाविक तेजराशि—ज्ञान का पिण्ड भगवान, ज्ञान का पुंज प्रभु, स्वाभाविक ज्ञान का पुंज, ऐसी तेजराशि—पुंज, उसमें जो मग्न है, उस जीव ने निजरस के विस्तार से पूर द्वारा पाप को सर्व ओर से धो डाला है। उसने तो आत्मा के आनन्द के रस के विस्तार से—आत्मा के आनन्द के रस के फैलाव से (अर्थात्) पर्याय में विकसित करके ऐसे उत्पन्न पूर द्वारा पाप को सर्व ओर से धो डाला है। पुण्य और पाप का व्यय कर डाला है, ऐसा कहते हैं।

निज रस के विस्तार... अपना आत्मरस आनन्द का विस्तार अर्थात् पर्याय में प्रगट होना। **तेजराशि में मग्न जीव...** आनन्द का नाथ भगवान, उसमें जो मग्न जीव, वह निजरस के विस्तार से—निज शक्ति के फैलाव से—परिणति निर्मल होने से—निज तेजराशि में मग्नता के कारण निर्मल आनन्द की शान्ति की पर्याय प्रगट होने से उस विस्ताररूपी पूर... पूर... पानी का पूर, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उस द्वारा जिसने... उस द्वारा जिसने, ऐसा। पुण्य-पाप को सर्व ओर से धो डाला है, पुण्य-पाप, आहाहा! सर्व ओर से धो डाला है, ऐसा।

जो सहज समतारस से पूर्ण भरा होने से पवित्र है,... वह मुनि स्वाभाविक समतारस से पूर्ण भरपूर होने से पवित्र है। **जो पुराण (सनातन) है,...** वस्तु भी ऐसी है और उसकी पर्याय प्रगट हुई, वह भी सनातन यथार्थ है। **जो स्ववश मन में सदा सुस्थित है (अर्थात् जो सदा मन को—भाव को स्ववश करके विराजमान है)...** पर्याय में, (ऐसा कहना है)। आहाहा! **और जो शुद्ध सिद्ध है...** पर्याय में, हों! सिद्ध समान जिसकी पर्याय प्रगट हुई है। भले कम हो। समझ में आया? त्रिकाली भगवान आत्मा शक्ति का सत्त्व, उसकी एकाग्रता से पर्याय में सिद्धसमान दशा प्रगट हुई है। **ऐसा सहज तेजराशि में मग्न जीव जयवन्त है।** उसकी जय है। भगवान पूर्णानन्द के आश्रय से परिणति (हुई) प्रगट, शान्ति की, आनन्द की प्रगट की है, वह जीव इस जगत में जयवन्त है। समझ में आया? दूसरे सब हार गये हैं, कहते हैं। उसकी जय है। २५२ हुआ।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण २, गुरुवार, दिनांक - ०४-११-१९७१
श्लोक-२५३-२५४, गाथा-१४७, प्रवचन-१६८

यह नियमसार सिद्धान्त है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर मुनि संवत् ४९ में लगभग हुए, उन्होंने भगवान के पास जाकर... सीमन्धर परमात्मा के पास गये थे, आठ दिन रहे थे, वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाया। नियमसार सिद्धान्त, इसमें १४६ गाथा, इसमें २५३ कलश चलता है। २५३ अधिकार क्या है? परम-आवश्यक, निश्चय परम-आवश्यक अर्थात् आत्मा में सच्चा स्वभाव जो आत्मा का त्रिकाली आनन्द और ज्ञान स्वभाव है, उसका आश्रय लेकर उसमें, लीनता होना, जो निर्विकल्प सम्यग्दर्शन, निर्विकल्प सम्यग्ज्ञान और निर्विकल्प सामायिक चोविसंथो है। वस्तु त्रिकाली भगवान आत्मा के स्वभाव में लीनता करना, वह आवश्यक कर्म है। समझ में आया? सामायिक, चोविसंथो, वन्दन, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग—यह विकल्परूप जो है, वह तो व्यवहार है। वह सच्चा आवश्यक नहीं। सच्चा आवश्यक तो भगवान आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप अपना निजस्वरूप—स्वभाव, उसमें लीनता, स्वद्रव्य के आश्रय से जो लीनता उत्पन्न होती है, उसका नाम जरूर का—आवश्यक कार्य कहा जाता है। अरे, भारी सूक्ष्म!

ऐसा आवश्यक कर्म सम्यग्दृष्टि प्रथम में—शुरुआत में सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान... अपना त्रिकाली भगवान शुद्ध चैतन्य आनन्दकन्द में एकाग्र होकर निर्विकल्प आनन्द का स्वाद आना और उसमें प्रतीति होना कि सारा आत्मा आनन्द और शुद्ध (रूप) है, उसका नाम प्रथम सम्यग्दर्शन, धर्म, अवश्यक्रिया कहने में आती है। ऐसा मार्ग है। उसके उपरान्त सच्चे मुनि होते हैं, वे तो अपने आत्मा के अवलम्बन में—आश्रय में उग्ररूप से पुरुषार्थ करके स्थिर होते हैं, अपने स्वभाव के वश होते हैं और दया, दान, व्रत आदि का विकल्प जो राग है, उसके वश नहीं होते, उसको यहाँ स्ववश धर्मात्मा, सन्त और योगी कहा जाता है। समझ में आया? उसकी व्याख्या है। २५३ (कलश)।

सर्वज्ञ-वीतरागस्य स्व-वशस्यास्य योगिनः।
न कामपि भिदां क्वापि तां विद्मो हा जडा वयम्॥२५३॥

पद्मप्रभमलधारि मुनि दिगम्बर सन्त हैं, ९०० वर्ष पहले हुए हैं। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज २००० वर्ष पहले दिगम्बर सन्त आचार्य (हुए), उन्होंने बनाया सिद्धान्तशास्त्र। उनके (शास्त्र) की टीका करनेवाले पद्मप्रभमलधारिदेव, वे कहते हैं.... सूक्ष्म विषय है भगवान।

श्लोकार्थः सर्वज्ञ-वीतराग में और इस स्ववश योगी में कभी कुछ भी भेद नहीं है;... आहाहा! जिसको आत्मा में एक समय में त्रिकाल ज्ञान होता है, ऐसे सर्वज्ञ परमेश्वर हैं और वीतराग हैं वे तो। अरिहन्त परमेश्वर जिनको सर्वज्ञपना (अर्थात्) ज्ञान की एक समय की दशा में तीन काल-तीन लोक जानने में आते हैं और वे वीतरागभाव सहित हैं। ऐसे वीतराग सर्वज्ञ तीर्थंकर हैं, अरिहन्त हैं, उनमें और स्ववश योगी में... आहाहा! समकिती तो पहले आत्मा के आश्रय में अल्प आश्रयवाला है। सम्यग्दृष्टि धर्म की पहली सीढ़ीवाला भगवान सच्चिदानन्द प्रभु अपना अतीन्द्रिय आनन्द का स्वरूप—भाव, उसके वश सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के अंश में अपने स्वभाव के आधीन होता है। उसको सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। उसके उपरान्त यहाँ तो मुनि की बात है।

मुनि स्ववशयोगी हैं। आहाहा! छह आवश्यक, विकल्प के—राग के छह आवश्यक हैं, वह पुण्यबन्ध का कारण है, वह सच्चा आवश्यक नहीं। सच्चा आवश्यक—करनेयोग्य कार्य अपना आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा में लीनता, उग्ररूप से लीनता, निर्विकल्पता, वीतरागता, निर्दोष दशा में जो लीन हैं मुनि, वह स्ववश योगी हैं। आहाहा! अपना आत्मा आनन्दस्वरूप के आधीन—वश है। विकल्प जो होता है राग, उसके वश नहीं होते। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! अनन्त काल में उसे सम्यग्दर्शन क्या और सम्यग्दर्शन कैसे होता है और मुनिपना कैसे किसके आश्रय से होता है, (उसकी) खबर नहीं। यह तो क्रियाकाण्ड करो, यह करो, वह करो, वह करो—वह तो सब विकल्प है, वह कोई आवश्यक कार्य नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो भगवान सन्त-मुनि पद्मप्रभमलधारिदेव ऐसा कहते हैं कि भैया! सर्वज्ञ

वीतराग परमेश्वर हैं... और जो स्ववश योगी हैं, अन्तर स्वरूप में निर्विकल्प आनन्द में लीन हैं, उसका नाम स्ववश योगी—मुनि कहने में आता है। उस **स्ववश योगी में कभी कुछ भी भेद नहीं।** आहाहा! सम्यग्दर्शन में तो स्वरूप की अन्तर अनुभव-दृष्टि में तीन कषाय का अभाव होकर जो चारित्र होता है, वह चीज़ उसको नहीं है। उसको तो मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का अभाव होकर स्वरूप की अनुभव-दृष्टि और स्वरूप में लीनता का स्वरूपाचरण अंश, उसका नाम सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थानवाला कहा जाता है। समझ में आया? उसके उपरान्त मुनि अर्थात् कि जिसकी आत्मा में—परम आनन्द में बहुत उग्रता से लीनता अन्दर हुई है। आहाहा! निर्विकल्प आनन्द का स्वाद उग्र आया है, समझ में आया? वह स्ववश योगी है। अपने स्वभाव में आधीन-वश है, उसको स्ववश योगी कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? मुनि और सर्वज्ञ वीतराग में कभी कुछ भी... किसी काल में और कुछ भी भेद नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसी अन्तर निर्विकल्प आनन्ददशा, जिसमें पंच महाव्रत का विकल्प भी राग और बन्ध का कारण है, आहाहा! समझ में आया? उसको भी छोड़कर अपना आनन्द भगवान सच्चिदानन्द प्रभु के आधीन लीन हो गया है, अन्तर में आत्मा के आनन्द में घुस गया है, वह अपने आत्मा के स्ववश कहने में आता है। यह मुनि और सर्वज्ञ वीतराग में अन्तर नहीं है। आहाहा! समझ में आया? **तथापि**—तो भी **अरेरे!...** मुनि जरा कहते हैं कि **हम जड़ हैं कि उसमें भेद मानते हैं।** सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर और मुनि... जो अन्तर्मुख होकर आनन्द में लीन हैं, वह मुनि, हों! मुनि अर्थात् कोई नग्नपना ले लिया, पंच महाव्रत की क्रिया का राग (हो), वह मुनि नहीं। समझ में आया? आहाहा! अन्तर के आनन्द में लीन अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद उत्कृष्ट आया है, प्रचुर स्वसंवेदन—आनन्द का प्रचुर—उग्र वेदन आया है, सम्यग्दृष्टि से भी मुनि को तो आनन्द का विशेष वेदन अन्दर है। आहाहा! ऐसा सच्चे मुनि और केवली वीतराग दोनों में अन्तर नहीं है, कहते हैं। पण्डितजी! समझ में आया? थोड़ा अन्तर है, वह यहाँ गिनने में नहीं आया। यह (कलश) २५३।

ओहो! मुनि तो पंच परमेष्ठी हैं। पंच परमेष्ठी में शामिल हैं। जिसको गणधरदेव भी 'णमो लोए सव्वसाहूणं' (कहते हुए) जिसको गणधर का नमस्कार पहुँचे, ऐसी जो

अन्तरदशा, उसको यहाँ मुनिपना कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसे तो 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' पण्डितजी! आता है छह ढाला में? दौलतरामजी (कृत)। पण्डितजी! वह छहढाला में आता है। 'मुनिव्रत धार...' २८ मूलगुण, पंच महाव्रत ऐसी शुक्ललेश्या धारण करके अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक में गया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो...' परन्तु वह धर्म नहीं। 'आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो....'

उसका अर्थ कि आत्मा जो विकल्प से रहित, राग की क्रिया से भी रहित है, ऐसी चीज़ का अन्तर अनुभव बिना आनन्द आया नहीं और आनन्द आये बिना उसको सम्यग्दृष्टि कहते हैं नहीं। आहाहा! पंच महाव्रत की क्रिया, २८ मूलगुण की क्रिया भी दुःखरूप है, ऐसा कहा, क्योंकि राग है। ऐसा करते हुए भी आत्मज्ञान बिना लेश सुख नहीं पाया। आत्मा के आनन्द का लेश—अंश नहीं मिला उसमें। आहाहा! उसका अर्थ क्या हुआ? कि वह राग की क्रिया पंच महाव्रत के विकल्प-वृत्ति उठती है, वह तो दुःखरूप है। उसमें सुख नहीं, उसमें धर्म नहीं। आहाहा! गजब बात है। जैनदर्शन-वीतरागदर्शन समझना अलौकिक चीज़ है। ऐसी चीज़ अन्यत्र कहीं है ही नहीं।

ऐसे वीतराग परमात्मा कहते हैं, अन्तर में आनन्दकन्दस्वरूप प्रभु का स्पर्श करके, आश्रय करके आनन्द का वेदन नहीं हुआ तो यह पंच महाव्रत की क्रिया आदि सब दुःखरूप हुई। समझ में आया? मार्ग तो अलौकिक मार्ग है, भाई! अभी सम्यग्दर्शन किसको कहते हैं, उसकी खबर नहीं। देव-गुरु-शास्त्र को मानो, यह सम्यग्दर्शन—यह बिल्कुल झूठ बात है। समझ में आया? चैतन्य भगवान पूर्णानन्दस्वभाव... यहाँ तो यह गाथा में ऐसा आया कि '**परभावं परिचित्ता**' ऐसा आया न! उसका कलश है। '**परभावं परिचित्ता अप्पाणं**' '**सहावं**' आत्मा के स्वभाव में लीन। विकल्प जो है शुभराग आदि, उसकी भी रुचि में छोड़कर अपना त्रिकाली आनन्द ज्ञायक स्वभाव की अन्तर अनुभव में रुचि करना, उसका नाम अभी तो प्रथम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? यह सम्यग्दर्शन न हो, वहाँ व्रत, चारित्र और तप होते नहीं। बिना एक के शून्य—अंक बिना की शून्य है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, भगवान आत्मा परमानन्द सहजानन्द की मूर्ति प्रभु, अपना

निज आत्मा, हों! निजात्मा में अन्तर्मुख... बहिर्मुख की लक्ष्य और दृष्टि छोड़कर, अन्तर स्वभाव में अन्तर्मुख होकर लीन होते हैं, अतीन्द्रिय आनन्द आता है, वह स्ववश मुनि है। अपने आधीन-वश हुआ सन्त है, उस सन्त और सर्वज्ञ वीतराग में कोई अन्तर नहीं है। समझ में आया? आहाहा! २५४ (कलश)।

एक एव सदा धन्यो जन्मन्यस्मिन्महामुनिः।
स्ववशः सर्व-कर्मभ्यो बहिस्तिष्ठत्यनन्यधीः ॥२५४॥

आहाहा! पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि दिगम्बर सन्त आनन्दकन्द में झूलनेवाले हैं, उन्होंने टीका की है। अतीन्द्रिय आनन्द, मुनि को तो सप्तम गुणस्थन और छठवाँ गुणस्थान क्षण-क्षण में आता है। हजारों बार, एक अन्तर्मुहूर्त में हजारों बार। सच्चे मुनि की बात है। समझ में आया? एक क्षण में विकल्प—वृत्ति उठे, अन्तर आनन्दकन्द की परिणति तो है, परन्तु विकल्प उठे जरा सुनने का, कहने का और विकल्प छूटकर क्षण में सप्तम गुणस्थान हो जाये और दूसरे क्षण में छठा, तीसरे क्षण में सप्तम, ऐसी जिसको दशा हो, उसको भगवान सन्त कहते हैं। समझ में आया? जिसको नींद भी पौन सेकेण्ड के अन्दर आती है, सच्चे सन्त मुनि की दशा ऐसी थी, ऐसी होती है कि जिसको नींद भी पौन सेकेण्ड के अन्दर है। पण्डितजी! क्या आया? वह छहढाला में आया न! पिछली रयनि... (भूमांहि पिछली रयनि में) कछु शयन एकासन करन। (ढाल ६, पद पाँच) एक पौन सेकेण्ड के अन्दर की निद्रा आवे। क्योंकि मुनिपना अर्थात् अन्तरदशा चारित्र की अलौकिक वीतरागता प्रगट हुई है। समझ में आया? ऐसे मुनि...

कहते हैं.... **श्लोकार्थः इस जन्म में स्ववश महामुनि एक ही सदा धन्य है...** आहाहा! **इस जन्म में स्ववश...** अपना भगवान आत्मा ज्ञान का पुंज, आनन्द का पुंज ऐसी चीज़ में लीनता... लीनता... निर्विकल्प लीनता, वीतरागी पर्याय से लीनता। वे **महामुनि एक ही सदा धन्य है...** जिसका अवतार सफल है, जिसने अन्तर दशा में ऐसा मुनिपना—भावलिंग प्रगट किया, वे धन्य हैं। समझ में आया? **इस जन्म में स्ववश महामुनि...** एक-एक शब्द में गहराई—बड़ा भाव है। आहाहा! देह की—शरीर की क्रिया तो जड़ की है, वह तो अपनी है नहीं। वाणी जड़ है, शरीर जड़ है और अन्दर में दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प उठता है, वह भी राग है, आस्रव है, बन्ध का कारण

है। आहाहा! उससे रहित अपना चैतन्य भगवान आत्मा के आधीन—वश होकर महामुनि यह आवश्यक क्रिया करनेवाला है, ऐसा कहते हैं। अवश्य की—आवश्यक क्रिया, अपने द्रव्यस्वभाव में लीनता करना, वह आवश्यक क्रिया है। जेठाभाई! गजब बातें, भाई! बहुत महँगी पड़ती है तुम्हारी बात। कोई मार्ग दूसरा होगा या नहीं इसका बाहर से? नहीं, भाई! मार्ग इसने समझण में लिया नहीं। मार्ग ही पूरा दूसरा है, प्रभु!

तेरा पंथ तो अन्तर आनन्दस्वरूप, अतीन्द्रिय आनन्द में घुसकर अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेना, यह आत्मा की आवश्यक क्रिया है, उसका नाम सामायिक कहते हैं, उसका नाम तीर्थंकर की स्तुति कहते हैं, उसका नाम वन्दन कहते हैं, उसका नाम प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग (आदि) छह आवश्यक उसको कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? पहले समझण का ठिकाना नहीं, श्रद्धा का ठिकाना नहीं, उसको समकित कहाँ से हो, मुनिपना तो कहाँ से हो? आहाहा! यह तो वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा का मार्ग है। यह कोई कल्पित नहीं। तो कहते हैं, इस जन्म में जो आत्मा के आनन्द के वश हो गया (अर्थात्) आत्मा के वश हुआ, पुण्य-पाप की क्रिया से वश(पना) छोड़ दिया, आहाहा! यह वह क्या बात है! गजब! **एक ही...** एक ही सन्त सदा धन्य है। समझ में आया?

कि जो अनन्य बुद्धिवाला रहता हुआ... क्या कहते हैं? देखो! **(निजात्मा के अतिरिक्त अन्य के प्रति लीन न होता हुआ)...** अनन्यबुद्धि (अर्थात्) अन्य विकल्प में बुद्धि नहीं रखकर... आहाहा! निर्विकल्प आनन्द में जो लीन है, वह **सर्व कर्मों से बाहर रहता है।** क्रियाकाण्ड का जो विकल्प है, छह व्यवहार आवश्यक का, पंच महाव्रत का विकल्प—उस कार्य से तो मुनि भिन्न रहते हैं। आहाहा! है? पण्डितजी! क्या लिखा है? संस्कृत के प्रोफेसर हो तुम तो। यह जयपुर के पण्डितजी हैं। जानते हो? जयपुर के संस्कृत के प्रोफेसर। अभी यहाँ रहते हैं। आहाहा! संस्कृत के प्रोफेसर नहीं, आत्मा के प्रोफेसर हो, यह कहते हैं यहाँ। आहाहा!

भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव परमेश्वर के श्रीमुख से दिव्यध्वनि आयी, उसमें ऐसा आया, वह सन्त यहाँ रचते हैं। समझ में आया? भगवान सीमन्धर परमात्मा तो साक्षात् विराजते हैं महाविदेह में। जिनकी करोड़ पूर्व की स्थिति है—आयुष्य है,

पाँच सौ धनुष—दो हजार हाथ ऊँची देह है, अरबों वर्षों से है और अरबों वर्ष अभी रहनेवाले हैं। आगामी चौबीसी में १३वें तीर्थंकर के समय में मुक्ति होगी। जब (भरतक्षेत्र में) १३वें तीर्थंकर होंगे, तब मुक्ति होगी। अभी केवलज्ञानी है परमात्मा। उनके पास गये थे कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर सन्त। आठ दिन रहे थे, संवत् ४९ में। वहाँ से आकर यह शास्त्र (रचा) कि भगवान ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

कि जो कोई **अनन्य बुद्धिवाला रहता हुआ...** आहाहा! विकल्प से बुद्धि छोड़कर आत्मा के आनन्द में रहता है, वह सदा धन्य है और वही मुनि है और वही पंच परमेष्ठी में गिनने में आता है। आहाहा! **सर्व कर्मों से बाहर रहता है।** शब्द पड़ा है न, पाठ में। **'सर्वकर्मभ्यो बहिस्तिष्ठत्यनन्यधीः अनन्यधीः'** आहाहा! भगवान आत्मा ज्ञानस्वभाव—जाननस्वभाव, आनन्दस्वभाव में लीन रहनेवाला (और) अन्य विकल्प की वृत्ति को छोड़कर बहिर्कर्म अर्थात् रागादि कार्य को छोड़कर अनन्यबुद्धिवाला (अर्थात्) अपने स्वरूप में दृष्टि रखकर स्थिर रहनेवाला, वह मुनि धन्य है, कहते हैं। जिसने जन्म सफल किया। जिसने अवतार... अवतार नहीं लेने की दशा प्रगट की। इस अवतार में अवतार नहीं लेने की दशा प्रगट की। समझ में आया? आहाहा! अभी मुनिपना किसको कहना, यह भी खबर नहीं। देव-गुरु-शास्त्र की सच्ची श्रद्धा का ठिकाना नहीं, समझ में आया? तो समकित तो कहाँ से हो और समकित बिना मुनिपना तो तीन काल में होता नहीं। आहाहा!

कहते हैं, **इस जन्म में स्ववश महामुनि एक ही सदा धन्य है कि जो अनन्य बुद्धिवाला रहता हुआ...** विकल्प की क्रिया—जो दया-दान-व्रत-भक्ति आदि के राग की क्रिया से छूटकर, अपने स्वरूप में—निजात्मा में लीन रहते हैं। गजब बात, भाई, ऐसी! **निजात्मा के अतिरिक्त...** एक भगवान आत्मा शुद्ध पवित्र का धाम, उसमें लीन होता हुआ... अन्य क्रियाकाण्ड से छूटकर... अपना बहिःकर्म जो बाह्य है, (वह) उसको छूट गया है। अन्तरकर्म जो आवश्यक कर्म है, आहाहा! देखा! परमनिश्चय, परम-आवश्यक यह अन्तरकार्य है। अपने शुद्ध स्वभाव के आश्रय से लीनता, निर्विकल्पता, वीतरागता प्रगट हुई, वही आवश्यक क्रिया और आवश्यक कर्म है। आहाहा! अभी यह बात पकड़ने में कठिन पड़े। क्या कहते हैं? क्या मार्ग है यह? पंचम काल में ऐसा

मार्ग ? अरे! तीनों काल एक ही मार्ग है। वीतराग का मार्ग तो 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ...' दूसरा पंथ होता नहीं। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ भूतकाल में अनन्त हुए, वर्तमान में विराजते हैं, भविष्य में अनन्त होंगे। तीनों काल के तीर्थंकरों का पंथ एक ही प्रकार का है। समझ में आया ? वह कोई नया नहीं है।

कहते हैं, प्रथम धर्मी—सम्यग्दृष्टि तो अपने आधीन होते हैं, परन्तु उनको भी रागादि की क्रिया होती है, उतना बन्ध का कारण उनके पास है। समझ में आया ? आहाहा! सम्यग्दृष्टि जीव अपने चैतन्य के आश्रय से अनुभव की दृष्टि में राग का तो उसको त्याग है ही, परन्तु स्थिरता में त्याग नहीं। तो उसको अभी राग का विकल्प आता है दया, दान, भक्ति, व्रत का; वह बन्ध का कारण है। उसमें (ज्ञानी को) जितनी लीनता चाहिए, उतनी लीनता है नहीं। आहाहा! मुनि तो अन्तर आनन्द में है, जिसकावे देह की क्रिया भी ज्ञेयरूप हो गयी है, अरे! पंच महाव्रत का विकल्प परज्ञेयरूप हो गया है और वह बहिर्क्रिया है, उससे विरक्त है। है न ? '**सर्वकर्मभ्यो बहिस्तिष्ठत्यनन्यधीः**' आहाहा!

कायर को तो... 'वचनामृत वीतराग के, परम शान्तरस मूल; औषध जो भवरोग के, कायर को प्रतिकूल।' कायर को तो (ऐसा लगे कि) क्या कहते हैं ? यह मार्ग ऐसा है ? ऐई भीखाभाई! कुछ व्यवहार, कोई व्यवहार-फ्यवहार है या नहीं ? है न, कहा न! व्यवहार की क्रिया का विकल्प है, उससे छूटते हैं। व्यवहार का विकल्प है, वह तो बन्ध का कारण है, मोक्ष का कारण नहीं। समझ में आया ? व्यवहार की क्रिया जो शुभ उपयोग है, वह तो बन्ध का कारण है। यह आत्मा के आश्रित क्रिया नहीं, वह तो पर के आश्रय से विकल्प उठा है। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि भी राग के परिणाम से तो अन्तर भिन्न ही है। समझ में आया ? व्यवहार का विकल्प जो उठता है, उससे सम्यग्दृष्टि भिन्न है। अपने स्वभाव में एकत्व है और राग से भिन्न है, परन्तु चारित्र की दशा, (उतनी) उसके पास नहीं तो राग उत्पन्न होता है तो निवृत्त नहीं (हो पाते)। मुनि जो आत्मा के आनन्द में रमनेवाले होते हैं, वे कोई बहि:क्रिया, राग से भी विरक्त है, अस्थिरता से विरक्त हो गये, ऐसे। समझ में आया ? अरे, पकड़ना क्या इसमें ? कुछ करना कहे कि भाई! यह करना, चलो यात्रा करना, पूजा करना, भक्ति करना, व्रत पालना, उपवास करना—वह समझ में भी आवे। उसमें

क्या समझना था? वह तो राग की—विकल्प की क्रिया है। समझ में आया? वह आवश्यक क्रिया नहीं।

आवश्यक की धार्मिक क्रिया जिसको परमात्मा कहते हैं, वह आवश्यक क्रिया तो राग से रहित अपना प्रभु वीतरागमूर्ति आत्मा, उसमें—वस्तुस्वभाव में सन्मुख होकर, बहिर्-कर्म से विमुख होकर लीनता करता है, उसको सच्चा आवश्यक कार्य—कर्म—पर्याय होती है। शान्तिभाई! ऐसा मार्ग है। सुनने में भी कठिन पड़े। बाहर से ऐसा कहना हो कि ऐसा करो, ऐसा करो, व्रत पालन करो, अपवास करो, पुण्य करो, पुण्य अर्थात् राग, राग अर्थात् जहर। आत्मा के अमृतस्वरूप से विरुद्ध भाव, वह तो जहर है। आहाहा! जगत को मिठास है न उसकी। प्रेम... प्रेम लगा है, चिपका है न राग से! आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा तो कहते हैं कि भैया! धर्म करना हो तो... नहीं तो अनादि से चलता है मिथ्यात्व में भटकने का भाव। अज्ञानभाव है, मिथ्यात्वभाव है और रागभाव है, वह तो अनादि से है ही, उसमें कोई नवीनता (—नया) कुछ है नहीं। नवीन—नया करना हो आत्मा की दशा धर्म (कि) जिससे जन्म-मरण का अन्त आवे, वह तो निजात्मा भगवान के आश्रय से अन्तर सन्मुख होकर जो परिणाम अवश—निश्चय—सच्चा कार्य हुआ, (ऐसा) सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह तो आत्मा के आश्रय से होता है। कहो, समझ में आया? अरे, गजब बात! ऐसा मार्ग...

लो, यह कलश हुआ। **सर्व कर्मों से बाहर रहता है।** भाषा ऐसी है न! कर्म अर्थात् विकल्प का कार्य, पंच महाव्रत का और भक्ति का, पूजा का और सब विकल्प, वह बाह्य कार्य है। राग, राग है न तो बहिर् है, अन्तर में आत्मा में नहीं है। उस बहिर्-कार्य से भिन्न होकर अपने स्वभाव के आश्रय से जो कार्य हुआ, उसमें लीन है, उसका नाम निश्चय आवश्यक कहने में आता है। आहाहा! गजब यह तो निश्चय की बातें हैं! सच्ची बातें! परन्तु उसमें खोटी कुछ व्यवहार की है सही? निश्चय अर्थात् सच्चा, व्यवहार अर्थात् आरोप, आरोपित—उपचारित। आहाहा! यहाँ तो भगवान एक ही बात कहते हैं, भाई! अपना निजात्मप्रभु जो पुण्य-पाप के राग से रहित है। शरीर-कर्म से तो रहित है ही, परन्तु शुभ-अशुभ विकल्प-राग है, उससे भी रहित आत्मा है। क्योंकि शुभाशुभ परिणाम तो आस्रवतत्त्व है। आस्रवतत्त्व से चैतन्यतत्त्व तो भिन्न है। ऐसे भिन्न

तत्त्व में एकाकार होना और आस्रव बहिर्-कार्य है, उससे भिन्न हो जाना, उसका नाम आवश्यक क्रिया, सामायिक, भगवान की स्तुति, वन्दन उसको कहते हैं। आहाहा!

१४६ (गाथा हुई। अब) १४७ गाथा। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। '**आवासं जइ इच्छसि**' भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव मुनि दिगम्बर सन्त... आता है न 'मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी, मंगलं कुंदकुंदार्यो...' तीसरे नम्बर पर यह (पद) आता है। 'मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी, मंगलं कुंदकुंदार्यो...' (ऐसे) कुन्दकुन्दाचार्य की यह गाथा है।

आवासं जह इच्छसि अप्पसहावेसु कुणदि थिरभावं।
तेण दु सामण्ण-गुणं संपुण्णं होदि जीवस्स॥१४७॥

नीचे इसका हरिगीत है। नीचे हरिगीत।

आवश्य का कांक्षी हुआ तू स्थैर्य स्वात्मा में करे।
होता इसी से जीव सामायिक सुगुण सम्पूर्ण रे॥१४७॥

आहाहा! सम्पूर्ण समता रहे... आत्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शन हुआ, ज्ञान हुआ, उग्र आश्रय करके उसमें समता—वीतरागता उत्कर्ष होती है, उसका नाम सामायिक, उसका नाम भगवान की स्तुति, उसका नाम वन्दन, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग है। यह वीतरागीदशा जो स्व-आत्मा के आश्रय से उत्पन्न हो, उसको सच्चा छह आवश्यक कहने में आता है। आहाहा!

टीका : यह, शुद्धनिश्चय-आवश्यक की प्राप्ति का... आत्मा का जरूर—अवश्य कार्य वीतरागी परिणाम जो धर्मस्वरूप है, जो शुद्ध निश्चय-आवश्यक की प्राप्ति का उपाय है। शुद्ध आवश्यक क्रिया जो मुक्ति का कारण है और शुद्ध आवश्यक की क्रिया का उपाय कौन, वह कहते हैं। **शुद्धनिश्चय-आवश्यक की प्राप्ति का जो उपाय,...** क्या कहते हैं? समझ में आया? मुक्ति का कारण शुद्धनिश्चय-आवश्यक। सच्चा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि वीतरागी छह परिणाम, वह आवश्यक क्रिया, वह धर्मक्रिया। उसका उपाय कौन? उस उपाय के स्वरूप का कथन है यहाँ तो। आहाहा! समझ में आया?

'**अप्पसहावेसु कुणदि थिरभावं**' यह उपाय, ऐसा—ऐसा कहते हैं। क्या कहा, समझ में आया? गाथा है या नहीं? ... यह संस्कृत पढ़ आये पण्डितजी। यह बैठे बाबूलालजी, लो यह पण्डित है। गाथा है या नहीं भैया? पाठ है न! '**आवासं जह इच्छसि**' जो कुछ निश्चय आवश्यक कार्य करने में अभिलाषा है, वह '**अप्पसहावेसु कुणदि थिरभावं**' वह उपाय। आत्मा आनन्दस्वभाव में स्थिरता अन्तर में करना, वह आवश्यक क्रिया का उपाय है। आवश्यक क्रिया अर्थात् वीतरागी परिणाम, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र—ऐसा वीतरागी भाव, वह मोक्ष का कारण, वह आवश्यक क्रिया। परन्तु उस आवश्यक क्रिया का उपाय कौन? कैसे उत्पन्न होती है आवश्यक क्रिया? कि अपना आनन्दस्वभाव, ज्ञानस्वभाव त्रिकाली ध्रुव में एकाग्र होता है तो आवश्यक क्रिया उत्पन्न होती है। आहाहा!

हिन्दी पुस्तक है न, दी है या नहीं? भैया कहते थे न कि हिन्दी में (प्रवचन) करना। राजकोट आया था न भैया। हमें हिन्दी चाहिए। यहाँ तो गुजराती चलती है। सब गुजराती हैं न यहाँ तो। आहाहा! परन्तु हिन्दी में भी जो भाव होगा, वह आयेगा। ...गुजराती का अभ्यास नहीं है न! यहाँ तो सब गुजराती है। रात्रि को गुजराती में चर्चा हुई न! कोई (हिन्दी में) प्रश्न पूछे तो हिन्दी हो। तब तो गुजराती के साथ चर्चा हुई तो गुजराती में होता था। टीका। एक शब्द में, एक वाक्य में कितना भर दिया है। देखो! मुनि की टीका है। आत्मज्ञानी ध्यानी धर्मात्मा भावलिंगी सन्त ने टीका बनायी है। आहाहा!

यह, शुद्धनिश्चय-आवश्यक की प्राप्ति का... शुद्ध निश्चय अर्थात् यथार्थ आवश्यक क्रिया, निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अर्थात् सामायिक, चौविसंथो आदि वीतरागी पर्याय, उस आवश्यक क्रिया की प्राप्ति का—प्राप्त होने का **जो उपाय,** वह कैसे उत्पन्न हो? उसका **उपाय, उसके स्वरूप का कथन है।** आहाहा! देखो! उपाय। जेठाभाई! भगवान! तुझमें अनन्त आनन्द... वह आगे आयेगा। देखो! सहज ज्ञान, सहज दर्शन, सहज चारित्र और सहज सुख—यह तेरा स्वभाव है। '**अप्पसहावेसु**' कहा न। '**अप्पसहावेसु**' आत्मा का त्रिकाल स्वभाव ज्ञान, आनन्द, श्रद्धा, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता यह त्रिकाल स्वभाव है—गुण है। उस त्रिकाल स्वभाव में सन्मुख होकर लीन

होना, वह आवश्यक क्रिया के उत्पन्न होने का उपाय है। व्यवहार करते-करते आवश्यक की क्रिया उत्पन्न हो, उसका उपाय यह नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

व्यवहारक्रिया करो तो बाद में यह सच्ची आवश्यक क्रिया उत्पन्न होगी। (वह) उसका उपाय है? नहीं, वह उपाय है ही नहीं। पण्डितजी! ऐसी बात है, भगवान! तेरी महिमा अलौकिक है, उसकी खबर नहीं न! महाप्रभु विराजता है अन्दर तो। अनन्त सिद्ध अवस्था जिसमें पड़ी है। आहाहा! क्योंकि सिद्ध है, वह अवस्था है, कोई गुण नहीं। मुक्ति तो पर्याय है। संसार विकारी पर्याय है, सिद्ध निर्विकारी पर्याय—अवस्था है। ऐसी-ऐसी अनन्त सिद्ध की अवस्था अन्दर आत्मा की शक्ति में पड़ी है तो उसमें से आती है। आहाहा! समझ में आया? अभी तो विवाद उठा कि केवलज्ञान गुण है या पर्याय? ऐ पण्डितजी! गुण है। भाई! गुण नहीं भगवान! पर्याय है, केवलज्ञान तो पर्याय है। केवलज्ञान पर्याय है क्योंकि एक समय की अवस्था है। गुण तो त्रिकाल है। समझ में आया?

मोक्षमार्ग भी पर्याय है और मोक्ष भी पर्याय है, संसार भी पर्याय है—तीनों अवस्था है। एक विकारी अवस्था, एक शुद्ध अपूर्ण अवस्था और एक पूर्ण शुद्ध अवस्था। विकारी अवस्था संसार; अपूर्ण शुद्ध अवस्था मोक्षमार्ग; पूर्ण शुद्ध अवस्था मोक्ष। परन्तु लोगों ने ऐसी गड़बड़ कर दी है न! बड़े-बड़े पण्डित गोते खाते हैं। केवलज्ञान गुण है या पर्याय? कहे, गुण। आठ गुण हैं न सिद्ध में? केवलज्ञान... भैया! वह तो पर्याय को गुण कहा है। गुण तो त्रिकाली है। '**अप्पसहावेसु**' टीका में लिया है। स्वभाव सहजज्ञान, सहजदर्शन, सहजचारित्र, सहजसुख, वह तो त्रिकाल है। वस्तु जैसी त्रिकाल है, ऐसा शक्ति—गुण भी त्रिकाल है। त्रिकाल में लीन होना, वह पर्याय है। समझ में आया? द्रव्य-गुण-पर्याय किसको कहते हैं, वह खबर नहीं और धर्म होता है। धूल में भी नहीं होता। किसको द्रव्य कहना, किसको गुण कहना, किसको पर्याय कहना?

कहते हैं, **शुद्धनिश्चय-आवश्यक की प्राप्ति का जो उपाय, उसके स्वरूप का कथन है। बाह्य षट्-आवश्यकप्रपंचरूपी नदी के कोलाहल के श्रवण से पराङ्मुख हे शिष्य!** आहाहा! देखो! बाह्य षट्-आवश्यकादि क्रिया... सामायिक करूँ, ऐसा विकल्प;

भगवान की स्तुति करूँ, ऐसा विकल्प; गुरु का वन्दन करूँ, (ऐसा) विकल्प; पाप से हट जाऊँ (अर्थात्) प्रतिक्रमण करूँ, यह विकल्प—ऐसा छह प्रकार का जो विकल्प—राग, वह षट्-आवश्यकरूप प्रपंचरूपी नदी है। वह तो राग का प्रपंच है। आहाहा! वीतरागमार्ग की यह बात है। **प्रपंचरूपी नदी के कोलाहल के श्रवण से (-व्यवहार छह आवश्यक के विस्ताररूपी नदी की कलकलाहट के श्रवण से) पराङ्मुख हे शिष्य!** विकल्प से पराङ्मुख हो। वह तो राग है, कोलाहल है, विकल्प का-वृत्ति का जाल है। आहाहा! समझ में आया?

'**जइ इच्छसि**' शब्द पड़ा है न? '**आवासं जइ इच्छसि**' तो उसे कहते हैं कि हे शिष्य! जो आवश्यक इच्छे तो यह कर। समझाय छे काँई? यह भाषा गुजराती आ गयी। समझ में आया? गुजराती आ गयी न। समझ में आया? आहाहा! सन्त—दिगम्बर मुनि धर्म के स्तम्भ, जिसने धर्म जैसा है, ऐसा रखा है। ऐसी चीज़ अन्यत्र कहीं है नहीं। दिगम्बर जैनधर्म के अतिरिक्त ऐसी चीज़ दूसरे में कहीं नहीं है। जैन वाडा में नहीं तो अन्य में तो होती ही नहीं। समझ में आया? यह मार्ग समझना, वह महापुरुषार्थ है। कहते हैं सन्त कि षट्-आवश्यक जो सामायिक, चोविसंथो, वन्दन, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग आवश्यक व्यवहार, वह तो विकल्प-राग है। उस प्रपंचरूपी नदी के कोलाहल, उसका श्रवण—सुने वहाँ विकल्प उठते हैं। आहाहा! उससे पराङ्मुख... उससे पराङ्मुख। सन्मुख नहीं, पराङ्मुख... उस विकल्प की क्रिया से, हे शिष्य! पराङ्मुख (हो), सन्मुख नहीं। सन्मुख स्वभाव के सन्मुख (और) विकल्प से पराङ्मुख। आहाहा! यही पद्धति है। समझ में आया?

शुद्धनिश्चय-धर्मध्यान... देखो! विकल्प की क्रिया जो है, सामायिक करूँ, भगवान की स्तुति करूँ—यह सब विकल्प है—वृत्ति है—राग है। राग तो शुभभाव है। वह कोई धार्मिक क्रिया नहीं। आहाहा! वीतराग ऐसा कहते हैं कि हमारा स्तवन करने में तुझे राग होता है। आहाहा! क्योंकि हम तुम्हारे से परद्रव्य, भिन्न हैं। परद्रव्य की भक्ति आदि का विकल्प है, वह सब राग है। आहाहा! तेरे सन्मुख हो, विकल्प से पराङ्मुख हो, तो सच्चा आवश्यक तुझे होता है। यह वीतराग कहे, दूसरा तो कहे कि हमारा श्रवण करो, हमारी भक्ति करो, तुम्हारा कल्याण हो जायेगा। आहाहा! जेठाभाई! हमारे सन्तों

को आहार देना, जाओ तुम्हारा कल्याण हो जायेगा। यहाँ तो कहे कि आहार देना, वह भी विकल्प है। सच्चे सन्त को आहार देना, वह भी राग की क्रिया विकल्प है। हमारी स्तुति करना, वीतराग कहते हैं कि वह भी विकल्प है। हे शिष्य! उससे पराङ्मुख हो जा। यह तो एक वीतराग कहे, हों! समझ में आया? ...भाई! आहाहा!

भाई! तुझे कार्य करना है न अपना! तो अपना कार्य तो निजात्मा के आश्रय से होता है। पर के लक्ष्य से उत्पन्न हुआ, वह तो विकल्प—राग का कार्य है। आहाहा! समझ में आया? यह तो सत्य की बात है, भैया! साधारण लोगों को तो कंपकपी उठ जाये... अरे! यह तो एकान्त है। अरे भगवान! सुन तो सही, नाथ! कि तेरी चीज़ क्या है। यह एकान्त तो कहते हैं। व्यवहार से पराङ्मुख हो, निश्चय में आ जा—यह तो एकान्त है। पण्डितजी! आहा! क्या कहते हैं? देखो न, टीका में अमृत भरा है। समझ में आया? भगवान! जो तुझे निश्चय-सच्चा आवश्यक कार्य करने की इच्छा हो तो... ऐसा कहा न? पाठ में ऐसा है। '**आवासं जह इच्छसि अप्पसहावेसु कुणदि थिरभावं।**' उसका अर्थ चलता है। पहले बहिर्मुख क्रियाकाण्ड के राग से पराङ्मुख हो जा। नास्ति से बात की। अपने सन्मुख हो तो राग से पराङ्मुख हो जाता है। परन्तु कथन की शैली ऐसी आती है। समझ में आया?

अरे! ऐसी बात और क्या कहते हैं? वह तो भाई यात्रा कर डाले शत्रुंजय की, सम्मेदशिखर, लो। आता है या नहीं? क्या कहते हैं? 'एक बार वंदे जो कोई नरक-पशु गति न होई।' उसमें क्या है नरक-पशु गति (नहीं बँधी तो)? सम्मेदशिखर की वन्दना करना, वह भी एक शुभभाव है, वह कोई धर्मस्वरूप परमार्थ धर्म नहीं है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं न, यह सब क्रिया का राग जो है, उससे पराङ्मुख हो जा। हे शिष्य! तुझे जो आवश्यक कार्य कोई सत्य का करना हो तो। समझ में आया? सुनने में आवे नहीं, वह समझे कब? ऐसा मार्ग है। ऐसा मार्ग कुछ पकड़ने में आवे नहीं। भगवान... भगवान... भगवान... भगवान करो। 'णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं...' कहते हैं कि 'णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं...' तो भाषा है। परन्तु 'णमो अरिहंताणं' बोलते हैं, उसमें अन्दर विकल्प उठता है, वह राग है। आहाहा! जेठाभाई! तीन लोक के नाथ तीर्थंकर समवसरण में विराजते हों—विराजते हैं। वहाँ

गये, उनकी वाणी सुनते हैं तो भी, कहते हैं। विकल्प है, वह तो शुभराग है और हमारी स्तुति करते हैं तो भी शुभराग है। आहाहा!

हे शिष्य! तुझे जो सच्ची—धर्म की आवश्यक क्रिया करनी हो तो यह षट्-आवश्यक के विकल्प से पराङ्मुख हो। 'व्यवहार से पराङ्मुख' ऐसी भाषा की। आहाहा! यह व्यवहार करते-करते निश्चय होगा, ऐसा आया नहीं इसमें। आहाहा! व्यवहार तो राग है, विकल्प है। राग करते-करते अरागीदशा—धर्म होती है? लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आती है? आहाहा! गजब बात भैया! वीतराग का मार्ग—सर्वज्ञ पंथ दोह्यला है। समझ में आया? कहते हैं कि व्यवहार क्रियाकाण्ड का जो विकल्प है, उससे **पराङ्मुख हे शिष्य! शुद्धनिश्चय-धर्मध्यान...** देखो! आहाहा! शुद्धनिश्चय-धर्मध्यान... स्व-आत्माश्रित होना है न, सिद्ध यह करना है।

तथा शुद्धनिश्चय-शुक्लध्यानस्वरूप स्वात्माश्रित आवश्यक को... देखो! स्वात्माश्रित आवश्यक... भगवान ज्ञान और आनन्द का पुंज प्रभु, उसके आश्रय से जो पर्याय हो, वह स्वात्म आवश्यक क्रिया है, उसका नाम भगवान धार्मिक क्रिया, संवर-निर्जरा की क्रिया उसे कहते हैं। समझ में आया? परसन्मुख का जो विकल्प है, वह आस्रव की क्रिया है। आस्रव तो बन्ध का साधक है और स्वात्माश्रित जो क्रिया है, वह संवर-निर्जरा है, वह मोक्ष का साधक है। समझ में आया? नौ तत्त्व में अभी संवर-निर्जरा किसे कहते हैं, आस्रव किसे कहते हैं, उसकी खबर नहीं और धर्म हो जाये! क्या करे? आहाहा! भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव की दिव्यध्वनि में ऐसा आया, ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य मुनि यहाँ कहते हैं, उसकी टीका पद्मप्रभमलधारिदेव दिगम्बर सन्त-मुनि करते हैं। मार्ग ऐसा है, भगवान! समझ में आया?

शुद्धनिश्चय-धर्मध्यान... देखो! आत्मा आनन्द के आश्रय से धर्मध्यान होता है। पर के आश्रय से, विकल्प से धर्मध्यान होता नहीं। आहाहा! **शुद्धनिश्चय-शुक्लध्यान स्वात्माश्रित...** यह उपाय। स्वात्मा आश्रय, यह आवश्यक क्रिया का उपाय है। स्वात्मा का आश्रय करना। समझ में आया? **कि जो संसाररूपी लता के मूल को छेदने का कुठार है...** अपने आत्मा के आश्रय से उत्पन्न हुए, निर्विकल्प श्रद्धा-ज्ञान-शान्ति, वह आवश्यक क्रिया, वह संसाररूपी वेलड़ी (लता) के मूल को छेदने का कुठार है—

कुल्हाड़ा है। आहाहा! समझ में आया? यह भी बात की। निश्चय धार्मिक क्रिया— आवश्यक क्रिया स्व-आत्मा के आश्रय से होती है और स्वात्माश्रित क्रिया, जो धार्मिक अरागी-वीतरागी हुई, वह संसार लता को छेदने को कुल्हाड़ा (कुठार) है। (राग) व्यय हो जायेगा। राग का नाश करनेवाली वह क्रिया है। समझ में आया?

पहले '**अप्पसहावेसु**' है। पहला साधारण स्वात्माश्रित बात की, फिर कहेंगे। पाठ का अर्थ है यह। समझ में आया? **उसे—यदि तू चाहता है...** ऐसी आवश्यक क्रिया जो चाहता है। पीछे है न पाठ में? **तो तू समस्त विकल्पजाल रहित...** विकल्प की क्रिया से रहित। **निरंजन निज परमात्मा के भावों में...** यह पाठ '**अप्पसहावेसु**' पाठ। आत्मा का स्वभाव। पुण्य की क्रिया, वह कोई आत्मा का स्वभाव नहीं, वह तो राग-विभाव है। आहाहा! **परमात्मा के भावों में...** निरंजन निज ध्रुव चैतन्यप्रभु अविनाशी अपना स्वभाव... स्वभाववान आत्मा और स्वभाव... **सहज ज्ञान**—स्वाभाविक त्रिकाली ज्ञान। त्रिकाली ज्ञान हों यह। त्रिकाली **सहज दर्शन,** त्रिकाली **सहज चारित्र...** त्रिकाली की बात है। और त्रिकाली **सहज सुख आदि में—सतत-निश्चल स्थिरभाव करता है;...** लो, यह उपाय। स्वभाववान आत्मा, दर्शन, ज्ञान, सुख, आनन्द, वह त्रिकाली स्वभाव, उसमें एकाग्रता होना, वह आवश्यक क्रिया—पर्याय। आहाहा! द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों आये। समझ में आया? निश्चल, **सतत निश्चल करता है...** उसको सच्ची सामायिक और सच्चा धर्म होता है, दूसरे को होता नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण ३, शुक्रवार, दिनांक - ०५-११-१९७१
गाथा-१४७, श्लोक-२५५, प्रवचन-१६९

नियमसार सिद्धान्त, नियमसार है। निश्चय परम-आवश्यक अधिकार। आत्मा के स्वभाव के आश्रय से होनेवाली सच्ची, अन्दर रागरहित क्रिया, उसे यहाँ निश्चय परम-आवश्यक क्रिया कहते हैं। अक्रिय है, उसे क्रिया कहते हैं। है तो अक्रिय वह निष्क्रिय। आत्मा ज्ञानानन्दस्वभाव शुद्ध... यहाँ भाव में स्थिरता करता है, ऐसा कहते हैं। आत्मा जो वस्तु आत्मा है, उसमें अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्दादि भाव—त्रिकाली भाव है, उसमें अन्तर एकाग्र होना, निष्क्रिय अर्थात् राग की क्रिया रहित अरागी परिणति प्रगट करना, उसका नाम आवश्यक, सामायिक, चोविसंथो, वन्दन, उसे कहा जाता है। समझ में आया? यहाँ तक अपने आया है, देखो! फिर से लो, मूल टीका है न! फिर से।

टीका : बाह्य षट्-आवश्यकप्रपंचरूपी नदी के कोलाहल के श्रवण से... यह सामायिक कहलाये और यह कहलाये और भगवान कहलाये, उनकी स्तुति ऐसा जो सुना, उसमें तो विकल्प होते हैं, कहते हैं, राग है। ऐसे श्रवण से **पराङ्मुख हे शिष्य!...** ऐसे विकल्प की क्रिया छह आवश्यक की, सामायिक, भगवान की स्तुति आदि वह विकल्प-राग, उस क्रिया के श्रवण से पराङ्मुख... उसे सुनने की इच्छा ही जिसे नहीं। आहाहा! **हे शिष्य! शुद्धनिश्चय-धर्मध्यान...** जो स्व-आत्माश्रित है। भगवान शुद्ध चैतन्य आनन्द और ज्ञानस्वभाव ऐसा जो आत्मा, उसके आश्रय से धर्मध्यान होता है। ऐसे बाहर की क्रिया शुभराग की, वह वास्तव में आववश्यक क्रिया नहीं है, वह आवश्यक की क्रिया ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

भगवान की—तीर्थंकर की स्तुति करना, वह तो एक विकल्प है, ऐसे सामायिक करूँ, ऐसा शुभविकल्प, वह राग है; गुरु का वन्दन करना, वह भी एक राग है। आहाहा! प्रतिक्रमण करूँ—पाप से हटूँ, वह भी एक राग है; प्रत्याख्यान करूँ, वह भी एक विकल्प की वृत्ति का राग है। कायोत्सर्ग—शरीर की स्थिरता करूँ, वह विकल्प उठता

है, वह भी राग है। यह छह प्रकार के आवश्यक व्यवहाररूप श्रवण से हे पराङ्मुख शिष्य!... आहाहा! उससे विमुख हुआ शिष्य! ऐसा कहते हैं। सूक्ष्म बात है, भाई! **शुद्धनिश्चय-धर्मध्यान तथा शुद्धनिश्चय-शुक्लध्यानस्वरूप स्वात्माश्रित आवश्यक...** आत्मा आनन्द और ज्ञान भाववाला, उसकी एकाग्रता अर्थात् आनन्द और शान्ति की क्रिया अन्दर वीतरागी, वह स्व-आत्माश्रित होती है। भारी सूक्ष्म। स्वयं निजानन्द प्रभु ऐसे आनन्द और ज्ञान-दर्शन के भाववाला, वह उसका भाव है।

एक बार पूछा था कि सोना का भाव क्या है? ऐसा पूछा था न एक बार? खबर है? सोना का भाव क्या है? सब विचार में पड़ गये कि क्या होगा? सोना का भाव, वह भाव कहलाये? वह तो कल्पित है। दो सौ रुपये का तौला सोना, वह तो कल्पित भाव है। वह कहीं सोना का भाव नहीं। सोना का भाव तो उसके रंग, गन्ध, रस, स्पर्श, वह सोना का भाव है। समझ में आया? इसी प्रकार आत्मा का भाव, कहते हैं कि पुण्य-पाप, शरीर-वाणी, वह कहीं उसका—आत्मा का भाव नहीं। विकल्प उठे रागादि, वह भी आत्मा का भाव नहीं। आत्मा का भाव, कहेंगे, सहज ज्ञान त्रिकाली ज्ञानस्वभावभाव, स्वाभाविक दर्शन, स्वाभाविक चारित्र और स्वाभाविक सुख—वह उसका भाव है। तो कहते हैं कि ऐसा भाववाला जो भगवान आत्मा, उसके आश्रित, उसके सन्मुख होकर उसका आश्रय करे, ऐसी क्रिया, उसे यहाँ धार्मिक, सामायिक और भगवान की स्तुति आदि क्रिया कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? भारी कठिन काम!

कि जो संसाररूपी लता के मूल को छेदने का कुठार है... जो स्व-आत्मा परमानन्दस्वरूप... आत्मा के आश्रित कहकर फिर उसके भाव में स्थिर हो, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? स्व-आत्मा जो शुद्ध चैतन्यघन, उसके आश्रित, उसे अवलम्ब कर जो एकाग्रता होती है, वह निश्चय—सच्चा धर्मध्यान और उसका आश्रय का उत्कृष्टपना, वह सच्चा शुक्लध्यान—वह आवश्यक क्रिया है। यहाँ तो अक्रिय कहेंगे उसे। समझ में आया? ऐसे संसाररूपी उदयभाव को छेदने का कुल्हाड़ा है, कुल्हाड़ा, क्या कहते हैं? कुल्हाड़ा। अपना आत्मा शुद्ध द्रव्यस्वभाव... यहाँ तो आत्मा लिया न पहले? वस्तु त्रिकाली ज्ञायकभाव, उसकी चीज़, उसका आश्रय लेकर, अन्तर अवलम्बन लेकर,

उसमें एकाग्र होकर जो क्रिया प्रगट होती है, उसे आवश्यक की धार्मिक क्रिया कहते हैं। वह आवश्यक धार्मिक क्रिया उसे कहते हैं।

उसे—यदि तू चाहता है... ऐसा कहते हैं। ऐसी आवश्यक क्रिया अथवा आवश्यकभाव करनेयोग्य तू इच्छता है... इच्छता है, ऐसा कहते हैं। आवश्यक आत्मा के आश्रय से... शरीर, वाणी, मन तो नहीं, पुण्य-पाप के विकल्प नहीं, एक समय की पर्याय भी नहीं। त्रिकाली भगवान आत्मा के आश्रय से ऐसी क्रिया करना जो चाहता है कि जो क्रिया अथवा आवश्यकपना संसाररूपी उदयभाव को छेदने का वह कुल्हाड़ा है। आहाहा! गजब...! पहले तो अभी पकड़ना (कठिन) कि क्या कहते हैं यह! ऐसा यदि तू चाहता है तो तू ऐसा कर, ऐसा कहते हैं। यदि तेरी आवश्यक स्व-आत्मा के आश्रय से होती अरागी, निष्क्रिय—रागरहित निष्क्रियता; है भले परिणति, परन्तु जिसमें राग की अपेक्षा, व्यवहार के विकल्प की अपेक्षा नहीं, ऐसी जो आत्मा के आश्रय से निष्क्रिय आवश्यक, ऐसी इच्छा यदि हो, तो तू **समस्त विकल्पजालरहित...** यह भगवान की स्तुति करूँ और वन्दन करूँ—ऐसे जो विकल्प, उस विकल्प की जालरहित... आहाहा!

निरंजन निज परमात्मा के... निर्मल भगवान आत्मा, निज परमात्मा—अपना परमात्मा आत्मा, त्रिकाली आत्मा, वह अपना परमात्मा है। आहाहा! **निज परमात्मा के भावों में...** निज परमात्मस्वभाव का जो भाव, उसमें स्थिरभाव करता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? सहज स्वभाव, ज्ञानस्वभाव... जैसे त्रिकाली आत्मा अविनाशी त्रिकाल, उसी प्रकार उसका ज्ञानस्वभाव त्रिकाल, ऐसे दर्शन स्वभाव सहज त्रिकाल, सहज शान्तिरूपी चारित्र त्रिकाल और सहज आनन्द—सुख—स्वाभाविक आत्मा का सुख—आनन्द स्वभाव जो त्रिकाल है, स्वच्छता, प्रभुता इत्यादि में **सतत**—निरन्तर **निश्चल स्थिरभाव करता है...** उसमें स्थिरभाव करता है, वह सच्चा आवश्यक है। आहाहा! ऐसा व्यवहार करना और... व्यवहार कहाँ गया इसमें वह? आहाहा! यह तो कहेंगे। व्यवहार का फल तो अनुपादेय है—उपादेय है नहीं। वह तो राग है, पुण्यक्रिया है। भगवान की भक्ति, वन्दन, पूजा, सामायिक इत्यादि का विकल्प, वह तो रागक्रिया है। आहाहा! भारी कठिन काम जगत को!

यह राग की—विकल्प की क्रिया का लक्ष्य छोड़कर त्रिकाली भगवान आत्मा का जो भाव, द्रव्य अर्थात् आत्मा वस्तु, ज्ञान-दर्शन, आनन्द वह उसका गुण अर्थात् भाव, उसमें स्थिर हो, वह उसकी पर्याय। समझ में आया? जो ऐसे राग में और विकल्प में, पुण्य की वृत्ति में एकाकार है, उसे अपने भाव में एकाकार करना, वह आवश्यक धर्म है। ऐसा धर्म गजब! यदि तू... यहाँ भगवान कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर सन्त—मुनि ऐसा कहते हैं कि यदि तू धार्मिक क्रिया करने का इच्छुक है तो तू इन विकल्प की क्रियाओं से पराङ्मुख हो और आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वभाव से भरपूर है, उसके सन्मुख हो। और सन्मुख की जो एकाग्रता, वह सतत निश्चल स्थिरभाव, उसका नाम आवश्यक और सामायिक और भगवान की स्तुति कहा जाता है। गजब बात भाई! 'स्थिरभाव करता है', ऐसा कहा है न! 'कर' ऐसा नहीं कहा। यदि तू इच्छता है कि धर्मक्रिया मुझे करनी है तो तू विकल्प की वृत्ति के राग के व्यवहारभाव से पराङ्मुख हो, विमुख हो और त्रिकाली भगवान आत्मा के भाव आनन्द और ज्ञान त्रिकाली, उसके सन्मुख हो। कहो, समझ में आया? आहाहा!

वीतराग धर्म अलौकिक अपूर्व है। लोग मान बैठे बाहर से यह धर्म... धर्म... धर्म। समझ में आया? दया करना, भक्ति करना, पूजा करना, भगवान की स्तुति करना—ऐसा सब जो विकल्प है, वह तो राग है। वह राग तो विभाव है, धर्म का उसमें अभाव है। तो उस विकल्प की वृत्तियाँ उठीं (उनसे) विमुख हो। यह इच्छता हो तो विमुख होकर सत् के सन्मुख हो। 'सन्मुख हो' ऐसा नहीं कहा, सन्मुख की क्रिया वह करता है, कहते हैं। समझ में आया? अहो! भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त आनन्द और अनन्त-अनन्त ज्ञान का पुंज प्रभु आत्मा, ऐसा निज परमात्मा—अपना परमात्मा... भगवान का परमात्मा तो उनके पास रहा। उन परमात्मा की स्तुति करने जाये, तब तो उसे विकल्प और राग ही उत्पन्न होगा, ऐसा कहते हैं। यह निज परमात्मा से वहाँ विमुख हो जाता है और पर के सन्मुख होता है।

गजब जैनधर्म! जैनधर्म वह ऐसी चीज़ है कि दुनिया को सुनने को मिली नहीं। उसे मिला है सब उल्टा। आहाहा! जैन के नाम से उसे क्रिया—राग की क्रिया में जोड़ दिया है। समझ में आया? जो धर्म नहीं, उसमें उसे जोड़ दिया है। भीखाभाई! ऐसी बात

है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं प्रभु कुन्दकुन्दाचार्यदेव कि हे आत्मा! **हे शिष्य!** ऐसा कहा है न। ऐसा कर। 'कर' ऐसा कहा है न अर्थात् किसी को कहते हैं न। करता है, ऐसा कहते हैं, तब किसी को कहते हैं न कि यह करता है। 'हे शिष्य!' ऐसा टीका में लिया है। पद्मप्रभमलधारिदेव दिगम्बर सन्त—मुनि आत्मध्यानी, आनन्द में कल्लोल करनेवाले, अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द में कल्लोल—रमत—वेदन करनेवाले मुनि टीका में ऐसा कहते हैं कि कुन्दकुन्दाचार्यदेव भगवान ऐसा फरमाते हैं, हे शिष्य! यह व्यवहार की क्रिया जो विकल्प है, उससे पराङ्मुख हो, यदि सच्ची धर्म की क्रिया करनी हो तो। यहाँ तो करनी हो तो उसकी बात है। आहाहा! करता है। गजब बात है न! स्वयं को डाला है अन्दर। समझ में आया?

भगवान आत्मा अनन्त आनन्द और ज्ञान का पुंज प्रभु, उसके सन्मुख अन्तर (में) जा। उसमें जीव स्थिर होता है, उसे धार्मिक क्रिया होती है। शान्तिभाई! बहुत कठिन लगे, भाई! यह सब व्यवहार... व्यवहार... व्यवहार... उसका क्या करना यह? आहाहा! कहते हैं न कि व्यवहार का विकल्प होता है, वह पुण्य है, वह राग है; वह धर्म नहीं। समझ में आया? आहाहा! तो स्थिरभाव करता है। धर्मी जीव जिसे सम्यग्दर्शन है अर्थात् कि आत्मा पूर्ण आनन्द और ज्ञायकभाव से भरपूर, वह मैं आत्मा, ऐसा जहाँ सम्यग्दर्शन में अनुभव सम्यग्दृष्टि को है, वह कहते हैं कि आवश्यक यदि इच्छता है, तो अन्तर के स्वरूप में स्थिरभाव करता है। शाम-सवेरे प्रतिक्रमण करते न। प्रतिक्रमण ऐसे... अप्रतिक्रमण था, उसे प्रतिक्रमण माना था। आहाहा! कठिन काम बापू!

सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ वीतराग का मार्ग, वह मार्ग अन्यत्र कहीं है नहीं (और) उनके घर में आये, उन्हें खबर नहीं। वाडा में जन्मे उन्हें, वीतराग का धर्म क्या है, उसकी खबर नहीं। मान बैठे कि हम वीतराग का धर्म करते हैं। कहते हैं कि हे शिष्य!... वापस शिष्य कहकर 'तू कर', ऐसा नहीं, हे शिष्य! 'तू ऐसा करता है' (ऐसा कहा)। आहाहा! भगवान आत्मा यह दया, दान के विकल्प से भी भिन्न है, क्योंकि विकल्प तो आस्रवतत्त्व है। समझ में आया? भगवान उस विकल्प से भिन्न प्रभु आत्मा है। उससे भिन्न है, परन्तु उसके आनन्द और ज्ञान के स्वभाव से वह अभिन्न है। त्रिकाली ज्ञान-आनन्द स्वभाव से अभिन्न, ऐसे में स्थिर करता है, धर्मी उसमें स्थिरपना करता है।

आहाहा! दूसरा जानपना कम-अधिक हो, उसका प्रश्न यहाँ लिया नहीं। आहाहा! यह तो भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ सहजात्मस्वरूप, उसकी सन्मुख में स्थिरता करता है, उसे भगवान धार्मिक क्रिया और मोक्ष का मार्ग उसे कहते हैं। समझ में आया?

उस हेतु से (अर्थात् उस कारण द्वारा)... ऐसा स्वरूप भगवान आत्मा, उसके त्रिकाली अविनाशी आनन्द में जो स्थिरता करता है, इससे उसे, उस हेतु से **निश्चय-सामायिकगुण उत्पन्न होने पर,...** उसे तो शान्त वीतरागीभाव, समताभाव सच्चा उपजता है। समझ में आया? **मुमुक्षु जीव को—** धर्मात्मा जीव को **बाह्य छह आवश्यकक्रियाओं से क्या उत्पन्न हुआ?** आहाहा! मैं सामायिक करता हूँ, भगवान की स्तुति करता हूँ, गुरु को वन्दन करता हूँ—ऐसा जो शुभराग, वह तो विकल्प का राग है। उससे धर्मी को क्या फल है? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? इन बाह्य छह आवश्यक क्रियाओं से क्या उपजा? व्यावहारिक राग की क्रिया जिसे अज्ञानी धार्मिक (क्रिया) कहता है, उससे क्या फल है? **अनुपादेय फल उत्पन्न हुआ...** आदरणीय फल उसमें है नहीं। आहाहा! गजब बात है! बातें वीतराग की ऐसी बात है, भाई!

वीतराग का मार्ग वीतरागभाव से उत्पन्न होता है, वह राग की क्रिया से नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मैं सामायिक करता हूँ, 'णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं' ऐसा करके बैठा हो—वह सब विकल्प है, वह तो राग है। भगवान की स्तुति करता हूँ। भगवान पर है, उनकी स्तुति करने जाये, वहाँ विकल्प उठे, राग आवे। गुरु को वन्दन करता हूँ। गुरु पर है, उन्हें वन्दन करने जाये, वहाँ विकल्प उठता है। आहाहा!

मुमुक्षु : कहाँ खड़े रहना?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा में खड़े रहना, ऐसा कहते हैं। भाई! तूने कभी किया नही ऐसा और अज्ञान से मान बैठा है कि मैं कुछ धर्म करता हूँ। आहाहा!

बाह्य छह आवश्यकक्रिया जो पुण्य का विकल्प उठे राग, वह तो अनुपादेय फल है। आहाहा! उससे तो पुण्यबन्ध होता है, उसमें धर्म होता नहीं। आहाहा! भारी कठिन काम, हों! मार्ग तो ऐसा है, प्रभु! अनादि का। तीर्थंकर सर्वज्ञ अनन्त परमेश्वर इस प्रकार से धार्मिक क्रिया का वर्णन अनन्त काल से करते आये हैं। आहाहा! कहते हैं, अरे!

भगवान आत्मा का आनन्द और ज्ञान अविनाशी स्वभाव, उसमें जो स्थिर हुआ, वह धर्म की क्रिया है। उसका फल सामायिक अर्थात् समता प्राप्त होता है। बाकी छह व्यवहारिक क्रिया आवश्यक का फल तो नापसन्द करनेयोग्य है। आहाहा! भारी कठिन काम, हों! अभी तो बात सुनते हुए मस्तिष्क में कठिन पड़े। ऐसा मार्ग? कहते हैं कि बाह्य व्रत की क्रिया और व्रत का भाव और तप का भाव और अपवास करूँ, भक्ति करूँ, पूजा करूँ, परमात्मा की यात्रा—वह विकल्प सब है, वह सब राग है। कहते हैं, उस राग से तुझे क्या फल उपजे? आहाहा!

तुझे जो चाहिए समता का फल, वह उसमें नहीं आता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जेठाभाई! बहुत मार्ग, बापू! कैसा है? परन्तु लोग इस प्रकार से मश्करी में निकाल डालते हैं। यह तो निश्चय... यह तो निश्चय। अर्थात् सच्चा यह। खोटा तो कहो। व्यवहार अर्थात् खोटा। आहाहा! यह करते... परन्तु व्यवहार का अर्थ अभूतार्थ, अभूतार्थ का अर्थ असत्यार्थ, असत्यार्थ का अर्थ झूठा। भीखाभाई! ऐसी वस्तु ऐसी है। दूसरी बात चाहे जो हो, परन्तु मार्ग यह है। समझ में आया? जानपना शास्त्र का कम हो, अधिक हो, दूसरा ज्ञान न हो—उसके साथ कुछ सम्बन्ध है नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया?

भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त आनन्द की खान—निधान, उसके सन्मुख की स्थिरता करता है तो, हे शिष्य! उस धार्मिक क्रिया में तुझे समता का फल मिलेगा। और उससे विरुद्ध छह आवश्यक की क्रिया बाह्य की—व्यवहार की, उसका फल तो हेय है। है न नीचे। अनुपादेय है। व्यवहार और व्यवहार का फल वह आदरणीय नहीं, ऐसा कहते हैं। दूसरे प्रकार से व्यवहार को हेय कहा। उसके फलरूप से कहा वह... आहाहा! शान्तरस का कन्द प्रभु आत्मा, अविकारी स्वभाव का पिण्ड प्रभु, उसके अन्तर में एकाग्र होकर समता—वीतरागी दशा प्रगट हो, उसे यहाँ आवश्यक धार्मिक क्रिया कहते हैं। वह मोक्ष का मार्ग है। पण्डितजी! भारी कठिन, भाई। पहले-वहले सुने तो भड़क जाये, हों! अपने सुनते थे कि वहाँ सोनगढ़ में ऐसा कहता जाता है, वही कहते हैं। यह क्या कहते हैं, यह शास्त्र क्या कहता है? देखो न! यह शास्त्र है, वह सोनगढ़ का शास्त्र है?

भगवान के श्रीमुख से निकला हुआ सिद्धान्त, उसे कुन्दकुन्दाचार्य ने बनाया—रचा, उसकी टीका की पद्मप्रभमलधारि दिगम्बर सन्त ने। वे ऐसा कहते हैं, पुकार करते हैं जगत को। भाई! व्यवहार सामायिक, चोविसंथा, वन्दन, प्रतिक्रमण, वह व्यवहार का जो विकल्प... और निश्चय जो सामायिक, भगवान आत्मा की स्तुति, वह अन्तर्मुख होने की जो क्रिया, उसे यहाँ निष्क्रियरूप से कहते हैं... कहते हैं, अरे! मुमुक्षु जीव को, जिसे मोक्ष की अभिलाषा है, जिसे राग से छूटना है—ऐसे मुमुक्षु जीव को व्यवहारक्रिया से **अनुपादेय फल उत्पन्न हुआ, ऐसा अर्थ है।** व्यवहार राग की क्रिया और उसका फल बन्धन, वह सब हेय है, नापसन्द करने जैसा है, महिमा नहीं करने जैसा है। आहाहा!

राग... राग... ... गले चिपटा है। व्यवहावर पुण्य... पुण्य... पुण्य... पुण्य... पुण्य करते हैं न, ...पुण्य करते हैं न, राग करते हैं न, प्रशस्त राग है न। सुन न अब! वह तेरा प्रशस्त राग आग है। राग दाह आग, ऐसा आता है न? 'यह राग आग दहे सदा, तातै समामृत सेईये।' छहढाला (छाल ६, पद १५) में आता है। 'राग आग दहे सदा...' यह शुभविकल्प भी राग है। आहाहा! भगवान... भगवान... यह दाह है। दहे—अन्दर आत्मा की शान्ति को जलाता है। 'तातै समामृत सेईये...' इसलिए राग-विकल्प की क्रियारहित भगवान आत्मा शान्त शीतलस्वरूप प्रभु की सेवा—एकाग्र होकर, उसे समताभाव प्रगट होता है। 'समामृत सेईये...' वह समतारूपी अमृत प्रगट होता है, रागरूपी जहर नाश होता है। आहाहा! कठिन काम, भाई!

ऐसा अर्थ है। मुनिराज ऐसा कहते हैं कि इस राग का फल क्या उपजा? अनुपादेय है, ऐसा इसका अर्थ है। आत्मा के स्वभाव के आश्रित जो शान्ति प्रगट हो, वह समता का फल है। समझ में आया? वीतरागी आनन्द प्रगट हो, वह समता और वह सामायिक, उसे सामायिक कहते हैं। समझ में आया? जेठाभाई! ऐसी सामायिक। यह दो घड़ी बैठे 'णमो अरिहंताणं...' जाओ, हो गयी सामायिक। धूल भी नहीं सामायिक, सुन न! सामायिक किसे कहना, तूने सुना नहीं। ऐ भीखाभाई! यह कितनी बार सामायिक की होगी? आहाहा! **इसलिए...** यह दो फल बताये। अन्तर भगवान आत्मा के अवलम्बन से एकाकार होकर स्थिरता हो, वह वीतरागी पर्याय समता उत्पन्न हो, वह आदरणीय फल है। आहाहा! और रागादि क्रिया है, उसका फल बन्धन है, अनुपादेय है, पसन्द

करनेयोग्य नहीं। आहाहा! है या नहीं अन्दर पाठ है या नहीं? देखो न अन्दर। आहाहा!

इसलिए अपुनर्भवरूपी (मुक्तिरूपी) स्त्री... जिसे मुक्ति चाहिए हो, जिसे भव का अभाव (करना हो)... आहाहा! अपुनर्भव—भव ही जहाँ नहीं, ऐसी मुक्ति। ऐसी मुक्तिरूपी स्त्री अर्थात् परिणति, उसका जो अनुभव, उसका जो आनन्द **प्राप्त करने में प्रवीण...** आहाहा! पूर्ण मुक्ति की दशा—अत्यन्त आनन्द की दशा, अत्यन्त ज्ञायक की ज्ञानदशा, पूर्ण दशा—ऐसी जो मुक्ति, उसरूपी अवस्था का अनुभव और उसके **हास्य** अर्थात् आनन्द, उसका अनुभव और आनन्द को प्राप्त करने में प्रवीण **ऐसे निष्क्रिय परम-आवश्यक से जीव को...** देखो! यहाँ निष्क्रिय कहा। राग क्रिया है, वह सक्रिय राग है। राग की क्रिया नहीं, इस अपेक्षा से, भगवान आत्मा के आश्रय से अरागी क्रिया है, उसे यहाँ राग की अपेक्षा से निष्क्रिय कहा है। समझ में आया? आहाहा! टीका भी कैसी टीका! एक-एक कलश में, एक-एक गाथा में कितना भर दिया है!

भाई! तू प्रभु है न! पूर्ण प्रभु है! आहाहा! गुण से प्रभु, द्रव्य से प्रभु, अनन्त-अनन्त शक्ति से तू प्रभु, ऐसे प्रभु का अन्तर आश्रय ले तो तुझे पर्याय में प्रभुता प्रगट होगी, वरना निमित्त के आश्रय से, यह छह क्रिया का राग तो दीनता है, पामरता है, कहते हैं। आहाहा! अरे! इस बात की श्रद्धा की खबर नहीं होती, उसके ज्ञान की खबर नहीं होती और उसे धर्म हो जाये, (ऐसा नहीं बनता)। अनन्त काल से इसने ऐसा का ऐसा (काल) गँवाया है। समझ में आया? उसे **निष्क्रिय परम-आवश्यक से...** पहले अनुपादेय फल कहा न व्यवहार को। तब उसका (फल) यह है, ऐसा। निष्क्रिय परम-आवश्यक क्रिया, अन्तर ज्ञानभाव में—स्वभाव में एकाकार ज्ञान की क्रिया, ऐसी **आवश्यक क्रिया से जीव को सामायिकचारित्र सम्पूर्ण होता है।** उसे समता का परिणाम पूर्ण आता है, ऐसा कहते हैं। अरे! दूसरी बात छोड़ दे और यह ले न, समझ न, कहते हैं। समझ में आया?

'लाख बात की बात...' आता है न छहढाला में? 'निश्चय उर आणो...' छहढाला में आता है। 'लाख बात की बात निश्चय उर आणो, छोडी जगत द्वंद्व फंद निज आतम उर ध्याओ।' (ढाल ४, पद ९)। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर प्रभु का ध्यान कर, उसमें एकाकार हो, यह क्रिया है। वीतरागमार्ग में धार्मिक क्रिया उसे

कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? बहुत फेरफार है यह तो, भाई! उगमणा-आथमणा— पूर्व और पश्चिम जैसा लगे। लगे कि ऐसा करो, व्रत करो, अपवास करो, तप करो, भक्ति करो, तुम्हारे धर्म होगा। यहाँ कहते हैं कि व्रत और तप और भक्ति का विकल्प है, वह राग और पुण्य है, वह धर्म नहीं। आहाहा! सच्चा धर्म नहीं, खोटा धर्म है। आहाहा! पाठ में है न '**सामण्णगुणं संपुण्णं होदि जीवस्स**' भगवान आत्मा निज परमात्मा की एकाग्रता में जो क्रिया—वीतरागी दशा हो, वह राग की अपेक्षा से निष्क्रिय कहलाती है। उस निष्क्रिय आवश्यक से जीव को समतारूपी स्थिरता सम्पूर्ण होती है। कहो, समझ में आया?

इसी प्रकार (आचार्यवर) श्री योगीन्द्रदेव ने (अमृताशीति में ६४वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:— योगीन्द्रदेव का आधार देते हैं। योगीन्द्र मुनि हो गये हैं वनवासी दिगम्बर सन्त। मुनि तो जंगल में रहते थे और आत्मध्यान और आनन्द में मस्त रहते थे। समझ में आया? ऐसे मुनि में ये योगीन्द्रदेव मुनि हुए हैं, इन्होंने एक अमृताशीति नाम की पुस्तक बनायी है। उसका ६४वाँ श्लोक है।

यदि चलति कथञ्चिन्मानसं स्वस्वरूपाद्,
भ्रमति बहिरतस्ते सर्वदोषप्रसङ्गः।
तदनवरत-मन्त-र्मग्न-सम्विग्न-चित्तो,
भव भवसि भवान्तस्थायिधामाधिपस्त्वम्॥

आहाहा! मुनिन्द्र योगीन्द्रदेव सन्त—मुनि दिगम्बर कहते हैं, **श्लोकार्थः यदि किसी प्रकार मन निज स्वरूप से चलित हो...** आहाहा! भगवान आनन्दस्वरूप में से जो हटे और शुभ विकल्प आवे, **और उससे बाहर भटके...** आहाहा! अन्तर भगवान आत्मा में अन्तर्मग्न न होकर मन वहाँ से च्युत हो जाये (और) विकल्प उठे और वह विकल्प बाहर में भ्रमे, अन्दर में तो जाये नहीं। कहो, भीखाभाई! फिर देव को, गुरु को, शास्त्र को लगे—चिपटे। पहले स्त्री-पुत्र को चिपटा था अशुभभाव में, निमित्त को बदला तो देव-गुरु-शास्त्र को चिपटा। यह तो वह का वह है वहाँ। समझ में आया? आहाहा! कठिन काम, भाई! वीतरागमार्ग कोई दूसरी जाति का है। कहते हैं कि अपने आनन्दस्वरूप प्रभु में से यदि मन हटा और चलित हुआ, राग हुआ और उससे वह राग तो बाहर भ्रमे,

बाह्य पदार्थ के ऊपर लक्ष्य जाये उसका तो, राग का तो बाह्य के ऊपर लक्ष्य जाये, **तो तुझे सर्व दोष का प्रसंग आता है,...** आहाहा! बहिर्वृत्ति राग की होने पर राग पर में लक्ष्य करके स्थिर हो, वह तो महादोष का कारण है। भीखाभाई! है न पुस्तक है? यह कहीं घर का (नहीं है)। सुमनभाई! है या नहीं अन्दर? आहाहा!

पाठ तो देखो! '**सर्वदोषप्रसङ्गः**' भगवान आत्मा अपना निजस्वरूप, उसकी श्रद्धा-ज्ञान और वीतरागता में से जो हटा तो विकल्प उठा, कहते हैं, और राग उठा। और राग उठा, वह स्वसन्मुख में नहीं जाता, राग का तो परद्रव्य के ऊपर लक्ष्य जाये और उस राग में सर्वदोष का प्रसंग आता है। समझ में आया? **बाहर भटके तो तुझे सर्व दोष का प्रसंग आता है,...** ओहो! सन्तों की वाणी में राग को विच्छेद करने की पद्धति है। अन्तर्मुख भगवान आत्मा अन्तर्मुखस्वरूप की ओर में से यदि हटा, स्व का आश्रय नहीं रहा, तो राग आने पर, पर के आश्रय में जायेगा, अनेक दोष उत्पन्न होंगे। कहो, समझ में आया? दिगम्बर सन्तों की ऐसी कथनी है। ऐसी बात कहीं अन्यत्र नहीं है, अन्यत्र कहीं नहीं। सन्त—वीतरागी मुनि केवलियों के पथानुगामी, परमात्मा के मार्ग में चलनेवाले ऐसा कहते हैं कि आत्मा के आनन्द में से स्व का आश्रय छोड़कर जो विकल्प उठा, वह विकल्प बाहर में भ्रमेगा ऐसे... ऐसे... ऐसे... आहाहा! तो उसे सर्व दोष का प्रसंग आता है। स्वरूप में स्थिर हो, उसे समता का फल आता है, ऐसा कहते हैं और राग आवे, उसे यह सर्व दोष का प्रसंग आता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

इसलिए तू... इस कारण से हे भगवान आत्मा! **तू सतत**—निरन्तर **अन्तर्मग्न**—शुद्ध आनन्दकन्द भगवान में लीन हो, आनन्द में लीन हो। आहाहा! नहीं तो विकल्प आता है, वह तो दुःख है। विकल्प जो उठा, वह तो दोष, दुःख है और अनेक दोष का वह प्रसंग है। इसलिए तू सतत अन्तर्मग्न **और संविग्न चित्तवाला हो...** पर की उपेक्षा करनेवाला वैरागी संवेगी... आहाहा! यह विकल्प-राग से भी विरक्त हो। समझ में आया? यह तो अन्तर में पचाने जैसी बात है। समझ में आया? दुनिया को बैठे या न बैठे, उसके साथ वस्तु का सम्बन्ध नहीं है। वस्तु तो वस्तु के सम्बन्ध में पड़ी है। वह सम्बन्ध छोड़े तो बन्ध होगा, कहते हैं। समझ में आया? यह व्यवहार के क्रियाकाण्ड का विकल्प भी सर्व दोष का प्रसंग होगा, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा!

जिसे दुनिया, व्यवहार करते-करते निश्चय होगा, दोष करते-करते निर्दोष होगा—ऐसा कहती है, वह वीतरागमार्ग से अत्यन्त उल्टा है। समझ में आया? त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव परमेश्वर ने जो यह पंथ कहा उससे, यह व्यवहार से लाभ हो, यह पंथ ही विरुद्ध का है, ऐसा कहते हैं। अरे! **संविग्न चित्तवाला हो...** अन्तर्मग्न, ऐसे अन्तर्मग्न हो और यहाँ से वैराग्य हो—विरक्त हो। आहाहा! भगवान स्वभाव आनन्द का सागर प्रभु आत्मा निज परमात्मा में लीन, उसमें एकाग्रता (और) बह्य से उपेक्षा—वैराग्य कर। संविग्न वैराग्यवाला चित्तवाला हो **कि जिससे तू मोक्षरूपी स्थायी धाम का अधिपति बनेगा।** आहाहा! ऐसा आत्मा, उसके अन्तर्मग्नदशा से रागरहित क्रिया—निष्क्रिय क्रिया, ऐसी द्रव्यस्वभाव में—वस्तुस्वभाव में अन्तर्मग्न क्रिया, उस क्रिया द्वारा और पर से संविग्नवाला द्वारा तू मोक्षरूपी स्थायी—स्थिर रहनेवाला ऐसा जो धाम, उसका अधिपति होगा। यह चार गति का अधिपति होकर भटक मरता है, हों! आहाहा! समझ में आया?

मोक्ष—आत्मा की पूर्ण दशा, आनन्द दशा, वह तो शुद्धस्वरूप चैतन्य के अन्तर्मग्न क्रिया द्वारा प्राप्त होती है। अस्ति-नास्ति की न! अन्तर्मग्न हुआ न। यहाँ से विरक्त हुआ, ऐसा। राग से विरक्त, स्वभाव में रक्त। त्रिकाली स्वभाव में रक्त और राग से विरक्त। आहाहा! गजब बात! ऐसी क्रिया द्वारा तुझे मोक्षरूपी स्थिर—स्थायी आनन्द का धाम प्रगट होगा। आहाहा! उसका तू अधिपति होगा, ऐसा। मोक्ष की दशा का स्वामी होगा, मोक्षदशा तुझे प्राप्त होगी। यह योगीन्द्रदेव ने कहा है।

इस १४७ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज... स्वयं **श्लोक कहते हैं:—** पद्मप्रभमलधारिदेव सन्त दिगम्बर मुनि।

यद्येवं चरणं निजात्म-नियतं सन्सार-दुःखापहं,
मुक्तिश्रीललना-समुद्भवसुखस्योच्चैरिदं कारणम्।
बुद्धवेत्थं समयस्य सारमनघं जानाति यः सर्वदा,
सोऽयं त्यक्तबहिःक्रियो मुनिपतिः पापाटवीपावकः॥२५५॥

श्लोकार्थः यदि इस प्रकार (जीव को) संसारदुःखनाशक... यह संसारदुःख '**आपहं**'—नाशक। वह संसार के विकल्प जो राग, वह संसार का दुःख है। ऐसे संसार

के दु:ख का नाशक, संसार के दु:ख को नाश करनेवाला **निजात्मनियत चारित्र...** निज आत्मा में नियत। इसका अर्थ किया है। **निज आत्मा में लगा हुआ;...** आहाहा! भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दघन में एकाकार हुआ, उसे चारित्र कहते हैं। समझ में आया? नग्नपना और पंच महाव्रत के विकल्प, वह कहीं चारित्र नहीं है। आहाहा! संसारदु:ख का नाश करनेवाला **निजात्मनियत चारित्र...** निज आत्मा अपना भगवान पूर्ण शुद्ध, उसमें लगा हुआ अर्थात् एकाग्र हुआ **निज आत्मा का अवलम्बन लेता हुआ;...** नियत है न! **निजात्मनियत...** विकल्प जो पंच महाव्रत है, वह तो परसन्मुख के झुकाववाला भाव है, वह चारित्र नहीं। आहाहा!

चारित्र तो आत्मा आनन्द में लीनता, आत्मा को अवलम्बता **निजात्माश्रित...** भगवान आत्मा के अवलम्बन से—आश्रय से प्रगट हुई वीतरागीदशा, अतीन्द्रिय आनन्द की स्वादिष्ट दशा, निज आत्मा में एकाग्रता। आहाहा! अपना स्वभाव भगवान में एकाग्रता, वह चारित्र। चारित्र की व्याख्या की खबर नहीं होती कि चारित्र कहना किसे? आहाहा! समझ में आया? भगवान पूर्णानन्द प्रभु ऐसी निजात्मा की स्वात्माश्रित अन्तरश्रद्धा—सम्यग्दर्शन, ऐसा निजात्म भगवान के आश्रित होनेवाला सम्यग्ज्ञान, वह ज्ञान और उसके आश्रित—अवलम्ब कर होनेवाला चारित्र—वह मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? नियमसार गजब काम करता है! आहाहा! तेरा प्रभु का आश्रय होकर जो श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र हो—वीतरागी मोक्षमार्ग, वह मोक्ष का उपाय है। समझ में आया?

पहले श्रद्धा और समझण में जहाँ ठिकाना नहीं, वहाँ उसे चारित्र कैसा और मुक्ति का मार्ग कैसा? आहाहा! समझ में आया? अरे! चौरासी के अवतार में भटकता—रुलता दु:खी प्राणी है। वह शुभभाव हो तो भी दु:ख है और अशुभ हो तो भी दु:ख है। आहाहा! ऐसे दु:ख को नाश करनेवाला मार्ग **निजात्मनियत चारित्र...** आहाहा! **तो वह चारित्र मुक्तिश्रीरूपी (मुक्तिलक्ष्मीरूपी) सुन्दरी से उत्पन्न होनेवाले सुख का अतिशयरूप से कारण होता है...** वह चारित्र। अतीन्द्रिय आनन्द में रमणता और अतीन्द्रिय आनन्द की दशा का रमना—होना, वह चारित्र। उस चारित्र से अथवा वह चारित्र मुक्तिस्त्रीरूपी सुन्दरी से उत्पन्न, परमानन्द की प्राप्तिरूपी मुक्ति से उत्पन्न होते सुख का अतिशयरूप से कारण होता है। उस सुख का कारण यह चारित्र होता है। समझ में आया?

व्यवहारचारित्र के विकल्प आदि, वह सुख का कारण नहीं होता। आहाहा! ऐसा मार्ग। **ऐसा जानकर...** ऐसा कहते हैं न! **ऐसा जानकर जो (मुनिवर) निर्दोष समय के सार को सर्वदा जानता है,...** निर्दोष समय का सार अर्थात् आत्मा। पूर्णानन्द ऐसे सार को सर्वदा जानता है। ओहोहो! **ऐसा वह मुनिपति...** जिसने आत्मा का आश्रय लेकर चारित्र और समय के सार को जाना है, ऐसे मुनिपति **कि जिसने बाह्य क्रिया छोड़ दी है...** यह विकल्प की क्रिया जिन्होंने छोड़ दी है। आहाहा! समझ में आया? यह व्यवहार के विकल्प से हट गया है और अन्तर के स्वरूप में आनन्द में मग्न है, ऐसे चारित्र से यह मुक्ति, उसे प्राप्त होती है। ऐसा वह जीव **पापरूपी अटवी को जलानेवाली अग्नि है।** लो। आहाहा!

राग को छोड़ा है और वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा की दृष्टि—अनुभव करके सम्यग्दर्शन प्रगट करके, फिर स्वरूप में लीन होता है। उसने आत्मा को जाना कि यह आत्मा ऐसा है। और वह मुनिपति पापरूपी अटवी को जलानेवाला अग्नि है (अर्थात्) संसार का नाश करनेवाला अग्नि है। उसे संसार का नाश होता है। आहाहा! समझ में आया? निश्चय की बात सत्य को इसने कभी देखा नहीं, जाना नहीं, सुनने को मिलता नहीं, उसे ऐसा लगे कि यह भी ऐसा यह मार्ग? कुछ इसमें कारण होगा या नहीं व्यवहार-फ्यवहार? या सीधे ऐसे निश्चय हो जाता होगा? यह तो कहते हैं कि व्यवहार की क्रिया छोड़ दे। ऐसा कहते हैं न! व्यवहार की क्रिया है तो निश्चय होता है, ऐसा तो कहा नहीं यहाँ। आहाहा! होते हैं व्यवहार के विकल्प, परन्तु उसका आश्रय छोड़कर, स्व के आश्रय में पड़कर स्थिरता, आनन्द प्रगट करता है, वह पापरूपी अटवी—वन को जलानेवाला अग्नि है। उसे मुक्ति होती है, उसे धर्ममार्ग प्रगट हुआ होता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण ४, शनिवार, दिनांक - ०६-११-१९७१
गाथा-१४८, श्लोक-२५६-२५७, प्रवचन-१७०

यह नियमसार, निश्चय परम-आवश्यक अधिकार, १४८ गाथा।

आवासएण हीणो पब्भट्ठो होदि चरणदो समणो।
पुव्वुत्त-कमेण पुणो तम्हा आवासयं कुज्जा॥१४८॥

रे श्रमण आवश्यक-रहित चारित्र से प्रभ्रष्ट है।
अतएव आवश्यक करम पूर्वोक्त विधि से इष्ट है॥१४८॥

इसकी **टीका : यहाँ (इस गाथा में)...** नियमसार है न! नियमसार अर्थात् निश्चयमोक्षमार्ग। स्व-आत्मा के आश्रय से जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र हो, वह निश्चयमोक्षमार्ग है। वह परम आवश्यक कर्म—कर्तव्य है। आत्मा का आवश्यक का—परम आवश्यक का कार्य वह है कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कि जो आत्मा के आश्रय से होता है, वह। समझ में आया? इस गाथा में **शुद्धोपयोगसम्मुख जीव को शिक्षा कही है।** आत्मा आनन्दस्वरूप की सन्मुख का जो शुद्ध उपयोग (वाला जीव) उसे यह शिक्षा कही गयी है।

यहाँ (इस लोक में) व्यवहारनय से भी,... कहते हैं कि जिसे आत्मा का आश्रय लेकर निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निश्चय आवश्यक है, उसे परम आवश्यक का विकल्प व्यवहार से भी होता है। और वह व्यवहार भी जिसे नहीं, उसे तो निश्चय भी नहीं। समझ में आया? तो **व्यवहारनय से भी, समता,...** विकल्प में शुभरागभावरूप समता... **स्तुति—** भगवान की स्तुति, गुरु **वन्दना, प्रत्याख्यान...** व्यवहार **आदि छह आवश्यक से रहित श्रमण चारित्र परिभ्रष्ट (चारित्र से सर्वथा भ्रष्ट) है;...** समझ में आया? निश्चय नहीं और व्यवहार भी नहीं, वह तो चारित्र से सर्वथा भ्रष्ट है। स्व-आत्मा के आश्रय से मोक्ष का मार्ग भी नहीं और व्यवहार भी नहीं, वह तो सब प्रकार से भ्रष्ट है। **शुद्धनिश्चयनय से...** यह तो व्यवहार कहा, शुद्धनिश्चय के आश्रय से जिसे

आवश्यक धार्मिक क्रिया हुई है, उसका यह व्यवहार। समझ में आया?

शुद्धनिश्चय से, परम-अध्यात्मभाषा से... परम अध्यात्मभाषा... **जिसे निर्विकल्प-समाधिस्वरूप कहा जाता है,...** आत्मा का स्वभाव अतीन्द्रिय आनन्द पूर्ण ध्रुव नित्य है, उसमें लीनता, वह निर्विकल्प समाधि, आनन्द है। वह वास्तविक परम आवश्यक है। **ऐसी परम आवश्यक क्रिया से रहित...** भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप चैतन्यस्वभाव में लीनतारूपी समाधि, शान्ति, आनन्द—ऐसी जो निर्विकल्प शान्ति कही जाती है, ऐसी क्रिया से जो रहित है, वह तो भ्रष्ट का भ्रष्ट है, सब भ्रष्ट है। भले व्यवहार करता हो, परन्तु इस निश्चय से भ्रष्ट है, वह भ्रष्ट ही है। समझ में आया? पहले तो, निश्चय का आश्रय है, उसे विकल्प व्यवहार है, ऐसी बात की। जिसे यह निश्चय चैतन्य के अवलम्बन में, पूर्ण ज्ञानघन प्रभु के आश्रय में समकिती को भी आवश्यकक्रिया है—ऐसा कहेंगे बाद की गाथा में। अन्तर-आत्मा तीन प्रकार के (हैं, उन) सबको आवश्यकक्रिया होती है। यदि यह आवश्यक न हो तो वह बहिरात्मा है, ऐसा कहेंगे। समझ में आया?

कहते हैं कि वीतराग का मार्ग ऐसा बारीक-सूक्ष्म है। अन्दर दया, दान, व्रतादि के छह आवश्यकों के विकल्प हो, परन्तु वह कुछ चीज़ नहीं। जहाँ निश्चय स्व-चैतन्य भगवान अन्तर्मुख की दृष्टि करके जो अन्तर आश्रय हो, उसके आश्रय से जो निर्विकल्पता, शान्ति, समाधि और आनन्द प्रगट हो, वह वास्तव में निश्चय—सच्चा आवश्यक कार्य है। अरे गजब! उससे जो रहित **श्रमण निश्चयचारित्रभ्रष्ट है...** उसे चारित्र होता नहीं। आहाहा! गजब बात! समझ में आया? भले वह पंच महाव्रत के विकल्प पालता-रखता हो, साधु के २८ मूलगुण व्यवहार के हों, परन्तु आत्मा के आश्रय से शान्ति, समाधि और चारित्र नहीं तो वह चारित्र से भ्रष्ट है। गजब बात, भाई! समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि को अपना स्वभाव के आश्रय से आवश्यक सम्यग्दर्शन, ज्ञान और स्थिरता का अंश है, वह उसका—समकिती का आवश्यक कर्म है और व्यवहार से देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति आदि का विकल्प हो, वह उसका व्यवहार आवश्यक है। समझ में आया? परन्तु यहाँ तो मुनि की बात ली है। अर्थात् मुनि तो आगे बढ़े हुए हैं,

स्वरूप का बहुत उग्र आश्रय जिन्होंने लिया है, वे अपनी महासत्ता आनन्द की और ज्ञान की, उसमें जिनकी जमवट जम गयी है। आहाहा! कठिन मार्ग, भाई! ऐसी जिसे आवश्यकक्रिया नहीं, वह तो निश्चयचारित्र भ्रष्ट है। कहो, समझ में आया? **ऐसा** इसका **अर्थ है,** कहते हैं।

(इसलिए) स्ववश परमजिनयोगीश्वर के... यह तो भावना का ग्रन्थ है न, (इसलिए) बारम्बार इस बात को भिन्न-भिन्न प्रकार से स्पष्टीकरण किया है। कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं कहते हैं कि मैंने तो मेरी भावना के लिये यह शास्त्र रचा है। कुन्दकुन्दाचार्यदेव जैसे ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कहते हैं कि यह अन्दर भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दघन, उसके जो वश है, उसके जो अन्तर आधीन हुआ है, ऐसा परम-जिनयोगीश्वर, परम जिन वीतरागी योग में जुड़ा हुआ अन्दर में। **निश्चय-आवश्यक का जो क्रम पहले कहा गया है,...** पूर्व में कहा है कि किसके आश्रय से होता है। जितना व्यवहार आवश्यक की क्रिया का विकल्प उठे, वह सब पराश्रय है, वह तो बन्ध का कारण है। व्यवहार सामायिक यह सब करके बैठते हैं न। व्यवहार भगवान की स्तुति, गुरुवन्दन, वे सब शुभ विकल्प हैं। परन्तु यदि यह निश्चयचारित्र न हो, तब तो वे चारित्र से भ्रष्ट हैं, भले विकल्प हों ऐसे। समझ में आया? आहाहा!

चौथे गुणस्थान में भी... यह ४९ गाथा में है न? परम आवश्यक से रहित वह बहिरात्मा है, ऐसा। '**आवासएण हीणो समणो**' फिर अर्थ में-टीका में तो यहाँ तक लिया है। सम्यग्दृष्टि प्रथम श्रेणी का, उसे भी आवश्यकक्रिया दो प्रकार की होती है। एक स्व-आत्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र का अंश होता है, वह उसका निश्चय कर्तव्य है। उसके साथ व्यवहार का भाग देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, बहुमान, ऐसा विकल्प होता है, वह व्यवहार आवश्यक कहलाता है। समझ में आया? पंचम गुणस्थान में अन्तरात्मा है, वह भी आत्मा का उग्र आश्रय होकर जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का अंश प्रगट हुआ है, वह निश्चय है और उसे बारह व्रत के विकल्प, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का विकल्प, वह व्यवहार कहलाता है।

अथवा श्रावक के योग्य छह आवश्यक आते हैं न? देवपूजा, गुरुवन्दना, (स्वाध्याय), दान, संयम, तप—ऐसा शुभविकल्प, वह श्रावक को स्व के आश्रय से हुई

दशा की भूमिका में उसे ऐसा विकल्प हो, उसे व्यवहार कहा जाता है और स्व-आश्रय से हो, उसे निश्चय कहा जाता है। समझ में आया? और जिसे स्व-आश्रय बिल्कुल नहीं, वह तो राग की क्रिया के आधीन होकर भले उसमें वर्ते, वह बहिरात्मा है, वह मिथ्यादृष्टि है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

स्ववश परमजिनयोगीश्वर के निश्चय-आवश्यक का जो क्रम... क्रम अर्थात् स्वद्रव्य का आश्रय लेना, यह उसका पहला क्रम है। समझ में आया? उसे महाव्रत के विकल्प पहले लेना और करना, ऐसा है नहीं—ऐसा कहते हैं। उसका क्रम तो यह है अन्दर। **निश्चय-आवश्यक का जो क्रम पहले कहा गया है, उस क्रम से (-उस विधि से),...** इसलिए स्पष्टीकरण किया। **स्वात्माश्रित...** भगवान का स्मरण आदि, वह पराश्रित है, वह पुण्यबन्ध है। आहाहा! स्व-आत्मा भगवान पूर्णानन्द प्रभु अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द का पूर ऐसा जो स्वस्वरूप, उसके आश्रित, उसकी सन्मुखता होकर, आश्रय करके जो **निश्चय धर्मध्यान**—सच्चा धर्मध्यान तो स्व के आश्रय से होता है। अब जिसे स्व कौन है, क्या है, उसकी खबर भी नहीं, उसे तो निश्चय भी नहीं और व्यवहार भी नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

आवश्यक का अधिकार बहुत ऊँचा लिया है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि को—धर्म की पहली श्रेणीवाले को... यह तो मुनि की बात ली है, इसलिए फिर गर्भित में यह बात आ जायेगी। जिसे स्व चैतन्य भगवान पूर्ण आनन्द का आश्रय अंश भी नहीं, इसलिए उसे विकल्प की क्रिया, वह तो सब बहिरात्मा है। समझ में आया? **स्वात्माश्रित ऐसे निश्चय-धर्मध्यान...** यह पहला, यह शुरुआत है। फिर विशेष आश्रय, वह शुक्लध्यान, ऐसा क्रम है। समझ में आया? धर्मध्यान का कायोत्सर्ग आता है न, उसमें यह आता है श्वेताम्बर में, स्थानकवासी में। धर्मध्यान का कायोत्सर्ग आता है। सम्यग्दर्शन बिना ऐसी क्रियायें अनन्त बार की, उससे कुछ सार्थक हुआ नहीं। धर्मध्यान में आता है, कायोत्सर्ग आता है, स्थानकवासी में आता है।.... धर्मध्यान, वह आता है, धर्मध्यान का कायोत्सर्ग कहा न! ऐसे सम्यग्दर्शन आत्मा के आश्रय बिना जो कुछ क्रियायें दया-दान-व्रत-भक्ति-तपादि की जाती है, वह सब अनन्त बार किया, उसका फल मोक्ष नहीं। उसका

फल तो संसार है। आहाहा! आगे तो कहेंगे कि भवभय का कारण वह राग है। व्यवहार का राग, वह भवभय का कारण है, उसमें से तो भव मिले। समझ में आया?

और **निश्चय-शुक्लध्यानस्वरूप से,...** आत्मा के आनन्द में उग्ररूप से शुक्लध्यान करके जो रहे, वह **परम मुनि सदा आवश्यक करो।** लो, यहाँ तो (कहते हैं कि) आवश्यक करो, आहाहा! मुनि... यह मुनि किसे कहना? बापू! यह तो बात (दूसरी है)। अभी सम्यग्दर्शन किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती और कैसे सम्यग्दर्शन हो, किसके आश्रय से हो—उसकी खबर नहीं होती और सीधे व्रत और तप लेकर बैठे, वे सब तो समकित से और चारित्र से—दोनों से भ्रष्ट है। समझ में आया? यहाँ तो स्व-आत्मा भगवान पूर्ण द्रव्य ध्रुव, अविनाशी आत्मा और उसके अविनाशी भाव—गुण, उनके आश्रय में होनेवाली दशा को धर्मध्यान—सच्चा धर्मध्यान कहते हैं, उसका उग्र आश्रय करके स्थिर हो, उसे शुक्लध्यान कहते हैं। ऐसे हे मुनियो! **सदा आवश्यक करो।** ऐसा आवश्यक करो कि जिससे तुम्हारी मुक्ति हो, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया इसमें?

यहाँ तो अकेली निश्चय की सूक्ष्म बातें हैं, व्यवहार की... उस व्यवहार का भी ठिकाना नहीं होता। मार्ग तो वीतराग, स्वयं जिनस्वरूप है... आया था न कल, नहीं?

घट घट अन्तर जिन बसे, घट घट अन्तर जैन
मत मदिरा के पान सो, मतवाला समझे न।

भगवान आत्मा का स्वरूप ही अकषायस्वभाव का पिण्ड प्रभु है, अकषायस्वभाव कहो या जिनस्वरूप कहो या वीतरागस्वरूप कहो। अकषाय (अर्थात्) राग से रहित कहने में आता है (और) यह वीतराग अस्ति। यह वीतराग (अर्थात्) रागरहित, परन्तु रागरहित अरागी स्वरूप उसका है। समझ में आया? जिनराज, स्वयं जिन, वह जिनराज है। आत्मा, वह जिन और जिन, वह जिनराज है। आहाहा! वह स्वयं जिन के आश्रय से होनेवाली दशा, वह धर्म, वह जैनधर्म। समझ में आया? अब एक व्यक्ति ने तो ऐसा कहा है कि जन, जिन, जैन। जन, वे सब जन हैं, वे जीव... हैं। और उन्हें 'ई' लागू पड़े तो वे जिन हो जाते हैं और उन्हें दो वह (मात्रा) करके जैन हो जाते हैं। परन्तु मात्रा की

यहाँ बात कहाँ है ? यह तो सब (आत्मा) स्वरूप जिनस्वरूप ही है। उस जिनस्वरूप का आश्रय लेकर जो लीनता प्रगट की, वह जैन, वह जैनधर्म और वह जैन। आहाहा! जैन कोई सम्प्रदाय नहीं कि हमारी मान्यता यह, उसकी मान्यता यह। यह तो वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। आहाहा!

कहते हैं, स्व-आत्मा ऐसा जो जिन, उसके आश्रित होती दशा, वह जैन। वह जैनधर्म अर्थात् निश्चय धर्मध्यान और निश्चय शुक्लध्यान, वह जैनधर्म। समझ में आया ? ऐसे **निश्चय-धर्मध्यान तथा निश्चय-शुक्लध्यानस्वरूप से, परम मुनि सदा आवश्यक करो।** अन्तर्मुख भगवान आत्मा में एकाकार हो जाओ, बस वही आवश्यक है। आहाहा!

अब इस १४८ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक कहते हैं:—

आत्मावश्यं सहजपरमावश्यकं चैकमेकं,
कुर्यादुच्चै-रघ-कुल-हरं निर्वृतेर्मूलभूतम्।
सोऽयं नित्यं स्वरसविसरापूर्णपुण्यः पुराणः,
वाचां दूरं किमपि सहजं शाश्वतं शं प्रयाति॥२५६॥

श्लोकार्थः आत्मा को अवश्य... अर्थात् जरूर **मात्र सहज-परम-आवश्यक एक को ही—कि जो अघसमूह का नाशक है...** यह करो। आहाहा! समझ में आया ? **आत्मा को...** भगवान आत्मा को अवश (अर्थात्) पर के वश नहीं अथवा अवश्य अर्थात् जरूर ऐसा मात्र... '**अवश्य मात्र**' वजन दिया है। दूसरा नहीं। आहाहा! **मात्र सहज-परम-आवश्यक...** शुद्ध सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा का आश्रय करके जो क्रिया हो, उस **एक को ही...** एक को ही, ऐसा वापस। दूसरा नहीं। लो, यह हुकम है भगवान का। भगवान आत्मा वीतरागमूर्ति प्रभु के आश्रय से सहज परम-आवश्यक क्रिया हो—स्वाभाविक आनन्द, स्वाभाविक ज्ञान, स्वाभाविक श्रद्धा, स्वाभाविक स्थिरता, प्रभुता ऐसी जो आवश्यक को एक को ही... एक को ही, उस आवश्यक एक को ही करो, ऐसा कहते हैं। बीच में विकल्प आ जाये, परन्तु वह करनेयोग्य है, ऐसा नहीं। समझ में आया ? मार्ग ऐसा है।

किसी को तो ऐसा लगे कि जैनधर्म ऐसा? जैनधर्म तो ऐसे भक्ति, पूजा, दया, दान, व्रत, अपवास, षोडशकारण भावना। कहते हैं कि वह तो सब विकल्प है, राग है। वह निश्चय आवश्यक आत्मा के आश्रय से यदि हो तो उसको (राग को) व्यवहार कहा जाता है, परन्तु करनेयोग्य तो एक निश्चय ही है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसके बदले अभी तो (अज्ञानी ऐसा कहते हैं कि) करनेयोग्य तो एक व्यवहार ही है अकेला, जाओ। वह (भी) सब समझने जैसा। आहाहा! जिसे गणधर स्वीकार करे, इन्द्र जिसे स्वीकार करे, आहाहा! वह धर्म तो कोई अलौकिक ही होगा न! कहते हैं, भगवान आत्मा... मात्र स्वाभाविक आवश्यक कर्म जो आत्मा के आश्रय से होता है, वह एक ही करनेयोग्य है। आहाहा! '**एक को ही**' ऐसा शब्द है न। '**एकमेकं**' इसका अर्थ किया न 'ही'। अर्थात् जोर से। 'मात्र' कहा। **एकमेकं...** उसमें '**एकमेकं**' आया वहाँ 'केवल एक' आया था। '**एकमेकं**' 'केवल एक' ऐसा शब्द है। आहाहा! विकल्प जो व्यवहार का है, वह भले आ जाओ, परन्तु वह करनेयोग्य है, ऐसा नहीं। आहाहा!

कहते हैं कि आत्मा को, यदि उसे धर्म करना हो तो एक अवश्य मात्र सहज आवश्यक एक को ही करो कि **जो अघसमूह का नाशक है...** वह पुण्य-पाप का नाशक, निश्चय आवश्यक, वह पुण्य-पाप का नाशक है। आहाहा! समझ में आया? आत्मा के आश्रय से त्रिकाली परमात्मा निजस्वरूप जिनस्वरूप... निजस्वरूप जिनस्वरूप... आहाहा! उसमें लीनता, उसके आश्रय से जो क्रिया, वह एक ही पुण्य-पाप के नाश की क्रिया है। समझ में आया? व्यवहार का विकल्प तो पुण्य की उत्पत्ति का कारण है। आहाहा! समझ में आया? गजब है! नियमसार की कथनी कुछ समयसार से भी कितनी ही आगे बढ़ गयी है। ... मोक्षमार्ग है सही न! उसमें गूढ़ अर्थात् थोड़ा-थोड़ा... यह स्पष्टीकरण उसका है न पूरा निश्चयमोक्षमार्ग का, फिर उसे परमावश्यक कहो, परमसमाधि कहो, परमभक्ति कहो, प्रतिक्रमण कहो, प्रत्याख्यान कहो, कायोत्सर्ग कहो, सामायिक कहो। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा एक अपने आश्रय से एकाकार क्रिया हो, वह एक ही, कि जो दोष अर्थात् पाप, अघ अर्थात् दोष, अशुभ तथा शुभ दोनों अघ-पाप हैं, दोनों का नाशक है।

और मुक्ति का मूल (-कारण) है... सहज परम-आवश्यक एक ही मुक्ति का

कारण है, लो। वे कहे न, व्यवहार भी मुक्ति का कारण है, निश्चय भी मुक्ति का कारण है। व्यवहार से तो कहा है, व्यवहारनय से—आरोपित कथन से कहा है, निरूपण है, वस्तु वह नहीं। समझ में आया? कथन जगत को भारी पड़े, (इसलिए) ऐसा ही कर डाले यह सब। यह तो कुन्दकुन्दाचार्य को उड़ा सकते नहीं, परन्तु उड़ाने का भाव गहरे... गहरे है। यह व्यवहार... आहाहा! यह 'मात्र एक' शब्द प्रयोग किया है। आत्मा को अवश्य एक ही मात्र सहज परमावश्यक... जो आत्मा आनन्द और ज्ञान की मूर्ति प्रभु है, उसके सन्मुख की, उसके आश्रित क्रिया, वह एक ही क्रिया पुण्य-पाप को नाश करनेवाली है। पुण्य-पाप को नाश करनेवाली है और मुक्ति का कारण है। मुक्ति की उत्पत्ति का कारण है, पुण्य-पाप के व्यय का कारण है। समझ में आया? आहाहा!

उसे ही,... वापस भाषा ऐसी है न? देखो! आहाहा! **'सोऽयं नित्यं' उसी को—अतिशयरूप से करना चाहिए।** यही करना, भाई! तुझे मुक्ति चाहिए हो, मोक्ष चाहिए हो अर्थात् कि परम आनन्द की पूर्णदशा की प्राप्ति करनी हो तो, भगवान आत्मा पूर्णानन्द के आश्रय से अवश्य क्रिया सहज वीतरागी पर्याय, वही करनेयोग्य है कि जिससे उसके पुण्य-पाप का नाश हो और उसके फलरूप से अनन्त आनन्दरूपी मुक्ति हो। आहाहा! यह तो मुनि के लिये है, परन्तु मुझे गृहस्थों को? कोई ऐसा कहता है। तुझे कहा, ऐसा आया न? यह आयेगा अभी। तुझे करनेयोग्य तो द्रव्य के आश्रय से एकाग्रता, वही करनेयोग्य है। भले थोड़ी स्थिरता हो, परन्तु करनेयोग्य तो वह द्रव्य चैतन्य में एकाग्रता, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, स्वरूपाचरण चारित्र का अंश, वही करनेयोग्य है। और एक ही आगे बढ़ने का कारण है। बीच में विकल्प आवे, वह बढ़ने का कारण नहीं। यह तो विकल्प के नाश का कारण यह पर्याय है। समझ में आया?

उसी को—अतिशयरूप से करना चाहिए। क्या करना? सहज आवश्यक। आत्मा को एक ही यह आवश्यक है, इसलिए इसे आवश्यक अर्थात् अवश्य करनेयोग्य कहा है। उसे—आत्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शन करना, वह अवश्य करनेयोग्य एक ही है, आत्मा के आश्रय से ज्ञान करना, वह अवश्य करने योग्य है और आत्मा के आश्रय से स्थिरता करना, वह एक ही करनेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया? **(ऐसा करने से)...** भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द और ज्ञान का स्वभाव ही भाव है, उसका आश्रय

करने से **सदा निज रस के विस्तार से पूर्ण भरा होने के कारण पवित्र और पुराण (सनातन) ऐसा वह आत्मा...** सदा निजरस के फैलाव से पूर्ण भरपूर होने के कारण पवित्र और पुराण ऐसा आत्मा **वाणी से दूर (वचन-अगोचर) ऐसे किसी सहज शाश्वत सुख को प्राप्त करता है।** लो! वह आत्मा ऐसी क्रिया द्वारा... स्वयं कैसा है? कि स्वयं सदा निजरस के फैलाव से पूर्ण भरपूर होने के कारण... भगवान आत्मा में तो सदा निरंजन निर्विकल्प आनन्द ही भरा हुआ है। आहाहा!

रंक को रत्न कैसे बैठे? रंक को रत्न देखना मुश्किल, तो हो तो कहाँ से? आहाहा! ऐसे विकल्प की क्रिया को माननेवाले रंक, वे तो रंक हैं। उसे ऐसा रत्न चैतन्य सदा आनन्द से भरपूर, उसे प्रतीति में और ज्ञान में आना महामुश्किल है। भगवान आत्मा **सनातन ऐसा वह आत्मा...** देखो! अनादि का यह आत्मा तो है। **सदा निजरस...** निज आनन्दरस, निजशक्ति का रस, शक्ति के फैलाव से पूर्ण भरा हुआ विस्तार है। पवित्र है और सनातन है। पुराना है—अनादि का है। आहाहा! ऐसा आत्मा, **वाणी से दूर...** वचन से अगोचर **ऐसा कोई सहज...** ऐसा कोई सहज... शाश्वत् सुख को पाता है (अर्थात्) आनन्द को पाता है, ऐसा कहते हैं। ऐसी आवश्यक क्रिया से ही मुक्ति को पाता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अध्यात्म की वाणी और अध्यात्म का कथन का स्वरूप ऐसा का ऐसा फिर से आता हो, ऐसा लगे, परन्तु फेरफार से सब विस्तार है इसमें। समझ में आया?

पुराण पुरुष, भगवान तो पुराण पुरुष है। वह सनातन वस्तु है। सनातन के आश्रय से धर्म हो, वह सनातन धर्म है। लोग सब कहते हैं न, सनातन धर्म हमारा, सनातन धर्म। वह सनातन भगवान पूर्णानन्द अनादि-अनन्त के आश्रय से अवश्यक्रिया हो, वह सनातन धर्म है। समझ में आया? कितने ही कहें, तुम्हारा अर्वाचीन और हमारा प्राचीन और तुम्हारा फलाना-ढींकणा। परन्तु वह अर्वाचीन, प्राचीन यह है। क्या हो? अनादि का, भगवान आत्मा सनातन-अनादि का है। अनन्त वीतरागता, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता ऐसी अनन्त शक्तियों से भरपूर तत्त्व सनातन—अनादि का है। ऐसे आत्मा के आश्रय से जो दशा हो निर्विकल्प सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र, वह सनातन धर्म है, वह प्राचीन धर्म है, वह पुराना धर्म है।

'पुराना धर्म लो जान रे सन्तों पुराना धर्म...' ऐसा आता है। अन्यमति में भजन आता है। वह पुराना धर्म कौन? यह। अनादि का भगवान आत्मा तो अनन्त अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान से भरपूर सनातन तत्त्व है। उसका आश्रय होकर, उसमें लीन होकर जो वीतरागीदशा, निर्दोष दशा, निर्दोष आवश्यक कर्म—कार्य प्रगट हो, उसे परमात्मा सनातन धर्म और उसके माननेवाले को सनातनधर्मी कहते हैं। कहो, जेठाभाई! ब्राह्मण में एक सनातन होता है न? 'सनातनी' नाम से। आहाहा! कैसा है भगवान आत्मा? वह तो वाणी से—वचन से अगम्य है। वह आत्मा ऐसी क्रिया, अन्तर के अनुभव की क्रिया द्वारा, आनन्द की क्रिया द्वारा, ऐसे कोई शाश्वत् सुख को पाता है। पूर्ण आनन्द और पूर्ण सुख को पाता है इस क्रिया द्वारा। कोई व्यावहारिक दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि के विकल्प से मुक्ति नहीं मिलती। वह तो बन्धन का कारण है। आहाहा! भारी कठिन लगे! समझ में आया? २५७ कलश।

स्ववशस्य मुनीन्द्रस्य स्वात्मचिन्तनमुत्तमम्।
इदं चावश्यकं कर्म स्यान्मूलं मुक्तिशर्मणः॥२५७॥

अहो, भगवान आत्मा! पुण्य-पाप के विकल्प के राग से रहित और अनन्त आनन्द सहित... आहाहा! ऐसा आत्मा, उसके जो वश है, वे मुनीन्द्र हैं। समझ में आया? समकिती भी, सम्यग्दर्शन-ज्ञान और आंशिक चारित्र की अपेक्षा से स्ववश ही है। समकिती गृहस्थाश्रम में हो, उसे भी अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा के वश होकर—आधीन होकर जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का अंश प्रगट हुआ, वह भी स्ववश है, परन्तु जघन्य स्ववश है। समझ में आया? मुनि, जिसे भगवान तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ स्वीकार करे, वह मुनि तो ऐसे होते हैं, कहते हैं कि स्ववश (होते हैं), यह विकल्प क्रिया के वश नहीं होते, आहाहा! पंच महाव्रत के परिणाम, वे विकल्प—राग, उसके आधीन नहीं होते। उसके आधीन हो तो मिथ्यादृष्टि हो जाये। समझ में आया? ऐसा गजब!

श्लोकार्थः स्ववश मुनीन्द्र को... मुनिन्द्र, वापस मुनि में इन्द्र। **उत्तम स्वात्मचिन्तन...** उत्तम **(निजात्मानुभवन)...** चिन्तन का अर्थ विकल्प, ऐसा नहीं। स्वात्मा का अनुभव। पुण्य के क्रिया के रागरहित आत्मा के आनन्द का अनुभव, वह निजात्मानुभवन होता है। मुनीन्द्र को तो वह होता है। आहाहा! पंच महाव्रत के विकल्प होते हैं, वह मुनीन्द्र

नहीं, वह तो राग है। ऐसा निश्चय हो और विकल्प हो तो व्यवहार हो, परन्तु यहाँ तो व्यवहार का अभाव करके इसने एक आत्मानुभवन प्रगट किया है, वह ही एक आवश्यक कर्म, वही मुनि का आवश्यक कार्य है। आहाहा! बात लक्ष्य में आना मुश्किल, ऐसा तो वीतरागमार्ग है। लोग अन्य मार्ग को जैनमार्ग मानकर बैठ गये हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **निजात्मानुभवनरूप...** आवश्यक कार्य, वह स्ववशकार्य अथवा अवश्यकार्य, पर के वश नहीं हुआ कार्य। ऐसा उत्तम स्वात्मानुभव... आत्मा आनन्दस्वरूप आनन्द का अनुभव, अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव, अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन, जैसा सिद्ध को आनन्द है, वैसा अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन मुनि को होता है। आहाहा! ऐसे **आवश्यक कर्म (उसे) मुक्तिसौख्य का कारण होता है।** ऐसी आत्म-अनुभवदशा वह मुक्तिसुख का कारण होता है। पण्डितजी! यह व्यवहार-फ्यवहार मुक्तिसुख का कारण नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! पूर्ण न हो, उसे बीच में पंच महाव्रत आते हैं, परन्तु वह तो दुःखरूप दशा है। महाव्रत के परिणाम, वे राग हैं और राग है, वह दुःख है। कठिन काम है। वीतरागमार्ग को समझना, जानना और स्थिर होना अलौकिक बात है। यह मार्ग अन्यत्र नहीं। कहीं होता नहीं, वीतराग के अतिरिक्त कहीं यह बात है नहीं। समझ में आया?

वीतरागधर्म तो, वीतराग पर्याय से धर्म होता है। राग से धर्म होगा? तो वह वीतरागधर्म कैसा? समझ में आया? बहुत ही संक्षिप्त में और बहुत यथार्थ कहा है। **स्ववश मुनीन्द्र...** जिसे व्यवहार का विकल्प है, उसके वश नहीं; वश तो आत्मा के वश है। आत्मा तो वीतरागमूर्ति आनन्दरस है, उसके आधीन हुई क्रिया, वह वीतरागी क्रिया का आवश्यक कार्य, वह आवश्यक—जरूर की पर्याय, वह काम आवश्यक जीव का, वह काम, उसे मुक्तिसुख का कारण होता है। पण्डितजी! सुनने में न आवे लोगों को। जैन के वाडा में पचास, साठ, सत्तर, अस्सी (वर्ष) बिताये हों। वीतराग क्या दृष्टि कहते हैं और किसे आत्मा कहते हैं, यह सुनने में मिला न हो और जिन्दगी बितावे ऐसी की ऐसी। आहाहा! अरे प्रभु! तेरा पंथ यह वीतराग का है और तू स्वयं वीतरागस्वरूप है। यदि वीतरागस्वरूप न हो तो वीतरागता आयेगी कहाँ से? वीतरागता कहीं निमित्त और राग की क्रिया में से आती है? समझ में आया? यह बात करते हैं।

भगवान! तेरा स्वभाव तो रागरहित अर्थात् अरागी स्वभाव का पूरा तत्त्व तू है। निर्मलस्वरूप, शुद्धस्वरूप, ऐसा पूर्ण स्वरूप वह तू आत्मा। उसे अन्तर में आश्रय, ध्यान करके, आत्मा को ध्येय बनाकर जो पर्याय में—दशा में ध्यान-अवस्था—आत्मा के अनुभव की दशा हो, उसे भगवान आवश्यक कार्य कहते हैं। वह मुक्तिसुख का कारण है, मोक्ष का कारण वह दशा है। आहाहा! भारी काम किया! कुन्दकुन्दाचार्य... आता है न वह वृन्दावनदास में, नहीं? ' न हुए न होयेंगे...' उनके जैसा तो कौन होगा? ऐसा। वृन्दावनदास (ने कहा है)। 'न हुए न होयेंगे मुनिन्द्र कुन्दकुन्द से।' उनकी कथनशैली, वीतराग केवलियों के मार्गवाले सन्तों ने कही, केवलियों ने कही, वह कथन है। आहाहा! इसे सुनने को मिलता नहीं, इसलिए जाहँ ऐसा सुने, (तो कहे), अरे! यह तो निश्चय, यह तो निश्चय, ऐसा। परन्तु कुछ उसका साधन व्यवहार है या नहीं? अरे! व्यवहार साधन नहीं, वह तो बाधक है, सुन न! समझ में आया?

अरे! परन्तु हमारे जैसे पामर प्राणी को ऐसा मार्ग कैसे बैठे? पामर नहीं, प्रभु! तू तो प्रभु है, प्रभुता से पूर्ण भरपूर है। यदि पूर्ण न भरा हो तो प्रभुता आयेगी कहाँ से? आहाहा! यहाँ तो स्व-आत्मचिन्तन की व्याख्या में कोई और चिन्ता (का अर्थ) विकल्प करे, चिन्तवन करूँ... चिन्तन करूँ। चिन्तन करे तो विकल्प है, वृत्ति है, विकार है। भगवान आत्मा आनन्दमूर्ति का अनुभव करना, अतीन्द्रिय आनन्द की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता, वह स्वात्मानुभव है, उसे स्वात्मचिन्तन कहा जाता है। वही आवश्यक कार्य और वही काम मुक्ति का कारण है। दूसरा कोई मुक्ति का कारण है नहीं। अब अन्तरात्मा की बात।

'तीनों शिवमगचारी' आता है न वह छहढाला में? 'उत्तम, मध्यम, जघन्य तीनों शिवमगचारी...' यह बात थोड़ी कहते हैं। स्व का आवश्यक जिसे नहीं, स्व की आवश्यक क्रिया जिसे नहीं, उसे तो यहाँ बहिरात्मा कहेंगे। आहाहा! सम्यग्दृष्टि को भी स्व-चैतन्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का अंश होता है, वह यदि न हो तो अकेले क्रियाकाण्ड के राग के वश हुआ वह बहिरात्मा है, वह तो मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है। आहाहा! परन्तु रागादि होने पर भी अन्तर में आत्मा के वश हुई दृष्टि है, ज्ञान और स्वरूप की स्थिरता का अंश चौथे गुणस्थान में है, वह अन्तरात्मा है, वह अन्तरात्मा है,

जघन्य अन्तरात्मा है, समझ में आया? अन्तर में जघन्यरूप से आत्मा का आश्रय लिया है, उग्ररूप से नहीं।

उससे जरा उग्ररूप से आश्रय लिया है, वह पाँचवें गुणस्थानवाला अन्तरात्मा है। उससे उग्ररूप से आश्रय लिया, वह छठवें गुणस्थानवाला अन्तरात्मा है। उससे उग्ररूप से आश्रय लिया है, वह सातवें गुणस्थानवाला अन्तरात्मा है। ऐसा करते हुए अन्तरात्मा ने उत्कृष्ट आश्रय लिया है, केवलज्ञान भले न हो, वे बारहवें गुणस्थानवाले अन्तरात्मा है। समझ में आया? अन्तर के वश हुए की सब मर्यादायें हैं। समझ में आया? ऐसा स्वरूप, ऐसा निश्चय और ऐसा... साधारण लोगों को ऐसा पकड़ में आये, समझ में आये? आत्मा कहाँ साधारण है? यहाँ तो कहते हैं। असाधारण है न! उसके जैसी कोई जगत में चीज़ ही नहीं न। उसके जैसी वह। ऐसा असाधारण भगवान, सुन, भाई! तुझे ऐसा कैसे हो गया? अरेरे! हम पामर हैं, साधारण हैं, हमारे लिये मार्ग कैसा हो? समझ में आया?

छोड़ दे यह बात। तू पामर नहीं, तू प्रभुता की अनन्त शक्तियों का सागर तू है। तुझमें से तरंग उठे, वह सब अलौकिक आनन्द की, शान्ति की तरंगें उठें, ऐसा तेरा धाम है। पुण्य का विकल्प उठे, राग (उठे), उसका स्थान तू नहीं। आहाहा! गजब काम, भाई! नये लोगों को तो ऐसा लगे, ग्रीक-लेटिन (अटपटा) जैसा लगे। नहीं? जैनधर्म ऐसा होगा? पूरे दिन भक्ति करना, पूजा करना, व्रत पालना, अपवास करना, विनय करना, देवदर्शन करना... अरे! सुन भगवान! इन सब क्रियाओं में तो विकल्प है, राग है। समझ में आया? यह सच्चा धर्म नहीं।

परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ परमेश्वर अरिहन्त ने यह सच्चा धर्म कहा है कि तेरा सच्चा पूर्ण स्वरूप, उसके आश्रय से दशा हो, वह सच्ची वीतरागदशा, वह धर्म। आहाहा! समझ में आया? वह सच्चा अर्थात् सत्य का पूरा तत्त्व तू सत्य पूर्णस्वरूप। गजब! वह सच्चा सत्यस्वरूप भगवान पूर्ण आनन्द के आश्रय से, बड़े के सहारे में गया, तब जो दशा रागरहित सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की निर्दोष दशा प्रगटे, वही एक मुक्ति का कारण है। उस एक को ही तुझे करनेयोग्य है, ऐसा कहा न! लोगों

को बहुत ऐसा लगे। भावना का ग्रन्थ है, इसलिए बारम्बार भिन्न-भिन्न पद्धति से उसकी व्याख्या करते हैं, घुंटाते हैं।

भाई! तू न हो तो जगत में यह चीज़ ही क्या यह? तू महाप्रभु है। तेरी महत्ता विकल्प से आंकी जाये, ऐसा नहीं। ऐसी धर्म की देशना! ऐसा धर्म कैसा होगा यह? यह शत्रुंजय की यात्रा, सम्मेदशिखर की यात्रा, कहो यह धर्म नहीं? भाई! इस यात्रा में राग होता है, शुभराग पुण्य है, वह धर्म नहीं। वह तो अशुभ से बचने को वैसा राग हो, परन्तु वह धर्म नहीं। सम्मेदशिखर की यात्रा की, इसलिए धर्म हो गया, (ऐसा नहीं)। अरे! भारी कठिन काम। सम्मेदशिखर तो तू है। अनन्त आनन्द और अनन्त शक्ति का सागर भगवान, उसमें आरूढ़ हो, वह सम्मेदशिखर पर चढ़ा। समझ में आया? गजब धर्म!

आवासएण जुत्तो समणो सो होदि अंतरंगप्पा।
आवासयपरिहीणो समणो सो होदि बहिरप्पा॥१४९॥

देखो! ऐसा जो आत्मा के आश्रय से निर्विकल्प वीतरागदशा, निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो आवश्यक क्रिया, उससे संयुक्त योगी अन्तरात्मा जानना, उससे सहित उसे अन्तरात्मा कहते हैं। **आवश्यक रहित श्रमण,...** भगवान आत्मा पूर्णानन्द का आश्रय जरा भी नहीं और अकेली रागादि की क्रिया में पड़ा है, वह श्रमण बहिरंग आत्मा जानना। उसे बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि कहते हैं। आहाहा! 'वचनामृत वीतराग के परम शान्तरसमूल, औषध जो भवरोग के कायर को प्रतिकूल।' कायर को तो ऐसे कंपकंपी उठे कि अरर! ऐसा मार्ग? ऐसा मार्ग? विशेष १४९ (गाथा) में कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण ५, रविवार, दिनांक - ०७-११-१९७१
गाथा-१४९, प्रवचन-१७१

यह नियमसार सिद्धान्तशास्त्र है। नियम अर्थात् निश्चय से जीव को करनेयोग्य कार्य, उसका नाम नियम है। '**नियमेण य जं कज्जं**' इस गाथा से शुरु (होता) है वहाँ। आत्मा का स्वभाव शुद्ध चैतन्य—आनन्द और ज्ञानस्वरूप है। उसमें एकाग्रता, वह उसका कर्तव्य निश्चय से है। आवश्यक जिसे कहते हैं। यह अधिकार है न? अवश अर्थात् कि राग के आधीन न होकर, अपने आनन्द के स्वभाव के आधीन होकर जो शुद्ध परिणति का कार्य आवश्यक का है, वह प्रगटे, उसे यहाँ नियम (कहते हैं)। और सार (अर्थात्) विकल्परहित चीज़ अन्तर में प्रगटे, उसे नियमसार कहते हैं। आहाहा! अर्थात् कि मोक्ष का मार्ग। यह १४९ गाथा अपने आयी है। १४८ हो गयी।

आवासएण जुत्तो समणो सो होदि अंतरंगप्पा।
आवासयपरिहीणो समणो सो होदि बहिरप्पा॥१४९॥

नीचे (हरिगीत)।

रे साधु आवश्यक-सहित वह अन्तरात्मा जानिये।
इससे रहित हो साधु जो बहिरातमा पहिचानिये॥१४९॥

टीका : यहाँ, आवश्यक कर्म के अभाव में... क्या कहते हैं? जिसे, भगवान आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु के स्वभाव का आश्रय नहीं और अकेली क्रियाकाण्ड—दया, दान, व्रतादि के विकल्प के आधीन होकर रहता है, वह बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि है। यह **आवश्यक कर्म के अभाव में...** अर्थात् कि आत्मा जिनस्वरूप ही, वीतरागस्वरूप ही आत्मा है, उसके सन्मुख होकर उसमें स्वद्रव्य के आश्रय की एकाग्रता जिसे नहीं, उसे उस आवश्यक कर्म का अभाव है। जो आवश्यक कार्य है, उसका उसे अभाव है। फिर भले वह पंचमहाव्रत और अहिंसा, सत्य, अचौर्य, समिति, गुप्ति के विकल्प में हो, परन्तु वह अज्ञानी राग के आधीन है, चैतन्य के निजस्वभाव के आश्रय, आधीन नहीं।

ऐसा **तपोधन...** भाषा वापस 'तपोधन' प्रयोग की है। क्योंकि बाह्य में पंच महाव्रत पालता है, २८ मूलगुण पालता है, नग्नरूप से रहता है, वस्त्ररहित क्रिया करता है, तो वह सब राग की क्रिया का भाव—शुभराग के आधीन हुआ, उसे यहाँ व्यवहारिक तपोधन कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसे कर्म अर्थात् क्रिया... आवश्यक कर्म कहो, आवश्यक क्रिया कहो या आवश्यक जीव की निर्मल वीतरागभावरूपी दशा कहो। यह स्वद्रव्य के आश्रय से होनेवाली जो रागरहित की निर्मल क्रिया—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की क्रिया का जिसे अभाव है, और तपोधन है... पंच महाव्रत, २८ मूलगुण आदि पालता है, सैकड़ों अपवास करता है, महीने-महीने के अपवास, रसत्याग ऐसा करता है, शरीर जीर्ण करता है। इससे उसे तपोधन शब्द से, नाम से कहा, परन्तु है बहिरात्मा। आहाहा! समझ में आया? अर्थात्? जो उसके स्वभाव में नहीं, ऐसा जो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का विकल्प—राग, उसके आधीन हुआ है, वश हुआ है, वह बहिर्-आत्मा कहा जाता है। गजब! समझ में आया?

अब इसे **अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयात्मक...** अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयस्वरूप... भगवान आत्मा पूर्ण स्वभाव के आश्रय में जो निश्चय सम्यग्दर्शन है, वह अभेद है, उसमें विकल्प है नहीं। अनुपचार है, वह उपचारिक नहीं, यथार्थ है। जीव अर्थात् आत्मा अर्थात् परमात्मा अर्थात् जिन अर्थात् कि जिनवर—ऐसे आत्मा के आश्रय से अन्तर्मुख अभेद सम्यग्दर्शन, अभेद सम्यग्ज्ञान और अभेद सम्यक्चारित्र, आहाहा! ऐसा अनुपचार अर्थात् व्यवहार नहीं, उपचार नहीं, आरोपित नहीं, परन्तु यथार्थ ऐसा रत्नत्रयस्वरूप... रत्नत्रयस्वरूप आवश्यक। शुद्ध चैतन्य भगवान का आश्रय लेकर जो निश्चय सम्यग्दर्शन हो, उस स्वभाव के आश्रय से जो स्वसंवेदनज्ञान हो और स्वभाव में स्थिर होकर लीनता का चारित्र हो—उसे यहाँ रत्नत्रयस्वरूप कहा है।

ऐसा **स्वात्मानुष्ठान...** ऐसा जो स्व-आत्म-अनुष्ठान **निज आत्मा का आचरण...** यह निज आत्मा का आचरण। समझ में आया? भगवान ज्ञायक चैतन्य आनन्दज्योति ऐसा जो निज आत्मा, उसमें लीन होकर, स्वसन्मुख होकर, अभेद निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र रत्नत्रयस्वरूप स्व-आत्मा का अनुष्ठान है। वह अपने आत्मा का

आचरण है। पंच महाव्रत के विकल्प, वह आत्मा का आचरण नहीं। आहाहा! गजब! समझ में आया? इतने शब्द प्रयोग किये हैं। एक तो यहाँ आवश्यक कार्य का वर्णन है। निश्चय परम-आवश्यक। निश्चय जरूरी कार्य, वह स्व भगवान आत्मा पूर्णानन्द के आश्रय में जो लीनता, श्रद्धा, ज्ञान प्रगट हो, वह स्व-आत्मा का आचरण, अनुष्ठान, वर्तन कहने में आता है। कहो, जेठाभाई!

.... अपवास करना, व्रत पालना, गर्म पानी पीना—ऐसा कुछ इसमें आया नहीं। आया न! गर्म पानी पीना, व्रत पालना, वह सब राग है; वह आत्मा का अनुष्ठान नहीं, वह आत्मा का आवश्यक आचरण नहीं, आत्मा का स्ववशपना उसमें नहीं। उस राग की क्रिया में परवश होकर करता है। ज्ञानी को राग हो, परन्तु वह उसके वश नहीं। वश है चैतन्य के आनन्द के आधीन। समझ में आया? ऐसा जो (१) अभेद, (२) अनुपचार, (३) रत्नत्रयस्वरूप, (४) स्वात्मानुष्ठान—इतने विशेषण दिये। आहाहा! यह देह, वाणी से तो भिन्न तत्त्व है परन्तु दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध का विकल्प राग है, उससे भी भिन्न तत्त्व है। ऐसा जो स्व-आत्मा, उसकी अन्तर में एकाग्रता, स्वरूप -सन्मुख की एकाग्रता, उसका नाम सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र, उसका नाम नियमसार, उसका नाम अभेद रत्नत्रय, उसका नाम स्व-आत्म-अनुष्ठानरूपी आचरण। गजब! छोटाभाई! यह ऐसा स्वरूप है।

यह देह की क्रिया, वह तो जड़ की है, अन्दर में पंच महाव्रत के विकल्प आदि हो, वह राग की क्रिया है, वह आत्मा की नहीं। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो सब लेंगे, हों! सम्यग्दृष्टि को आवश्यक क्रिया कहेंगे। सम्यग्दृष्टि, पंचम गुणस्थान, छठवें—सबको उसके प्रमाण में आवश्यक क्रिया होती है। यह अभी कहेंगे। कहते हैं... आहाहा! यह तो मुनि की बात मुख्य करते हैं न! ऐसे स्व-आत्मा अपना भगवान ज्ञान का पुंज, अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द, निजस्वरूप जिनराज ऐसा जो स्व-आत्मा, उसके अनुष्ठान... स्व-आत्मा जिनराज, वह द्रव्यस्वभाव; उसका अनुष्ठान, वह उसकी पर्याय। आहाहा! क्या कहते हैं, समझ में आया? अनन्त काल में वीतरागमार्ग उसने एक सेकेण्ड भी वास्तविक रूप से सुना भी नहीं, (तो) उसका परिणमन तो कहाँ से होगा?

कहते हैं कि भगवान आत्मा... स्व-आत्माश्रित है न! जितने विकल्प उठते हैं क्रियाकाण्ड के, पंच महाव्रत, दया, दान, भक्ति, पूजा, यात्रा, वह सब तो राग है, पुण्यराग है, विभाव है, उसके आधीन होकर रहे, वह तो मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है। समझ में आया? परन्तु जो अपना भगवान... आया था न, कल अपने आया था। 'घट घट अंतर जिन बसे... घट घट अंतर जिन बसे, घट घट अंतर जैन...' इस देह में स्वयं भगवान जिनराज ही है। आहाहा! जिनराज उसका स्वरूप ही है, वह घट घट अंतर जिन बसे। और घट घट अंतर जैन, वह यह। वह द्रव्यस्वभाव वीतरागमूर्ति प्रभु अभी वह है, हों! उसका आश्रय लेकर वीतरागी निर्विकल्पदशा जो प्रगट हो, उसे आत्मा का आचरण और स्व-अनुष्ठान कहा जाता है। जेठाभाई! उसमें ऐसी कोई सूक्ष्म बात नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

ऐसे **स्वात्मानुष्ठान में नियत परमावश्यक-कर्म...** इतने शब्द प्रयोग किये हैं। आहाहा! परम आवश्यक कर्म, वह तो परम जरूरत की धार्मिक क्रिया है। आहाहा! समझ में आया? जिसे अभेद उपचार रहित रत्नत्रयस्वरूप कहा, उसे ही स्व-आत्मा का अनुष्ठान कहा, उसे ही निश्चय परम-आवश्यक कार्य कहा। समझ में आया? आहाहा! सम्यग्दृष्टि भी अन्तरात्मा है। यह कहेंगे अभी। उसे—सबको निश्चय-व्यवहार आवश्यक क्रिया होती है। प्रथम धर्मी जो सम्यग्दृष्टि, उसे भी सम्यग्दर्शन में आश्रय और आधार तो स्व-आत्मा है। जिनराज वीतरागस्वरूप आत्मा का वह पुण्य और पाप के विकल्प और रागरहित चीज़ अर्थात् कि अरागी चीज़ है। वह सम्यग्दर्शन में—सम्यग्दर्शन की पर्याय में आश्रय उसका है। उसके आश्रय बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं। समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि को निज स्वभाव का जघन्य आश्रय है—थोड़ा आश्रय है। सम्यग्दर्शन में आश्रय, आधार तो आत्मा है। पूर्ण सच्चिदानन्द प्रभु, वही सम्यग्दृष्टि को... सम्यग्दर्शन, वह पर्याय है। यहाँ कहा न! आवश्यक कर्म कहो या सम्यग्दर्शनरूपी कार्य कहो। वह आवश्यक कार्य स्वद्रव्य के आश्रय से परिणमना, वह है। आहाहा! समझ में आया? धर्म की शुरुआतवाले को भी भगवान चैतन्य जिनराज प्रभु ऐसा, उसका त्रिकाली स्वभाव अविनाशी, उसके आश्रय में परिणमना वह प्रतीति, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। तो सम्यग्दृष्टि जीव को भी स्व-आत्मा का ही आश्रय है। उसे भी व्यवहार का आश्रय

नहीं, व्यवहार होता है। समझ में आया? कहेंगे आगे। **निश्चय-व्यवहार इन दो नयों से प्रणीत जो परम आवश्यक क्रिया, उससे रहित हो, वह बहिरात्मा है।** अर्थात् सम्यग्दृष्टि भी सहित तो है, ऐसा बतलायेंगे। आहाहा!

चाहे तो गृहस्थाश्रम में रहा हो, चक्रवर्ती हो, ९६ हजार स्त्रियाँ हों, परन्तु वह सम्यग्दृष्टि है, इसलिए उसे सम्यग्दर्शन की पर्याय में आश्रय और आधार तो आत्मा है। यह विकल्प जो आता है, उसके आधीन और आधार से नहीं। आहाहा! समझ में आया? ९६-९६ हजार स्त्रियाँ चक्रवर्ती भरत को, ९६ करोड़ सैनिक, ९६ करोड़ गाँव (थे)—कि नहीं, उसे कुछ नहीं, उसमें वे कुछ नहीं। उनके प्रति जरा आसक्ति की वृत्ति उठती है, वह भी ज्ञानी के आत्मा में—द्रव्य-गुण-पर्याय में नहीं है। आहाहा! चन्दुभाई! गजब बातें, भाई! जिनवरदेव की बात। जगत को जिनधर्म क्या है, यह कान में भी पड़ा नहीं। ऐसा का ऐसा मान बैठा, यह क्रिया की और यह किया और वह किया, व्रत पालन किये, अपवास किये, यात्रायें निकालीं, भक्तियाँ कीं, करोड़ों खर्च किये। वह तो सब राग की क्रियायें शुभभाव की है। उसके आधीन होकर करे, तब तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? जयन्तीभाई! बहुत ऐसा धर्म का स्वरूप कठिन। आहाहा! ऐसा कठिन धर्म होगा?

कहते हैं कि ऐसा जो भगवान आत्मा का स्वरूप ज्ञान और आनन्द का पुंज प्रभु, उसकी एकाग्रता, उसकी सन्मुखता का आश्रय लेकर लीनता, वह सच्चा परम आवश्यक कार्य है। आहाहा! जेठाभाई! अब यह गर्म पानी पीना और... अरेरे! आहाहा! भाई! तुझे खबर नहीं। यह करूँ और यह करूँ, ऐसी वृत्ति वह तो विकल्प है, राग है। समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं कि उस राग की दृष्टि और राग के आधीन हुआ है, वह भले पंच महाव्रत और २८ मूलगुण और बारह व्रत पालता हो तो भी वह विकल्प है और विकल्प के आधीन-आधीन—वश हो गया है, वह अन्यवश है। समझ में आया? वह स्ववश नहीं। आहाहा!

ऐसा जो **नियत परमावश्यक-कर्म से निरन्तर संयुक्त...** भाषा ऐसी है। आहाहा! भगवान आत्मा को अन्तर दृष्टि और ज्ञान तथा स्थिरता में आश्रय भगवान है, वह निरन्तर है, कहते हैं। किसी समय भी मुनि को या समकिती को राग के आधीन होना या राग

से संयुक्त आत्मा है, ऐसा उसे होता नहीं। आहाहा! कठिन मार्ग ऐसा भाई! यह तो। ऐसा वीतराग का स्वरूप होगा? तो अभी तक ऐसा कि कन्दमूल नहीं खाना, रात्रिभोजन नहीं करना, भक्ति-पूजा करना, व्रत पालना, गर्म पानी पीना, दया-दान का भाव करना—ऐसा था अभी तक। ऐ जयन्तीभाई! भगवान! इन सब क्रियाओं में राग होता है, वह तो शुभराग है। वह आत्मा का कर्तव्य नहीं। आहाहा! समझ में आया? आत्मा का कर्तव्य तो स्व-आश्रय से अनुष्ठान में स्थिर होना, वह कर्तव्य है।

ऐसा जो **निरन्तर संयुक्त ऐसा...** क्या कहते हैं? राग से संयुक्त नहीं। व्यवहार होता है उसे। यह कहेंगे। परन्तु उस व्यवहार सहित नहीं। उस व्यवहार रहित है अन्दर में। आहाहा! समझ में आया? नियत परम आवश्यक कार्य या आवश्यक क्रिया... कर्म कहो, कार्य कहो, क्रिया कहो, कर्तव्य कहो, पर्याय कहो—वह सब एक ही है। आहाहा! समझ में आया? **निरन्तर संयुक्त ऐसा जो 'स्ववश' नाम का परम श्रमण,...** आहाहा! अकेला भगवान आत्मा के ही आश्रय—वश हो गया है ऐसा स्ववश... दूसरी भाषा में स्ववश उसे कहा। उसे अवश भी कहते हैं। पर के आधीन नहीं, इसलिए अवश है, स्व के आधीन है, इसलिए स्ववश है। आहाहा! लॉजिक से तो बात चलती है, हों! नहीं? इसमें गड़बड़ हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसके आश्रय से जो क्रिया हो, उस क्रिया (वाले) मुनि को यहाँ स्ववश कहा है। उसे अवश कहा है। अवश अर्थात् पर के वश नहीं। समझ में आया?

ऐसा **परम श्रमण...** पहली उत्कृष्ट बात ली है। **वह सर्वोत्कृष्ट अन्तरात्मा है...** वह सर्वोत्कृष्ट अन्तरात्मा है। यह बारहवें गुणस्थान की व्याख्या की है। उत्कृष्ट ली है न पहली। ऐसा परम श्रमण सर्वोत्कृष्ट अन्तरात्मा है। **यह महात्मा सोलह कषायों के अभाव द्वारा...** उसे तो अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ, अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध-मान-माया-लोभ, प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध-मान-माया-लोभ और संज्वलन के क्रोध-मान-माया-लोभ—समस्त सोलह कषायों का अभाव होता है। **क्षीणमोहपदवी को प्राप्त करके स्थित है।** राग का क्षय करके, स्वभाव में सर्वोत्कृष्टरूप से अन्तर आत्मा में लीन है। वह अन्तर-आत्मा धर्मात्मा सर्वोत्कृष्ट कहा जाता है। भाषा है कि **महात्मा**

सोलह कषायों के अभाव द्वारा क्षीणमोहपदवी को प्राप्त करके... स्वयं उस पर्याय को वीतरागभाव से प्राप्त किया है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

असंयत सम्यग्दृष्टि जघन्य अन्तरात्मा है। वह उत्कृष्ट अन्तरात्मा लिया, अब जघन्य। चौथे गुणस्थान में असंयत सम्यग्दृष्टि जघन्य-जघन्य श्रेणी का—निचली श्रेणी का वह अन्तरात्मा है। उसे भी निश्चय-व्यवहार आवश्यक होते हैं। यह अभी कहेंगे। समझ में आया? चौथे गुणस्थानवाला जघन्य अन्तरात्मा, उसे भी निश्चय आवश्यक और व्यवहार आवश्यक का विकल्प ऐसा होता है। सम्यग्दर्शन है, उसके साथ सम्यग्ज्ञान है, उसके साथ स्वरूप में आचरण की स्थिरता का अंश चौथे में है। यह तीनों आत्मा के आश्रय से हुई क्रिया, वह स्वात्मानुष्ठान है, उतना निश्चय आवश्यक समकिती को भी होता है। आहाहा! यहाँ तो सम्यग्दृष्टि अर्थात् देव-शास्त्र-गुरु को माने और नौ तत्त्व को माने, वह सम्यग्दृष्टि, लो। यह अज्ञानी के अर्थ। हम सच्चे देव-गुरु-शास्त्र को मानते हैं, इसलिए समकित है। अब, परद्रव्य को माने, वह तो विकल्प है, सुन न! देव-गुरु-शास्त्र की मान्यता भी राग है। वह समकित नहीं, वह श्रद्धा नहीं। समझ में आया?

पूर्णानन्द प्रभु आत्मा सत्-शाश्वत अविनाशी गुण का धारक स्वयं अविनाशी, ऐसे आनन्द और ज्ञान आदि अविनाशी गुणों का धारक प्रभु, उसके आश्रय से सन्मुख होकर निर्विकल्प अनुभव में... आहाहा! प्रतीति होना, उसे यहाँ सम्यग्दर्शन समकिती की आवश्यक क्रिया कहा जाता है। छोटाभाई! बहुत... यह छोटाभाई तो... पहले रामजीभाई यहाँ आये थे। कौन आया था? परिवर्तन किया था, तब इन्होंने विनती की थी। हाँ, हाँ। हीराभाई के मकान में। सूरत से आये थे। कहीं गये थे... महाराज पधारो... पधारो। ....यह रामजीभाई तो भूल गये होंगे। आये थे हीराभाई के मकान में ९१-९२ में। परिवर्तन किया तब (कहा), महाराज! पधारो। परिवर्तन करने के बाद आये तब। परन्तु यह बात ऐसी है न, बापू! आहाहा! यह तो कोई महाभाग्य हो, उसे यह कान में पड़े ऐसी बात है। आहाहा! यह तो परमात्मा के पेट की बातें हैं। आहाहा! निज निधान खोलने की बातें हैं। समझ में आया? ऐसा परम सत्य कान में पड़ना, वह पूर्व के पुण्य का योग हो तो उसे पड़े, ऐसी बात है। आहाहा! निज निधान को स्पर्श करे, उसकी तो क्या बात करना!

कहते हैं कि भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु स्वयं है, वह सच्चिदानन्द स्वरूप है। (सच्चिदानन्द अर्थात्) सत् अर्थात् शाश्वत्, चिद् अर्थात् ज्ञान और आनन्द अर्थात् सुख—ऐसा शाश्वत् उसका स्वरूप है। शाश्वत् वस्तु और आनन्द और ज्ञान (आदि) दूसरी अनन्त शक्तियाँ, वे सब उसमें शाश्वत है। उस शाश्वत् चीज़ का आश्रय करके जो प्रतीति और ज्ञान हो, उसे यहाँ सम्यग्दृष्टि का आवश्यक कार्य कहा जाता है। यह प्रथम में प्रथम जघन्य श्रेणी का है। आहाहा! बाकी सब शून्य है। आहाहा! यह व्रत पाले, भक्ति करे और पूजा करे, लाखों-करोड़ों मन्दिर बनावे, करोड़ों-अरबों रुपये खर्च करे (तो) धूल में भी वहाँ धर्म नहीं। वह तो राग की मन्दता हो तो पुण्य है। और उसके आधीन हो जाये और द्रव्यस्वभाव को दृष्टि में से छोड़ दे, वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? ऐसा मार्ग वीतराग का है।

कितने ही तो ऐसा कहते हैं, यह सब निश्चय है... निश्चय है... निश्चय है। अर्थात् क्या? सच्चा है... सच्चा है... सच्चा है, ऐसा। उसे तो ऐसा कहना नहीं। वह तो (कहे) यह निश्चय है... निश्चय है... निश्चय है। अर्थात् मानो कुछ नहीं, ऐसा। व्यवहार करना हमारे, व्यवहार कौन सा करना? यह कहो न! अरे, सुन न! तुझे व्यवहार कहाँ था? आहाहा! जहाँ भगवान चिदानन्दप्रभु की भेंट हुई नहीं, अन्तर का आश्रय लिया नहीं, उसे व्यवहार कैसा? निश्चय बिना व्यवहार कैसा? समझ में आया? स्व का आश्रय लिया हो और सम्यग्दर्शन, ज्ञान और आंशिक स्थिरता हो या बहुत स्थिरता हो, उसे ऐसा विकल्प का भाव होता है, उसे व्यवहार कहा जाता है। परन्तु वह व्यवहार है तो बन्ध का कारण। परन्तु ऐसा निमित्तरूप से उसे ऐसा व्यवहार होता है, ऐसा ज्ञान कराने के लिये निश्चय के साथ व्यवहार गिनने में आता है। समझ में आया?

असंयत सम्यग्दृष्टि जघन्य अन्तरात्मा है। देखो! अन्तिम शब्द है न फिर। **निश्चय और व्यवहार इन दो नयों से प्रणीत जो परम आवश्यक क्रिया, उससे जो रहित हो, वह बहिरात्मा है।** इसका अर्थ कि समकिती (उससे) सहित होता है। भाई! है न उसमें? समझ में आया? अरे! ऐसे शास्त्र रत्न से भरे हुए हैं, उन्हें वाँचना नहीं, विचारना नहीं। अरेरे! ऐसा मनुष्यदेह पूर्ण हो जायेगा, चला जायेगा भाई! और कहीं अवतार ठिकाना नहीं, ऐसा आयेगा। उसे यह आत्मा क्या चीज़ है, सिद्धान्तों को सुनना नहीं, निश्चय के

शास्त्र क्या है (उसकी खबर नहीं)। कहे, यह नहीं... नहीं... नहीं। आहाहा! निश्चय अर्थात् सच्चा। निश्चय अर्थात् सत्य, निश्चय अर्थात् जैसा है वैसा। व्यवहार अर्थात् खोटा, व्यवहार अर्थात् आरोपित बात। **व्यवहारो अभूदत्थो...** व्यवहार, वह असत्य है त्रिकाली की अपेक्षा से। समझ में आया?

कहते हैं कि असंयत सम्यग्दृष्टि छोटा-हल्की श्रेणी का अन्तरात्मा है। है तो अन्तरात्मा, आहाहा! परन्तु अभी उसे तीन कषायें बाकी हैं। यद्यपि दृष्टि से तो वह उसे कषाय से मुक्त है, परन्तु चारित्र की अपेक्षा से तीन कषायें उसे बाकी हैं, इसलिए उसे जघन्य श्रेणी का अन्तरात्मा कहा गया है। समझ में आया? आहाहा! यह समयसार अब पढ़ने का है, यह खबर पड़ी? अब खबर पड़ी। आज पूरा किया। कल १७वीं बार शुरु करना है। सभा में समयसार १६ बार हो गया है। अब दोपहर में आयेगा। रामजीभाई दोपहर में नहीं थे। .... रामजीभाई की कुर्सी रखी थी... कहा था कल। ... अभी शुरु नहीं किया, दोपहर में करूँगा समयसार। आहाहा!

एक-एक वाक्य में कितना भरा है अन्दर! असंयत अर्थात् कि अन्दर तीन कषाय का भाव है, तथापि सम्यग्दृष्टि है। भगवान आत्मा के आश्रय से अन्तर में निर्विकल्प श्रद्धा अनुभव में हुई है। आहाहा! 'यह आत्मा है' ऐसी निर्मल शान्ति के वेदन सहित की श्रद्धा है, वह आत्मा पूरा शान्ति का सागर पूरा है। अतीन्द्रिय आनन्द का पूरा तत्त्व और सत्त्व है, ऐसा स्व-आश्रय से स्व का ज्ञान होकर, स्व-आश्रय की प्रतीति हो, उसे तीन कषाय के भाव होने पर भी असंयत—छोटी श्रेणी का अन्तरात्मा-धर्मात्मा कहा जाता है। समझ में आया? जाति एक है, कहते हैं। बारहवेंवाला और चौथेवाला अन्तरात्मा दोनों हैं, मात्र श्रेणी में अन्तर है। ...अन्तरात्मा है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

इन दो के मध्य में... बारहवें गुणस्थानवाला, सोलह कषाय के अभाववाला सर्वोत्कृष्ट अन्तरात्मा है क्योंकि अभी साधक है। केवलज्ञान हो तो अन्तरात्मा नहीं, पश्चात् परमात्मा होता है। समझ में आया? यह सोलह कषाय के अभाववाला, अन्दर स्वद्रव्य के आश्रय से उत्कृष्ट परिणमन अन्तरात्मा की अपेक्षा का है, वह भी अभी साधक है, इसलिए उसे अन्तरात्मा कहा है और चौथे गुणस्थान में आसक्ति के भाव की

विद्यमानता होने पर भी—असंयतभाव होने पर भी, अन्दर में दृष्टि अन्तर आनन्द के नाथ की प्रगट हुई है, स्वद्रव्य के आश्रय से अनुभव और सम्यग्दर्शन है, इसलिए उसे असंयतभाव होने पर भी; वह असंयतभाव है, इसलिए जघन्य कहा, परन्तु होने पर भी आत्मा का आश्रय है, इसलिए अन्तरात्मा कहा। समझ में आया? यह तो समझ में आये ऐसा है। यह भाषा व्याकरण और बहुत कठिन शब्द (वाली) ऐसी कोई सूक्ष्म नहीं। यह तो सादी... सादी... वस्तु सादी, भाषा सादी। आहाहा! सुमनभाई!

यह चौथे और बारहवें के बीच के पाँचवें गुणस्थानवाला श्रावक... श्रावक अर्थात् यह वाडावाला श्रावक, वह कुछ श्रावक नहीं। अन्तर में आत्मा के आनन्द का आश्रय लेकर जिसने अन्तर शान्ति और समकितदर्शन उपरान्त शान्ति विशेष बढ़ी है अन्दर में। चौथे गुणस्थान में जो शान्ति अनन्तानुबन्धी के अभाव की थी, उसकी अपेक्षा पाँचवें गुणस्थान में दूसरे कषाय के अभाव की शान्ति उसे बढ़ी हुई हो अन्दर में आनन्द की, उसे पाँचवें गुणस्थानवाला श्रावक कहा जाता है। आहाहा! यह तो मार्ग यह है, भाई! वीतराग त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ परमात्मा के मुख में से यह बात आयी है। वस्तु यह है। समझ में आया? यह कोई पक्ष और वाडा की बात नहीं। यह तो वस्तु की बात है।

कहते हैं कि इन दो के अर्थात् जघन्य आत्मा सम्यग्दृष्टि और मध्यम अन्तरात्मा पाँचवें से ग्यारहवें तक (और) बारहवें में सर्वोत्कृष्ट। पाँचवें गुणस्थानवाला श्रावक, उसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और स्वरूपाचरण का आश्रय तो चौथे गुणस्थान में था, उन तीन का आश्रय द्रव्य (है ही), परन्तु पाँचवें गुणस्थान में शान्ति की वृद्धि हुई, उस शान्ति का आश्रय (भी) द्रव्य है। उग्र आश्रय लिया, तब उसे पंचम गुणस्थान की शान्ति... शान्ति... शान्ति कि जो सर्वार्थसिद्धि के एकावतारी समकिती देव हो, उसे भी पंचम गुणस्थानवाले की शान्ति वृद्धि पा गयी है। कहो, समझ में आया? क्षायिक समकिती सर्वार्थसिद्धि के देव (कि जो) एक ही भव करके मुक्ति जानेवाले हैं, उनकी अपेक्षा (विशेष) श्रावक उसे कहते हैं कि जिसे अन्तर में दो कषाय का अभाव होकर सम्यग्दर्शन सहित शान्ति प्रगट हुई है। 'प्रशांति अनंत सुधामय जे...' श्रीमद् में आता है, अन्तिम वाक्य आता है। प्रशान्त नहीं, परन्तु प्रशान्ति आया है उसमें। जरा देखा भाई ने सामने। उसका नाम प्रशान्त है और उसमें प्रशान्ति है। उसे फोटो में देखने को कहा। ...

फोटो में क्या नया होगा? देखना। तेरा नाम प्रशान्ति है?—कि नहीं, प्रशान्त है। फोटो नहीं ऐसा... आहाहा!

पाँचवें गुणस्थानवाला श्रावक ऐसा होता है कि जिसे अन्तर आत्मा पूर्णानन्द का प्रभु स्वरूप के आश्रय से सम्यग्दर्शन, ज्ञान और शान्ति की वृद्धि चौथे गुणस्थान की अपेक्षा अधिक हुई है। वह उसे निश्चय आवश्यक है। चौथे गुणस्थान का निश्चय आवश्यक सम्यग्दर्शन, ज्ञान और स्वरूपाचरण की स्थिरता, यह उसका निश्चय आवश्यक है और उसके साथ देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति और पूजा का, विनय आदि का भाव होता है, वह शुभभाव, वह व्यवहार है। समझ में आया? दोनों आवश्यक चौथे गुणस्थान में भी होते हैं, निश्चय और व्यवहार। पाँचवें में भी दोनों होते हैं। जेठाभाई!.... अपवास-बपवास करते और पाँचवाँ गुणस्थान मानते होंगे तब। परन्तु मानते थे या नहीं तब? श्रावक नहीं मानते? श्रावक ... क्रिया करते हैं। अपवास करते हैं, उपधान करते हैं। वह तो अब समकितरहित, परन्तु तब कहाँ था?

हम भी सब ऐसा मानते थे न वहाँ पालेज में दुकान पर। ... पर्यूषण आवे तो प्रतिक्रमण करें, आठ दिन में चार अपवास करें, हों! चार प्रकार के आहार त्याग का अपवास। तब (संवत्) १९६४-६५-६६ के वर्ष। दुकान पर (थे तब से) आजीवन चतुर्विध आहार।... नहीं। आहार-पानी नहीं। उस दिन से करते हैं और पर्यूषण में चार अपवास। आठ दिन में चार करें। वे चतुर्विध आहारत्याग, हों! पानी-बानी नहीं। फिर शाम को प्रतिक्रमण करें। पूरा हो तो फिर रिकॉर्डिंग बजे, भजन करें, लो। यह हो गये श्रावक।

मुमुक्षु : आठ दिन में चार उपवास और चार एकासन।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह चार एक-एक अलग अपवास, ऐसा। एक-एक ऐसा। चार एक साथ कौन करे? पहला उपवास, फिर पारणा, फिर एक उपवास ऐसे दो दिन में एकसाथ खाना। ऐसे चार। यह तो साठ वर्ष पहले की बात है, हों! साठ वर्ष पहले की। सब मानते कि अपने अब धर्म किया, लो! आहाहा!

धर्म तो, यह आत्मा का आश्रय लेकर जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान हो, उसे धर्म कहा

जाता है। इस क्रिया को तो पुण्य—राग कहा जाता है। आहाहा! यह तो सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव परमात्मा सौ इन्द्रों के पूज्य, उनका यह स्वरूप है, उनका यह मार्ग है। कोई ऐरे-गैरे का नहीं, रंक का नहीं। बड़े राजा—बादशाह केवली... आहाहा! जिन्हें स्वराज्य पूर्ण प्रगट हो गया है। यह सब स्वराज्य—बराज की बातें करे, वह मूढ़ता है। राज कब था पर में? आहाहा! यहाँ वह मध्यम आया न पाँचवाँ गुणस्थान, वह अन्तरात्मा है। उसे अन्तर द्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन, ज्ञान और शान्ति की वृद्धि हुई है... आहाहा! वह निश्चय आवश्यक है और वे बारह व्रत के विकल्प आदि, भक्ति, पूजा आदि हो, वह राग है, उसे व्यवहार आवश्यक कहा जाता है। वह तो श्रावक को होते हैं न छह आवश्यक। देवसेवा, गुरुभक्ति... हाँ, वे छह। वह विकल्प है—राग है। वह व्यवहार आवश्यक कहा जाता है और आत्मा के आश्रय से जो स्थिरता दृष्टि आदि हुई, वह निश्चय आवश्यक कहा जाता है। देह की क्रिया आदि व्यवहार नहीं, निश्चय नहीं। वह तो जड़ की क्रिया है। समझ में आया?

भगवान की पूजा के समय कहे न स्वाहा, ॐ... यह... वह तो देह की क्रिया, वाणी की क्रिया है। वह नहीं। अन्दर में वह विकल्प जो हो शुभ, उसे व्यवहार कहना, कब? कि उससे भिन्न पड़कर निश्चय का आश्रय लेकर स्थिरता हुई है उसे। समझ में आया? आहाहा! ऐसा कठिन मार्ग, भाई! जवाबदारी बड़ी परन्तु इसे... यह सब श्रावक हो गये। सामायिक करे और प्रौषध करे, प्रतिक्रमण करे, हो गयी सामायिक। बापू! ऐसी तो क्रिया अनन्त बार की है, अनन्त बार क्रिया की। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो...' भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु... आहाहा! वह कौन है, कहाँ है, कैसे है—इसकी खबर नहीं और उसे धर्म हो गया। समझ में आया? जादवजीभाई! यह सब सेठिया धर्म करते थे वहाँ कलकत्ता में। वजुभाई!

दो के मध्य में स्थित सर्व मध्यम... वे सर्व मध्यम **अन्तरात्मा है।** पाँचवाँवाला है, छठवेंवाला अन्तरात्मा होता है, मुनि अन्तरात्मा उनके आत्मा के आश्रय से निर्विकल्प अनुभव सम्यग्दर्शन, आत्मा का सम्यक्-ज्ञान और स्वरूप की सम्यक्चारित्र—स्थिरता—रमणता स्वद्रव्य के आश्रय से (हो) उसका नाम आवश्यक, निश्चय क्रिया—कर्म-

कार्य कहा जाता है। ऐसे निश्चय आवश्यकसहित जीव को पंच महाव्रत के विकल्प उठें, पाँच समिति, (तीन) गुप्ति आदि का, उस विकल्प को व्यवहार आवश्यक क्रिया कहा जाता है। व्यवहार अर्थात् अभूतार्थ—असत्यार्थ क्रिया, वह (निश्चय) सत्यार्थ क्रिया। परन्तु होता है। समझ में आया? आहाहा! दोनों डाले हैं इसमें। दोनों डाले हैं।

दो के मध्य में स्थित सर्व मध्यम अन्तरात्मा... पाँचवेंवाला, छठवेंवाला, सातवेंवाला, ... ग्यारह तक, बारहवाँ (गुणस्थान) सर्वोत्कृष्ट अन्तरात्मा, उसकी इस ओर। **निश्चय और व्यवहार इन दो नयों से प्रणीत...** देखो! असंयत है। मुनिराज को स्पष्टीकरण यह करना है। वह आवश्यक मुनिपने का न हो और मिथ्यादृष्टि हो, ऐसा नहीं। मुनिपने के योग्य निश्चय आवश्यक न हो, परन्तु सम्यग्दर्शन और पाँचवेंवाला जितनी उसकी आवश्यक क्रिया हो, वह अन्तरात्मा है। वरना बहिरात्मा हो जाये वापस। समझ में आया? मुनिपने के योग्य जो स्व-आश्रय की क्रिया है, वही अन्तरात्मा हो, तो फिर उसकी क्रिया जहाँ नहीं, उसे बहिरात्मा कहा जाता है। इसके लिये यह स्पष्टीकरण करना पड़ा है। समझ में आया?

पाठ में तो ऐसा है, '**आवासयपरिहीणो समणो**' आवश्यकहीन, वह बहिरात्मा है। ऐसे आवश्यक से हीन... ऐसे आवश्यक से हीन तो पाँचवें और चौथेवाला भी है, परन्तु वह बहिरात्मा नहीं। इसके लिये स्पष्टीकरण करना पड़ा टीकाकार को। समझ में आया? ऐसा कठिन मार्ग! वीतराग का स्वरूप परमात्मा ऐसा कहते होंगे? तो सबने अभी तक व्यतीत क्या किया? एक शत्रुंजय की यात्रा करो, जाओ कल्याण; सम्मेदशिखर जाओ... 'एकबार वंदे जो कोई नरक-पशु न होय...' आता है न कुछ। नरक-पशु गति न हो, उसमें क्या भला हुआ? एकाध भव में नरक-पशु में न जाये, परन्तु वापस जानेवाले हैं वहीं के वहीं। सम्मेदशिखर की यात्रा, वह शुभराग है। उसमें कहाँ धर्म आ गया? लाख बार यात्रा करे न सम्मेदशिखर की। भीखाभाई! अरे गजब!

एक बार करे तो नरक-पशु (में) नहीं जाये और दो बार करे तो चार गति (में) नहीं जाये, ऐसा होगा? ऐसा आता है, स्तवन में आता है। 'एकबार वंदे जो कोई, नरक-पशुगति न होई।' प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये अन्दर। वह तो ऐसा शुभभाव हो बहुत, तो उसे

नरक-पशु इस भव में न हो। परन्तु भगवान आत्मा सम्मेदशिखर अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसमें आरूढ़ होकर एकाग्र न हो, उसका एक भी भव घटता नहीं, (फिर भले) लाख बार सम्मेदशिखर की यात्रा करे और शत्रुंजय की करे। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, चौथेवाला भी अन्तरात्मा, पाँचवाँवाला मध्यम अन्तरात्मा, छठवेंवाला भी मध्यम अन्तरात्मा। स्थिरता के अंश में अन्तर है न, तो भी डाला सबको मध्यम में। पाँचवें गुणस्थानवाले को आत्मा के आश्रय से शान्ति है, उतना निश्चय आवश्यक है। छठवें को भी आत्मा के आश्रय से जितनी श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति प्रगट हुई है, उतना निश्चय आवश्यक है और है वह मध्यम। पाँचवेंवाला भी मध्यम और छठवेंवाला भी मध्यम। छठवें गुणस्थानवाले को द्रव्य के आश्रय से निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट हुए हैं, वह निश्चय आवश्यक है। पंच महाव्रत और भगवान की भक्ति आदि का विकल्प हो, वह व्यवहार है। वह मुनि को तो बाहर में शरीर की आवस्था नग्नदशा हो जाती है। समझ में आया?

श्रावक है, हजारों रानियाँ हों, पंचम गुणस्थान में हो, तो भी मध्यम अन्तरात्मा है। मुनि सब छोड़कर, रागादि घटाकर छठवें गुणस्थान में आवे, तो भी अभी उत्कृष्ट दशा नहीं, जघन्य से उल्लंघ गया, इसलिए मध्यम में डाला है। समझ में आया? उसे निश्चय और व्यवहार दोनों आवश्यक होते हैं। समझ में आया? यह व्यवहार के स्थान में विकल्प होता है, परन्तु वह है बन्ध का कारण। परन्तु निचलीदशा में ऐसी अत्यन्त वीतरागदशा नहीं होती, इससे ऐसा विकल्प व्यवहार का आये बिना नहीं रहता, (परन्तु) जाननेयोग्य है। आहाहा! अभी वास्तविकस्वरूप क्या है, यह इसे सुनने को मिलता नहीं, समझता नहीं, उसे धर्म कब हो? जिन्दगी चली जाती है ऐसी की ऐसी अवतार। आहाहा!

यह छठवें गुणस्थान में... सातवें में लो। सातवें के पश्चात् ध्यान में है वह। सातवें गुणस्थानवाले मुनि जो सच्चे हों, सन्त सच्चे हों, स्वद्रव्य के आश्रय से अनुभव दृष्टि, ज्ञान, चारित्र प्रगट हुए हों, उसे पंच महाव्रत का विकल्प हो, यह निश्चय-व्यवहार। छूटकर सातवें में जाये निश्चय में अन्तर निर्विकल्प आनन्द में। छठवें के

पश्चात् अन्तर्मुहूर्त में तुरन्त ही आनन्द में जाये, तो भी उसे मध्यम अन्तरात्मा (कहते हैं)। क्योंकि अबुद्धिपूर्वक का राग रहा है। समझ में आया? ऐसे आठवें में श्रेणी मांडे ध्यान की। श्रेणी अर्थात् स्थिरता। परन्तु अभी अबुद्धिपूर्वक राग रहा है, इसलिए उसे मध्यम अन्तरात्मा (कहते हैं)। ऐसे नौ, दस और ग्यारह (गुणस्थान)। ग्यारहवें में राग जरा भी नहीं, परन्तु सत्ता में पड़ा है न उसे। अभाव हुआ नहीं, इसलिए उसे मध्यम अन्तरात्मा में डाला। समझ में आया?

उत्कृष्ट अन्तरात्मा जिसे सोलह कषाय टलकर वीतरागदशा हुई है, वह उत्कृष्ट साधक है। ग्यारहवें में कषाय का अंश जरा भी नहीं, परन्तु पड़े हैं न आधीन। अन्दर अभी पड़े हैं, इतनी शिथिलता है न। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध रहा, इतनी यहाँ शिथिलता है। भले सत्ता में रहे तो शिथिल—कमजोर है न पर्याय, इसलिए उसे मध्यम अन्तरात्मा में (गिना है)। व्यवहार-फ्यवहार... वह नय है अभी, वह व्यवहारनय है, परन्तु उसे अबुद्धिपूर्वक है। अपूर्णता है न। वह व्यवहारनय का विषय है। बाहर की अपूर्णता है न, ज्ञान, दर्शन, आनन्द की अपूर्णता, वह सब व्यवहारनय का विषय है। बारहवें तक व्यवहार लेंगे। थोड़ा-सा लम्बा...

दो नयों से प्रणीत जो परम आवश्यक क्रिया,... देखो! यहाँ क्रिया कही। **उससे जो रहित हो, वह बहिरात्मा है।** जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट को जो आवश्यक क्रिया जो निश्चय और व्यवहार की कही, ऐसा निश्चय का जिसे नहीं, वह तो बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि है। चाहे तो जैन का साधु पंच महाव्रत, नग्नपना लेकर घूमे और क्रिया करे, परन्तु वह निश्चय के भान बिना अकेले क्रियाकाण्ड के आधीन हुए वे मिथ्यादृष्टि हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण ६, सोमवार, दिनांक - ०८-११-१९७१
गाथा-१४९, श्लोक - २५८, प्रवचन-१७२

नियमसार सिद्धान्त चलता है। निश्चय परम-आवश्यक (अधिकार), १४९ गाथा। टीका पूरी हुई टीका। अन्तिम श्लोक है, देखो! कल थोड़ा विस्तार किया था।

निश्चय और व्यवहार इन दो नयों से प्रणीत जो परम आवश्यक क्रिया, उससे जो रहित हो, वह बहिरात्मा है। आया उसमें? देखो! बताओ न। उसे बताओ न साथ में। क्या कहते हैं? देखो! जो कोई आत्मा अपने स्वरूप में सोलह कषाय से रहित अन्तरात्मदशा—(पूर्ण) वीतरागभाव (प्रगट करे), उसको उत्कृष्ट अन्तरात्मा कहा जाता है। समझ में आया? सोलह कषाय का अभाव, बारहवाँ गुणस्थान... अन्तरात्मा की व्याख्या है न! उसका (कषाय का) अभाव और वीतरागभाव, वह निश्चय आवश्यक है। उसको भी व्यवहार है। बारहवें गुणस्थान में भी अल्पज्ञानादि है, वह व्यवहार है। निश्चय और व्यवहार आवश्यक दोनों ही उसको है। यह उत्कृष्ट (अन्तरात्मा) कहा। जघन्य, असंयत सम्यग्दृष्टि जघन्य अन्तरात्मा है। असंयत सम्यग्दृष्टि जिसको आसक्ति दूर नहीं हुई है, परन्तु जिसको आत्मा का सम्यग्दर्शन हुआ है, आत्मा शुद्ध चैतन्य हूँ, आनन्द हूँ—ऐसी स्व के आश्रय से प्रतीति अनुभव में हुई है, उसका नाम सम्यग्दृष्टि असंयती कहते हैं। अकेले क्रियाकाण्ड रागादि करे, वह सम्यग्दृष्टि नहीं। समझ में आया? क्योंकि सम्यग्दृष्टि को भी निश्चय-व्यवहार दो नयों से प्रणीत परम-आवश्यक क्रिया है। उससे रहित है, वह बहिरात्मा है। समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान में है अविरति, है असंयम, परन्तु अन्तर आनन्दस्वरूप का भान है (कि) मैं तो शुद्ध आनन्दकन्द हूँ, राग का विकल्प है वह भी मेरी क्रिया नहीं। समझ में आया? होती है, परन्तु वह मैं नहीं। शरीर की क्रियायें मैं नहीं। मैं तो शुद्ध चैतन्य ज्ञान-आनन्दकन्द हूँ, ऐसी अनुभव में प्रतीति हुई तो उसकी दृष्टि राग से विरक्त हुई। सम्यग्दृष्टि असंयमी है, परन्तु वह है अन्तरात्मा। क्योंकि उसने स्वद्रव्य के

आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान और स्वरूप की स्थिरता का अंश, (ऐसा) निश्चय आवश्यक प्रगट किया है और उसके योग्य व्यवहार उसे होता है। समझ में आया? उसे भी भक्ति-पूजा आदि का विकल्प होता है, वह व्यवहार है। तो चौथे गुणस्थान में भी निश्चय आवश्यक और व्यवहार आवश्यक दोनों होते हैं। समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि ऐसे नहीं कहा कि देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा की और देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति-पूजा करते हैं तो सम्यग्दृष्टि है। ऐसा नहीं है। समझ में आया? है न, देखो! निश्चय-व्यवहार दो नयों से प्रणीत आवश्यक क्रिया से रहित, वह तो बहिरात्मा है। समझ में आया? भीखाभाई! तो उसका अर्थ क्या हुआ? उसका अर्थ क्या हुआ? कि सम्यग्दृष्टि है, उसको निश्चय आवश्यक भी है, उसकी भूमिका के प्रमाण में और व्यवहार विकल्प भी है। समझ में आया? यह सम्यग्दृष्टि जघन्य—निचली श्रेणी का अन्तरात्मा है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का रागपरिणाम है अकेला राग, उसमें जो एकत्वबुद्धि है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। जिसको व्यवहाराभास (अर्थात्) अकेली राग की क्रिया है, उसको तो निश्चय और व्यवहार एक भी है नहीं। समझ में आया? सूक्ष्म बात है।

आत्मा शुद्ध वीतरागमूर्ति ज्ञायकभाव की दृष्टि, अन्तर्मुख होकर निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान और स्वरूप के अंश की स्थिरता हुई है, उसको आसक्तिभाव—असंयमभाव दूर नहीं हुआ, परन्तु वह असंयमभाव में जितना रागभाव है शुभ दया-व्रत आदि का, उसे व्रत न हो, (परन्तु) दया, दान, पूजा, भक्ति है, इतने को व्यवहार कहते हैं और जितना अपने आत्मा के आश्रय से सम्यक्-अनुभव दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ अंश में, उसको निश्चय आवश्यक कहते हैं। समझ में आया? निश्चय न हो और अकेला व्यवहार हो, तब तो मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है। समझ में आया? जैनदर्शन सूक्ष्म है। ऐसे जैनदर्शन... जैनदर्शन कहते हैं, (परन्तु) यह बात तो अलौकिक, उसका मूल्य अलौकिक है। आहाहा! कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि असंयती जघन्य श्रेणीवाला, उसे भी दो नयों से प्रणीत परम आवश्यक क्रिया है। समझ में आया? और निश्चय और व्यवहार दोनों न हो (और) अकेला व्यवहार हो, वह तो मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है। समझ में आया?

पश्चात् पंचम गुणस्थान। यह जघन्य अन्तरात्मा कहा। पंचम गुणस्थानवाला

श्रावक मध्यम अन्तरात्मा है। यह वाडावाले की बात नहीं, वस्तु की स्थिति है। ऐसी बात है भगवान! आत्मा आनन्दस्वरूप का जिसको अनुभव हुआ है और उसमें शान्ति भी जरा, दूसरे कषाय के (अभाव) करके अकषायभाव—शान्ति भी विशेष वृद्धि हुई है, शान्ति—अकषाय परिणाम। ऐसा सम्यग्दर्शनपूर्वक, स्व के आश्रयपूर्वक, स्व के आश्रय में स्थिरता भी थोड़ी उत्पन्न हुई है, वह निश्चय-आवश्यक पंचम गुणस्थान का है। समझ में आया? यह सच्चा आवश्यक है और उसके साथ में बारह व्रत का विकल्प, भक्ति-पूजा का विकल्प—राग उत्पन्न होता है, उसको व्यवहार कहते हैं। समझ में आया? अकेला व्यवहार नहीं होता; वैसे पूर्णता न हो, वहाँ अकेला निश्चय नहीं होता। पण्डितजी! ऐसा पाठ है।

मुमुक्षु : दोनों साथ चलते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों साथ चलते हैं। आहाहा! समझ में आया?

अकेला दया, दान, व्रत, पूजा, भक्ति का भाव, वह तो राग है। रागक्रिया मेरी है, वह तो राग में एकत्व है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। राग से पृथक् हुआ और अपने स्वभाव का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन और शान्ति की उत्पत्ति विशेष-अंश में बढ़ी हो, उसका नाम पंचम गुणस्थान की निश्चय-सच्ची आवश्यक क्रिया कही जाती है। समझ में आया? और उसके साथ बारह व्रत आदि का विकल्प आता है, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग है, वह व्यवहार है। यह पंचम गुणस्थान मध्यम अन्तरात्मा की दशा है। मध्यम में पहले नम्बर की। पहले नम्बर की अर्थात् नीचे की श्रेणी की। छठवाँ गुणस्थान... आया न? देखो! मध्यम अन्तरात्मा—सर्व मध्यम अन्तरात्मा। पंचम गुणस्थान से ग्यारहवें गुणस्थान तक मध्यम अन्तरात्मा। देखो! आया है उसमें।

इन दो के मध्य में स्थित सर्व मध्यम अन्तरात्मा हैं। बहुत सरस बात कही है। पाठ में तो, आवश्यक सहित वह अन्तरात्मा है; आवश्यकरहित वह बहिरात्मा है—इतना पाठ है, परन्तु उसमें से यह निकाला। सच्चे तो साधु हैं, अपने द्रव्य के आश्रय से प्रचुर स्वसंवेदन उनको हुआ है, आनन्द की शान्ति आदि का वेदन हुआ है, वह आवश्यक क्रिया—जरूरी स्ववश का कार्य, वह निश्चय और उसमें मुनि को पंच

महाव्रत का परिणाम आदि आता है, छठवें गुणस्थान में मध्यम अन्तरात्मा। पंच महाव्रत, २८ मूलगुण विकल्प वह व्यवहार। अकेले पंच महाव्रत के विकल्प और २८ मूलगुण का विकल्प है और उससे रहित अपनी अनुभव की दृष्टि नहीं, वह तो बहिरात्मा है। समझ में आया? ऐसा मार्ग है। चौथे गुणस्थान में भी जघन्य आत्मा होने पर भी स्व के आश्रय से अनुभव दृष्टि आदि है, वह निश्चय आवश्यक है और भक्ति आदि का परिणाम है, वह व्यवहार है। निश्चय मुक्ति का कारण है; व्यवहार बन्ध का कारण है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसे पंचम गुणस्थान में शुद्ध आनन्दस्वरूप के आश्रय से जितनी निर्मलता, वीतरागता, अविकल्पता—निर्विकल्पता प्रगट हुई है, उतना तो सच्चा आवश्यक पंचम गुणस्थान में कहने में आता है, उसके साथ बारह व्रत का विकल्प आदि है, वह व्यवहार है। निश्चय नहीं और अकेला व्यवहार है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? ऐसे छठवें गुणस्थान में स्व के आश्रय से आनन्द और शान्ति की वृद्धि हुई है, पंचम गुणस्थान से भी विशेष है, परन्तु वह मध्यम अन्तरात्मा है, वह बारहवाँ गुणस्थानवाला उत्कृष्ट (अन्तरात्मा) नहीं। ऐसा होने पर भी, स्वरूप की अन्तर निर्विकल्प दृष्टि, निर्विकल्प ज्ञान और स्वरूप में लीनता की वीतरागता जितनी प्रगट हुई, उतना सच्चा—निश्चय आवश्यक कहते हैं और पूर्णता नहीं है तो वहाँ पंच महाव्रत का राग आदि आता है, वह व्यवहार है। अकेला व्यवहार नहीं होता, ऐसे अकेला निश्चय मध्यम अन्तरात्मा में नहीं होता। मध्यम अन्तरात्मा में भी निश्चय-व्यवहार दोनों ही है। समझ में आया?

उत्कृष्ट अन्तरात्मा बारहवें गुणस्थान का, तो भी उसको अभी व्यवहारनय का विषय है। समझ में आया? दोनों नय वहाँ हैं, ऐसे चौथे गुणस्थान में भी दोनों नय हैं। आहाहा! पंचम में भी दोनों हैं, छठवें में भी दोनों, बारहवें तक दोनों हैं। समझ में आया? तो छठवें गुणस्थान(वर्ती) मुनि सच्चा जैनदर्शन का कि वस्तु का स्वभाव का... जैनदर्शन कहो या वस्तु का स्वभाव कहो (दोनों एकार्थ हैं)।

यह जैनदर्शन... 'जिन सो ही है आत्मा...' जिनराज ही आत्मा है। वीतरागमूर्ति अकषायस्वरूपी आत्मा है, वह जिनराज है, वह देव है। उसके अवलम्बन से, आश्रय

से पर्याय में तीन कषाय के अभाव की वीतरागी परिणति—दशा उत्पन्न हुई हो, उसको निश्चय आवश्यक कहा जाता है और उस भूमिका में राग आता है पंच महाव्रतादि का, उसको व्यवहार कहते हैं। अकेला पंच महाव्रतादि का विकल्प है और द्रव्य के आश्रय से निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान नहीं, वह तो मिथ्यात्व है। मार्ग ऐसा है, भगवान! टीकाकार ने स्पष्टीकरण कर दिया है। निश्चय व्यवहार दो नयों से प्रणीत परम आवश्यक क्रिया से रहित, वह बहिरात्मा है। तो उसका अर्थ हुआ कि सहित है, वह अन्तरात्मा है। समझ में आया?

ऐसे सप्तम गुणस्थान। जिसको छठवाँ गुणस्थान होता है, आत्मा के आश्रय से निश्चय आवश्यक क्रिया है, उसको—सच्चे सन्त को क्षण में सप्तम गुणस्थान आता है। वह भी मध्यम अन्तरात्मा कहने में आता है। उसको भी निश्चय-व्यवहार दोनों है। जितनी स्व के आश्रय से शुद्धि आनन्द की, चारित्र की प्रगट हुई, वह निश्चय है; अबुद्धिपूर्वक राग रहा, वह व्यवहार है। सप्तम गुणस्थान में अबुद्धिपूर्वक राग होता है, वह व्यवहार है। ऐसे आठवें में, नौवें में, दसवें में ले लेना। ग्यारहवें में भी दो नय लिये हैं। वीतरागता है, परन्तु उपशम है (तो) मध्यम अन्तरात्मा लिया है। समझ में आया? और बारहवें में उत्कृष्ट (अन्तरात्मा) है। ग्यारहवें में अभी वीतरागता हुई है, परन्तु मन्द पुरुषार्थ है वहाँ और सत्ता में कषाय पड़ी है, तो उसे मध्यम अन्तरात्मा कहने में आया। और जिसको कषाय सर्वथा गयी, उसको निश्चय और व्यवहारनयवाला उत्कृष्ट अन्तरात्मा कहने में आया है। समझ में आया?

अब यह बात विशेष (समझाने के लिये) आधार देते हैं। रयणसार का है। मार्गप्रकाश का उद्धरण दिया है, परन्तु वह नहीं। यह रयणसार की गाथा है। गाथा है, श्लोक है न ऊपर।

बहिरात्मान्तरात्मेति स्यादन्यसमयो द्विधा।
बहिरात्मानयोर्देहकरणाद्युदितात्मधीः।

यह शब्द कुछ मिलता नहीं, मिलान नहीं खाता। '**करणादि**' '**उदित्**' अर्थात् क्या? वह कुछ खबर पड़ती नहीं। '**उदितात्ममधीः**' है। ... यह रयणसार का है। लिखा है इसमें मार्गप्रकाश का, परन्तु यह रयणसार का श्लोक है। रयणसार, पृष्ठ ११५, गाथा

१४५। लाओ रयणसार। इन्होंने—शीतलप्रसाद ने तो अर्थ ही किया नहीं। गाथा का अर्थ ही किया नहीं। उसमें लिखा है तब। शब्द ही इस जाति का हो, क्या कहलाये? प्राकृत? संस्कृत।.... यह कहते हैं न बहुत। '**उदितात्मधीः**' यह बराबर होगा, संस्कृतवाले जाने, अपने को बहुत शब्दार्थ नहीं आता। १४५ है। '**बहिरंतरभेयं परसमयं**' यह शब्द में अन्तर है, हों! वह बहिरात्मा.... '**बहिरंतरभेयं परसमयं भणिये जिणेंदिः परमप्पो समयं तदु भेयं जाणं उनख्यामि**' ऐसा है। शब्द में अन्तर है। आहाहा! पर की अपेक्षा से डाला है।

क्या कहते हैं? **श्लोकार्थः अन्य समय (अर्थात् परमात्मा के अतिरिक्त जीव) बहिरात्मा और अन्तरात्मा ऐसे दो प्रकार के हैं;...** अर्थ है उसमें? सुनो, उसका अर्थ। अन्यसमय अर्थात् जब तक पूर्ण परमात्मदशा हुई न हो, तब तक अन्तरात्मा और बहिरात्मा दोनों को अन्यसमय में कहने में आया है, परसमय में कहने में आया है। बहिरात्मा तो परसमय है ही, परन्तु अन्तरात्मा में जब तक पूर्ण ज्ञान, दर्शन, आनन्द हुआ नहीं, अपूर्णता है, उस अपेक्षा से उसको परसमय में (कहा है)। परन्तु वह परसमय ऐसा नहीं कि राग को अपना मानता है, ऐसा परसमय नहीं है। बहिरात्मावाला परसमय नहीं है। अन्तरात्मा, बहिरात्मा में परसमय जो कहा है, उसमें दो अपेक्षा है।

बहिरात्मा है वह तो, राग की क्रिया, देह की क्रिया मेरी है—ऐसा मानता है। वह तो अकेला परसमय मिथ्यादृष्टि है। अन्तरात्मा—धर्मात्मा सम्यग्दर्शन से लेकर अन्तरस्वरूप की दृष्टि, निश्चय ज्ञान, आनन्दादि प्रगट हुआ, परन्तु पूर्ण प्रगट नहीं हुआ, परमात्मा नहीं है और अन्तरात्मा साधकपने है (इस अपेक्षा से) अपूर्ण ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि है तो उस अपेक्षा से उसे परसमय कहा जाता है। परन्तु राग की एकताबुद्धि है, ऐसी बुद्धि उसकी नहीं। मिथ्यादृष्टि को तो पुण्य-पाप के विकल्प में एकताबुद्धि है, बहिर्भाव है, आत्मा में नहीं ऐसा विकल्प—राग उसे अपना मानना, वह बहिरात्मा बाह्य—पर को अपना मानता है, उसे बहिरात्मा कहने में आता है और है वह परसमय। अन्तरात्मा राग और विकल्प को अपना मानता नहीं; होता है। समझ में आया? अपना चैतन्यस्वरूप भगवान शुद्ध, जघन्य अन्तरात्मा से लेकर बारहवें तक अपने स्वरूप के आश्रय से जितनी निर्मलता वीतरागता प्रगट हुई, वह मैं और बीच में रागादि (आता) है, वह मैं नहीं, परन्तु है, इतनी अपेक्षा लेकर उसको परसमय कहा गया है। समझ में आया?

यहाँ तो 'परमात्मा के अतिरिक्त' कहा है। परमात्मा जो अरिहन्त तेरहवें-चौदहवें में स्वसमय ही है। वह प्रश्न हुआ था दिल्ली में। सिद्ध ही स्वसमय कहने में आता है। चौदहवें गुणस्थान तक परसमय कहने में आता है, ऐसा विद्यानन्दजी ने कहा था। वह इन्दौर में है न विद्यानन्दजी, उन्होंने कहा था। परन्तु कौन बात करे? कैलाशचन्दजी को कहा था कि ऐसा नहीं है। स्वसमय की पूर्णता तेरहवें में हो जाती है। स्वसमय की शुरुआत चौथे से होती है। अपना स्व अर्थात् आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप, उसके आश्रय से जो निर्मल दशा हो, वह स्वसमय का अंश चौथे से उत्पन्न होता है और स्वसमय की पूर्णता तेरहवें में होती है। बारहवें तक उसको अपूर्ण है तो उस अपेक्षा से अन्तरात्मा को भी, परसमय का अंश राग का है अथवा अल्पज्ञता है, उस अपेक्षा से परसमय में गिनने में आया है। समझ में आया?

अन्य समय (परमात्मा के अतिरिक्त जीव)... सर्वज्ञ परमेश्वर अरिहन्तदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा के सिवाय... परमात्मा तो स्वसमय ही है। क्योंकि उन्हें तो अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त दर्शन पूर्ण हो गया है (तो) स्वसमय ही है। तेरहवें, चौदहवें में स्वसमय ही है। सिद्ध तो स्वसमय ही है, वे तो पूर्ण हो गये हैं। समझ में आया? और बहिरात्मा... उसका स्पष्टीकरण इसलिए किया है। दो प्रकार के बहिरात्मा, अन्तरात्मा अन्य समय में कहने में आया है। उनमें बहिरात्मा देह, इन्द्रिय आदि में आत्मबुद्धिवाला होता है। देह की क्रिया मेरी है, इन्द्रियाँ मेरी हैं, इन्द्रियों को मैं चलाता हूँ, इन्द्रिय—द्रव्येन्द्रिय, खण्ड-खण्ड भावेन्द्रिय... द्रव्येन्द्रिय जड़, उसकी क्रिया मेरी है, वह मैं हूँ, भावेन्द्रिय मैं हूँ, द्रव्येन्द्रिय मैं हूँ, राग मैं हूँ—ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है। समझ में आया? कठिन मार्ग, भाई!

उनमें बहिरात्मा देह-इन्द्रिय आदि में आत्मबुद्धिवाला होता है। देह में, इन्द्रिय में, विकल्प-राग में अपना स्वरूप ही है, ऐसा माननेवाला बहिरात्मा परसमय है। और अन्तरात्मा, राग अपना है, ऐसा जानता नहीं, परन्तु राग बाकी है, चारित्र की अपेक्षा से राग का दोष अभी है और ग्यारह-बारहवें में (राग) दोष नहीं तो दूसरा अल्पज्ञपना भी है तो उस अपेक्षा से उसको—अन्तरात्मा को परसमय कहने में आया है। समझ में आया? स्पष्टीकरण क्यों किया? भाई! अन्तरात्मा और बहिरात्मा दोनों परसमय? परन्तु

बहिरात्मा का परसमयपना ऐसा है कि देह, इन्द्रिय और राग को अपना मानता है। अन्तरात्मा का ऐसा परसमयपना नहीं। समझ में आया? अन्तरात्मा चौथे से बारहवें तक है, उसको भी यहाँ परसमय कहने में आया, परन्तु किस अपेक्षा से? कि देह, इन्द्रिय और राग अपना मानता है, ऐसा जो बहिरात्मा, उसको परसमय कहा, वह अपेक्षा यहाँ नहीं है। यहाँ तो अपूर्णता दशा में है और राग का अंश है अथवा अल्पज्ञता है, उस अपेक्षा से उसको परसमय कहने में आया है। समझ में आया? आहाहा!

कितना स्पष्टीकरण किया, देखो! टीकाकार ने स्पष्टीकरण किया। वह तीन भेद करेंगे। अनुष्टुप है न!

जघन्य-मध्यमोत्कृष्ट-भेदादविरतः सुदृक्।
प्रथमः क्षीणमोहोऽन्त्यो मध्यमोमध्यमस्तयोः॥

श्लोकार्थः अन्तरात्मा के जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट, ऐसे (तीन) भेद हैं;... सम्यग्दर्शन आत्मा का अनुभव हुआ, आत्मा का भान हुआ (कि) मैं तो शुद्ध चैतन्य आत्मा ज्ञाता-दृष्टा हूँ। रागादि है, वह मेरी क्रिया नहीं, मुझमें नहीं, मेरा नहीं। ऐसी समकिती की जघन्य अवस्था, वह अन्तरात्मा है। पाँचवें (गुणस्थान) से ग्यारहवें तक मध्यम (अन्तरात्मा) है। तीन भेद लिखे न! **अविरत सम्यग्दृष्टि, वह प्रथम (जघन्य) अन्तरात्मा है; क्षीणमोह, वह अन्तिम (उत्कृष्ट) अन्तरात्मा है और उन दो के मध्य में स्थित, वह मध्यम अन्तरात्मा है।** पंचम से ग्यारहवें (गुणस्थान) तक। समझ में आया? अन्तरात्मा किसे कहते हैं? आत्मा जो चीज़ है रागरहित—विकल्परहित चीज़, इसकी जिसे अन्तर में दृष्टि में एकता हुई है, पर्याय की स्वभाव में एकता हुई है और राग से—विकल्प से पृथक्ता हुई है, वह अन्तरात्मा है। जैसा आत्मा है, ऐसा भान हुआ। समझ में आया?

और अन्तरात्मा में जो चीज़ नहीं, ऐसा दया, दान, व्रतादि विकल्प को अपना मानता है, वह बहिरात्मा है। समझ में आया? आहाहा! गजब! अभी तो अकेले व्रत पालो, तप करो, पूजा करो, भक्ति करो, जाओ, ये क्रिया वह धर्म है। ऐसा चलता है। वह मार्ग वीतराग का नहीं। समझ में आया? वीतराग का मार्ग तो वीतरागता के अंश से

शुरु होता है। सम्यग्दृष्टि को भी स्व-आश्रय से जितनी वीतरागता उत्पन्न हुई, उतना उसको धर्म और निश्चय-आवश्यक कहा जाता है। समझ में आया? पराश्रय से भाव उत्पन्न हो चौथे में, पाँचवें आदि में, परन्तु उसको अपना जानते नहीं, उसे परज्ञेय जानते हैं। आहाहा! समझ में आया?

ऐसे उत्कृष्ट अन्तरात्मा भी परसमय में कहने में आया, मध्यम अन्तरात्मा भी परसमय में कहने में आया। बारहवें तक, कहा। बारहवें... **दो के मध्य में स्थित, वह मध्यम अन्तरात्मा है।** आहाहा! बहुत संक्षिप्त में... दोनों नयों का स्वरूप चौथे से शुरु होता है। अभी वहाँ जवाब दिया है भाई उत्तमचन्द ने। सिवनी... सिवनी। मक्खनलालजी को उत्तर दिया था। एक उत्तमचन्द है सिवनी में। बड़ा अच्छा ... लड़का है। मक्खनलालजी ने कहा... यहाँ कहा कि तुम व्यवहार, व्यवहार करते हो तो व्यवहार क्या? कि निश्चय बिना व्यवहार होता नहीं। अभी चर्चा हुई थी। समाचारपत्र में भी आया। मक्खनलालजी मुरैना। लड़के ने कहा कि निश्चय बिना व्यवहार (होता नहीं)। चौथे गुणस्थान से निश्चय और व्यवहार दोनों शुरु होते हैं, ऐसा कहा। बुद्धिवाला व्यक्ति है। समझ में आया?

कहते हैं कि चौथे गुणस्थान से निश्चय और व्यवहार दोनों शुरु होते हैं। बहिरात्मा को मात्र व्यवहाराभास की क्रिया है। क्रिया है उसकी, जो अज्ञान है अकेले शुभभाव में, वह बात नहीं। समझ में आया? दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का परिणाम सब है, परन्तु वह बहिरात्मा बहिर् चीज को अपना मानता है और उससे अपने में लाभ मानता है, तो वह बहिरात्मा है। उससे अपने में लाभ नहीं माननेवाला, अपने स्वभाव से लाभ है, ऐसा अनुभव में माननेवाला, वह अन्तरात्मा है। आहाहा! स्पष्ट बात है। समझ में आया?

१४९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:—स्वयं पद्मप्रभमलधारिदेव।

योगी नित्यं सहज-परमावश्य-कर्म-प्रयुक्तः,
सन्सारोत्थ-प्रबल-सुखदुःखाटवी-दूरवर्ती।
तस्मात्सोऽयं भवति नितरामन्तरात्मात्मनिष्ठः,
स्वात्मभ्रष्टो भवति बहिरात्मा बहिस्तत्त्वनिष्ठः॥२५८॥

देखो! ओहोहो! संस्कृत श्लोक है पण्डितजी! **श्लोकार्थः-योगी** अथवा धर्मात्मा। अपने शुद्ध द्रव्यस्वभाव में जिसने जुड़ान किया है। जोडाण कहते हैं? जोडाण कहते हैं न? जुड़ान। अपना द्रव्यस्वभाव शुद्ध आनन्दकन्द, उसमें योगी—जुड़ान किया है, झुकाव किया है, अन्तर्मुख ढलान किया है, अन्तर्मुख ढलन किया है, अन्तर्मुख दृष्टि जिसको खिल गयी है। आहाहा! ऐसा धर्म कठिन, भाई! वह बाबा और योगी अन्य में हो, वे नहीं, हों! यहाँ तो वीतरागमार्ग में सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो आत्मा कहा, ऐसा अपना शुद्ध सच्चिदानन्द प्रभु, पुण्य-पाप के राग से रहित, ऐसी चीज़ में जिसकी एकता है, उसका नाम यहाँ योगी कहने में आया है। वे बाबा जटाधारी ऐसे और ऐसे योग करें, वे बाबा अज्ञानी हैं। समझ में आया?

यहाँ तो सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने जाना, देखा और कहा, ऐसा आत्मा असंख्य प्रदेशी... ओहोहो! कहाँ दूसरे में ऐसा है? असंख्यप्रदेशी आत्मा जैन के सिवा कहीं है ही नहीं। और अनन्त गुण—भाव। प्रदेश असंख्य और शक्ति—गुण अनन्त। अनन्तानन्त शक्ति और उसकी अनन्तानन्त शक्तियों की अनन्तानन्त पर्यायें। आहाहा! समझ में आया? ऐसे आत्मा में जो अन्तर में एकता करता है, वह सम्यग्दृष्टि भी जघन्य योगी कहने में आता है। समझ में आया? यहाँ मुनि की योग की बात है। योगी, अपने आनन्द और ज्ञायकस्वभाव में लीनता (करे), वह योगी।

सदा सहज परम आवश्यक कर्म से युक्त रहता हुआ... आहाहा! सन्त योगी तो उसे कहते हैं कि सदा—निरन्तर सहज परम आवश्यक क्रिया, स्वाभाविक रागरहित आत्मा की वीतरागी क्रिया, ऐसी आवश्यक क्रिया से युक्त सदा योगी रहते हैं। आहाहा! लो, यह कहते हैं कि पंच महाव्रत के परिणाम और देह की नग्नतासहित रहना, यह मुनिपना। यहाँ इनकार करते हैं। यहाँ सदा मुनि तो उसको कहने में आता है कि सदा सहज परम आवश्यक निर्मल क्रिया हो। पंच महाव्रत का विकल्प तो राग है। राग से रहित अन्तर के आश्रय से सहज-स्वाभाविक क्रिया निर्मल आनन्द की, शान्ति की क्रिया उत्पन्न हुई, वह सहज परम आवश्यक—जरूरी क्रिया, ऐसा जो कर्म; कर्म अर्थात्

क्रिया, ऐसी क्रिया से सहित रहता हुआ... ऐसी क्रिया से सहित रहता हुआ, अपने पुरुषार्थ से रहता हुआ, ऐसा कहते हैं।

संसारजनित... देखो! इस एक लाईन में इतना मुनिपने की दशा का वर्णन है! आहाहा! व्यवहार हो, उसकी बात यहाँ ली नहीं। पहले कहा कि दो नय है, तो दो नय का विषय भी है, परन्तु उसका आवश्यक, वास्तव में आवश्यक तो, स्व के आश्रय से आनन्द और शान्ति की आवश्यक क्रिया उत्पन्न हुई, उससे वह सहित है। व्यवहार से सहित नहीं, व्यवहार से रहित है। आहाहा! समझ में आया? पहले नय का ज्ञान कराया, परन्तु वह... आहाहा! भगवान अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु आत्मा, अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द आत्मा है। ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द के अवलम्बन से—आश्रय से अतीन्द्रिय आनन्द और शान्ति और स्वच्छता, वीतरागता पर्याय हुई, उस आवश्यक क्रियासहित मुनि होते हैं। आहाहा! लोग वाँचे नहीं, स्वाध्याय करते नहीं और ऊपर-ऊपर से सब... यह तो वीतराग का मार्ग है, भाई! ठीक... यह तो ठीक बराबर हो सकता है, क्यों न हो? आहाहा!

समझे बिना ऐसे के ऐसे शास्त्र का अर्थ करे, अपने क्रियाकाण्ड में धर्म मान ले, यह वीतराग का मार्ग नहीं है, भाई! समझ में आया? ओहोहो! यह तो तीन लोक के नाथ अनन्त तीर्थंकर कहते आये हैं। सीमन्धर भगवान वर्तमान में हैं। कुन्दकुन्दाचार्य गये थे, वहाँ आठ दिन रहे थे। भगवान के पास गये थे कुन्दकुन्दाचार्य संवत् ४९ में। आठ दिन रहे थे, वहाँ से आकर यह नियमसार बनाया है। भगवान का तो ऐसा फरमान है, भाई! समझ में आया?

कहते हैं, जो कोई धर्मात्मा धर्मस्वरूप ऐसा अपना स्वभाव, उसमें जिसकी सन्मुखता और एकता है, व्यवहार के विकल्प से तो जिसकी विमुखता है... पहले ज्ञान कराया कि दो (नय) हैं। समझ में आया? व्यवहार हो, चौथे से बारहवें तक होता है, परन्तु धर्मात्मा तो (निश्चय आवश्यक) सहित रहता हुआ... आहाहा! समझ में आया? मार्ग तो बापू! मोक्ष का मार्ग कोई अलौकिक है। जिसका फल 'सादि-अनन्त अनन्त समाधि सुख में..' शुरुआत अनन्त आनन्द से हो, अनन्त आनन्द रहे मुक्ति में, उसका

उपाय तो कोई अलौकिक होता है या नहीं? आहाहा! अलौकिक, अलौकिक फल का अलौकिक कारण होता है। लौकिक व्यवहार आदि पर की क्रिया उसका कारण नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

निश्चय परम-आवश्यक का अधिकार है न! सन्त तो उसको कहते हैं कि सदा सहज परम स्व-भगवान आत्मा के आश्रय से निर्विकल्प दृष्टि, ज्ञान और शान्ति जो उत्पन्न हुई, ऐसी क्रिया अर्थात् कर्म से सहित है। एक जगह ऐसा भी कहा है कि यह आवश्यक क्रिया है, वह अक्रिया है, निष्क्रिय है। किस अपेक्षा से? राग की अपेक्षा से। राग की क्रिया है, उससे रहित है तो उसको अक्रिय कहा, परन्तु परिणमन की क्रिया है तो उसको सक्रिय कहा। आहाहा! उसको और उसको आवश्यक क्रिया कहा, उसको आवश्यक कर्म कहा, उसको आवश्यक निष्क्रिय भी कहा। आहाहा! समझ में आया? भाव में भासन होना चाहिए न! ऐसे भासन हुए बिना ऐसा (ऊपर से) मानना, वह कोई चीज़ है? समझ में आया? आत्मा ऐसा शुद्ध आनन्द ज्ञानस्वरूपी प्रभु है, उसका भास हुआ—भान हुआ, तो उसके आश्रय से जो क्रिया उत्पन्न हुई तो भास में भास हुआ कि आत्मा शुद्ध है।

ऐसी आवश्यक क्रियासहित मुनि होते हैं। यहाँ ऐसा नहीं कहा कि व्यवहार क्रिया सहित होता है। व्यवहार होता है, परन्तु उससे रहित है। आहाहा! समझ में आया? ज्ञान कराने को (कहा)। व्यवहार है, निश्चय है—दोनों का ज्ञान कराया, परन्तु आदरणीय तो एक निश्चय ही है। व्यवहार ज्ञान करनेयोग्य है, परन्तु आदरणीय नहीं, आहाहा! ऐसी बात है, भाई! और यह वस्तु समझ में आये ऐसी है। उसमें ऐसा नहीं कि यह न समझ में आये। इसके घर की चीज़ है। आहाहा! और इसके घर में तो केवलज्ञान तो अनन्त पड़े हैं, ऐसा इसे कैसे न समझ में आये? समझ में आया? अब, अनन्त काल की अपेक्षा से उसे दुर्लभ कहो, परन्तु स्वभाव की अपेक्षा से तो सुलभ है। समझ में आया? समझ में आया?

कहते हैं, योगी, धर्मात्मा, सन्त तो उसको कहते हैं, मुनि उसको कहते हैं कि वीतराग सर्वज्ञ के पंथ के लिये जो सदा—निरन्तर... आहाहा! भगवान परमात्मा अपना

निज स्वरूप, उसके आश्रय से जो निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की परिणति, क्रिया, कर्म, कार्य उत्पन्न हुआ, उससे वह सहित है। कहो, समझ में आया? अलिंगग्रहण में ऐसा भी कहा है, अलिंगग्रहण में। यति की बाह्यक्रिया का जिसमें अभाव है, ऐसे आत्मा को अलिंगग्रहण कहने में आता है। शरीर का नग्नपना और पंच महाव्रत का विकल्प, वह तेरी बाह्य क्रिया है, उसका जिसमें अभाव है... आहाहा! अलिंगग्रहण का बोल है। समझ में आया? सत्रह, सत्रहवाँ बोल है। (बाद के) तीन तो वह द्रव्य-पर्याय... गुणभेदरहित द्रव्य, पर्यायभेदरहित द्रव्य और मात्र पर्याय (वह आत्मा)।

सत्रहवाँ (बोल)। यति की बाह्यक्रिया नग्नपना और पंच महाव्रत, २८ मूलगुण का विकल्प—राग, वह बाह्यक्रिया है। उससे तो भगवान आत्मा अलिंगग्रहण—लिंग ऐसा चिह्न, उससे रहित है। आहाहा! कठिन मार्ग! आत्मा ऐसा है, ऐसा कहा। अलिंगग्रहण (अर्थात्) यति की बाह्यक्रिया का जिसमें अभाव है, उसे आत्मा कहने में आता है। क्योंकि जो क्रिया है, जड़ की—शरीर की, वह तो अजीव है और आस्रव-व्यवहार विकल्प की क्रिया वह तो आस्रव है। दोनों से रहित है, उसका नाम आत्मा कहने में आया है। आहाहा! कठिन बातें, भाई! यह तो कौन जाने एल.एल.बी. की बात होगी? ...भाई! यह तो बड़ी एल.एल.बी. की... भाई! यह तो अभी पहली सम्यग्दर्शन की बात है। सुखी होने का प्रथम रास्ता, सुखी होने का प्रथम पंथ। बाकी सब दुःखी होने के पंथ हैं। समझ में आया? सुखी होने का पंथ कहो या मोक्षमार्ग कहो (या) दुःख से मुक्त होने का मार्ग कहो। आहाहा!

ऐसी क्रिया, सदा धर्मात्मा अपने द्रव्यस्वभाव में लीनता की क्रियासहित होता है। जिसमें आनन्द की दशा का वेदन उग्रपने हो, ऐसी परम आवश्यक क्रियासहित सन्त होते हैं। **संसारजनित प्रबल सुखदुःखरूपी अटवी से दूरवर्ती होता है।** देखो! इससे सहित होता है, निश्चय ज्ञायक द्रव्यस्वभाव की परिणति निर्मल वीतरागी सुखरूपदशा से सहित है और संसारजनित सुख-दुःखरूपी विकल्प जो अटवीरूपी वन है, उससे दूरवर्ती होता है। आहाहा! शुभराग उत्पन्न होता है न, वह भी दुःखरूप दशा है। कहीं शुभभाव को सुख कहा है, वह दुःख है उसको यहाँ सुख का आरोप दिया है। शुभभाव,

वह सुख-दुःखरूपी अटवी है। आहाहा! इसमें आगे कहेंगे कि भवभय को करनेवाला है। इस ओर है ३१३वें पृष्ठ पर। यह अन्तिम—आखिर की लाईन है। भवभय का करनेवाला वह विकल्प है। आहाहा! नीचे, नीचे। ३१३ (पृष्ठ पर) अन्तिम लाईन। भवभय का करनेवाला बाह्य-अभ्यन्तर जल्प। आहाहा! है? यह निकालने में भी देरी लगती है। ३१३ अन्तिम लाईन कहा। चूड़ियों में ऐसी देरी लगे? है या नहीं? भीखाभाई! कहाँ है? यह तो मुश्किल-मुश्किल से निकाल दिया भाई चन्द्रकान्तभाई ने।

यहाँ तो (कहा कि) भवभय का करनेवाला विकल्प है। व्यवहार, वह भवभय का करनेवाला है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब शैली है न सन्तों की! मार्ग की शैली तेरी ऐसी है, प्रभु! ऐसा कहते हैं। जिसे लोग धर्म माने, उसे यहाँ भवभय का करनेवाला कहते हैं। आहाहा! एक भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का करंड—समुद्र आत्मा है। आहाहा! उसमें डुबकी मारकर—एकाग्र होकर जो आनन्द की दशा प्रगट हो अतीन्द्रिय स्वाद, उस परम आवश्यक क्रियासहित मुनि हैं। ऐसी परम आवश्यक क्रियासहित मुनि हैं और राग जो दुःखरूप है, ऐसी अटवी, शुभभाव असंख्य प्रकार के, अशुभ भी असंख्य—उस अटवी से तो दूरवर्ती होता है। ज्ञान कराया व्यवहार का। है, वह दूरवर्ती उससे। आहाहा! अरे! ऐसा मार्ग इसने सुना भी नहीं, उसके सुख का रास्ता कहाँ है—क्या है, (वह) सुना ही नहीं। आहाहा! जिन्दगी क्या...? यह पैसा लाखों-करोड़ों-अरबों, शरीर सुन्दर हो और इज्जत—कीर्ति, पैसा, पुत्र हो, धूल है, श्मशान है सब। समझ में आया? भगवान आत्मा जागती ज्योति का वन, उसे जिसने देखा नहीं, जाना नहीं, अनुभव किया नहीं... आहाहा! समझ में आया? कहते हैं, वह धर्मी ही नहीं। आहाहा!

संसारजनित प्रबल सुखदुःखरूपी अटवी से दूरवर्ती होता है। इसलिए वह योगी अत्यंत आत्मनिष्ठ अन्तरात्मा है;... क्या कहते हैं? देखो! इस कारण से सन्त-मुनि, सच्चे वीतरागमार्ग के सन्त, वे तो अपना आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा पूर्ण परमात्मा का सहज परम आवश्यक (उससे) सदा सहित होते हैं। ऐसे आत्मा की परम आवश्यक क्रिया, निश्चय क्रिया, स्वाभाविक क्रिया सहित (और) विभाविक क्रिया से दूर वर्तते हैं। भीखाभाई! था यह वहाँ कहीं? गर्म पानी पीने में वहाँ सुना था इतने वर्ष में कहीं? एक गाथा में देखो! एक टीका में देखो! ओहोहो! आत्मा को ऐसे रेलमछेल किया है।

भगवान! तू आत्मा है, पूर्णानन्द का नाथ है। बापू! तेरे सुख के लिये तुझे अन्यत्र नजर करनेयोग्य नहीं। आहाहा! तेरे सुख के लिये—तेरे सुख के लिये राग में नजर करनेयोग्य नहीं, ऐसा कहते हैं। तेरे सुख से तो भरा पड़ा स्वभाव भण्डार है तेरा। आहाहा! समझ में आया?

धूल में सुख है, पैसे में सुख है, पाँच-पचास लाख पैसा हो तो हम सुखी हैं। दुःख के ढ़ेर हैं। धूल भी सुख नहीं। कहाँ सुख है? स्त्री अच्छी हो, रूपवान हो और शरीर सुन्दर हो, सुख है। धूल है। सुख कहाँ आया वहाँ? मूढ़ कहाँ मानकर बैठा है? समझ में आया? वह बहिरात्मा है। आहाहा! अपने स्वभाव की आवश्यक धर्म की सुखरूप क्रिया से भिन्न किसी भी काल में कहीं सुख है, ऐसी कल्पना हो तो मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? इसलिए हे योगी! **अत्यन्त आत्मनिष्ठ...** ऐसे अन्तरात्मा की व्याख्या की। आत्मनिष्ठ-ब्रह्मनिष्ठ। भगवान आनन्द और ज्ञानस्वरूप आत्मा में निष्ठ—उसमें लीन—उसमें टिकनेवाला—उसमें रहनेवाला आत्मनिष्ठ अन्तरात्मा कहने में आता है। आहाहा! एक-एक लाईन भी...! इसलिए यह फिर से वापस लेने का निश्चित हुआ है न! फिर से और अधिक (रस में) भिगोयेगें। आहाहा! एक-एक लाईन में कितना समा दिया है!

अत्यन्त आत्मनिष्ठ... ऐसा। विकल्प में तो बिल्कुल है ही नहीं धर्मात्मा तो। मेरा ऐसा स्वरूप कहते हैं, साधु साध सके? यह तो मानो बड़ी केवली की, वीतराग की बात हो, ऐसा लगे। बापू! वीतराग का वीतराग तू है। यह तेरी बात है। आहाहा! **योगी अत्यन्त आत्मनिष्ठ अन्तरात्मा है।**

जो स्वात्मा से भ्रष्ट हो,... अब बहिरात्मा की जरा व्याख्या करते हैं। उसमें तो दूरवर्ती है, वह बहिर् है, इतना कहा, परन्तु अब स्वात्मा से भ्रष्ट (अर्थात्) भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञान का सागर प्रभु उसकी रुचि और प्रेम से जो दूर है, वह आत्मा के स्वरूप से भ्रष्ट है। समझ में आया? चाहे तो साधु हो बाह्यक्रिया करनेवाला नग्न दिगम्बर, परन्तु जो आत्मा के आनन्द (को छोड़कर) बाह्य में कोई भी विकल्प शुभराग में ठीक है, (ऐसा मानता है), आहाहा! वह स्व-आत्मा से भ्रष्ट है। समझ में आया?

आहाहा! ऐसी शैली ली है। (धर्मी) व्यवहार से दूरवर्ती है और जो कोई व्यवहार के राग में लीनता अथवा प्रेम रखता है, वह निश्चय स्वभाव भगवान आत्मा से तो भ्रष्ट है। कहो, समझ में आया?

वह बहिःतत्त्वनिष्ठ (बाह्यतत्त्व में लीन)... है। उसमें आत्मनिष्ठ कहा था न! यह बहिःतत्त्वनिष्ठ। राग का विकल्प शुभराग हो, परन्तु है विभाव, उसमें निष्ठ है, टिका है, रुचि है, वहाँ लीन है, वह स्वात्मा से भ्रष्ट **बहिरात्मा है।** आहाहा! समझ में आया? अन्तरात्मा और बहिरात्मा की इतनी व्याख्या। आत्मा आनन्द ज्ञायकस्वरूप में लीन है वह अन्तरात्मा और उसके स्वभाव से भिन्न रागादि विकल्प में लीन है, वह बहिरात्मा। समझ में आया? चाहे तो पंच महाव्रत (पालकर) नग्न दिगम्बर साधु हुआ अनन्त बार, (तो भी) राग है, उसमें लीन है। ब्रह्मनिष्ठ नहीं, रागनिष्ठ है। बहिरात्मा है। लो हो गया, विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण ७, मंगलवार, दिनांक - ०९-११-१९७१
गाथा-१५०, प्रवचन-१७३

यह नियमसार, निश्चय परम-आवश्यक अधिकार। नियमसार अर्थात् मोक्ष का... नियमसार अर्थात् मोक्ष का मार्ग। उसमें निश्चय परमावश्यक, वह भी मोक्ष का मार्ग है। १५०वीं गाथा।

अंतरबाहिरजप्पे जो वट्टइ सो हवेइ बहिरप्पा।
जप्पेसु जो ण वट्टइ सो उच्चइ अंतरंगप्पा॥१५०॥

जो बाह्य अन्तर जल्प में वर्ते वही बहिरातमा।
जो जल्प में वर्ते नहिं वह जीव अंतरआतमा॥१५०॥

टीका : यह, बाह्य तथा अन्तर जल्प का निरास (निराकरण, खण्डन) है। बहिर्जल्प (अर्थात्) वचन का बोलना और अन्तर्जल्प (अर्थात्) विकल्प करना। ये दोनों बन्ध के कारण हैं। कहते हैं, बाह्य और अन्तर्जल्प विकल्प का निराकरण... वह चीज़ आत्मा की नहीं। **जो जिनलिंगधारी...** जो जिन का लिंग—द्रव्यलिंग नग्नपना... मुनि की बात है न मुख्य। **लिंगधारी तपोधनाभास...** बहुत बाह्य क्रियाकाण्ड करता है, तो उसको नाम से तपोधनाभास कहने में आया है। **पुण्यकर्म की कांक्षा से...** यहाँ तो वह बात है। अन्दर **स्वाध्याय** करते हैं, **प्रत्याख्यान, स्तवन आदि...** भगवान का करते हैं, वह **बहिर्जल्प** है। उसमें अन्दर उसे आशा शुभभाव की है, वह शुभभाव की कांक्षा है। वह बहिरात्मा है। आहाहा! अन्तरात्मा ज्ञानानन्दस्वभाव उसमें नहीं आता और अकेले शब्दों का विकल्प और अन्तर्जल्प मन का विकल्प, उसमें जो प्रवर्तते हैं, वे आत्मा में नहीं प्रवर्तते। समझ में आया?

स्वाध्याय करे, परन्तु अन्तर में तो शुभराग की इच्छा है। क्योंकि आत्मा राग से और स्वाध्याय की क्रिया से भिन्न है, ऐसा अन्तर दृष्टि में आत्मा तो आया नहीं, विकल्प से, वाणी से आत्मा भिन्न है, ऐसी चीज़ की अन्तर दृष्टि, आश्रय, अनुभव हुआ नहीं तो

उसकी शुभ पुण्यकर्म की ही कांक्षा है। आहाहा! स्वाध्याय करे, प्रत्याख्यान करे, स्तवन करे, वन्दन करे, कायोत्सर्ग इत्यादि करे। बहिर्जल्प (अर्थात्) वाणी से बोलना है। **और अशन**—आहार खाना, **शयन**—सोना, **गमन**—चलना और **स्थिति**—स्थिर रहना, इन कार्यों में **सत्कारादि की प्राप्ति का लोभी वर्तता हुआ...** है। क्योंकि अन्तर का आत्मा का आनन्द का स्वाद तो है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

अन्तरस्वभाव अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु आत्मा है, ऐसी सम्यक्-दृष्टि तो है नहीं और अकेले क्रियाकाण्ड... उसे गहराई में सम्मान का भाव होता ही है, ऐसा कहते हैं। अकेला सम्मान का (भाव) तो पाप है। परन्तु आत्मा का सम्मान नहीं, इसलिए गहरे-गहरे यह बाहर का सम्मान लेने की ऐसी इच्छा है। कैसी क्रियायें मैं करूँ? ऐसी क्रिया करूँ, ऐसी क्रिया करूँ, मैंने अपवास किये, मैंने महीने के अपवास किये, स्वाध्याय करता हूँ और मैं स्थिर रहता हूँ, गमन करता हूँ, कैसा विहार मेरा है? अशन, शयन में सत्कार आदि—सम्मान आदि, अनुकूल दूसरा माने, ऐसी आकांक्षा की प्राप्ति का लोभी वर्तता है। आहाहा! बाह्य क्रियाकाण्डवाले, कहते हैं कि आत्मा के भान बिना, पुण्य की इच्छा से और सत्कारादि सम्मान के कारण से यह क्रिया करते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

अन्तर भगवान आत्मा इस विकल्प—राग और वाणी से तो भिन्न है। ऐसी चीज़ की अन्तर्दृष्टि तो हुई नहीं, सम्यग्दर्शन जो अन्तरंग आत्मा के आश्रय से होनेवाली क्रिया है, उसकी तो खबर नहीं। बात ऐसी है। आहाहा! जगत को कठिन पड़े, बहुत (कठिन) लगे। अपवास करे, नग्न रहे, इन्द्रियों को बाहर से दमन करे, परन्तु सब भाव में शुभभाव की इच्छा है, क्योंकि शुभराग से भिन्न भगवान निर्विकल्प आनन्दस्वरूप आत्मा, ऐसी रुचि और अनुभव तो है नहीं। समझ में आया? अपना भगवान पूर्णानन्द वीतराग निर्विकल्पस्वभावी प्रभु, जिसमें अन्तर्बाह्य विकल्प है ही नहीं। अज्ञानी उस विकल्प में वर्तता है, ऐसा कहते हैं, देखो! '**अंतरबाहिरजप्पे जो वट्टइ**' विकल्प—राग में ही उसका वर्तन है। समझ में आया?

धर्मी राग के विकल्प में वर्तता नहीं। आहाहा! हो विकल्प, परन्तु धर्मी तो अन्तर्मुख दृष्टि के कारण आत्मा में ही वर्तता है। बहुत कठिन! समझ में आया? आत्मा शुद्ध का

भण्डार भगवान आत्मा, अतीन्द्रियरस का रसीला प्रभु आत्मा है। ऐसा अन्तर आत्मा का आनन्द जो वस्तु का स्वरूप है, उसका तो आनन्द आया नहीं और क्रियाकाण्ड में, राग में जुड़ गया। उसमें तो शुभ की कांक्षा है और सत्कार आदि का भाव है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वह **प्राप्ति का लोभी वर्तता** है, लोभी हुआ, **लोभी वर्तता हुआ अन्तर्जल्प में मन को लगाता है...** देखो! राग में लगाता है, जो चीज़ विकल्प है, विभाव है, उसमें वर्तता है। धर्मी राग में नहीं वर्तता। चाहे तो चौथे गुणस्थान में हो, पाँचवें में हो या मुनि हो, वह तो भगवान आत्मा... और स्वाध्याय, प्रत्याख्यान, भगवान का स्तवन करे, लाखों स्तुतियाँ करे। वह तो वाणी है, उसमें क्या आया? और उस ओर का विकल्प है, वह भी राग है। आहाहा! अज्ञानी उस राग में वर्तता है, ऐसा कहते हैं। मार्ग वीतराग का अलौकिक मार्ग है।

कहते हैं... यहाँ आ गया है पहले। लाखों स्तुतियाँ करता है, नहीं? पहले आ गया है। वह क्रिया। बाह्य के क्रियाकाण्ड में उपवास और ऊनोदर, भक्ति और विनय, शास्त्रस्वाध्याय और वांचन और मनन, धर्मकथा कहना—इन सब विकल्प में अज्ञानी वर्तता है। आहाहा! राग में वर्तनेवाला बहिर्बुद्धिवाला है, बहिरात्मा है। समझ में आया? चाहे तो शुभराग हो, परन्तु वह है तो राग। भक्ति की क्रिया, स्वाध्याय की क्रिया, प्रत्याख्यान की क्रिया, स्तवन की क्रिया, वन्दन की क्रिया, प्रतिक्रमण की क्रिया—शुभराग है, वह तो राग में वर्तता है। रागरहित स्वभाव में वर्तता नहीं। आहाहा! जो अनावश्यक है, उसमें वर्तता है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वह आवश्यक नहीं। आहाहा!

आवश्यक तो अन्दर भगवान चिदानन्द प्रभु के सन्मुख होकर अन्दर वर्तना, पर्याय द्रव्यस्वभाव में जोड़ देना, वह क्रिया आवश्यक की क्रिया है। जो निर्विकल्प और वीतरागी पर्याय है, वह आवश्यक क्रिया है। यह तो अनावश्यक राग की क्रिया में जोड़ देता है। पण्डितजी! भारी कठिन काम यह तो भारी! यह तो व्यवहार करे, बेचारा व्रत पाले, अपवास करे, हजारों लोगों में स्वाध्याय और धर्मकथा करे। कहते हैं कि प्रभु! तेरे चैतन्य आनन्द का नाथ, उसकी तुझे खबर नहीं। जिसमें वर्तना चाहिए, रहना चाहिए, उस वस्तु की ही तुझे खबर नहीं। इससे इस क्रियाकाण्ड के शुभराग में वर्तता हुआ वह

बहिरात्मा जीव है। आहाहा! यह क्रियाकाण्ड निरर्थक है भैया! प्रश्न किया था न? निरर्थक नहीं, सार्थक है मिथ्यात्व के लिये। आहाहा! कठिन बातें, भाई!

दो बातें। एक अनावश्यक क्रिया और एक आवश्यक क्रिया। आवश्यक क्रिया तो अन्तर आत्मा आनन्दस्वरूप में एकाकार होकर वर्तना, उसका नाम आवश्यक क्रिया और विकल्प में वर्तना, वह अनावश्यक में जोड़ देता है आत्मा को, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ये **लोभी वर्तता हुआ अन्तर्जल्प में मन को लगाता है,...** शुभराग में मन को जोड़ देता है, आहाहा! वह बहिरात्मा जीव है। राग अपनी चीज़ नहीं, पुण्य की क्रिया का भाव अपना नहीं, उसमें एकाकार होता है, वह बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! कठिन लगे कठोर क्रियाकाण्ड करनेवाले को। हाय... हाय! हम ऐसा-ऐसा करते हैं। परन्तु क्या करता है तू? सुन न! जो करने का है, वह करता नहीं और नहीं करने का करे और उसे करनेयोग्य है, ऐसा माने। पण्डितजी! .... ऐसा मार्ग?

मुमुक्षु : यही हो रहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही हो रहा है। आहाहा!

बहिर्जल्प अर्थात् वाणी आदि, स्वाध्याय, शास्त्र बोलना, वांचना, पर्यटना, बाह्य धर्मकथा कहना, परन्तु वह तो सब बहिर्जल्प है, वाणी में जुड़ा है, वह भी राग है। और खाने-पीने की क्रिया में राग आता है, उसमें जोड़ देना, वह अन्तर्जल्प है। दोनों जल्प अर्थात् विकल्प में वर्तता है, वह बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि है। यह तो अनादि से ऐसे वर्तता है, उसमें नवीन क्या है? समझ में आया? जैसे अशुभभाव में वर्तता है, ऐसे शुभराग में वर्तता है। दोनों बात तो एक ही हुई। आहाहा! राग दाह... 'राग आग दहे...' यह शुभराग राग है, अग्नि... अग्नि है। आहाहा! समझ में आया? भगवान की भक्ति का— स्तुति का भाव, वह भी राग है, पंच महाव्रत का परिणाम, वह भी राग है। ओहोहो! सामायिक, चोविसंथो (आदि) छह प्रकार का बाह्य आवश्यक, वह भी राग है। राग में वर्तता है, वह वीतरागमूर्ति भगवान में नहीं वर्तता। सीधी बात है। मध्यस्थ होकर सत्य क्या है, उसे समझना चाहिए। समझ में आया? हम ऐसा मानते हैं, सारा लोक ऐसा मानता है—उसके साथ सम्बन्ध क्या है? यह तो वीतरागमार्ग है। समझ में आया? आहाहा!

कोई कहते हैं कि द्रव्यलिंगी और भावलिंगी की अभी खबर नहीं पड़ती। ऐसा न कहो कि यह द्रव्यलिंगी है और यह भावलिंगी है।... यहाँ तो स्पष्ट कहते हैं, बाह्यक्रिया में, राग में प्रवर्तता है, वह जिनलिंगी द्रव्यलिंगी, बाह्यलिंगी है। समझ में आया? जिसकी श्रद्धा और उपदेश में भी यह आता है कि यह करना... यह करना, व्रत पालना, भक्ति करना, पूजा करना, स्तुति करना, स्तवन करना, यात्रा करना। ऐसे करना... करना... करना शुभराग का, वह तो आता है। वह उपदेश मिथ्या उपदेश है। समझ में आया? मार्ग सत्य का अलौकिक मार्ग है। सर्वज्ञ परमेश्वर में यह मार्ग है, दूसरे में है नहीं। (जैन में) जन्मे परन्तु इस चीज़ का पता नहीं। हम दिगम्बर हैं, वह कहे हम श्वेताम्बर हैं, वह कहे हम स्थानकवासी हैं।

यहाँ तो कहते हैं कि अपने-अपने शास्त्र की स्वाध्याय, प्रत्याख्यान, स्तवनादि करे और हिलने-चलने की क्रिया में बराबर ईर्या (समिति) से चले, देखे ऐसे, ऐसा कहते हैं। उसमें क्या है? अन्तर्दृष्टि तो है नहीं, उसकी बाह्य दृष्टि में पुण्य की कांक्षा, सत्कार की इच्छा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **अन्तर्जल्प में मन को लगाता है,...** तब कहे, समकिती को क्या ऐसा विकल्प नहीं आता? विकल्परहित हो गया है? आता है, परन्तु उसमें ज्ञानी का—धर्मी का वर्तन नहीं है। उसका जाननेवाला है। समझ में आया? वह वर्तता है आत्मा ज्ञानानन्दस्वभाव चैतन्यप्रभु आनन्द के महानिधान में। धर्मी का वर्तन—रहना तो वहाँ है। समझ में आया? राग आता है, परन्तु उसमें धर्मी वर्तता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! दूसरी भाषा से ऐसा कहा कि अकेला व्यवहार क्रियाकाण्ड में, राग में वर्तता है, वह मिथ्यादृष्टि जीव बहिरात्मा है।

तब कहे, धर्मी को ऐसा व्यवहार का विकल्प बहिर् का आता है या नहीं? आओ, परन्तु उसमें वर्तन नहीं, उसमें रहता नहीं। रहता है राग से भिन्न ज्ञायकस्वरूप में—उसमें रहता है। पोपटभाई! भारी कठिन काम। आहाहा! ऐसा मार्ग! यह तो बहुत कठिन एल.एल.बी. जैसा है, ऐसा कहे। बापू! अभी तो यह एकड़ा की बात है, भाई! अन्तर भगवान आत्मा अपना निजाधीन... निजाधीन—निजस्वरूप आधीन निधान, उसका आश्रय न लेकर, जिसने पुण्य की क्रिया का—शुभ का आश्रय लिया और उसमें वर्तन करता है, यह तो अनादि काल की बहिरात्मबुद्धि है। यह कोई नयी चीज़ नहीं है। समझ में आया?

निज आत्मा के ध्यान में परायण वर्तता हुआ... देखो! '**जप्पेसु जो ण वट्टइ**' ऐसा है न? '**ण वट्टइ**' का अर्थ अस्ति करते हैं। निज आत्मा के ध्यान में अर्थात् अन्तर ज्ञानानन्द मैं हूँ, ज्ञान का पुंज मैं हूँ, ऐसी चीज़ में जिसको वर्तन है, दृष्टि है, एकाग्रता है, वह तो निज आत्मा के ध्यान में ही परायण है। अपनी दृष्टि वहाँ है और वहीं उसकी तत्परता है। धर्मी की तत्परता सतत—निरन्तर आत्मा के प्रति है। आहाहा! कठिन काम भाई! लोग शान्ति से... ऐसे स्पष्ट शास्त्र पड़े हैं। यह कहीं नये नहीं हैं। सन्तों ने पहले से तैयार किये हैं हजार वर्षों से। दो हजार वर्ष पहले से तो कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। अनन्त काल से जो भाव (भगवान) कहते हैं, वह कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं और उसकी (-गाथा की) टीका करनेवाले ९०० वर्ष पहले हुए। समझ में आया?

न्याय से भी बैठता है न? कि अपना सच्चिदानन्द प्रभु जिसमें पुण्य का विकल्प भी नहीं, ऐसी चीज़ में दृष्टि करके वर्तना, वही धार्मिक क्रिया और धर्मात्मा है। उसको रागादि आता है व्यवहार, परन्तु व्यवहार में वर्तन नहीं। धर्मी का वर्तन निश्चय अपने स्वभाव में है। समझ में आया? धर्मी को भी व्यवहार होता तो है, ऐसा कहने में आता है। वास्तव में तो उसे व्यवहार ही नहीं। परन्तु भाषा क्या करे? समझ में आया? दो नय का विषय है। अपने आ गया है। सम्यग्दृष्टि को ही निश्चय और व्यवहार आवश्यक है। आ गया है न? कल आया था। चौथे गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक निश्चय-व्यवहार दोनों हैं। हो, परन्तु वह मेरा है और उसमें वर्तन करता हूँ—ऐसी दृष्टि नहीं। वह तो जाननेवाला है। आहाहा! समझ में आया? मार्ग की अपूर्वता, अलौकिकता है भाई! आहाहा! साधारण कायर का काम नहीं वहाँ, ऐसा कहते हैं।

जिसकी स्वभाव पर तत्परता हुई है, वहाँ जिसने दृष्टि की है—जमी है। भाई! कल शब्द बोलते थे। उसके घर का शब्द—उसकी घर की भाषा में बोलते हैं, हों! 'जमी है' ऐसा बोले थे। एक-दो बार बोले थे। नहीं? पहले भी बोले थे। उसका वाक्य लगता है। व्यक्तिगत बात करते हैं न। 'जमी है।' कल खबर है? परसों रविवार। पहले भी बोले थे चन्दुभाई! उसे ऐसा लगता है। तब एक बार बोले थे। जमी है। इसका अर्थ? चन्दुभाई बोले थे। यहाँ तो कोई भी एक वाक्य बोले तो ख्याल तो रह जाये न कि

यह ठीक... यह ठीक... यह... 'समझ में आया' ऐसा जैसे यहाँ कहा जाता है न, यह एक वाक्य होता है उस प्रकार का। उसे 'जमी है' ऐसा कहा। आहाहा!

कहते हैं कि जिस **निज आत्मा के...** वापस ऐसा स्पष्टीकरण किया। भगवान परमात्मा का आत्मा में ध्यान करना, वह तो विकल्प है। वह तो परद्रव्य है और परद्रव्यानुसारी वृत्ति तो रागवाली है। आहाहा! समझ में आया? **निज आत्मा के ध्यान में...** भगवान निज आत्मा तो चिदानन्द ध्रुव है, उसमें ध्यान अर्थात् पर्याय—उस ओर की एकाग्रता... समझ में आया? निज आत्मा, वह द्रव्यस्वभाव हुआ; ध्यान में लीनता, वह एकाग्रता। उसमें **परायण वर्तता हुआ...** अपने स्वभाव सन्मुख में ही जिसकी तत्परता है, ऐसे वर्तते हुए... आहाहा! विकल्प में वर्तनेवाला मिथ्यादृष्टि है, अपने द्रव्यस्वभाव में वर्तनेवाला सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा है। समझ में आया? धर्मी को वाणी निकलती है, उपदेश होता है, विकल्प होता है, भक्ति में भी विकल्प होता है, परन्तु धर्मी की तत्परता स्वभाव सन्मुख में है। राग सन्मुख में तत्परता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

ऐसी पहली सच्ची समझ करना, वह करना (—क्रिया) नहीं है? कुछ करना है। क्या करना है? सच्ची समझण (अर्थात्) ज्ञान में ऐसी बात रखना, यह भी क्रिया करना नहीं है? क्या बाह्यक्रिया, रागक्रिया, वही क्रिया करना है? आहाहा! राग की पहले समझण तो कर कि ऐसा है। ऐसा ज्ञान में जम-जम जाये बात। ओहो! स्व के आश्रय से वर्तना और स्व के अन्दर में वर्तना, वही धर्म है और राग में वर्तना, वह धर्म नहीं। परन्तु अकेला राग में वर्तता है, वह मिथ्यादृष्टि तो अधर्म में वर्तता है। समझ में आया? और धर्मी निजात्मा में तत्पर है। फिर भी उसको विकल्प आता है, व्यवहार होता है, परन्तु वह व्यवहार में तत्पर नहीं, उससे पृथक् रहकर उसको जानता है। आहाहा!

अभी मार्ग की पद्धति की खबर नहीं और एकदम हो गये मुनि और एकदम श्रावक और बारह व्रतधारी, प्रतिमाधारी, ग्यारह प्रतिमा। हमारे रामजीभाई कहते हैं कि पन्द्रह प्रतिमा हो तो पन्द्रह ले लेवें। कहाँ यहाँ भान है अन्दर? पन्द्रह हो तो पन्द्रह लाओ न। किसे कहना प्रतिमा? ग्यारहवाँ क्या? बीस प्रतिमा लें, लाओ। आहाहा! पोपटभाई! आहाहा! भाई! इस चीज़ का—वस्तु का माप क्या है और विकल्प की मर्यादा केटली—कितनी है, खबर नहीं। शुभविकल्प की मर्यादा तो पुण्य जितनी है। उसमें वर्तना

बहिरात्म(पना) है। आहाहा! यह अन्तरभाव के अतिरिक्त, अन्तरंग के अतिरिक्त बहिरंगभाव है वह। 'अन्तरंग' यहाँ आयेगा। यहाँ कहीं है आगे। अन्तरंग-अन्तरंग शब्द है, अभ्यन्तर अंग। यह अन्तरात्मा है न। पश्चात् २५९ में। २५९ कलश में। **अभ्यन्तर अंग प्रगट किया है।** आहाहा! विकल्प जो है, वह तो बहिरंग है; अपना निज अंग नहीं। आहाहा! २५९ कलश... कलश। इसमें ही आयेगा। भारी गजब टीका वह भी टीका! थोड़े शब्द में सारा—गागर में सागर भर—दिया है।

कहते हैं, अरे! जो निज आत्मा के ध्यान में परायण है, तो पहली चीज़ क्या है, ऐसा अनुभव तो हुआ है। अब अनुभव होकर यह चीज़ 'आत्मा है' उसमें एकाकार (होने) की तत्परता है, वह **निरवशेषरूप से (सम्पूर्णरूप से) अन्तर्मुख रहकर...** समस्तरूप से वे अन्तर्मुख में ही हैं, ऐसा कहते हैं। बहिर्मुख का विकल्प होने पर भी, धर्मात्मा मुनि तो निरवशेष सम्पूर्णरूप से अन्तर्मुख रहकर... आहाहा! समझ में आया? थोड़ा बाहर में रहे, थोड़ा अन्तर्मुख में रहे—ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। निरवशेष—अवशेष / बाकी रखे बिना। अन्तर्मुख रहकर... यह कोई कहे... आहाहा! ज्ञानस्वभाव में **अन्तर्मुख रहकर (परम तपोधन)...** उसमें तपोधन कहा था, परन्तु परम तपोधन नहीं था और द्रव्यलिंगधारी—जिनलिंगधारी तपोधनाभास, ऐसा कहा।

अकेले क्रियाकाण्ड के राग में वर्तता है और रागरहित अपने चिदानन्द भगवान में दृष्टि—अनुभव नहीं, वह तो तपोधनाभास है। और यहाँ परमतपोधन (कहा)। जो भगवान आत्मा के सन्मुख होकर लीनता में तत्पर है, वह सर्वथा अन्तर्मुख है। वह परमतपोधन... लिखा है अन्दर। पीछे है अवश्य। **इसीलिए परम तपोधन साक्षात् अन्तरात्मा है।** अन्तिम है न, इसलिए वहाँ लिखा है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा भी निश्चय का स्वरूप? यह निश्चय तो अभी हो नहीं सकता, ऐसा (अज्ञानी) कहते हैं, लो। अभी तो व्यवहार ही होता है। व्यवहार ही होता है, ऐसा करके उसका व्यवहार है, यही व्यवहार, बस। निश्चय अभी नहीं होता, निश्चय आठवें गुणस्थान में होता है या सातवें में होता है। वह किसी समय कुछ बोल डाले... खबर नहीं। यहाँ तो स्वद्रव्य के आश्रय से निश्चय चौथे से है, सुन न! समझ में आया?

स्व-चैतन्य में लीनता और एकता तो चौथे से है। और विकल्प जो है उसमें,

व्यवहार हो, (परन्तु) उसमें वर्तते नहीं। आहाहा! दिखता है न कि वर्तते हैं? कि वर्तते नहीं। उसको जानने में वर्तते हैं। व्यवहार का ज्ञान, ज्ञान में वर्तते हैं। आहाहा! व्यवहार का जो ज्ञान है अपना, उसमें वर्तते हैं; व्यवहार में नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का। कायर को तो सुनकर कंपकपी उठे, आ...हा... यह सब निषेध हो जाता है। महाराज! हम मुनि हैं, मुश्किल से द्रव्यलिंग धारते हैं, कठोर तपस्या करते हैं, पंच महाव्रत पालते हैं, २८ मूलगुण पालते हैं और कहे, तुम द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि। आहाहा! तब कहे, खबर कैसे पड़े? कहते हैं न यह। क्या कहा? अन्तर की दृष्टि का जिसे अभाव है, चिदानन्द भगवान मैं हूँ, ऐसी दृष्टि, ज्ञान और स्थिरता का तो अभाव है। इसलिए अकेले क्रियाकाण्ड में वर्तनेवाले बहिरात्मा तपोधन... परम नहीं, परन्तु तपोधन कहते हैं, बेचारे इतनी क्रिया करते हैं तो। समझ में आया?

यहाँ तो नग्न हो उसे द्रव्यलिंगी लिया है। वस्त्रवाले तो द्रव्यलिंग भी नहीं। समझ में आया? वस्त्रसहित जो मुनि माने, वह तो द्रव्यलिंग भी नहीं। द्रव्यलिंग उसे होता नहीं, भगवान ऐसा कहते हैं। द्रव्यलिंग तो, जिसका नग्न(वेश) है, पंच महाव्रत है, २८ मूलगुण है, वह द्रव्यलिंग है। कुछ है नहीं। जो वस्त्र-पात्र सहित (अपने को) मुनि मानते हैं, वह द्रव्यलिंगी भी नहीं, भावलिंगी भी नहीं; कुलिंगी है। यह मार्ग है, भाई! इसीलिए तो 'जिनलिंगधारी' लिया है। जिनलिंगधारी... जिन अर्थात् वीतराग की जैसी नग्न मुद्रा थी, ऐसा नग्नपना हुआ है। समझ में आया? और वस्त्रसहित है, वह जिनलिंग भी नहीं। मार्ग ऐसा है, भाई! आहाहा! समझ में आया? नियमसार तो गजब काम करता है, हों! आहाहा! परमात्मा खड़ा करता है ऐसे अन्दर से। ऐसा प्रभु तू है। तेरी चीज़ ऐसी निर्विकल्प है। लगाव वहाँ लीनता। आहाहा!

यह वर्तन तेरा और यह आवश्यक क्रिया तेरी। बाकी व्यवहार का विकल्प, वह आवश्यक क्रिया तेरी नहीं। तेरी नहीं, उसमें अकेले वर्तना, वह बहिरात्मा है। और तेरी नहीं, (परन्तु) हो, उसके जानने में वर्तना, (वह) निश्चय आवश्यक क्रियावाला अभ्यन्तर धर्मात्मा है। आहाहा! **(परम तपोधन) प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त विकल्पजालों में कभी भी नहीं वर्तता,...** देखो! भाषा। परम तपोधन—सन्त-मुनि सच्चे, वे कभी शुभ और अशुभ विकल्प जाल में वर्तते ही नहीं। तब यह पंच महाव्रतादि आता है न? आता

है, परन्तु उसमें वर्तते नहीं। समझ में आया? आहाहा! गजब बात है! विकल्प-राग के जाल में वर्तना, उसका अर्थ कि उसमें एकाकार होना, तो स्वभाव का एकाकार (पना) छूट गया, स्वभाव में एकाकार है नहीं, आहाहा! बहुत मार्ग... कायर को, पूर्व के आग्रहीवाले को तो ऐसा लगे... आहाहा! वापस सोनगढ़ के नाम से कहते थे वहाँ। सोनगढ़ ऐसा कहता है। यह पुस्तक सोनगढ़ की है या भगवान की है? जेठाभाई!

मुमुक्षु : यह प्रकाश नहीं आया था महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अलग। परन्तु भगवान का है या नहीं? सन्तों का (कहा) अनादि का मार्ग यह है।

मुमुक्षु : सन्त तो जैसा मार्ग है, वैसा प्रकाशित करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो ऐसा है—ऐसा ही है। यह तो स्वकाल में बतलाते हैं। इससे कहीं सोनगढ़ का हो गया यह? और भगवान का दूसरा है? आहाहा!

सच्चा तपोधन अर्थात् मुनि उसको कहते हैं कि जो अपना शुद्ध द्रव्यस्वभाव, उसके ध्यान में लीनता—तत्परता ही है और शुभ-अशुभ विकल्प के भाव हैं, उसमें तत्पर नहीं, कभी भी वर्तता नहीं। एक समय भी सच्चे सन्त शुभराग में भी वर्तते नहीं। आहाहा! तब कहे, उसको शुभराग आता नहीं? उसको नहीं आता। राग का (भाव) आता है, (परन्तु) राग में वर्तते नहीं। आहाहा! अपने सन्मुख का अपना स्वपरप्रकाशक ज्ञान, उसमें व्यवहार जानने में आया है तो ज्ञान में वर्तते हैं, राग में वर्तते नहीं। आहाहा! वह तो परज्ञेय है। परज्ञेय में वर्तना या स्वज्ञेय में वर्तना? सुमनभाई! बहुत कठिन है, हों! वह तुम्हारे तेल की अपेक्षा यह सूक्ष्म है। तेल में तो... आहाहा! ऐ नटु! यह दुकान में वहाँ पालेज में करते थे। दो-दो लाख पैदा करे बारह महीने में, लोगों को ऐसा हो जाये कि आहाहा... बड़े मानो होशियार के पुत्र हों। होशियार, लो न पुत्र नहीं। उसके बाप तो समझने जैसे थे। यह तो उससे वह... है। आहाहा!

अर्थात् कि कुछ कमाने की बुद्धि से कमाते हैं? यह तो पूर्व के पुण्य के परमाणु पड़े हों तो संयोग ऐसा हो जाय। दो लाख-पाँच लाख-दस लाख। धूल में है नहीं उसमें। तेरी पूँजी कहाँ है? वह तो जड़ की है। तेरी तो राग भी पूँजी नहीं, यहाँ तो कहते

हैं। शुभराग जो आता है, वह भी तेरी पूँजी नहीं। तेरी नहीं, उसमें वर्तना, वह तो मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। ऐसा है? पण्डितजी! उसमें ऐसा है? आहाहा! प्रशस्त और अप्रशस्त, शुभ और अशुभ... नहीं कहा? शुभराग है न, प्रशस्त राग है न। प्रशस्त राग है न! परन्तु प्रशस्त राग है या अराग है? वह शुभराग और अशुभराग, वह तो विकल्पजाल है। जैसे मकड़ी लार निकालकर जाल में घुस जाती है। मकड़ी होती है न? करोळिया क्या कहते हैं? (मकड़ी)। मकड़ी होती है न! लार... लार निकालकर उसमें घुस जाती है। इसी प्रकार यह अज्ञानभाव में अपने स्वभाव के भान बिना विकल्प का जाल उत्पन्न करके घुस जाता है। समझ में आया?

ऐसा निर्मलानन्द मार्ग प्रभु का अर्थात् कि आत्मा का। आत्मा का ऐसा मार्ग सुनने मिले नहीं, तो कब उसका प्रयोग करके अपनी चीज़ में जाये? समझ में आया? बाहर की हो-हा... हो-हा। .... यह बाहर की बातें सब देश की... देश के लिये ऐसा करो, देश की सेवा करो। धूल भी सेवा कर नहीं सकता, सुन तो सही! देश की सेवावाले ऐसे होते हैं, देश को अर्पण करनेवाले कितने निकले! कौन निकले? देश तो परचीज़ है। परचीज़ की सेवा कौन करे? ऐई! गजब है। यहाँ (कहा कि) तो राग की सेवा करनेवाला मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! पर की सेवा कर सकता हूँ, ऐसी मान्यता मिथ्यादृष्टि की है। समझ में आया? जगत से भारी उल्टा, हों! सुलटा, वह उल्टे से उल्टा ही होगा न! आहाहा! वह तो सेवा करते हैं, तब कहे, मिथ्यात्व सेवन करता है। पर की सेवा करूँ, (ऐसी) तेरी मान्यता मिथ्यात्व है। सेवा कौन करे? यहाँ तो, राग की सेवा करे, वह मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

धर्मी तो विकल्पजाल में कभी भी नहीं वर्तता। आहाहा! अपना ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव, शुद्ध आनन्दघन में दृष्टि है, वहीं रुचि जम गयी है, तो उसमें ही वर्तते हैं। विकल्प होने पर भी, कभी भी एक सेकेण्ड—समय भी राग में ज्ञानी वर्तते नहीं। आहाहा! समझ में आया? राग तो दसवें गुणस्थान तक रहता है। राग होता है न दसवें गुणस्थान तक? वर्तते नहीं? समकित हुआ, त्यागी, मुनि हुआ, वे भी नहीं वर्तते? नहीं वर्तते, सुन तो सही! समझ में आया? अब यह दृष्टान्त देते हैं। दसवें गुणस्थान तक राग

है। राग में न वर्तते हों तो राग होगा कैसे? अरे, सुन न! ऐ चेतनजी! कहा था। क्या हो? आहाहा! भाई! राग का होना दूसरी चीज़ है और राग में वर्तना दूसरी चीज़ है। समझ में आया? धर्मी को राग होता है, ऐसा कहना भी व्यवहार है। धर्मी को तो निर्मल पर्याय होती है। आहाहा! 'आत्मा में' कहा न? आत्मा के ध्यान में परायण वर्तता है, वह तो उसकी निर्मलदशा ही वर्तती है। आहाहा!

मुनि—सच्चा सन्तु शुभ-अशुभ विकल्पजाल में कभी भी, ऐसा। कभी भी—एक समय भी... आहाहा! छद्मस्थ मुनि हैं, अभी छठवें-सातवें गुणस्थान में है, अरे! चौथे में है तो भी राग में वर्तते नहीं। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दृष्टि भी व्यवहार राग का जाननेवाला रहता है। करनेवाला और 'हमारा है' ऐसी मान्यता उसकी है नहीं। भगवान! तेरा मार्ग ऐसा है, तेरी चीज़ ही ऐसी है। आहाहा! पामर होकर पड़ा है, यह शरीर मेरा, वाणी मेरी, धूल मेरी। आहाहा! आहाहा! एक समय में शरीर के रजकण बदल जाये... आहाहा! पूनमभाई को देखो न! केस किया है भाई! उसकी ... केस किया है। अखबार में आया है। पूनमचन्द सेठ। ... खोपड़ी टूट गयी सब। दो पहिये (घूम) गये ऊपर। बेचारा बचाने के लिये भागता था उसे। पीछे पुलिस और टैक्सी। यह चपेट में... यह तो उस समय में ऐसा ही बनना (था), उसमें फेरफार तीन काल में होता नहीं। बदलती नहीं। तेरी दृष्टि पर के ऊपर है, वह उठा दे, छोड़ दे। राग और पर की क्रिया ऐसी हुई—फैसी हुई। दृष्टि के विषय में राग भी नहीं और दृष्टि के विषय में बाहर की क्रिया भी नहीं। आहा! अरे! दृष्टि के विषय में अपनी पर्याय भी नहीं।

ऐसी दृष्टि तो द्रव्य के ऊपर लगी है तो तत्परता वहीं है। तपोधन—मुनि कभी भी नहीं वर्तते। यह क्या और? ऐसा क्या? मुनि को राग होता ही नहीं? वीतराग हो गये? वीतरागी ही हैं। हो गये क्या? आत्मा वीतरागी है और जहाँ दृष्टि हुई तो आत्मा पर्याय में वीतरागी हो गया। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि भी वीतरागी है। आहाहा! रागवाला, आस्रववाला आत्मा मानता है सम्यग्दृष्टि? या राग और आस्रव रहित मैं हूँ, ऐसा आत्मा मानता है? गुणुभाई! बहुत कठिन काम है, हों! अलौकिक बात है। आहाहा! गजब परन्तु, सन्तों ने परमात्मा के धर्म को गागर में सागर समाहित कर दिया है! आहाहा! ऐसे

शब्द, यह कथनी वह जैनदर्शन—दिगम्बरदर्शन के अतिरिक्त कहीं है नहीं। समझ में आया? यह वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। क्या हो? पक्ष से बोले कि हमारा पक्ष तो उजला। पक्ष कहाँ है? यह तो वस्तुस्वरूप है। यह तो स्वरूप ऐसा है। पक्ष किसका करना? आहाहा!

नहीं वर्तता, इसीलिए... भाषा देखो! धर्मी जीव मुनि—सच्चे सन्त शुभविकल्प में नहीं वर्तते, इस कारण से **परम तपोधन साक्षात् अन्तरात्मा है।** कहो, समझ में आया? आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप परमात्मा में जिसकी तत्परता है और वर्तन-वर्तना भी उसमें है, वे मुनि विकल्प का भाव होने पर भी धर्मात्मा उसमें वर्तते नहीं, वही परम तपोधन **साक्षात् अन्तरात्मा है।** अन्तरात्मा तो है ही, परन्तु यह तो पर्याय में साक्षात् अन्तरात्मा हो गया। यह मुनिपना है। आहाहा! जैनदर्शन का मुनिपना, वह तो वस्तु का स्वरूप है। समझ में आया?

जहाँ छठवें गुणस्थान की भूमिका उत्पन्न हुई, आहाहा! वहाँ तो वस्त्र-पात्र लेने का विकल्प तो होता नहीं, परन्तु पंच महाव्रतादि का विकल्प हो, उसमें वर्तते नहीं। समझ में आया? वह मुनि है, परमात्मा का सन्त भगत है। वह तो कहते हैं कि अपने निजानन्दस्वभाव में ही तत्पर हैं। वहीं वे हैं। राग है, उसमें कभी नहीं वर्तते। ऐसी बात! है नहीं राग? है तो सारी दुनिया है। क्या है? सर्व द्रव्य पड़े हैं। द्रव्य है तो क्या परद्रव्य में वर्तता है आत्मा? पण्डितजी! आहाहा! वास्तविक यह है। आहाहा! पुण्य-शुभभाव में कभी भी नहीं वर्तता। कभी किसी काल में भी, ऐसा। मुनि इसको कहते हैं कि शुभराग में कभी भी नहीं वर्तता। आहाहा! एक समय भी वर्तता नहीं। यह वह कहीं बात! यह तो बात नहीं, वस्तु ऐसी है।

इसीलिये परमतपोधन... इस कारण से वह महासन्त, जिसे अन्तरदशा ऐसी प्रगट हुई। महातपरूपी धन है उसके पास, लक्ष्मी है। यह और तकरार उठी है न। साधु को गरीब कहा कैलाशचन्दजी ने। यह तकरार उठी। गरीब तो अपेक्षा से कहा है उसे। गरीब अर्थात् उनके पास कुछ बाहर की लक्ष्मी नहीं, इस अपेक्षा से कहा है। है तपोधन। लो, यह गरीब के सामने आया और। परन्तु उनका कहने का आशय दूसरा है, ऐसा।

'गरीब' कहकर उन्हें कुछ भी नहीं। जिन्हें किंचन—(कुछ भी) नहीं, इस अपेक्षा से कहा। वहाँ उसका तकरार उठा। यहाँ तो कहते हैं कि बाह्य कुछ नहीं, इस अपेक्षा से भले गरीब कहो, वस्तुरूप से तपोधन मुनि हैं। आनन्द की लहर उठी है अन्दर में। वीतराग की धारा उठी है अन्दर में, ऐसी लक्ष्मी उनके पास है। समझ में आया?

बाहर में वस्त्र का टुकड़ा भी नहीं और नग्न शरीर भी मेरा नहीं। आहाहा! वह तो जड़ का है। और शुभराग भी मेरा नहीं, वह तो विभाव है। यह (मुनि) है। सच्चा सन्त ही सच्चा पूंजीपति है। अपनी लक्ष्मी का धनी वह है। समझ में आया? यह सब धूल के लक्ष्मीपति तो भिखारी हैं। समझ में आया? ये मुनि तो बादशाह है। अपनी तपरूपी लक्ष्मी अन्दर प्रगट हुई, स्वनिधान खुल गया... स्वनिधान खुल गया, प्रवाह उसमें से आया, तपोधन है। इच्छा निरोधरूपी, अमृतरूपी तपरूपी धन जिसको प्रगट हुआ है, अमृतरूपी धन प्रगट हुआ है—ऐसी धारा... यह साक्षात् अन्तरात्मा है। लो। समझ में आया? साक्षात् अन्तरात्मा। अन्तरस्वरूप तो है ही, अन्तरात्मा तो है ही, वस्तुरूप से अन्तरस्वरूप, परन्तु परिणति में ऐसा (अमृत) प्रगट हुआ तो साक्षात् अन्तरात्मा है। **इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में ९०वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:—** लो, अमृतचन्द्राचार्य का ९०वाँ श्लोक कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण ९, गुरुवार, दिनांक - ११-११-१९७१
श्लोक-२५९, गाथा-१५१, प्रवचन-१७४

नियमसार, निश्चय परम-आवश्यक अधिकार। इसमें अमृतचन्द्राचार्य का कलश है। **इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में ९०वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:—**

स्वेच्छासमुच्छलदनल्पविकल्पजाला-
मेवं व्यतीत्य महतीं नय-पक्ष-कक्षाम्।
अन्तर्बहिः सम-रसैक-रस-स्वभावं,
स्वं भाव-मेक-मुपयात्यनुभूति-मात्रम्॥

कहते हैं कि निश्चय परम-आवश्यक कब होता है? **श्लोकार्थः इस प्रकार जिसमें बहु विकल्पों के जाल अपने आप उठते हैं,...** वस्तु है, वह शुद्ध चैतन्य आनन्दघन अभेद वस्तु एकरूप आत्मा है। उसमें अनेक प्रकारों के जाल, निश्चय से ऐसा और व्यवहार से ऐसा—ऐसे जो विकल्प के जाल उठते हैं, कहते हैं कि वह तो अपने आप उठते हैं। वह स्वभाव में नहीं। आत्मा पूर्णानन्द है, शुद्ध चैतन्यघन अबन्धस्वभाव है, ऐसा भी एक निश्चय का विकल्प—राग और पर्याय में राग है अथवा एक समय का अंश है, ऐसा भी एक राग—विकल्प स्वरूप में नहीं, तथापि ऐसे विकल्प अर्थात् राग का जाल... आहाहा! अपने आप उठता है। **ऐसी विशाल नयपक्ष कक्षा को (नयपक्ष की भूमि को)...** वह नयपक्ष की भूमि है। दया-दान के परिणाम तो एक ओर रहे, परन्तु ऐसा भगवान आत्मा जो वस्तुरूप से है, उसमें नय—व्यवहार-निश्चय के विकल्प की जो वृत्तियाँ उठती हैं, वह एक विकार की भूमि है। समझ में आया?

उसे **लाँघकर...** चैतन्यस्वरूप आनन्दस्वरूप अकेला ज्ञान का कन्द प्रभु, उसमें जो इस प्रकार की नय की भूमिकाओं में विकल्प जो उठते हैं, वह राग की भूमि है, वह चैतन्य की भूमि है नहीं। आहाहा! कठिन बात। समझ में आया? वह आत्मा की भूमि,

उस नयपक्षकक्षा को—भूमि को उल्लंघ कर **(तत्त्ववेदी) भीतर और बाहर...** वह तत्त्व अर्थात् आनन्दस्वरूप भगवान को वेदनेवाला—अनुभव करनेवाला—उसका स्वाद लेनेवाला ऐसा जीव अन्दर और बाहर **समतारसरूपी एक रस ही जिसका स्वभाव है,...** अनुभूति... आत्मा ज्ञायक और आनन्द के सन्मुख होकर, विकल्प के जाल को उल्लंघकर, आनन्द का वेदन करनेवाले धर्मी जीव को बाहर और अन्दर समतारस है। अनुभूति की दशा में समता है और बाहर भी शान्तपना दिखता है। समझ में आया? इसका नाम निश्चय परम-आवश्यक कहा जाता है। समझ में आया?

देह, यह तो मिट्टी कहीं रह गयी, यह तो जड़ है। शरीर वह जड़, कर्म जड़, उसके पीछे होनेवाले स्वभाव के भेद के विकल्प, वह भी निश्चय से तो अचेतन है, चैतन्य की जाति ही नहीं। समझ में आया? जिसे आवश्यक का—हित का कार्य करना है, उसे तो नयपक्ष की भूमिका को भी उल्लंघकर अन्तर भगवान के साथ भेंट करना। आहाहा! ऐसा जो अनुभूतिभूत चैतन्य द्रव्यस्वभाव, उसे अनुसरकर होनेवाली अनुभूति... विकल्प, वह तो निमित्त पर को अनुसरकर भेद उठते हैं, ऐसा जो भगवान पूर्णानन्द और अकेला ज्ञायक का पिण्ड प्रभु, उसे अनुसरकर (होनेवाली) अनुभूति, वह बाह्य और अभ्यन्तर अनुभूति समतारसमय है। वह अनुभूति ऐसी है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भारी बातें बड़ी। यह तो धर्म की पहली दशा की बात चलती है।

धर्म कहीं, यह व्रत पालना और अपवास करना, वह कहीं धर्म है? वह धर्म नहीं, वह तो विकल्प—राग है, वह बात तो कहीं छोड़ दी। परन्तु स्वयं जो वस्तु है, उसके द्रव्य और पर्याय के अथवा गुणभेद के निश्चय-व्यवहार के विकल्प उठें, वह भी आत्मा की निजभूमि—निज अवस्था वह नहीं। समझ में आया? वह धर्मदशा नहीं, ऐसा कहते हैं। मैं एक त्रिकाल परमात्मा हूँ, ऐसा भी एक राग का पक्ष—नय की भूमिका है, वह भी आत्मा की भूमिका और आत्मपर्याय नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? मार्ग तो अलौकिक और अपूर्व है। उसे उल्लंघकर जो बाहर समतारूप और अन्दर समता... अनुभूति की अन्दर की दशा में आनन्द है, शान्ति है, समता है, बाहर में भी समता दिखती है, ऐसा कहते हैं।

समतारसरूपी एक रस ही जिसका स्वभाव है,... वह विकल्पों का भेद है, वह

उसका स्वभाव नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा सुन्दर चैतन्य-आनन्द का धाम, उसे अनुसरकर अनुभूति (अर्थात्) ज्ञान की, आनन्द की दशा का अनुभव, उसे यहाँ परम-आवश्यक कार्य और क्रिया कहा जाता है। आहाहा! भीखाभाई! ऐसा मार्ग वीतराग गजब... कान में पड़ा न हो, उसे (ऐसा लगता है कि) क्या कहते हैं आत्मा? मार्ग तो ऐसा है, भाई! प्राणभाई! अन्दर में पहुँचना भारी कठिन... समझ में आया? कहते हैं कि सब बाहर छोड़ा, ऐसा माना, परन्तु अन्दर में विकल्प के जाल छोड़े नहीं तब तक वास्तव में 'पर छोड़ा' ऐसा असद्भूत व्यवहार भी उसे लागू नहीं पड़ता। आहाहा! समझ में आया?

यह तो ज्ञान और आनन्द का पुंज-ढ़ेर आत्मा है। उसमें ऐसे विकल्प का जाल, वह चैतन्य में नहीं। वास्तव में तो उसकी दशा में भी वह नहीं। वह बाहर के उठे हुए भाव हैं। समझ में आया? उसकी दशा तो उसे कहते हैं कि जो विकल्प से उल्लंघकर अखण्ड अभेद चैतन्य को स्पर्शती जो दशा है, उसे उसकी अवस्था कहते हैं। भीखाभाई! ऐसा मार्ग है। लोगों को ऐसा लगे कि यह तो अकेला निश्चय-निश्चय... परन्तु बापू! निश्चय अर्थात् सत्य। आहाहा! परम सत्य का स्वरूप तो ऐसा है। समझ में आया?

जिसमें बहुत विकल्प का जाल... आहाहा! मकड़ी लार निकालकर... करोळियो समझते हैं? मकड़ी। भगवान आत्मा अपना आश्रय छोड़कर—अपना आश्रय छोड़कर उस विकल्प के जाल में फँस गया है, कहते हैं। समझ में आया? जब तक वह विकल्प में वर्तता है... यह है न अन्तिम? '**अंतरबाहिरजप्पे जो वट्टइ**' ऐसा है न मूल? इसलिए यहाँ आधार दिया है। ऐसे विकल्प में—राग के अंश में वर्तता है, तब तक तो उसकी दशा मिथ्यात्व है। आहाहा! समझ में आया? यह तो राग के अंश में बसता है, वह स्वभाव में कहाँ बसता है? उस भूमि को **लाँघकर भीतर और बाहर समतारसरूपी एक रस ही जिसका स्वभाव है,...** यह पर्याय की बात है, हों! उसकी पर्यायभूमिका का ऐसा स्वभाव है, ऐसा कहते हैं। नय-विकल्प की भूमिका का वह भाव, उसे उल्लंघकर... गजब! क्या है यह?

समतारसरूपी एक रस ही जिसका... एक रस ही जिसका स्वभाव है, ऐसे अनुभूतिमात्र... ऐसी अनुभूतिमात्र... ....अपने आप पुण्य के कारण पैसे आये हैं, वहाँ

कहीं तुम्हारी चतुराई ने काम नहीं किया। वे आये हैं, इसलिए तुम्हारे पास कहाँ आये हैं? तुम्हारे पास 'वे मेरे हैं', यह ममता है। तो यहाँ तो कहते हैं कि... आहाहा! प्रभु! तेरा स्वरूप यह नय के विकल्प की भूमि से पार है। यह रहित तो है, परन्तु उसके—विकल्प के जाल—वृत्तियाँ—भूमि, वह आत्मा की भूमि नहीं। उसमें तो विषमता है, ऐसा कहते हैं। क्या कहा? वह तो विषमता है, वह तो विषमभाव है। विषमभाव, वह जीव की पर्याय होगी? उसे उल्लंघकर... आहाहा! कितना काम इसे करना है। जिसका एक ही समतारस स्वभाव बाह्य और अभ्यन्तर ऐसी जो अनुभूति, वह इसकी दशा, वह इसकी भूमिका, वह इसका भाव है। निश्चय और व्यवहार के विकल्प, यह इसका भाव नहीं, यह आत्मा का भाव नहीं। आहाहा! एक श्लोक में कितना रचा है!

ऐसे अनुभूतिमात्र एक अपने भाव को... देखो! अपना भाव कहो या अपना स्वरूप कहो। टीका की बात यह नहीं। समझ में आया? स्वयं भगवान वीतराग समरस का कन्द है, जिनराज है। उसका आश्रय लेकर जो दशा समरस की प्रगट हुई, वही उसका स्वरूप अथवा पर्याय अथवा उसका वह भाव है। समझ में आया? द्रव्य-गुण स्वरूप तो अलौकिक है, परन्तु कहते हैं कि उसके आश्रय से होनेवाली परम-आवश्यक की क्रिया जो अनुभूति, वह उसका स्वरूप है, वह उसकी पर्याय का भाग है। विकल्प का जाल, वह उसकी पर्याय का भाव नहीं। आहाहा! कितनी धीरज चाहिए! समझ में आया? यह अमृतचन्द्राचार्य का आधार दिया है। **ऐसे (स्वरूप को) प्राप्त होता है।** विकल्प के जाल को उल्लंघता है, वह ऐसी दशा—समरस के वीतरागीभाव की पर्याय को पाता है। कहो, समझ में आता है या नहीं? ऐसा मार्ग है आत्मा का। वाद-विवाद और झगड़ा करे तो कहीं पार आवे, ऐसा नहीं है। वह साधन कहा है न! यहाँ तो कहते हैं कि विकल्प का जाल, वह साधन नहीं। तुझे क्या कहना है? भाई! वह तो उस भूमिका में कषाय की मन्दता की जाति होती है, इतना बतलाने को उसे साधन, कारण और हेतु कहा है, बाकी वह वस्तु नहीं।

जब विकल्प अपनी जाति के कि मैं द्रव्य हूँ अखण्ड-अभेद, एक समय की पर्याय व्यवहार से है, निश्चय से यह है—ऐसे विकल्प का जाल भी जहाँ साधकपने काम नहीं करता। आहाहा! उसे तो यहाँ, उल्लंघकर ऐसे स्वरूप को प्राप्त करता है,

ऐसा कहा है। ऐसा कहा है न? आहा! अपना स्वभाव क्या है द्रव्य-पर्याय, इसके भेद के विकल्प से भी जो पार है। तो उसके विकल्प भी वहाँ साधनरूप से, कारणरूप से होते नहीं। परन्तु उन्हें उल्लंघ जाये, तब उन्हें निमित्तरूप से कहना हो पहले तो कहो, परन्तु उल्लंघ जाये, पश्चात्। समझ में आया? आहाहा! ऐसे बाह्य और अभ्यन्तर समतारूपी एक रस... एक रस ही, वीतरागरूपी पर्याय एक रस ही। भेद नहीं। ऐसे **रस ही जिसका स्वभाव है, ऐसे अनुभूतिमात्र...** ऐसा कहकर तो बहुत कहा, हों! **ऐसे अनुभूतिमात्र एक अपने भाव को...** आहाहा! यह विकल्प है, वह अपना भाव नहीं अर्थात् कि अपनी पर्याय नहीं। आहाहा! यह उसका स्वरूप नहीं। पर्याय स्वरूप हों, द्रव्य-गुण स्वरूप तो कहीं रह गया।

अभी वे लड़के लाये थे भाई वह पम्पलेट। पालीताणा का कोई म्युनिसीपलटी का २७ वर्ष का काठी दो दिन में मर गया, ऐसा लिखा है। २७ वर्ष का लड़का... म्युनिसीपलटी का। दो दिन के रोग में... वहाँ ऐसा लेख था। लोग ऐसा सुने तो वैराग्य... वह तो उसे हुआ। लिखा था। वे लड़के लाये हुए सवेरे कुछ। वह गिरनार का था। गिरनार का कोई विवाद है न। परन्तु कोई लाया था सही। गिरनार का बताने... ऐसा कि दावा किया है। ....उसमें वह लेख साथ में था। पालीताना की म्युनिसिपलटी के एक काठी २७ वर्ष की जवान अवस्था दो दिन में भावनगर के अस्पताल में उड़ गया। यह तो स्थिति इतनी ही थी उसकी, भाई! आहाहा! समझ में आया?

जिसकी स्थिति ही नहीं खण्डवाली, ऐसा भगवान, उसका आश्रय लिये बिना सब थोथेथोथा है। आहाहा! समझ में आया? भले वह दुर्लभ हो, परन्तु वह अशक्य नहीं। समझ में आया? दुर्लभ तो कहलाता है। बोधिदुर्लभ (भावना) में आता है न बारह भावना में। परन्तु वह कहीं अशक्य नहीं। अपनी चीज़ है वह तो। कहते हैं कि दया, दान, व्रत के परिणाम तो बन्ध के कारण हैं, वे कहीं आत्मा को लाभ का कारण नहीं। आहाहा! परन्तु यहाँ तो उस जाति की उसकी भूमिका के आँगन में आकर उसके विकल्प उठाना कि ऐसा है और वैसा है और ऐसा है और ऐसा है। आहाहा! वह भूमि तेरी नहीं, कहते हैं। वह तो नयपक्ष की भूमि है। आहाहा! वह तो अंश के—भेद के विकल्प की भूमि है। भोगीभाई! आहाहा! भगवान! तेरी तो बलिहारी अलौकिक है,

कहते हैं। तुझे तेरी खबर नहीं। तू तो परमात्मा साक्षात् प्रभु है। आहाहा! ऐसे विकल्प की पामरता—हीनता, ऐसी भूमि को छोड़, उल्लंघ जा। भगवान! तेरी प्रभुता उसमें नहीं आती। आहाहा! ऐसे विकल्प के जाल से तेरी प्रभुता की प्रतीति नहीं होती, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

कितना है अन्दर, देखो न यह! शब्द-शब्द में कितना है! यह तो अध्यात्मरस है। यह कहीं वार्ता नहीं, है तो भगवान आत्मा की वार्ता। समझ में आया? कहते हैं, भाई! आहाहा! ऐसा स्वरूप है, ऐसे प्रकार के विकल्प... समझ में आया? उसे जानने में परलक्ष्यी ज्ञान में ऐसा स्वरूप है, ऐसे विकल्प... बाहर से तो ऐसा स्वरूप है, ऐसा इसने जाना है, परन्तु विकल्प द्वारा जाना है और उस विकल्प की भूमिका में विषमता है, कहते हैं। आहाहा! तुझे समताभाव नहीं, प्रभु! आहाहा! तेरी आवश्यक क्रिया वह नहीं। वह तो अनावश्यक अन्दर विकल्प उठते हैं। आहाहा! ऐसा धर्म होगा? वीतराग का ऐसा धर्म होगा? यह तो कहे, दया पालो, व्रत पालो और दीक्षा ले लो, फिर अपवास करो। अरे भगवान! वह तेरा स्वरूप ही नहीं, सुन न! आहाहा! पण्डितजी! भाई! तुझे प्रेम-विकल्प को छोड़ना पड़ेगा। समझ में आया? ऐसे विकल्प जाल की मिठास छोड़ने से जीव की मिठास प्रगट हो, ऐसा है। समझ में आया? उसकी मिठास रखे और आत्मा की मिठास प्रगट हो—ऐसा नहीं होता, प्रभु! तू ऐसा नहीं। आहाहा! **एक अपने स्वरूप को प्राप्त होता है।** आहाहा!

और इस १५०वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:— ओहो! अपार... अपार अर्थ भरे हैं! एक-एक कलश में सन्तों ने अपार... २५९ कलश।

मुक्त्वा जल्पं भवभयकरं बाह्यमाभ्यन्तरं च,
स्मृत्वा नित्यं समरसमयं चिच्चमत्कारमेकम्।
ज्ञानज्योतिः प्रकटितनिजाभ्यन्तरङ्गान्तरात्मा,
क्षीणे मोहे किमपि परमं तत्त्व-मन्तर्ददर्श॥२५९॥

यह, अभ्यन्तर अंग, अनुभूति अभ्यन्तर अंग है। आहाहा! राग, वह तो बाह्य

विषय है। गजब बात करते हैं न! अरेरे! यह विकल्प है, वह तो **भवभय के करनेवाले...** हैं, कहते हैं। वाणी में बोलने काल का विकल्प और अभ्यन्तर स्वरूप के अन्तर में ऐसा और वैसा, ऐसे विकल्प... **बाह्य तथा अभ्यन्तर जल्प...** कैसे हैं? कि **भवभय के करनेवाले,...** है। आहाहा! वह तो भव की उत्पत्ति करनेवाले हैं। भव का भय... भव का भय (करनेवाले हैं)। आहाहा! **भवभय के करनेवाले,...** ऐसा जो विकल्पजाल बाह्य और अभ्यन्तर जल्प **छोड़कर...** छोड़ उसे अब।

समरसमय (समतारसमय) एक चैतन्यचमत्कार का सदा स्मरण करके,... समतारसमय एक चैतन्य चमत्कार को अन्तर में याद करके (अर्थात्) ज्ञान में लेकर... समरसमय—समतारसमय भगवान आत्मा... अकेला समतारस का कन्द, रस, वह आत्मा। **एक चैतन्यचमत्कार का...** ऐसी समतारसमय एक चैतन्य चमत्कार... इसका अर्थ हुआ कि विकल्प, वह विषम है, वह कोई चमत्कारिक चीज़ नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा सदा चैतन्य चमत्कारिक वस्तु, उसे स्मरण कर... स्मरण कर अर्थात् याद में—ज्ञान में लाकर... देखो! समझ में आया? भगवान आत्मा पूर्ण, उसको ज्ञान में लाकर (अर्थात्) उसका स्मरण करके, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

ज्ञानज्योति द्वारा... उस ज्ञानज्योति द्वारा स्मरण में आया कि आत्मा आनन्द और ज्ञान है। ऐसी ज्ञानज्योति द्वारा **जिसने निज अत्यन्तर अंग प्रगट किया है,...** आहाहा! वह ज्ञान स्वभाव द्वारा जिसने अभ्यन्तर—**निज अत्यन्तर अंग...** वीतरागीदशा निज अभ्यन्तर अंग है, समझ में आया? शुभराग, वह बहिरंग है, वह अन्तरंग नहीं—अन्तर का अंग नहीं, वह आत्मा का अवयव नहीं। समझ में आया? विकल्प जो है, वह आत्मा की दशा नहीं, (ऐसा) कहो; अवयव नहीं, (ऐसा) कहो; अंश नहीं, (ऐसा) कहो। वह अन्तरंग नहीं, वह बहिरंग है। आहाहा! परन्तु जिसने **ज्ञानज्योति द्वारा...** भगवान आत्मा को अन्तर में याद करके—ज्ञान में लाकर और ऐसी ज्ञानज्योति द्वारा **जिसने निज अभ्यन्तर अंग...** यह अन्तरात्मा की व्याख्या करते हैं। अन्तर आत्मा उसे कहते हैं कि जिसने अभ्यन्तर अंग प्रगट किया है। समझ में आया? आहाहा!

'एक चैतन्य चमत्कार समतारसमय अभेद' ऐसा उसे याद करके अर्थात् ज्ञान में लाकर, ऐसी ज्ञानज्योति द्वारा जिसने निज—अपना अभ्यन्तर अंग... यह नहीं कहते कि

हमारे अंगित (अन्तरंग) व्यक्ति है? ऐसा कहते हैं न लोग? अंगत व्यक्ति। वह अंगत व्यक्ति नहीं भाई! तेरा अंगत... अंगत दशा तो वीतरागी पर्याय, वह तेरी अंगत दशा है, वह तेरा अन्तरंग अंग है। अरे! उसके घर की ऐसी बात भी सुनने को मिले नहीं, उसकी रीति और पद्धति ऐसी है, ऐसा सुनने को मिले नहीं, अरे! वह कब करे..? समझ में आया? वह परघर में भ्रमा करता है न। आहाहा! सुनने को मिलता नहीं, वह ... कुछ मिले नहीं। आहाहा! अरे! कहाँ-कहाँ अटका हुआ है? इसने भटकने के रास्ते कितने पकड़े हैं, खबर नहीं। यहाँ तो कहा न कि वे विकल्प हैं, वह तो भवभय के, भटकने के कारण हैं। आहाहा! अरे! परन्तु शुभविकल्प हो न? हो तो वह भव के भय का कारण है। निर्भय भगवान आत्मा का वह कारण नहीं। समझ में आया?

जिसने निज अत्यन्तर अंग प्रगट किया है,... ऐसा कहा वापस। कोई कर्म हटा है, इसलिए हुआ है, ऐसा नहीं। जिसने अपने आनन्दस्वभाव को, ज्ञानज्योति को याद किया है, दूसरा यादपना भूल गया। समझ में आया? आहाहा! ऐसी ज्ञानज्योति को याद करके (अर्थात्) चमत्कार को याद करके—स्मरण करके... ज्ञानज्योति द्वारा अर्थात् आत्मा के स्वभाव द्वारा जिसने अन्तर में निज अभ्यन्तर अंग—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निर्मल जो दशा—वह निज अभ्यन्तर अंग प्रगट किया है। समझ में आया? **ऐसा अन्तरात्मा...** अन्तरात्मा की व्याख्या की। आत्मा ने अभ्यन्तर अंग प्रगट किया, उसे अन्तरात्मा कहा जाता है, ऐसा कहते हैं। आत्मा तो था, अन्तर वस्तु तो थी आत्मा, परन्तु अन्तरात्मा कब हुआ? समझ में आया?

जिसने अपने चैतन्यस्वरूप समरसभाव को याद करके, उस ज्ञानज्योति द्वारा अभ्यन्तर में आनन्द और ज्ञान और श्रद्धा आदि अंश जो निज-अंग है, उसे प्रगट किया है अर्थात् कि समतारस को जिसने प्रगट किया है। समझ में आया? अंग प्रगट किया है, उसे अन्तरात्मा कहते हैं। वैसे तो आत्मा तो परमात्मस्वरूप है ही। वह तो शक्तिरूप से, तत्त्वरूप से, सत्त्वरूप से, त्रिकाल ध्रुवरूप से है। परन्तु उसका आश्रय करके ज्ञानज्योति द्वारा—उस द्वारा एकाग्र होकर, विकल्प के जाल छोड़कर... 'छोड़कर' बात की, करे, समझाना हो तो ऐसा समझावे न। इस ओर में एकाग्र होकर, ऐसी ज्योति को स्मरण किया और ज्योति द्वारा जिसने अन्तर दशा में निर्मल आनन्द और श्रद्धा, ज्ञान, सम्यग्दर्शन-

ज्ञान-चारित्र जो निश्चय आवश्यक क्रिया, वह जिसने प्रगट की है, ऐसा कहते हैं। **ऐसा अन्तरात्मा...** ऐसा अन्तरात्मा... प्रगट की है दशा, ऐसा अन्तरात्मा। समझ में आया?

मोह क्षीण होने पर,... उसके राग का नाश होने पर, ऐसा। पर सन्मुख की सावधानी का नाश होने पर **किसी (अद्भुत) परमतत्त्व को अन्तर में देखता है।** भगवान पूर्णानन्द का नाथ... विशेष मोह का अभाव होने से, ऐसा... विशेष। तब उत्कृष्ट आत्मा, ऐसे परमतत्त्व को अन्दर में... पूर्णानन्द शुद्ध ध्रुव ऐसी अन्तरंग पर्याय प्रगट होने पर उसमें देखता है। कहो, समझ में आया? आहाहा! स्थिर हुआ जिसका स्वभाव है, उसमें स्थिर हो, अन्तरंग प्रगट कर, तब अन्तरात्मा कहलाता है, ऐसा कहते हैं। कहो, कान्तिभाई! आहाहा! जिसका धन्य अवतार, धन्य .... उसका है, कहते हैं। साधु तो अवतरे और मरे। आहाहा! जैन के वाडा में जन्मकर भी, आत्मा में क्या चीज़ है, कैसे प्रगट हो, किसका अभाव हो तो प्रगट हो—ऐसी खबर भी नहीं होती, उसके जैसा पशु का अवतार, ऐसा इसका अवतार है। पशु कहा है न मिथ्यादृष्टि को। **किसी (अद्भुत) परमतत्त्व को अन्तर में...** ऐसी वीतरागी समरसपर्याय ज्ञानज्योति द्वारा प्रगट होने पर, यह ज्योति ऐसी है, ऐसा **देखता है।** आहाहा! कहो, समझ में आया? १५० गाथा हुई। यह आवश्यक अधिकार बहुत अलौकिक अधिकार है। १५१ (गाथा)।

जो धम्मसुक्कझाणम्हि परिणदो सो वि अंतरंगप्पा।
झाण-विहीणो समणो बहिरप्पा इदि विजाणीहि॥१५१॥

नीचे हरिगीत।

रे धर्म शुक्ल सुध्यान परिणत अन्तरात्मा जानिये।

'वळी' है न उसमें? **सो वि** अर्थात् ... इसे अन्तरात्मा कहा और इसे भी अन्तरात्मा कहना। पहले कहा न, इसे अन्तरात्मा कहना, १५० में। और इसे भी अन्तरात्मा कहना, ऐसा। **सो वि** शब्द है न (इसलिए) 'वळी' ऐसा।

रे धर्म शुक्ल सुध्यान परिणत अन्तरात्मा जानिये।
अरु ध्यान विरहित श्रमण को बहिरातमा पहिचानिये॥१५१॥

टीका : यहाँ (इस गाथा में), स्वात्माश्रित... स्व-आत्मा आश्रित **निश्चय-**

धर्मध्यान... देखो! स्वात्माश्रित निश्चय धर्मध्यान... अभी ऐसा कहते हैं कि धर्मध्यान तो शुभभाव में ही होता है, शुक्लध्यान... अरे भगवान! क्या करते हो तुम? भाई! तुझे भूल-भुलैया में डालते हैं, हों! यहाँ तो **स्वात्माश्रित निश्चय-धर्मध्यान...** भले धर्मध्यान हो, भले शुक्लध्यान की उत्कृष्ट दशा न हो, तो भी वह धर्मध्यान तो आत्मा के आश्रित होता है। समझ में आया? चौथे गुणस्थान से। यह तो आ गया न अपने। निश्चय आवश्यक और व्यवहार आवश्यक सम्यग्दृष्टि से शुरु होते हैं, चौथे से शुरु होते हैं। अकेला व्यवहार चौथे में है और निश्चय सातवें में है, (ऐसा अज्ञानी कहता है)। अरे, भगवान! तू आये बिना, तेरी अन्दर की दशा प्रगट हुए बिना व्यवहार कहना किसे? समझ में आया? यह बात तो बहुत सीधी है, परन्तु लोगों ने गड़बड़ कर डाली है न, ऐसे से ऐसे तोड़-मरोड़कर। परन्तु असत्य वह कहीं तोड़-मरोड़कर सत्य हो जाता होगा? नहीं होता, भाई! ऐसे नहीं होता।

यहाँ तो कहते हैं कि **यहाँ (इस गाथा में), स्वात्माश्रित...** आहाहा! स्व-आत्मा-आश्रित '**भूदत्थं मस्सिदो खलु**' यह कहा न! भगवान नित्यानन्द प्रभु के आश्रय से निश्चय धर्मध्यान (होता है)। स्व की एकाग्रता स्व के आश्रय से, इसका नाम निश्चय धर्मध्यान। कहो, समझ में आया? यह धर्मध्यान चौथे से प्रगट होता है। यहाँ तो उत्कृष्ट बात लेंगे। क्षीणमोहवाले को धर्मध्यान, शुक्लध्यान, ऐसा कहेंगे। समझ में आया? साक्षात् उत्कृष्ट आत्मा की बात है इसमें। परन्तु इसके गर्भित में सब स्व के आश्रय से—वीतरागमूर्ति प्रभु समरस का कन्द आत्मा, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का अंश जो चौथे में प्रगटे, वह भी निश्चय धर्मध्यान है। समझ में आया?

और निश्चय-शुक्लध्यान... अन्तर में उज्ज्वल, विशेष उज्ज्वल, ऐसा। बहुत ही अन्तर में आश्रयपना, उग्रपना (प्रगट हुआ), इससे उज्ज्वलता बहुत प्रगट हुई। वह निश्चय धर्मध्यान (आदि) **यह दो ध्यान ही उपादेय हैं...** यहाँ ध्यान उपादेय कहा, (क्योंकि) प्रगट करनेयोग्य है न। यह दो ध्यान ही आदरणीय है अथवा प्रगट करनेयोग्य है। समझ में आया? चौथे से धर्मध्यान शुरु है, पश्चात् पाँचवें-छठवें में तो होता ही है न! यहाँ तो, निरन्तर जिसे अन्तर का आश्रय है, उसे धर्मध्यान कहते हैं और ऐसा निरन्तर द्रव्य का आश्रय न हो, उसे बहिरात्मा कहते हैं। समझ में आया?

धर्मध्यान अर्थात् उपयोग में स्थिर हुआ हो तो ही धर्मध्यान, ऐसा नहीं। वह स्वद्रव्य का आश्रय वर्ते जिस दशा में, उसका नाम धर्मध्यान। उस धर्मध्यान रहित हो तो वह बहिरात्मा होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अब तो बहुत स्पष्ट आता है। बहुत स्पष्ट आता है, हों! आहाहा! स्व का आश्रय होकर जो ध्यान—एकाग्रता हुई, वह धर्मध्यानी भले विकल्प में 'उसमें वर्तता हूँ' (ऐसा) उपयोग विकल्प में वर्तता हो... उपयोग वर्तता हो, दृष्टि वहाँ वर्तती नहीं। समझ में आया? स्वयं दृष्टि—सम्यग्दर्शन राग में वर्तता नहीं। सम्यग्दर्शन, वह द्रव्य और गुण के अन्दर में वर्तती पर्याय है, वह राग में वर्तती नहीं। परन्तु राग में वर्तता उपयोग हो, उस काल में भी जितना स्व का आश्रय है, वह धर्मध्यान कायम है। ऐसा यदि स्व का आश्रय न हो और धर्मात्मा हो, ऐसा हो नहीं सकता। समझ में आया?

यह दो ध्यान ही उपादेय हैं—ऐसा कहा है। पाठ तो ऐसा है कि '**झाणविहीणो समणो बहिरप्पा**' तब वहाँ उपयोग में जमा हो तो ही ध्यान? और उस बिना का विकल्प में हो, तब ध्यान नहीं तो बहिरात्मा है? बाहर में वर्तता ही नहीं। धर्मी जीव तो अन्तरवस्तु भगवान आत्मा, चाहे तो शुभ-अशुभ विकल्प हो, अशुभराग के समय भी स्व का आश्रय वर्तता है, शुभ के समय स्व का आश्रय अधिक है, शुद्ध के समय (उससे) अधिक है, परन्तु आश्रय तो सदा ही है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं कि दो ध्यानरहित बहिरात्मा है। तब धर्मध्यानरहित बहिरात्मा अर्थात्? वह अन्दर में निर्विकल्प ध्यान में वर्तता हो, तब धर्मध्यान? और राग आदि में दिखाई दे, (तब नहीं)? वह वर्तता नहीं दृष्टि में। अस्थिर उसका उपयोग है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? तथापि वह तो वर्तता है, स्व के आश्रय से, ऐसा धर्मध्यान तो सदा होता है। आहाहा! समझ में आया? **ऐसा कहा है।**

यहाँ (इस लोक में) वास्तव में साक्षात् अन्तरात्मा... ऐसा वर्णन किया है। (अधिकार) पूरा होता है न, इसलिए साक्षात् अन्तरात्मा (कहा)। **भगवान क्षीणकषाय है।** बारहवें गुणस्थान में जरा भी राग का अंश नहीं, इसलिए उसे साक्षात् अन्तरात्मा कहा जाता है। यहाँ से बात उठायी है, परन्तु उसके गर्भित भेद में जो चौथे से है, वह सब उसमें समाहित हो जाता है। समझ में आया? **(इस लोक में) वास्तव में साक्षात्**

अन्तरात्मा... अन्तरंग गुण प्रगट हुए हैं साधक के पूरे, इस अपेक्षा से पूरे। पूरा जो क्षायिक चौदहवें में अन्त में हो—पूर्ण हो, वह अलग बात है। यहाँ तो अन्तरात्मा की अपेक्षा से बात है। परमात्मा हुए को पूर्ण दशा होती है, मोक्षमार्ग की पूर्ण होती है, इसलिए तुरन्त मोक्ष (होता है), वह तो अलग बात है। यहाँ तो अन्तरात्मा की अपेक्षा से बात है, वह मोक्षमार्ग की अपेक्षा से बात है। समझ में आया?

मोक्षमार्ग तो चौदहवें के अन्तिम समय में पूर्ण हो जाता है, ऐसा कहते हैं। क्षायिक... हो कि तुरन्त ही उसका कार्य उस समय में पूर्ण सिद्ध हो जाता है। यहाँ तो अन्तरात्मा की बात है। **साक्षात् अन्तरात्मा भगवान क्षीणकषाय...** देखो! उसे भगवान कहा। आहाहा! जिसे उसकी भूमिका प्रमाण द्रव्य का आश्रय है, पूरा—सब आश्रय होकर केवल (ज्ञान) है, वह नहीं। वह हो तब तो परमात्मा हो जाये। समझ में आया? धर्म-शुक्लध्यान से परिणत है, ऐसा है न अन्दर? (अर्थात् कि) परिणमित है। वह अन्तरात्मा भगवान क्षीणकषाय है, जिसे अकषाय परिणमन... अकषाय परिणमन है, वह साक्षात् अन्तरात्मा है। इसका अर्थ कि अन्तर्भेद में जो अन्तरात्मा है, वह साक्षात् नहीं, (परन्तु) है अन्तरात्मा। छठवें, सातवें, आठवें में... समझ में आया? ऐसा कि यह साक्षात् अन्तरात्मा है, वही अन्तरात्मा (और) इसके अतिरिक्त के बहिरात्मा—ऐसा नहीं। जिसे वे ध्यान नहीं, वह बहिरात्मा है, ऐसा है। समझ में आया?

ओहोहो! नियमसार की गजब शैली है! इसीलिए पूछा रामजीभाई को, तब रामजीभाई (कहे) फिर से वाँचो यह। सच्ची बात है। फिर से... थोड़ी देर पढ़ा है। बात सच्ची। थोड़ी देर पढ़ा है। बात सच्ची। इसलिए इस बार पूरा हो और फिर से यही लेना। सच्ची बात ऐसी। बहुत थोड़ी बार पढ़ा है। ....यह समयसार १७वीं वार। आहाहा! अमृत बहाया है अकेला, हों! अब तब वह का वह कहीं आवे? इसके पश्चात्... आहाहा! .... समय-समय में पर्याय बदले... ...पाते हैं न। आहाहा! **वास्तव में साक्षात् अन्तरात्मा भगवान क्षीणकषाय हैं।** ऐसा कहा है न? ऐसा कहाँ कहा कि अन्तरात्मा नहीं? 'साक्षात् अन्तरात्मा' भाषा ऐसी है न! समझ में आया?

धर्मात्मा राग में कभी भी वर्तता नहीं, ऐसा आया। तब कहे कि जब तक राग है,

तब तक धर्मात्मा नहीं। ऐसा नहीं है, सुन न! राग में वर्तता ही नहीं जीव। धर्मी जीव राग में वर्तता ही नहीं। वह तो आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान में ही वर्त रहा है। आहा! क्या हो? समझ में आया? ....उसमें से यह निकाले। यह जब तक राग है, तब तक आत्मा का ज्ञान नहीं। अरे भगवान! वह तो एकताबुद्धि है, तब तक की बात है। पृथक्रूप से वर्तता है, उसे अपनी पर्याय में नहीं मानता, ऐसा निश्चय से तो है। आहाहा! इसलिए वह **'वर्तता नहीं'** ऐसा आया न! **'वर्तता नहीं'** ऐसा आया, देखो! **'जप्पेसु जो ण वट्टइ उच्चइ'** ऐसा आया न १५० में? नहीं वर्तता। आहाहा! वह विकल्प में अन्तर्जल्प में ज्ञानी वर्तता ही नहीं और राग में वर्ते तो वह ज्ञानी रहता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

दोनों में वर्ते एक समय में? राग में वर्ते, वह बहिरात्मा है। राग में नहीं वर्तता, वह अन्तरात्मा में वर्तता है, उसे धर्मात्मा है। कहो, समझ में आया? **वास्तव में उन भगवान क्षीणकषाय को सोलह कषायों का अभाव होने के कारण...** वास्तव में वह भगवान अर्थात् साक्षात् अन्तरात्मा बस... **सोलह कषायों का अभाव होने के कारण दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय कर्मरूपी योद्धाओं के दल नष्ट हुए हैं।** लो। बड़े योद्धा... शत्रु दर्शनमोहनीय कर्म वापस, हों! उसके योद्धा के दल... दल—पिण्ड नाश पाये हैं। **इसलिए वह** क्या करेगा, यह व्याख्या जरा सूक्ष्म है, हों!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण १०, शुक्रवार, दिनांक - १२-११-१९७१
गाथा-१५१, श्लोक-२६०-२६१, प्रवचन-१७५

यह नियमसार सिद्धान्त, निश्चय परम-आवश्यक (अधिकार) है। १५१ गाथा चलती है। फिर से लेते हैं। **टीका :** इस लोक के अन्दर—**यहाँ (इस लोक में) वास्तव में साक्षात् अन्तरात्मा भगवान क्षीणकषाय हैं।** जिसे सोलह कषाय का नाश हुआ है और स्व-आत्मा के आश्रय से उग्रता प्रगट हुई है। **वास्तव में उन भगवान क्षीणकषाय को सोलह कषायों का अभाव होने के कारण दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय कर्मरूपी योद्धाओं के दल नष्ट हुए हैं। इसलिए वे...** यह तो उत्कृष्ट बात है, हों! उत्कृष्ट बात है, परन्तु यह धर्मध्यान चौथे से प्रगट होता है, यह बात यहाँ गौणरूप से गिनी है। मुख्यरूप से उन्हें ही गिना है न बारहवें गुणस्थानवालों को। उसका आश्रय चौथे गुणस्थान से प्रगट होता है। यह बहुत उग्र आश्रय है, इसलिए उसे सोलह कषाय का अभाव वर्तता है। ऐसे उत्कृष्ट अन्तरात्मा की बात मुख्यरूप से ली है।

इसलिए वे (भगवान क्षीणकषाय) सहजचिद्विलासलक्षण अति-अपूर्व आत्मा... यह व्याख्या आत्मा की। भगवान आत्मा स्वाभाविक ज्ञान जिसका लक्षण—स्वरूप—चिह्न है, ऐसा विलासलक्षण... त्रिकाल वह तो चैतन्यविलासलक्षणस्वरूप ही आत्मा है। उसका—चैतन्यस्वरूप का विलास चैतन्यस्वरूप में है, ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा में स्वाभाविक ज्ञानविलासलक्षण... है न नीचे, स्पष्टीकरण किया है। **जिसका लक्षण** कहो, (**चिह्न** कहो **अथवा स्वरूप** कहो), **सहज चैतन्य का विलास है,** ऐसा आत्मा स्वाभाविक ज्ञान और आनन्द जिसका विलास है, ऐसा यह आत्मा है।

ऐसे आत्मा को... **अति-अपूर्व** ऐसे **आत्मा को,** ऐसा। **शुद्धनिश्चय-धर्मध्यान...** वह चैतन्यविलास ऐसा भगवान आत्मा आनन्द की मौज में रहा हुआ... आहाहा! अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द के स्वभावस्वरूप हो गया है। ऐसे आत्मा को शुद्धनिश्चयधर्मध्यान (अर्थात्) अन्तर्मुख की स्वसन्मुखता की एकाग्रता ऐसी निचली

श्रेणी की धर्मदशा—धर्मध्यानदशा। **शुद्धनिश्चयधर्मध्यान द्वारा नित्य ध्याते हैं।** चौथे गुणस्थान में, पाँचवें में, छठवें में, सातवें में इत्यादि। **शुद्धनिश्चयधर्मध्यान...** चैतन्यविलासस्वरूप ऐसा भगवान आत्मा, उसे स्वभाव-सन्मुख की, स्वभाव की एकता और विकल्प की पृथक्ता... यहाँ एकता द्वारा बात की है। ऐसा जो चैतन्यविलास भगवान, उसमें जो एकता की है, वह शुद्धनिश्चय-धर्मध्यान द्वारा नित्य ध्याता है। जिसका स्वरूप शुद्धचैतन्यविलास है, ऐसे आत्मा के ओर की सन्मुखता की एकता तो धर्मी को निरन्तर होती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान का निधान है, ऐसा आत्मा, उसकी सन्मुखता, वह धर्मध्यान (और) उत्कृष्ट सन्मुखता, वह शुक्लध्यान। गजब बात! ऐसा **अति-अपूर्व आत्मा को शुद्धनिश्चयधर्मध्यान...** द्वारा... स्व-आश्रित एकता द्वारा **और शुद्धनिश्चय-शुक्लध्यान...** स्वभाव की अन्तर एकता द्वारा नित्य ध्याता है। यह लक्षण उसका—धर्मध्यान और शुक्लध्यान का स्वरूप। धर्मध्यान में भी आत्मा के पूर्ण स्वभाव-सन्मुख निरन्तर एकता होती है। समझ में आया? चौथे-पाँचवें-छठवें आदि में विकल्प होते हैं, तथापि वह उनके सन्मुख नहीं, उसमें वह वर्तता नहीं। समझ में आया? आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु पूर्ण आनन्द का नाथ, उसके ओर की एकता धर्मध्यानी को अर्थात् कि धर्मी को निरन्तर होती है। समझ में आया?

और **शुक्लध्यान द्वारा नित्य ध्याते हैं।** आगे जाने पर विशेष निर्मल दशा द्वारा आत्मा को ध्याता है, एकता करता है। आहाहा! **इन दो ध्यानोंरहित...** इन दो ध्यानवाला, वह धर्मी है। (उसे) सदा ही ध्यान है? भाई! आत्मा जो स्वरूप चैतन्यविलास भगवान की एकतारूप जो ध्यान, वह तो सदा ही (रहता है)। जितनी ध्यानदशा हुई, उतनी सदा निरन्तर अन्दर एकता है। समझ में आया? ऐसा मार्ग! अनन्त-अनन्त आनन्द का जहाँ विलास है प्रभु आत्मा में। यहाँ ज्ञानविलास लिया है, परन्तु उस ज्ञानविलास में अतीन्द्रिय आनन्द का भी विलास साथ में ही है। उस आनन्द के (समक्ष) धर्मी विषय की वासना का विकल्प आवे, उसमें वह कहीं वर्तता नहीं। आहाहा! तथा वहाँ मजा है, यह मान्यता नहीं। समझ में आया? उसका तो ध्यान का ध्येय आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा में है।

जहाँ नजर लगायी है उसके ऊपर, वह एकता कभी हटती नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया?

यह दुःख को नाश करने का और सुखी होने का यह एक उपाय है। यह धर्मध्यान, हों! यह व्रत, तप और उपवास—विकल्प करे, वह कहीं धर्मध्यान नहीं। वह वास्तव में तो आर्तध्यान है। आहाहा! चैतन्यप्राण की पर्याय वहाँ पीड़ित होती है। पर्याय पीड़ित होती है, हों! वस्तु तो वस्तु है। चैतन्य के आनन्द की पर्याय जो होना चाहिए, उसमें यह राग का विकल्प वह पर्याय को पीड़ित करता है—नाश करता है। आहाहा! गजब बात है! समझ में आया? मात्र भगवान आत्मा के ऊपर ही जिसकी एकाग्रता है, उस एकाग्रता द्वारा ही आत्मा को ध्याता है। आहाहा! इसका नाम ध्यान कहो या धर्म कहो। समझ में आया? ऐसे **ध्यानरहित...** देखो! यहाँ। अकेले पंच महाव्रत के विकल्प, २८ मूलगुण के विकल्प, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, दान—ऐसे विकल्प में जो वर्तता है, वह यह ध्यानरहित है। समझ में आया? आहाहा!

वह तो **द्रव्यलिंगधारी द्रव्यश्रमण...** है। कठिन बातें! जिसे स्वभाव भगवान आत्मा आनन्दमूर्ति का अन्दर स्पर्श, आश्रय और ध्रुव के ध्येय का ध्यान या एकता नहीं, वे सब द्रव्यलिंगी साधु भले नग्न रहते हों, २८ मूलगुण पालते हों, पंच महाव्रत पालते हों, तो भी मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। समझ में आया? क्योंकि वह तो राग के विकल्प का वर्तन है। उस वर्तन में वर्तता है, वह भगवान आत्मा वीतरागी स्वरूप प्रभु में वर्तता नहीं। इसलिए वह द्रव्यलिंगी साधु नग्न हो, पंच महाव्रत के विकल्प बराबर हो, तो भी वह मिथ्यादृष्टि है। गजब काम भाई यह! आहाहा! समझ में आया? अनाकुल आनन्दस्वरूप प्रभु आत्मा निजप्रभु निजात्मा... अनाकुल आनन्दस्वरूप से उल्टे वे पंच महाव्रत आदि के सब विकल्प, उनमें वर्तता है, परन्तु इस ओर वर्तता नहीं। समझ में आया?

उसे यहाँ द्रव्यलिंगी द्रव्यश्रमण, मिथ्यात्वी बहिर्-आत्मा (कहा)। अर्थात्? भगवान आनन्दस्वरूप में अन्तर में वर्तता नहीं। समझ में आया? और ऐसे पुण्य के राग के विकल्प जो बाह्य है, अन्तर में नहीं, स्वभाव में नहीं, ऐसे शुभभावरूपी महाव्रतादि, वे बहिर् हैं, बाह्यभाव हैं, उनमें वर्तता है, वह मिथ्यादृष्टि है। पण्डितजी! कठिन काम

भाई! कठिन काम जगत को। सुनने में कठिन लगे। बापू! मार्ग तो यह है, भाई! समझ में आया? अरे! दुनिया, देखो न! कितनी दुःखी है, उसकी इसे खबर भी नहीं। जन्म-जरा-मरण के दुःखों में आकुलता जो है... आहाहा! उस आकुलता से सिंक रहा है। समझ में आया? यह सेठ हो, राजा हो, या देव हो, परन्तु भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु निजात्मा सच्चिदानन्द प्रभु का आश्रय नहीं, उसे उस विकल्प का ही आश्रय और आकुलता का आश्रय है। वह दुःखी है, जलता है—सुलगता है। कषाय की अग्नि के अंगारों से... आहाहा! सिंकता है, उसे यहाँ **बहिरात्मा** कहा है।

ऐसा हे शिष्य! तू जान। ऐसा कहा न? है न पाठ? **'इदि विजाणीहि'** ऐसा आदेश किया है गुरु ने। कुन्दकुन्दाचार्य भगवान महासन्त महन्त अनन्त आनन्दादि में लवलीन है। समझ में आया? वे ऐसा कहते हैं कि भाई! यह परमानन्दस्वरूप प्रभु आत्मा चैतन्यविलास और आनन्द के विलास का धाम, उस ओर का जिसका झुकाव हुआ नहीं, उसके सन्मुख में आया नहीं, उससे विमुख होकर द्रव्यलिंगी साधु पंच महाव्रतादि पालता हो, तो भी वह बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! कहो, भीखाभाई! यह किसी व्यक्ति के लिये बात नहीं, यह तो वस्तु का स्वरूप ऐसा है। समझ में आया?

भगवान आत्मा... अहो! अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द के धामस्वरूप प्रभु का जहाँ अनुभव नहीं, उसे अनुसरकर ध्यान नहीं, उस जीव को विकल्प की क्रियायें अन्दर बहुत वर्तती हो महाव्रत की, तप की, अपवास की, महीने-महीने के अपवास करे, परन्तु वह सब स्वभाव की सन्मुखता को छोड़कर, उन विकल्प की वृत्तियों में वह वर्तता है। वह निरन्तर विकल्प की वृत्तियों में वर्तना उसका है। उन धर्मी का निरन्तर आत्मा में वर्तना है। दो भाग। समझ में आया? अरेरे! ऐसा मार्ग है, ऐसा अभी जानने में न आवे, उसके लक्ष्य में भी न आवे, तो वह सन्मुख होकर एकाग्रता तो कहाँ से करे? समझ में आया?

इन दो ध्यानोंरहित... ओहो! सन्तों ने भी जगत की करुणा करके जगत को खींचा है। भाई! तू कहाँ दौड़ गया है? तेरे निजघर को भूलकर तू कहाँ दौड़ गया है? भाई! दुःख के रास्ते गया है तू। समझ में आया? चाहे तो अशुभभाव की क्रिया हो, चाहे

तो शुभ दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा की क्रिया के परिणाम हो, परन्तु वह सब दुःख के रास्ते दौड़ गये हैं। आहाहा! ऐई! भगवान! तेरी दौड़ अन्दर में है, वहाँ जाना चाहिए, वह तो गया नहीं... समझ में आया? और बहिर्बुद्धि से ऐसे विकल्प में वर्त रहा है, वह बहिरात्मा है। आहाहा! समझ में आया? **ऐसा हे शिष्य!** ऐसा गुरु कहते हैं। तू '**विजाणीहि**' पाठ में है, ऐसा है न! '**विजाणीहि**' (अर्थात्) ऐसा जान। ऐसा तू ज्ञान कर तो सही, ऐसा ज्ञान कर। वह बतलाने में आता है अवश्य न, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

भगवान आत्मा में एकाकार वर्ते भले आंशिक, भले विकल्पादि हो, परन्तु उसमें उसका वर्तना नहीं, (परन्तु) जानना है। और वर्तन तो स्वभाव की अन्तर में एकाग्रता है। उसे तू धर्मात्मा जान। और ऐसे स्वभाव को छोड़कर बाहर की अकेली क्रिया करता हो, छह-छह महीने के अपवास, तेज धूप में नग्न शरीर जलता हो, उसमें खड़ा हो, परन्तु उसकी वृत्ति बाह्य के ऊपर है। ऐसे शुभराग में वर्तनेवाले जीव को भी तू 'बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि मूढ़ मन्दमति है' ऐसा जान। आहाहा! पण्डितजी! उसमें कहीं दूसरी बात तो है नहीं। **अब यहाँ टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:**

कश्चिन्मुनिः सततनिर्मलधर्मशुक्ल-
ध्यानामृते समरसे खलु वर्ततेऽसौ।
ताभ्यां विहीनमुनिको बहिरात्मकोऽयं
पूर्वोक्त-योगिन-महं शरणं प्रपद्ये ॥२६०॥

मुनिको अर्थात् तुच्छ ऐसा है, ऐसा अर्थ है।

कहते हैं कि **श्लोकार्थः कोई मुनि सतत-निर्मल...** भगवान आत्मा आनन्द का धाम प्रभु, अनन्त-अनन्त ज्ञान का विलासस्वभाव, ऐसे आत्मा में दृष्टि करके एकतारूप से निरन्तर वर्तता है, वह **धर्मशुक्ल-ध्यानामृतरूपी समरस में सचमुच वर्तता है;...** ऐसा कहते हैं। क्या कहते हैं यह? कहते हैं कि यह भगवान आत्मा अन्तर में अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द के स्वभाव से भरपूर प्रभु है, उसमें जो एकाग्र होकर वर्तता है, निरन्तर उसमें रहता है... आहाहा! भले उसे पंच महाव्रतादि के विकल्प आदि हो, परन्तु उसका—धर्मी का वर्तन तो आत्मा के अन्तर में होता है। वह विकल्प में वर्तन होता

नहीं। आहाहा! समझ में आया? **मुनि सतत-निर्मल धर्मशुक्ल-ध्यानामृतरूपी...** अमृत है, कहते हैं। भगवान, अमृत अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप का ध्यान अर्थात् एकाग्रता, वह तो अमृतस्वरूप दशा में आया। अमृत का स्वाद आया और अमृतमय दशा हुई। आहाहा! समझ में आया?

जो निर्मल धर्मशुक्लध्यानामृत, ऐसा समरस... आहाहा! कहते हैं कि वह विकल्प जो है दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा—वह राग तो विषमरस है, वह समरस नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा आनन्द की मूर्ति प्रभु समस्वभावी वीतराग, उसमें अन्तर सच्चिदानन्द में वर्ते, उसका ध्यान अमृत और समरसरूपी है। आहाहा! समझ में आया? धर्म और शुक्लध्यान अमृतरूपी... इन दोनों ध्यानों को अमृतरूपी कहा है, समरस कहा है। आहाहा! उसका नाम समता। समझ में आया? सामायिक में 'समता का लाभ' कहते हैं न, वह यह समता। दो घड़ी बैठकर 'णमो अरिहंताणं' करके सामायिक करके उठे, हो गयी सामायिक। धूल भी सामायिक नहीं, सुन न! धूल अर्थात् उत्कृष्ट पुण्य का विकल्प जो उस भूमिका में होता है, वह भी उसे नहीं होता। आहाहा!

समभाव ऐसा प्रभु आत्मा, उसमें वर्तती दशा में जो समभाव—समरस—ध्यानामृतरूपी समरस प्रगट हो, उसमें वे मुनि वर्तते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह भारी कठिन लगे। यह तो बहुत एल.एल.बी. और एम.ए. की बातें हैं। भाई! यह तो अभी पहली श्रेणी की (बात है)। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय अमृत का सागर प्रभु है, आहाहा! उस अमृत का समुद्र आत्मा है। उसमें पुण्य-पाप के विकल्प तो जहर हैं। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं कि ऐसा जहाँ अमृतस्वरूप समरसभाव प्रगट हुआ है, उसमें प्रवर्तता है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? धर्मात्मा तो, समरसभाव प्रगट हुआ है, उसमें वास्तव में वर्तता है, ऐसा कहा, अर्थात् कि वह रागादि हों, उनमें वर्तता नहीं। वास्तव में तो यहाँ वर्तता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? सच्चे सन्त मुनि धर्मात्मा और समकिती से लेकर सब, अन्तर के स्वभाव के आश्रय से जो अपनी जाति की भात पड़ी अन्दर और समरसदशा प्रगट हुई, धर्मी जीव तो वास्तव में उसमें ही वर्तता है। उसे राग और शरीर का संयोग दिखता है, तथापि उसका वर्तन उसमें नहीं है। क्योंकि उसे वह स्पर्शता नहीं। आहाहा!

देखो! यह दशा। अभी बात को सुनी भी न हो, कैसा धर्म, किसे कहना और पूरे दिन धर्म... धर्म... ओहोहो! शत्रुंजय यात्रा की, सम्मेदशिखर यात्रा की, व्रत पालन किये और अपवास किये और वर्षीतप किये, लो हो गया धर्म। आहाहा!

मुमुक्षु : सर्वत्र यह है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वत्र यह है? वर्षीतप किया नहीं न घर से कभी? करने की तैयारी थी, वहाँ रह गया, ऐसा कहते हैं। आहाहा! आत्मा आनन्दमूर्ति में एकाग्र होना और अमृत आनन्द का स्वाद आना, इच्छा की उत्पत्ति न हो, उसे समरसरूपी तत्त्व कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा! यह सब व्याख्या ही अलग परन्तु यह। आहाहा! अलग ही होगी न! आहाहा! देखो न! बाहर की बातें सुने वहाँ ऐसा वैराग्य... वैराग्य हो जाये चारों ओर। कल लिखा था भाई ने। चन्दुभाई... पूनम का दिखाव देख सकते नहीं थे। जलाने गये न जलाने, भाई! दूसरे नम्बर का हिम्मतभाई का। यह निरंजन अमेरिका से आया, उससे बड़ा। वह निरंजन तो अमेरिका है, वह भरत था। गया था वहाँ कि... मुख कुचल गया। कहाँ पूनम... चूरा उड़ गया था। यह सब यहाँ... आहाहा! यह दशा देह की। आत्मा उसमें एकत्वबुद्धि करे तो वह भी चूरा उड़ जाता है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा तो मुनियों को भी घानी में पीला है। ओहो... परन्तु वे पीलाये नहीं उसमें, हों! उस समय भी वे तो आत्मा के आनन्द में वर्तते थे, ऐसा कहते हैं, समरस में वर्तते थे। आहाहा! चन्दुभाई! देखो! यह दशा, धर्म की यह दशा। पाण्डवों को लोहे के धगधगते गहने पहनाये। शत्रुंजय (के ऊपर)। आत्मा के ध्यान में मस्त पाण्डव पाँच योद्धा। महीने-महीने के उपवास करते आनन्दकन्द छठवें-सातवें गुणस्थान में, हों! भगवान का मोक्ष हुआ, ऐसा सुना। श्वेताम्बर में ऐसा है। वे शत्रुंजय पर चढ़ गये। अरे! भगवान मोक्ष पधारे, नेमिनाथ भगवान। अरे! उनकी अस्ति में भी द्वारिका जल गयी, यादव जले, रानियाँ जलीं, हाथी जले, घोड़े जले। आहाहा!

अरे! भगवान के दर्शन का विकल्प हमारे था। भगवान मोक्ष पधारे गिरनार से, ऐसा सुना, ऊपर चढ़ गये। अन्तर सन्मुख होकर आनन्द में लीन होते हैं। दुर्योधन का

भानेज आकर लोहे के धगधगते गहने (पहनाये)। मुकुट, गले में हार धगधगते, पैर में, कलाई में लोहे के गहने। वहाँ कहीं नहीं वे, हों! वे तो अन्तर आनन्द का समरस प्रगट हुआ है न! धर्मध्यान और शुक्लध्यान द्वारा समतारस, अकषायभाव, वीतराग परिणति, उसमें वे वर्तते हैं। आहाहा! यह तो प्रतिकूलता की बात की, परन्तु अनुकूलता के अवसर में भी वे अपनी परिणति में ही वर्तते हैं। उनकी कोई प्रशंसा करता हो, मक्खन चुपड़ता हो... समझ में आया? आहाहा! धर्मात्मा तो अपना स्वरूप आनन्दस्वरूप प्रभु सच्चिदानन्दस्वरूप है अपना—सत्-शाश्वत्, ज्ञान और आनन्द का धाम। ऐसा परमात्मा स्वयं, उसमें जो वर्तता है, वह बाहर में वर्तता ही नहीं। समझ में आया?

किसी ने प्रश्न किया था, उन्हें ऐसा होता है तो जानते हैं या नहीं? वह तो कोई विकल्प आवे और लक्ष्य गया तो जाने, वरना तो आनन्द में वर्तते हैं। विकल्प आवे, उसे जाने, परन्तु विकल्प में वर्तते नहीं। आहाहा! ऐसी दशा है, बापू! भगवान आत्मा को मुक्ति का उपाय यह है। समझ में आया? यह कायरों का वहाँ काम नहीं, हों! यह तो शूरवीर जिस रास्ते चढ़े, अफरगामी उसका यह रास्ता। उस रास्ते से पूरा करके परमात्मा होनेवाले हैं। समझ में आया?

यहाँ तो गुरु ऐसा कहते हैं कि जो कोई आत्मा के आनन्दस्वभाव में वर्तता है, वह तो सन्त-मुनि है। उस आनन्दस्वभाव को छोड़कर जो कोई विकल्प में—राग में, पुण्य परिणाम में वर्तता है, उसे तू द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि जान। आहाहा! समझ में आया? यह मार्ग दूसरा, भाई! दोह्यला मार्ग है। सहज स्वभाव की अपेक्षा से सोह्यला (है, परन्तु) अनन्त काल से नहीं किया हुआ, (इसलिए दोह्यला है)। ऐसा जो मार्ग पूरी दिशा बदल डालना, यह राग और पर्याय और पर के ऊपर बुद्धि है, उसे स्वभाव में एकताबुद्धि करना, वह समरस परिणाम में धर्मात्मा वर्तता है। आहाहा! वास्तव में तो सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान में भी विकल्प होने पर भी, विकल्प से विरक्त है और स्वभाव में रक्त है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह चौथे की बात चलती है। छठवें में तो उत्कृष्ट समरस है।

आहाहा! भगवान निरन्तर नित्य है न। तो जहाँ नित्य का आश्रय होकर दृष्टि प्रगट हुई, ज्ञान-शान्ति निरन्तर है। धर्मी को तो वह अपने निरन्तर निर्मल पर्याय में ही उसका वर्तन और वर्तना है। आहाहा! उसे व्यवहार के विकल्प आवे, अशुभराग भी कोई आवे, उसका उसमें वर्तना नहीं। समझ में आया? और जो राग में वर्तता है, वह बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि है। हाँ, परन्तु वह ऐसा मानता है कि हम यह महाव्रत पालते हैं, दया करते हैं, धर्मध्यान किया 'णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं', शत्रुंजय की यात्रा की, इसलिए हमारे धर्म हो गया।—ऐसा नहीं है। वह सब राग की क्रिया में एकता से वर्ते, वह वर्ते, वही एकता है। उसमें वर्तना, वही एकता है। उसमें न वर्ते, वह तो स्वभाव के साथ एकता है। समझ में आया? ऐसा मार्ग वीतराग का है, भाई! अर्थात् कि तेरा है। समझ में आया?

यह दो... कहते हैं कि समरस में वर्ते **(वह अन्तरात्मा है;) इन दो ध्यानों से रहित तुच्छ मुनि...** देखो! भाई ने कहा न **मुनिको।** क्या कहा **मुनिको** का अर्थ? तुच्छ। मुनि नहीं। वह तुच्छ मुनि। यहाँ तो हमारे वह 'तेच्छ' कहाँ से निकाला यह बात करनी है, ऐसा। आहाहा! मुख्यरूप से मुनि की बात ली है न! गौणरूप से चौथे-पाँचवें गुणस्थान (आदि) सब बात इसमें आ जाती है। अरेरे! यह **दो ध्यानों से रहित...** जिसे नहीं स्वभाव के जघन्य आश्रय का धर्मध्यान और उत्कृष्ट आश्रय का शुक्लध्यान, इन दो (ध्यान) रहित साधु हो या धर्मी नाम धरानेवाले श्रावक हों, वे सब तुच्छ हैं। आहाहा! समझ में आया?

इन दो ध्यानों से रहित... अर्थात् स्व-चैतन्य भगवान के आश्रयरहित है, जिसका अकेला आश्रय राग में वर्तता है, वह तो तुच्छ मुनि, मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? कितने ही ऐसा कहते हैं कि द्रव्यलिंगी और भावलिंगी की पृथक्ता अभी नहीं देखा जाता। कहो! यह भगवान तो ऐसा कहते हैं। भाई! बापू! तू पक्ष से न कह। क्योंकि अभी, द्रव्यलिंगी है और भावलिंगी है, वह तो केवली जाने, इसके अतिरिक्त न जाने। आहाहा! परन्तु इसका अर्थ हुआ कि स्वयं को अभी खबर नहीं कि मैं द्रव्यलिंगी या भावलिंगी हूँ। इसका अर्थ हुआ कि वह मिथ्यादृष्टि है। इसका अर्थ ही यह है। आहाहा! कठिन काम, बापू, हों! दूसरे को दुःख भी लगे। बापू! भाई! मार्ग तो ऐसा है, हों! तू

अनुकूलता से मान या प्रतिकूलता जानकर मान, परन्तु मानना तो यह पड़ेगा। आहाहा! समझ में आया?

यह तो सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ वीतराग परमेश्वर तीर्थंकरदेव अरिहन्त देवाधिदेव का यह मार्ग है। यह कहीं ऐरे-गैरे कायर काँप जाये, उनका मार्ग नहीं। आहाहा! कहते हैं... आचारांग में टुकड़ा आता तब कहते। 'अन्यत् दूरणो जरो मग्गो...' लिखा था तुमने... उसमें आता था न। किसमें से डालते थे तुम? ....ऐसा एक शब्द है। उसमें तो साधारण उसका अर्थ निकालते थे वहाँ। अरे वीरा! तेरा मार्ग बहुत मुश्किलवाला—दुष्कर है। परन्तु है, ऐसा तू अफरगामी। जिस रास्ते चढ़ा, वहाँ से फिरे नहीं, ऐसा तेरा मार्ग है। पहले यह लिखते, वीरवाणी में लिखते। व्याख्यान के टुकड़े देते हों न। (संवत्) १९८२ के वर्ष। वढवाण... वढवाण। वढवाण में ८२ के वर्ष में यह व्याख्यान में आते थे। जैनतीर्थ में आता था? जैनप्रकाश में। ८० में पहले यहाँ से आता था बोटाद से। दामोदर लिखते। दामोदर न्यालचन्द। (संवत्) १९८०। वह वीरवाणी। वहाँ भी चातुर्मास में यह कहा न। वहाँ बोटाद में सभा भरे १५००-१५०० व्यक्ति ऐसे पूरी भीड़। शान्त... शान्त... ८० की बात हों अन्तिम। चातुर्मास अन्तिम ८० का वहाँ था। ४७ वर्ष हुए।

यहाँ कहते हैं कि आहा! भगवान! जिसे अन्तर भगवान पूर्णानन्द का आश्रय और अवलम्बन नहीं, अर्थात् कि जिसे स्वद्रव्य की अन्तर में एकता नहीं... यह तो और याद क्या आया? '**एयत्तविहत्तं**' इस सब व्याख्या का स्पष्टीकरण करते हैं। (समयसार) पाँचवीं गाथा में आता है न भाई!

तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।
जदि दाएज्ज पमाणं चुक्केज्ज छलं ण घेत्तव्वं ॥५॥

आहाहा! दूसरी गाथा में लिया न... कहा कि यह मार्ग कहता हूँ। भगवान आत्मा यह दया, दान, व्रत, पूजा के विकल्पों से प्रभु भिन्न है। वे तो विभाव हैं, विभाव से स्वभाव भिन्न है। आहाहा! ऐसा स्वभाव का सागर भगवान का आश्रय करके, अवलम्बकर, ध्येय बनाकर ध्यान—एकाग्रता जिसने प्रगट की, वह धर्मात्मा है। आहाहा! वह अन्तरात्मा है, ऐसा कहा न!

इन दो ध्यानों से रहित तुच्छ मुनि बहिरात्मा है। आहाहा! दो ही भाग किये हैं। जो कोई वस्तु भगवान आत्मा के स्वभाव में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकाग्रता में वर्तता है, उसमें वर्तता है वह अन्तरात्मा। बाकी उससे रहित राग में—व्यवहार की क्रियाओं में शुभभाव में वर्ते, वह बहिरात्मा है। समझ में आया? अरे! ऐसी पद्धति की भी इसे खबर नहीं होती (कि) इस मार्ग का ऐसा स्वरूप है। परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकर इन्द्र और गणधरों के समक्ष में, करोड़ों मनुष्यों के समुदाय में प्रभु की वाणी ऐसी आयी थी। समझ में आया? बात यह है।

दो ध्यानों से रहित तुच्छ मुनि बहिरात्मा है। आहाहा! अरे! स्वयं मुनि अपनी दशा का वर्णन करते हैं। अरे! **मैं पूर्वोक्त (समरसी) योगी की शरण लेता हूँ।** ऐसा करके... मुझे तो समरसीभाव वर्तता है, उसमें मैं वर्तूं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! शरण ग्रहण करता हूँ। आहाहा! **पूर्वोक्त (समरसी)...** जिसे भगवान आनन्द के आश्रय से आनन्द प्रगट हुआ है, ऐसे मुनि का शरण ग्रहण करूँ। इसका अर्थ कि उसकी परिणति में मैं हूँ। आहाहा! समझ में आया? मैं राग में नहीं, मैं व्यवहार में नहीं, मैं शरीर में नहीं, मैं निमित्त में—संयोग में नहीं। राग में नहीं, फिर निमित्त में कहाँ से आया वह? समझ में आया? अरे! मैं, पूर्वोक्त जो मुनि को अन्तरात्मा कहा, ऐसे **योगी की शरण लेता हूँ।** वह समरसभाव ही मेरा है, दूसरा मेरा भाव नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अब एक उत्कृष्ट बात रखते हैं।

इस १५१वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए... १५१ वीं गाथा है। गाथा चलती है उसकी वह। **टीकाकार मुनिराज द्वारा श्लोक...** कुछ दूसरे प्रकार का है, इसलिए कहा। है तो १५१ गाथा के बाद के दोनों श्लोक। वह श्लोक अमुक कहा, यह श्लोक जरा बहुत निश्चय का स्वरूप बतलाने के लिये है। है तो १५१ गाथा के दोनों श्लोक—कलश। **द्वारा केवल शुद्धनिश्चयनय का स्वरूप कहा जाता है:—** आहाहा!

बहिरात्मान्तरात्मेति विकल्पः कुधियामयम्।
सुधियां न समस्त्येष सन्सार-रमणी-प्रियः ॥२६१॥

आहाहा! अरे! भगवान **शुद्ध आत्मतत्त्व...** अभेद एकाकारस्वरूप, उसमें **बहिरात्मा**

और अन्तरात्मा, ऐसा यह विकल्प कुबुद्धियों को होता है;... पर्यायबुद्धिवाला ऐसे विकल्प करता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? वस्तु अभेद त्रिकाल आनन्दकन्द का नाथ, वह तो परम स्वाभाविक ज्ञायकभाव है। उसमें ऐसे पर्याय के भेद कहना और विकल्प उठाना, (वह कुबुद्धि को होता है), ऐसा कहते हैं। भाई! बहिरात्मा और अन्तरात्मा, ऐसे यह विकल्प कुबुद्धियों को—मिथ्यादृष्टि को होते हैं, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! पर्याय में जाता है, उसे ऐसे दो भाग दिखते हैं, ऐसा कहते हैं। द्रव्य में जाये उसे दो भाग दिखते नहीं। आहाहा! शुद्ध भगवान आत्मा परम स्वाभाविक ज्ञायकभाव नित्यानन्द प्रभु एक समय की पर्यायरहित तत्त्व, ऐसे तत्त्व में, पर्याय में खड़े रहकर ऐसे दो भाग करना (कि) यह बहिरात्मा कहलाता है और यह अन्तरात्मा कहलाता है, ऐसा जो विकल्प—राग उठाना वह मिथ्यादृष्टि को होता है। गजब बात है! बहुत ऊँची बात है। बात ही ऐसी है। है ऐसी बात है, ऊँची... करके... आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, भगवान आत्मा एकरूप त्रिकाली आनन्द का नाथ भगवान, ऐसी द्रव्यदृष्टि छोड़कर (और) पर्याय में रहकर, यह पर्याय दो प्रकार की है, यह है और यह है—ऐसा विकल्प उठाता है, वह कुबुद्धि है। अरे! यह तो अजर प्याला की बातें हैं। समझ में आया? पर्याय में खड़ा रहकर ऐसा अन्तरात्मा और ऐसा बहिरात्मा—ऐसा जो विकल्प है, वह तो मिथ्यादृष्टि का विकल्प है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा कठिन मार्ग, भाई! कि यह मार्ग तो इसमें है या नहीं? या नया है? बहुत से कहते हैं कि सोनगढ़ से निकाला ऐसा। ऐसा कहते हैं, लो। यह लिखा हुआ कब का है यह? परन्तु यह यहाँ था। उसमें है न? उसका दूसरा अर्थ करो नहीं तो... कहा था एक बार। आहाहा! प्रभु! ऐसा मार्ग तेरा है, भाई! तेरा आत्मा मीठा महेरामण आनन्द से... आहाहा! वह झोले-डोले एकरूप भगवान है वह। ऐसे एकरूप में पर्यायबुद्धि के दो प्रकार करके विकल्प करना नहीं। आहाहा! पर्याय का... ऐसा है... आहाहा! ऐ भीखाभाई! ऐसी बातें हैं, बापू! आहाहा!

भगवान मिले नहीं, (परन्तु स्वयं) भगवान ही हो, स्वयं भगवान स्वयं है। उसे मिला—भेंट हुई, वह भगवान होता है—हो जाता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा स्वरूप भगवान का होगा? वीतराग ने ऐसा कहा होगा? अभी तक तो दूसरा सुनते थे।

यह कुन्दकुन्दाचार्य कहे या भगवान कहे—सब एक ही है। 'मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी, मंगलं कुंदकुंदार्यो...' जिसे तीसरे नम्बर में तो... पहले भगवान, दूसरे गणधर और तीसरे वे। ऐसा आया है न मांगलिक में। 'कुंदकुंदार्यो, जैनधर्मोस्तु मंगलं।' आहाहा! ऐसी बात अन्यत्र नहीं, उसे भी इसके साथ जोड़ देना, आहाहा! उसका समन्वय करना कि वह भी सच्चा और हम भी सच्चे। अरे प्रभु! ऐसा नहीं होता, भाई! समझ में आया? सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने स्वरूप का पूरा ज्ञान करके जो कहा है, वह ऐसी बात अन्यत्र कहीं नहीं है। समझ में आया?

भाषा लगे ऐसी, समभाव, समाधि, समकित। परन्तु बापू! भाषा है तो क्या हुआ? उसका स्वभाव... आहाहा! हांक मारता है अन्दर से। भगवान! तू तो आनन्दकन्द एक समय में पूर्ण है न, नाथ! उसे और यह भेद करना और पर्याय में खड़े रहकर पर्याय से (देखना) दो भेद यह अन्तरात्मा और यह बहिरात्मा—वह वस्तु में नहीं ऐसा, कहते हैं। समझ में आया? द्रव्य में खड़ा रहकर, अन्तरात्मा की पर्याय को जाने, वह अलग बात है। बहिरात्मपना कैसा होता है, उसे जाने, वह अलग बात है। परन्तु यहाँ तो पर्याय में खड़ा रहकर दो भेद करता है। द्रव्यबुद्धि तो हट गयी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? तूने उसका अनादर किया भाई! आहाहा! पूर्ण... पूर्ण इदं प्रभु आत्मा पूर्ण इदं, पूर्णता का स्वभाव, उसका तूने अनादर करके अंश... अंश के भेद में रुक गया। समझ में आया? जवाहरलालजी! ....कहो, समझ में आया? आहाहा!

शुद्ध भगवान आत्मा एकरूप ध्रुव, उसके पर्याय में रहकर दो भाग करना... द्रव्य में रहकर हो तब तो वह जानता है कि भाग है इतना। समझ में आया? यहाँ तो, उसमें से हटकर यह अन्तर पर्याय ऐसी और यह पर्याय ऐसी और यह पर्याय बहिरात्मा की (ऐसे भेद करता है), ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसा विकल्प करना (नहीं), ऐसा कहना है। उसे जानना, द्रव्य में रहकर पर्याय को जाने, वह तो बराबर है। समझ में आया? इस प्रकार में रुककर अकेला विकल्प ही उठाना और निर्विकल्प चीज़ एकरूप एक ओर पड़ी रहती है, उसकी—अभेद की दृष्टि तो करता नहीं, ऐसा कहते हैं। मार्ग (सुनकर) कायर का तो कलेजा कांप उठे, ऐसा है। 'वचनामृत वीतराग के, परम शांतरसमूल...' यह समरस। 'परम शांतरसमूल, औषध जो भवरोग के, परन्तु कायर को प्रतिकूल।' आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि वह शुभविकल्प है न, वह उत्पन्न करना, वही नपुंसकता है। उसमें और 'यह शुभविकल्प, वह मैं' यह तो नपुंसक की नपुंसकता विशेष है। भाई ने डाला है। यहाँ कहा है, नपुंसक कहा है। सामायिक समता में जाता नहीं, राग में आता है, वह नपुंसक है। पुण्य-पाप के अधिकार (गाथा १५४) में है। क्लीब... क्लीब। आहाहा! वीर्यत्व पालना उसे कहते हैं कि जिस वीर्य में स्वरूप की—समरस की रचना हो। ऐसा आत्मा का वीर्य और आत्मा के बल की शक्ति का ऐसा सामर्थ्य है। ऐसे सामर्थ्य को (न) मानते, न देखते, न रहते, न टिकते, अकेली राग की क्रिया में पर्यायबुद्धि को देखकर, ऐसी पर्याय बहिरात्मा की, ऐसी पर्याय अन्तरात्मा की—ऐसा विकल्प उठावे, वह तो बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि को ऐसा होता है, कुबुद्धि को होता है, ऐसा कहते हैं।

संसाररूपी रमणी को प्रिय ऐसा यह विकल्प,... आहाहा! यह मिथ्यात्व का विकल्प है। वह संसाररूपी रमणी को प्रिय है राग। उस राग में भी संसार का परिभ्रमण हो, ऐसा राग है वह। आहाहा! समझ में आया? आचार्य, मुनि भी बात करते हैं न! संसाररूपी रमणी—स्त्री को प्रिय ऐसा वह राग है। आहाहा! ऐसा विकल्प **सुबुद्धियों को नहीं होता।** सम्यग्ज्ञानी धर्मात्मा को ऐसे भेद में खड़े रहकर विकल्प करना, वह है नहीं। वह तो अभेद में खड़ा है और भेद को जानता है। समझ में आया? यह १५१वीं गाथा के (श्लोक) कहे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण ११, शनिवार, दिनांक - १३-११-१९७१
गाथा-१५२, श्लोक-२६२, प्रवचन-१७६

यह नियमसार, निश्चय परम-आवश्यक अधिकार है। १५२ गाथा। १५१ हो गयी।

पडिकमणपहुदिकिरियं कुव्वंतो णिच्छयस्स चारित्तं।
तेण दु विराग-चरिए समणो अब्भुट्ठिदो होदि॥१५२॥

प्रतिक्रमण आदिक्रिया तथा चारित्रनिश्चय आचरे।
अतएव मुनि वह वीतराग-चारित्र में स्थिरता करे॥१५२॥

मुख्य मुनिपने की बात ली है न! **टीका : यहाँ परम वीतरागचारित्र में स्थित...** सम्यग्दृष्टि तो परम वीतराग (दशा) में स्थित नहीं। आत्मा में स्थित है, परन्तु यहाँ परम वीतरागचारित्र सम्यग्दृष्टि में होता नहीं। समझ में आया? धर्म की पहली सीढ़ी, उसमें यह निश्चय आवश्यक... यह मुनि के आवश्यक की बात है। सम्यग्दर्शन में भी निश्चय आवश्यक स्वद्रव्य के आश्रय से समकित, स्वद्रव्य के आश्रय से ऐसा ज्ञान और स्वद्रव्य के आश्रय से स्वरूप में आंशिक स्थिरता, यह छठे गुणस्थान की सत् क्रिया और निश्चय आवश्यक उसे कहा जाता है। समझ में आया? पाँचवें से आगे बढ़कर, उस स्वरूप का आश्रय अन्दर करके, एकाग्र होकर जितनी श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति स्व के आश्रय से हो, उतनी उसकी निश्चय आवश्यक क्रिया है। मुनि को ऐसी क्रिया होती है।

परम वीतरागचारित्र में स्थित परम तपोधन का स्वरूप कहा है। जिसने ऐहिक व्यापार (सांसारिक कार्य) छोड़ दिया है,... देखा? ऐहिक व्यापार अर्थात् कि रागादि के परिणाम जिसने छोड़े हुए हैं। साधारण अर्थ फिर किया है, वह सांसारिक कार्य। संसार के कार्य तो उसे होते नहीं, परन्तु राग का भी कार्य जिसने छोड़ा है, ऐसा यहाँ तपोधन लिया है। **ऐसा जो साक्षात् अपुनर्भव का (मोक्ष का) अभिलाषी...** आत्मा की अत्यन्त मुक्त दशा, परम आनन्ददशा का अभिलाषी। **महामुमुक्षु...** मुनि है न! चौथे

गुणस्थान में मुमुक्षु है, पाँचवें में मुमुक्षु मध्यम, यह तो महामुमुक्षु। **सकल इन्द्रिय व्यापार को छोड़ा होने से...** कहते हैं कि इन्द्रियों के ओर का झुकाव और इन्द्रियों का व्यापार जिसे अन्दर से छूटा है। वह होने से **निश्चयप्रतिक्रमणादि सत्क्रिया को करता हुआ स्थित है...** पाठ में है '**प्रतिक्रमणप्रभृतिक्रियां**' उसका अर्थ किया कि प्रतिक्रमण आदि सत्क्रिया। समझ में आया?

आत्मा पूर्णानन्द प्रभु में एकाग्र होना, उसका आश्रय लेकर लीन होना, उसे यहाँ सत्क्रिया कहा जाता है। व्यवहार प्रतिक्रमणादि के विकल्प, वह तो असत्क्रिया है वास्तव में तो। लो, यहाँ असत्क्रिया आयी वापस। समझ में आया? वह अभूतार्थ क्रिया है। कल कहा था। तुम तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान लेकर ही चलते हो। पहली बात। ...लेकर नहीं। पढ़ा कल, नहीं? ऐसा कि यह बाह्यत्याग है, वह चारित्र है, वह तो कुछ कहते नहीं। आहाहा! उसका आया है कल-परसों। सम्यग्दर्शन-ज्ञान लेकर लो, ऐसा हुकमचन्दजी को कहा है। ऐसा कि जहाँ-तहाँ सम्यग्दर्शन-ज्ञान... सम्यग्दर्शन-ज्ञान, वह हो तो सब (हो), ऐसा कहकर (उसे) लेकर चलते हो। कहाँ लेकर चलना? आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो बाह्यत्याग तो कुछ चीज़ नहीं, परन्तु अन्दर राग की मन्दता का भाव, वह भी कुछ वस्तु नहीं। क्योंकि जो वस्तु प्रभु आत्मा है, वह तो वीतराग जिनस्वरूप है, उसके आश्रय से जो क्रिया हो, वह जिनस्वरूपी सत्क्रिया है, उसे यहाँ सच्चा आवश्यक कहा जाता है। ऐसी बात है। क्या हो? अपनी महत्ता सूझती नहीं और महत्ता का आश्रय लेना, वही उसकी क्रिया है, यह बात गिनती में दिखती नहीं। यह सर्वत्र बाहर शरीर, वाणी, मन (आदि) बाहर के परमाणु हैं, वह जगत की चीज़ है, उसमें तो आत्मा नहीं (कि) जिसमें वह व्यवहार से हो। उसमें राग की मन्दता की क्रिया हो, वह वास्तव में लौकिक क्रिया है, व्यवहार क्रिया है, वह कहीं निश्चय का कारण नहीं। समझ में आया? आगे कहेंगे। जो ऐसी क्रिया निश्चय प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान आदि न कर सके अन्दर में, तो भी श्रद्धा तो रखना कि स्वभाव के आश्रय से होनेवाली क्रिया, वही मुक्ति का कारण है। गाथा आयेगी बाद में। समझ में आया?

महामुमुक्षु सकल इन्द्रिय व्यापार को छोड़ा होने से... उसे इन्द्रिय व्यापार की

ओर का झुकाव ही छूट गया है, कहते हैं। अतीन्द्रिय भगवान आत्मा, वह निश्चय प्रतिक्रमण आदि सत्क्रिया... पाठ में था '**प्रतिक्रमणप्रभृतिक्रियां**' वह आदि क्रिया। फिर डालना पड़ा कि यह सत्क्रिया की बात है। क्यों? यह चारित्र निश्चय है न यह? 'निश्चय चारित्र' है न शब्द बाद में। '**कुव्वंतो णिच्छयस्स चारित्तं**' ऐसा। समझ में आया? प्रथम सम्यग्दर्शन (अर्थात्) शुद्ध चैतन्यद्रव्य रागरहित निष्क्रिय अथवा वर्तमान परिणाम रहित चीज़ ऐसा अखण्ड अनुभव में आये बिना, उसमें स्थिर होना है, वह चारित्र उसे कहाँ से आवे? समझ में आया? जिसमें स्थिर होना है, वह चीज़ ही जहाँ दृष्टि और अनुभव में आयी नहीं... समझ में आया? तो स्थिर कहाँ होना है? स्थिर तो आत्मा में होना है। क्रिया राग की क्रिया के लिये तो यहाँ निषेध करते हैं। आहाहा!

निश्चयप्रतिक्रमणादि... प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना, समाधि, भक्ति इत्यादि जो अधिकार आये। वह सब सत्, आत्मा अन्तर्मुख होकर स्व-आश्रय से जो वीतरागी पर्याय प्रगट हो, उसे यहाँ सत्क्रिया कहा जाता है। उसकी अपेक्षा से तो व्यवहार क्रिया... आगे कहेंगे अब बाद में १५३ में। वह तो शुभविकल्प है, स्वाध्याय है, राग है। आहाहा! समझ में आया? वचनमय प्रतिक्रमण... यहाँ निश्चय कहना है न! इसलिए फिर वचनमय प्रतिक्रमण की व्याख्या करेंगे कि वह भी पुद्गलमय क्रिया है। कहो! है तो अन्दर राग वह, परन्तु वचनमय शब्द के आदि सब आलोचना, प्रतिक्रमण और... कहेंगे ऐसा कि महामुनियों ने निजात्म (भावना) के लिये रचा हुआ है यह तो। उसे सुनते हुए, वह तो पुद्गल की क्रिया है, कहते हैं। समझ में आया? और उसके लक्ष्य में भी राग का ही भाग उत्पन्न होता है। वह राग भी वास्तव में तो पुद्गल ही है, आत्मा नहीं, स्वभाव की दृष्टि से। समझ में आया?

कहते हैं कि तेरी मुक्ति की क्रिया तो यह एक ही है। शरीर सम्बन्धी की क्रिया नहीं, वह तो जड़ है। कहो, वह बात यह। पण्डितजी! हाथी को जीव कहना, शरीर को अजीव नहीं कहना। मृतक कलेवर को—हाथी के शरीर को अजीव कहना, जीवित को तो जीव कहना। अरे, भगवान! कहाँ है तू प्रभु? कहाँ गया तू? कहीं गया नहीं। माना है कि यह शरीर की क्रिया मेरी है। समझ में आया? कहो, जीवित शरीर हो, तब तक शरीर को जीव कहो, मर जाने के पश्चात् उसे अजीव कहो। अरेरे! ऐसी चर्चा जैनदर्शन

में ? ऐ जेठाभाई ! आहाहा ! यहाँ तो राग की क्रिया को भी उसकी क्रिया नहीं (कही), सत्क्रिया नहीं, वह तो असत्क्रिया है। व्यवहारनय की असत्यार्थ—अभूतार्थ क्रिया है। आहाहा ! बापू ! मार्ग तो ऐसा है।

निश्चयप्रतिक्रमणादि... स्वरूप भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द का उसका स्वरूप है। उस स्वरूप में एकाग्र होना निर्विकल्पदशारूप से—वीतरागी परिणतिरूप से, उसे यहाँ सच्ची धार्मिक क्रिया कि जो मुक्ति का कारण है, उसे क्रिया कहते हैं। लो, यह क्रिया... क्रिया कहते हैं न ! आहाहा ! उसे छोड़कर यह व्यवहार अकेली क्रिया है, वह त्याग चारित्र है और उसे तुम मुक्ति का कारण मानो। लो, और ऐसा कहते हैं। आहाहा ! भाई ! तेरा स्वरूप है, उसका तुझे माहात्म्य आता नहीं। और यह क्रियायें बाहर के त्याग की, मन्द राग की, भले अन्दर मन्द राग—शुभभाव हो, उस क्रिया का माहात्म्य है, तब तक तो मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया ? एक तो सांसारिक कार्य छोड़े हैं और साक्षात् मुक्ति का महा-अभिलाषी मुमुक्षु है, सकल इन्द्रिय की ओर का (लक्ष्य) सब छोड़ा है, अब रहा अतीन्द्रिय भगवान आत्मा।

यह आ गया न ! '**जो इंदिये जिणित्ता...**' (समयसार) ३१वीं गाथा में। यह जड़ इन्द्रियाँ, खण्ड-इन्द्रिय और विषय सामने—यह सब इन्द्रियाँ हैं। आहाहा ! उसके सामने भगवान अकेला अतीन्द्रिय आत्मा है। वहाँ और उसने ऐसा कहा कि पंचेन्द्रिय के यह जड़ का विषय है, वह आत्मा का न हो तो अन्दर... होकर चाहे जो भोगो। कहो ! भाई ! यहाँ भारी विवाद। (आत्मा) अतीन्द्रिय है, यह जड़ तुम कहते हो और जड़ की परिणति सब जड़ है। उसमें विषय का भोगना, वह जड़ का हुआ, आत्मा को कुछ लगेगा नहीं। ले ! ऐसे तर्क किये हैं। अरे भगवान ! वह तो जड़ ही है, परन्तु जो खण्ड-खण्ड इन्द्रिय एक विषय को बतलावे, ऐसा ज्ञान का खण्ड—अंश, वह भी पर है। पर्यायबुद्धि में जाता है न अंश में। आहाहा ! इन्द्रिय में ही जाता है, वह स्वयं इन्द्रिय ही है। समझ में आया ? आहाहा ! वह आत्मा नहीं।

जो इन्द्रिय का—भावेन्द्रिय का खण्ड—भाग एक-एक को जाने ऐसा भाग, वह भी इन्द्रिय है, वह आत्मा नहीं। आहाहा ! इसीलिए उसने भावेन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय, उसकी ओर का विषय छोड़ा होने से... ऐसा है। क्या हो ? जगत के बहुत लोग न माने, इसलिए

कहीं सत्य सफेद-पीला हो जाये? लाखों-करोड़ों-अरबों लोग दूसरा असत्य माने, इससे कहीं वह सत्य हो जायेगा? सत्क्रिया है या नहीं? आहाहा! कहो, भीखाभाई! आहाहा! भगवान! तू महासत् है न प्रभु! जगत का। आहाहा! उस महासत् में महासत्-स्वभाव—स्वरूप आनन्द और ज्ञानादि के भाव सत्रूप पड़े हैं। उसका अन्तर में आश्रय लेकर जो आत्मा वस्तु और उसकी शक्तियाँ—गुणों के अवलम्बन में जो प्रतिक्रमणादि क्रिया होती है, उसे यहाँ सत्क्रिया कहा जाता है। समझ में आया?

अरे! चौरासी के अवतार में दुःखी हुआ, स्वर्ग में भी दुःखी हुआ। उसे सुख के मार्ग का काल आया, मनुष्यपना उसे मिला, वह भव के अभाव के लिये ही यह मनुष्यभव है। उसके बदले उसके भव के भाव की ही जिसे रुचि पड़ी हो, अरेरे! भाई! तू कब छूटेगा? समझ में आया? आहाहा! अनन्त काल में दबा हुआ एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, मन (न हो) और मनवाला हो और क्षयोपशम ज्ञान न हो, उसे पंचेन्द्रिय का, परन्तु उसके आधीन हो गया है वह। पर्याय के आधीन, राग के आधीन, निमित्त के आधीन। अरे! उसमें से निकलने का अवसर (आया), उस समय तू ऐसी विपरीतता न कर अब, भाई! आहाहा! विपरीतता छोड़ने का काल (आया है), प्रभु! तेरा स्वरूप है, उसका आश्रय लेना, यह उसका विपरीतता छोड़ने का काल है।

निश्चय प्रतिक्रमण... निश्चय अर्थात् सच्चा प्रतिक्रमण। मिच्छामि दुक्कडम् ऐसा जो विकल्प, वह कहीं सच्चा प्रतिक्रमण नहीं है। समझ में आया? परन्तु जिससे राग से भी हट जाता है और स्वभाव की शरण में जाता है, उसका नाम सच्चा प्रतिक्रमण है। लो। कहो, समझ में आया? प्रत्याख्यान भी वह है। बाहर से शुभ विकल्प करके ऐसे अशुभ का त्याग करता हूँ, फलाना—वह (प्रतिक्रमण) नहीं, वह कहीं वस्तु नहीं। महा चैतन्य आनन्द का धाम, उसमें एकाग्र होना, उसे यहाँ सच्चा प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान क्रिया कहते हैं। वह प्रत्याख्यान की क्रिया सच्ची है। ऐसा संवर, आलोचना... आलोचना आया था न! वह भी संवर (अर्थात्) बाहर से वापस.... सेवन के प्रत्याख्यान, ऐसा करके बैठे और शुभराग करे, वह कहीं संवर नहीं। अशुभ में से तो बचा है न इतना? वह 'बचा है' कब कहलाये? कि दृष्टि में अत्यन्त शुद्धस्वरूप का भान हो, उसे शुभ हो, वह अशुभ से बचा—ऐसा कहलाता है। यह तो अकेला उसमें ही अटक गया है, उसमें

बचा कहाँ से आया? समझ में आया? पण्डितजी! वहाँ का वहाँ रहा है परन्तु। वह अटक गया हुआ ही है राग में। उसमें बचा कहाँ से आया?

तो अन्तर स्वरूप में पूर्णानन्द प्रभु की ओर का जहाँ अनुभव और दृष्टि है, स्थिरता का अंश है, उसे शुभभाव होता है तो वह अशुभ से बचा, ऐसा कहा जाता है। क्योंकि उसे यहाँ शुद्ध की ओर का जोर है, इसलिए शुभ के समय 'अशुभ से बचा' ऐसा उसे कहा जाता है। समझ में आया? भाई ने प्रश्न रखा था एक बार, एक भाई ने सोगानी से। कोई ऐसा कहे कि हमको तो पुण्य-पाप, वह हमारी कचास है, कचास है। वह तो हमारी निर्बलता की कचास है। तो कहते हैं, भाई! कचास कहाँ है? कचास तो उसे कहते हैं कि जिसे पक्का भगवान आत्मा पूर्णानन्द वज्र का बिम्ब का आश्रय हुआ है, उसे कहा जाता है कि मेरी पर्याय में जरा सी कचास है, इसलिए राग होता है। परन्तु तू तो पूरे कचास के राग में अर्पित हो गया, उसमें कचास कहाँ से आयी? ऐई! एक शब्द है उसमें। आहाहा! समझ में आया?

मेरी... मेरी कहे, उसमें मेरी पर्याय में मेरी कचास है। परन्तु कचास को ही पकड़ी है, उसमें कचास कहाँ से आयी? समझ में आया? भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य-द्रव्यस्वभाव को जिसने पकड़ा है, उसे ऐसा कहा जाता है कि पर्याय में अशुभभाव होता है, तब मेरी कचास है। समझ में आया? भिन्न पड़ा हुआ मन्दकषाय में आवे या अशुभ में आवे तो उसे कचास है, ऐसा कहा जाता है, परन्तु भिन्न पड़ा नहीं, वहाँ मन्द (राग) में 'कचास मेरी है', ऐसा तू कहाँ से लाया? आहाहा! ऐ चन्दुभाई! समझ में आया या नहीं? यह और शब्द है, परन्तु यह तो भाव में... आहाहा! भगवान पूर्णानन्द प्रभु ऐसी जहाँ दृष्टि और ज्ञान हुए नहीं, उसे 'पर्याय में कचास है' ऐसा कहने का अधिकार ही नहीं है। समझ में आया?

कचास है, वह तो कौन जाने? कि जिसे भगवान पूर्णानन्दस्वरूप की संवरदशा अन्तर के आश्रय से प्रगट हुई है, तब उसे ऐसा लगे, अरे! यह पर्याय में शुभ-अशुभ है, वह मेरी कचास है। समझ में आया? परन्तु जहाँ मात्र उसमें है, वहाँ कचास किसके साथ मिलाना इसे? वह तो पड़ा है पूरा उसमें, अब कचास किसे कहना? पकास तो

आयी नहीं कुछ। कान्तिभाई! कहो, कपूरभाई! यह पढ़ी न, पुस्तक पढ़ी या नहीं? सोगानी की पुस्तक पढ़ी तीसरा भाग? तीसरा भाग नहीं आया होगा। देखा नहीं? कहो, समझ में आया? तब नहीं दिया होगा। अभी छूट हुई है न! आहाहा! अब तो थोड़ा रखो प्रवाहित, कहा। रामजीभाई से पूछ लिया था कि भाई! ऐसा है अपने बाहर रखना है? कि हाँ, रखो। क्योंकि यह सब जोखिमवाली चीज़ है। अजर प्याला है, बापू! उसमें। परन्तु अब (सब पढ़ते हैं)। लो, कपूरभाई! परन्तु यह याद आया, तब ले लो अभी। वहाँ से आये थे, देखो न! कितनी है? आहाहा! उसमें कहीं है यह। सब कहीं याद रहता है? कहीं है वह कचास का। समझ में आया? आहाहा!

यह तो कहते हैं कि सत्क्रिया जिसे आत्मा—आश्रय से हुई है, उसे शुभभाव आवे, वह उसकी कचास कहलाती है। व्यवहार आवे... समझ में आया? क्योंकि इसकी ओर से मिलान करे, उसे कचास कहलाये। उसकी ओर का भाग ही आया नहीं और कचास किसके साथ तू कहता है? पूरा ही अर्पित हो गया कि शुभराग, वही मैं हूँ, वह क्रिया भी मेरी, अब उसमें किसके साथ कचास तुझे कहना है? पक्का हो गया है अज्ञान में, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कठिन काम, बापू! प्रभु! तेरा पंथ... आहाहा! आगे एक जगह कहीं आता है। हे मुनि! तेरे ज्ञान में, स्थिरता में रहना, दुनिया को तृण समान मानना। उसकी गिनती करना नहीं कि यह ऐसा बोले और यह ऐसा मानते हैं। उसमें है कहीं उसमें। जनसमुदाय में कहा है। यह इसमें ही है। कितना आता है? वह १५३वाँ आता है। (गाथा) १५३ का कलश २६३।

सर्व जगतजाल को तृण समान (तुच्छ) देखता है। २६३ कलश है। १५३ गाथा है न, उसका कलश है। **अकेला (निरालम्बरूप से) सर्व जगतजाल को तृण समान (तुच्छ) देखता है।** अरे! दुनिया को इस चीज़ की खबर नहीं। यह गुजराती है मेरे पास। २६३ कलश, १५३ गाथा का कलश। दो तो नमूने दिये, आधार (दिये)। समझ में आया? आहाहा! धर्मात्मा ऐसा कहता है, हे प्रभु! तू तो तेरी क्रिया साधे जा। दुनिया को गिनना नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? जनसमूह... तृण समान जगतजाल है न? इस प्रकार से पड़े हैं और इस प्रकार से हो, उसमें यह तेरी बात को कौन गिनेगा? समझ में आया? आहाहा! तो उसे तृण समान जानना। यह जगत का तिनका है, उसकी

कुछ कीमत नहीं। ऐसे दुनिया के ऐसे बोलनेवाले, कहनेवाले, माननेवाले की कुछ कीमत नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

ओहो! 'सत्' शब्द प्रयोग किया है बीच में। प्रतिक्रमणादि... सामायिक, चोविसंथो, भगवान की स्तुति, गुरुवन्दना—यह सब द्रव्य के स्वभाव से होती सत्क्रिया को कहा जाता है। उस **सत्क्रिया को करता हुआ स्थित है...** अर्थात् कि **निरन्तर करता है,** ऐसा। यह फिर स्पष्टीकरण किया। वह क्रिया निरन्तर होती है, ऐसा। द्रव्यस्वभाव भगवान आत्मा के आश्रय से, उसकी सन्मुखता में जो उसकी एकता हुई, वही उसकी सत्क्रिया है। **वह परम तपोधन...** यह तो उत्कृष्ट मुनि की बात ली है न। **वह परम तपोधन...** (अर्थात्) जिसे अमृतरूपी रस का स्वाद आया है, ऐसा जिसे धन है, अमृत का जिसे धन है। सत्क्रिया में अन्तर आनन्द के आश्रय से अनन्त आनन्द की जो वेदनदशा, ऐसा तपोधन (कि जिसे) अनन्त आनन्दरूपी तप का धन है। समझ में आया?

वह तपोधन **इस कारण से...** इस कारण से अर्थात्? सत्क्रिया को निरन्तर स्व के आश्रय से करता है इसलिए। समझ में आया? अरे! ऐसा धर्म भारी, भाई! वह बेचारा कहता था न, भाई! यह प्रेक्टिकल... प्रेक्टिकल कहा? क्या कहा? प्रेक्टिकल में रखा जाये ऐसा नहीं। प्रेक्टिकल में रखा जाये ऐसा नहीं, कहते हैं। कालीदासभाई के दामाद। कहाँ गये? कालीदासभाई कहाँ गये? वहाँ भी कुछ बोले थे। वहाँ क्या कहा था? ... आया अवश्य था। प्राणभाई कहते थे। ... ऐसा कि अपने यह पर का कुछ कर सकते नहीं, तब तो हो गया, पंगु हो जायेंगे। लो, ...से कुछ कर सकते नहीं, तब तो हो गया, तो अपने कुछ कर सकते ही नहीं। परन्तु कर सके... तो अपने को संसार का उत्साह रहेगा ही नहीं।

भाई ऐसा कहते थे न, रतिभाई। भाई रतिभाई डॉक्टर। (संवत्) १९९५ में आये दो-तीन बार। आँख के डॉक्टर, नहीं? राजकोट (में) बड़ा डॉक्टर, पहले तो बहुत पैसे हो गये थे, करोड़ और फिर... मर गये। कुछ रोग हो गया था। स्वामीनारायण के योगीराज थे उनके पास, क्या कहलाता है? धब्बा लगवाने गये थे। परन्तु कुछ (रोग) मिटा नहीं। स्वयं योगीराज मर गये वहाँ अस्पताल में। मुम्बई के अस्पताल में मर गये।

धब्बा आता नहीं था उसे? दुनिया, वह भी दुनिया पागल। आहाहा! मत्त हो गयी है पागलपन में। पागल में मस्त हो गयी है दुनिया। भाई! ... करके। परन्तु वह स्वयं क्यों मर गया? भाई तो वहाँ अस्पताल में मर गया। खबर नहीं थी कि... ? आहाहा!

अरे बापू! यह वह क्रिया जड़ की हो, उसे कौन मिटावे? तब अपना तो उत्साह भंग हो जायेगा, अपने संसार में रहेंगे ही नहीं। क्योंकि करने का अपने वश नहीं रहे। वह कर सकता है कब? आहाहा! होता है, उसे मानता है कि मुझसे होता है। इतना अन्तर। बाकी तो जैसे होता है, वैसे होता है।

मुमुक्षु : होनेवाला हो तब....

पूज्य गुरुदेवश्री : होता ही है। सब जड़ शरीर की पर्याय जिस काल में होनेवाली है, वह होती ही है। वाणी, जीव, शरीर प्रमाण जो परिणमती है, वह परिणमेगी ही। तू माने कि मुझसे होता है तो भी परिणमेगी और मुझसे नहीं होता, (ऐसा माने तो भी) वह तो उसके कारण से परिणमेगी। आहाहा!

फिर यह स्त्री, पुत्र को सम्हालना, धन्धा करना, इन्जेक्शन देना, इन्जेक्शन लेना—ऐसा सब कुछ रहता नहीं। आहाहा! जवान व्यक्ति को ऐसा लगे मानो कि कुछ नहीं, पर का कुछ नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसा ही आवे न! परन्तु इसलिए कहते हैं न कि भाई! तेरे ध्यान में तो बात ले कि इस पद्धति का यह है द्रव्य और यह द्रव्य की पर्याय उसके कारण से होती है। ख्याल में तो ले, अभिमान तो तोड़ो एक बार। बाकी होनेवाला होगा, वह होगा ही। तेरा (चलेगा कि) तू रोके उसे? तुझसे होता है, वह (कि) तू उसे रोके? उससे होता है, उसे रोके कौन? समझ में आया? कहो, पोपटभाई! फिर टाईल्स-बाईल्स के व्यापार का उत्साह नहीं रहे, कहते हैं। फिर ऐसी मशीन ले आना और वहाँ जाना, अपने मशीन लाना, वह तो बन सकता नहीं। अरे भगवान! उन्हें द्रव्य माना नहीं। अनन्त द्रव्य हैं तो अनन्त द्रव्य हैं, उस-उस द्रव्य का उस-उस काल में परिणमन कुछ उसका होगा या नहीं? उसमें तेरे कारण वहाँ है, उसके कारण तुझमें है, ऐसे तो अनन्त द्रव्य भिन्न नहीं रहते। तो अनन्त को तूने अनन्त माना ही नहीं। आहाहा!

अनन्त परमाणु, अनन्त आत्मायें, वे अनन्त अनन्तरूप से कब रहे ? कि एक-दूसरे का कुछ न करे और अपने में स्वयं करे तो अनन्त अनन्तरूप से रहे। समझ में आया ? यह तो कहीं न्याय से... दो, दोरूप से कब रहे ? दो को माने तो दो कब रहे ? कि एक-दूसरे स्वयं के कारण से हो और दूसरे के कारण से न हो तो दो, दोरूप से रहे। नहीं तो दोनों एक हो जायें, तो दो तो माना नहीं। बराबर है ? इसी प्रकार जगत में अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु... यह दिक्कत आयी। उस भाई ने—सेठिया ने कहा कि लो, किसी का करे नहीं। देव-गुरु शारना की श्रद्धा, ऐसा समकित कहा। वहाँ कहा होगा व्यवहार समकित परन्तु उसमें परद्रव्य ने क्या किया उसे ? परद्रव्य की श्रद्धा की, कि यह देव-गुरु-शास्त्र है। वह श्रद्धा हुई, वह परद्रव्य से हुई होगी ? ऐसा कि परद्रव्य की श्रद्धा को समकित कहे, और कहे कि परद्रव्य का कुछ कर सकता नहीं। परन्तु उसमें विरोध क्या आया ? पण्डितजी

अनन्त सिद्ध हैं, ऐसा माना, लो। माना तो पर सिद्ध के कारण ऐसी मान्यता हुई है ? अर्थात् परद्रव्य ने यह किया है, ऐसा है ? कौन जाने क्या हाँकते हैं ? ऐई ! सेठिया प्रमुख भी ऐसे ही होते हैं। आहाहा ! गजब करते हैं ! भाई ! व्यवहारिक जैनपना, वह भी इसे खबर नहीं कि जगत की जितनी चीज़ें हैं, उतनी-उतनी उस प्रकार से रहेगी। अब उतने उस प्रकार से रहेंगी अर्थात् समय-समय में उस प्रकार से रहेंगी। समय-समय में उस प्रकार से रहेंगे तो इस द्रव्य के कारण यहाँ पर्याय हुई और इसके कारण यहाँ हुई—यह कहाँ रहा उसमें ? समझ में आया ? कहो, बराबर होगा ? ऐसे दुकान में जाये और चूड़ियों का बराबर ध्यान रखे... परन्तु ऐसे हीराभाई का कारभार (देखकर) कितना अन्दर हो जाये ? हीराभाई का पत्र था। यह मनसुखभाई समाचार लाये थे न। हीराभाई ने समाचार... नारायणभाई के पास गये थे, परन्तु अभी शरीर बराबर ठीक (नहीं)। कमजोरी है। इतनी मनसुखभाई ने बात की। ... समझ में आया ? कहो, बराबर होगा यह ? जादवजीभाई !

आत्मा... आत्मा और शरीर दो, तो दो, दोरूप से रहे या दो एक होकर रहे ? ...एक क्षेत्रावगाह में रहते हैं, इसलिए मिश्रण है। आया था कल। कल आया था। अरे भगवान ! अरे प्रभु ! यह तू क्या करता है ? एक क्षेत्र में छहों द्रव्य रहे, इसलिए एक हैं ?

तो छहरूप से छह रहे ही नहीं। हाँ, तो छह कहाँ रहे? अरेरे! यह दलील भी कैसी? एक क्षेत्रावगाह में है, इसलिए सब मिश्रण है। मिश्रण है अर्थात् क्या? एक द्रव्य दूसरे द्रव्य की पर्यायरूप हुआ है? मिश्रण अर्थात् क्या? शरीर, शरीर की पर्यायरूप हुआ; आत्मा, आत्मा की पर्यायरूप हुआ। उसमें मिश्रण अर्थात् एकक्षेत्र में हुआ, इसलिए मिश्रण क्या हो गया? जवाहरलालजी! लॉजिक है या नहीं? जवान भी अब रस लेते हैं न! चन्द्रकान्तभाई जैसे लो, कैसे व्यक्ति हैं, स्थिर शान्त। ऐसे रस लेते हैं न। इतने भाग्यशाली हैं ये। आहाहा! ऐसा है, बापू! भाई! आहाहा!

तू तुझरूप से रहे और दूसरे दूसरेरूप से रहे तो उसे अनन्तपने रहे, ऐसा कहा जाता है। परन्तु एक-दूसरे में प्रविष्ट हो जाये और काम करे तो अनन्त, अनन्तरूप रहते हैं कहाँ? तो तुझे अनन्त की श्रद्धा ही नहीं। न्याय है या नहीं? आहाहा! यहाँ तो, सत्क्रिया में असत्क्रिया एक होती नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! भगवान आत्मा पूर्ण आनन्दकन्द धाम वस्तु अस्ति—सत्ता—होनेवाला पदार्थ, उसके होनेपने के आश्रय में जाकर जो एकाग्रक्रिया हो, उसमें राग की क्रिया का भी अभाव है। उसके कारण राग हुआ है, ऐसा भी नहीं और राग हुआ, इसलिए सत्क्रिया हुई है, ऐसा भी नहीं। वापस अभी बाहर के दो एकपने मानना यह वह कहाँ? समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि **परम तपोधन उस कारण से निजस्वरूपविश्रान्ति लक्षण...** है वह तो। आहाहा! **परम वीतराग-चारित्र में स्थित है...** भगवान आत्मा... पाठ है सही न अन्दर। निश्चय चारित्र को करता रहता है... आहाहा! कहते हैं कि अरे! पहली श्रद्धा तो कर। वह श्रद्धा भी स्वद्रव्य के आश्रय से कर, ऐसा, हों! समझ में आया? भाई! सत्य तो ऐसा है, हों! उसे तोड़-मरोड़कर असत्य करना चाहे (तो) नहीं होगा। तू हो जायेगा असत्य, मिथ्याश्रद्धा में घुस गया तू। आहाहा! कहते हैं कि जो कोई सन्त सच्चे... उत्कृष्ट आवश्यक क्रिया की बात है न! जघन्य आवश्यक क्रिया चौथे-पाँचवें में होती है। उस चौथे-पौचवें (गुणस्थान में) आत्मा के आश्रय से जो क्रिया होती है, वही निश्चय आवश्यक क्रिया है और राग आवे, उसके साथ मिलान नहीं दोनों को। वह राग है, इसलिए यहाँ निश्चय आवश्यक है अथवा निश्चय आवश्यक हो, वहाँ उसके कारण से राग हो—ऐसा है नहीं। समझ में आया?

ऐसी निश्चय की क्रिया होती है, वहाँ व्यवहार उसके कारण से आवे—ऐसा भी कहाँ है ? समझ में आया ? दो पर्यायें ही भिन्न-भिन्न हैं। जहाँ एक द्रव्य के कारण दूसरा द्रव्य नहीं, इसी प्रकार एक पर्याय के कारण दूसरी पर्याय नहीं। वस्तुस्थिति तो ऐसी है, भाई! वह राग की क्रिया व्यवहार हो तो वह कहीं मुक्ति का कारण नहीं। तथापि वह है तो यहाँ निश्चय सत्क्रिया है, ऐसा नहीं। समझ में आया ? आहाहा! इसके ज्ञान में यह बात जब तक सत्यरूप से नहीं बैठती, तब तक इसे ऐसा लगता है कि अरर! यह तो अकेला निश्चय... निश्चय कहते हैं, अर्थात् कि अकेला सच्चा, सच्चा और सच्चा, ऐसा। खोटा तो इसमें कुछ (है नहीं)। इसलिए उस सत्क्रिया के सामने उस राग को असत् कहा न! वह वास्तव में खोटी क्रिया है, मुक्ति के लिये कारण नहीं। वह बन्ध की क्रिया है, इसलिए खोटी क्रिया है। आहाहा!

व्यवहार कहो या असत् कहो या अभूतार्थ कहो। यह कहे, नहीं, अभूतार्थ को असत्यार्थ नहीं कहा उसमें। अभूतार्थ को असत्यार्थ कहाँ से कहो ? भारी विवाद उठाया भाई! कल आया था वह।...को—पर्याय को—राग को तो अभूतार्थ कहा है, उसे असत् नहीं कहो। परन्तु ऐ! अभूतार्थ अर्थात् नहीं विद्यमान पदार्थ। सत्य पदार्थ नहीं। विद्यमान... विद्यमान... विद्यमान—अस्तिवाला नहीं। शान्तिभाई! न्याय से तो आता है, बापू! अरे! कौन किसे समझाये ? कौन किससे समझे ? वह तो उससे समझता है न। किससे समझता है ? उसका गुरु वह है और उसका देव वह है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि ऐसा जो **परम तपोधन उस कारण से...** क्योंकि निरन्तर स्वभाव के आश्रय से सत् की क्रिया होती है, इस कारण से। वह करता है, इस कारण से... **निजस्वरूपविश्रान्ति लक्षण...** आहाहा! राग में रहना तो अविश्रान्तपना है। समझ में आया ? पूर्ण न हो, तब तक व्यवहार की क्रिया का विकल्प उसे होता है, परन्तु वह तो अविश्राम है, वह विश्रामस्थान नहीं। आहाहा! भगवान आनन्द का धाम प्रभु, उसमें जो स्थिर है, वह विश्रामस्थान है। वह **निजस्वरूपविश्रान्ति लक्षण...** है न ? अपना जो स्वरूप उसमें स्थिरता के स्वरूपवाला लक्षण परम वीतराग चारित्र, वह चारित्र—वीतराग चारित्र। आहाहा! स्व के आश्रय से स्थिर हुआ, वह वीतरागचारित्र और पर के

लक्ष्य से जो विकल्प उत्पन्न—आया, वह स्वस्वरूप नहीं, वह विश्रान्ति नहीं, वह वीतरागचारित्र नहीं। अब यह बाहर के त्याग में राग की मन्दता मिथ्यादृष्टि को, वह तो व्यवहार भी नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

ऐसा **निजस्वरूपविश्रान्ति लक्षण परम वीतराग-चारित्र में स्थित है (अर्थात् वह परम श्रमण, निश्चयप्रतिक्रमणादि निश्चयचारित्र में स्थित होने के कारण,...)** वह सत्क्रिया करता है, इसलिए निश्चय चारित्र में है। **(जिसका लक्षण निज स्वरूप में विश्रान्ति है, ऐसे परमवीतरागचारित्र में स्थित है)।** परमवीतरागचारित्र में स्थित है। आहाहा! यह मुक्ति का कारण है।

अब इस १५२ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:—

आत्मा तिष्ठत्यतुलमहिमा नष्टदृक्शीलमोहो,
यः सन्सारोद्भवसुखकरं कर्म मुक्त्वा विमुक्तेः।
मूले शीले मल-विरहिते सोऽय-माचारराशिः,
तं वन्देऽहं समरससुधासिन्धु-राकाशशाङ्कम्॥२६२॥

आकाश... चन्द्र... '**शशांकम्... शशांकम्... सिन्धुकाश... सिन्धुकाशशांकम्...**' समुद्र को उछालने के लिये चन्द्र। '**शशांकम्... शशांकम्...** है न, चन्द्र कहा।

श्लोकार्थः दर्शनमोह और चारित्रमोह जिसके नष्ट हुए हैं, ऐसा जो... यह नष्ट ही हुए हैं। और कोई कहता है कि नष्ट होते हैं बारहवें में, ऐसा नहीं। सुन न! आहाहा! **दर्शनमोह और चारित्रमोह जिसके नष्ट हुए हैं, ऐसा जो अतुल महिमावाला आत्मा...** लो, ठीक। उसमें है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। **ऐसा जो अतुल महिमावाला आत्मा...** पर्याय में से भ्रान्ति और अस्थिरता का नाश हो गया है। समझ में आया? ऐसा अतुल महिमावाला भगवान... वस्तु तो अतुल महिमावाली है, परन्तु उसे जहाँ भ्रान्ति और अस्थिरता का नाश हुआ, वहाँ वह आत्मा चारित्रवन्त हुआ, अतुल महिमावाला हुआ वह। आहाहा! अतुल महिमा (अर्थात्) जिसकी महिमा की कहीं उपमा नहीं दी जा सकती। चारित्र में आया, आहाहा! स्वरूप के चारित्र में आया। समझ में आया?

यहाँ तो कोई पाँच-पच्चीस लाख रुपये लेकर आया हो और फिर उसको विवाह करना हो... आहाहा! घर में समाये नहीं। आहाहा! भाई! तेरे ... कारण आये हैं, इतना कमाकर आये हैं। पश्चात्.... अवसर पर... दो-पाँच-दस करोड़ का करके आया हो, देखो! उसके विवाह में दुलार, देखो! उसकी महिमा। ओहोहो! वहाँ का वहाँ यदि हार्टफेल हो जाये... परन्तु ऐसे... जितनी महिमा... अरेरे! ऐसे पालन किये, बड़े हुए। ...रोवे। अरे बापू! अनादि का रोता है आत्मा के भान बिना, सुन न! राग के भाव में... सब। आहाहा!

कहते हैं, ऐसा अतुल महिमावाला भगवान **संसारजनित सुख के कारणभूत कर्म को छोड़कर...** लो, यह पुण्य-पाप के भाव तो कर्म का कारण है और संसार के सुख का वह कर्म कारण है। संसार का सुख अर्थात् दुःख। संसार का सुख, इसका अर्थ दुःख। आहाहा! **मुक्ति का मूल, ऐसे मलरहित चारित्र में स्थित है,... 'मूले शीले मलविरहिते सोऽयमाचारराशिः' मुक्ति का मूल, ऐसे मलरहित चारित्र में...** देखो! यह विकल्प जो है, वह मल है। उससे रहित निर्विकल्प चारित्रदशा, उसे मुक्ति का कारण कहते हैं। अब यहाँ तो, अकेला मूल मल है, उसे कहे कि तुम चारित्र मानो। यह तो परन्तु कदाचित् उसमें राग की मन्दता को... तुम्हारे मानना पड़ेगा हम कहते हैं वह। तुम्हारा हम नहीं मानेंगे। अरे भगवान! गजब करता है न, प्रभु! ऐसे जैनशासन के उज्ज्वल मार्ग में ऐसे राग के भाग को... मानकर (कहे कि) तुम्हें भी तत्प्रमाण मानना पड़ेगा। जेठाभाई! आहाहा!

यहाँ कहा था एक बार पण्डितजी को—बंसीधरजी को। .... एकान्त है। याद रखो, यह तुम्हें मानना पड़ेगा। कहा था, पहले आये न जब। बंसीधरजी को कहा इन्दौरवालों ने किसी ने। बहुत विरोध किया था उसने। स्याद्वाद नहीं, अनेकान्त (नहीं)। याद रखो, यह तुम्हें मानना पड़ेगा, हमको नहीं बदलना पड़ेगा, दुनिया को बदलना पड़ेगा। समझ में आया? (संवत्) २००१ के वर्ष की बात है। पहले जब आये न तब। आहाहा! यह **मुक्ति का मूल, ऐसे मलरहित चारित्र में स्थित है,...** वापस ऐसा सिद्ध किया कि राग जो व्यवहार चारित्र, वह मुक्ति का कारण नहीं। **मुक्ति का मूल, ऐसे मलरहित चारित्र...** भगवान आत्मा में वीतरागी परिणति, निर्विकल्प आनन्द की दशा की रमणता, वही मुक्ति का मूल है। आहाहा! अरे! समझण तो कर, पहले सच्ची श्रद्धा तो

कर कि मार्ग यह है। समझ में आया? अभी श्रद्धा का ठिकाना नहीं होता और व्रत, तप, त्याग और चारित्र आ गया, भाई! ठगा जाता है, भाई! समझ में आया? यह त्यागता हूँ और आगे इसका फल आयेगा, तब ऐसा होगा कि यह... परन्तु संसार रहा, वह इसे कहाँ खबर पड़ेगी वहाँ? आहाहा!

वह आत्मा चारित्र का पुंज है। लो, आचार रखकर, उस चारित्र को ही आचार कहा है। समझ में आया? उस चारित्र में चारित्र का पुंज है। आहाहा! भगवान आत्मा के अन्तर की एकाग्रता में रमणता जिसे चारित्र की है, वह चारित्र का पुंज है। आहाहा! चारित्र का पुंज तो गुण से तो पूरा आत्मा है, परन्तु उसके आश्रय से स्थिरता हुई, वह भी चारित्र का पुंज है। **समरसरूपी सुधा के सागर को उछालने में...** समतारूपी सुधा के सागर को वीतरागी अमृत के उछालने में **पूर्ण चन्द्र समान उस आत्मा को...** आहाहा! जिसे द्रव्यस्वभाव में एकाग्रता हुई है, चारित्र हुआ है, समरसरूपी सुधा—अमृत ऐसा सागर **उछालने में पूर्ण चन्द्र समान उस आत्मा को मैं वन्दन करता हूँ।** समझ में आया? अहो! वह आत्मा किसे आदरणीय नहीं होगा? ऐसी दशावन्त चारित्र किसे आदरणीय नहीं होगा? हमको तो आदरना पड़ेगा, ऐसा उसे नहीं कहना पड़ेगा। आहाहा! समझ में आया? यह १५२ गाथा हुई, लो!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण १२, रविवार, दिनांक - १४-११-१९७१
गाथा-१५३, श्लोक-२६३, प्रवचन-१७७

१५३ गाथा, नियमसार, निश्चय परम-आवश्यक अधिकार।

वयणमयं पडिकमणं वयणमयं पच्चखाण णियमं च।
आलोयण वयणमयं तं सव्वं जाण सज्झायं॥१५३॥

रे वचनमय प्रतिक्रमण, वाचिक नियम, प्रत्याख्यान ये।
आलोचना वाचिक सभी को जान तू स्वाध्याय रे॥१५३॥

टीका : यह, समस्त वचनसम्बन्धी व्यापार का निरास... अर्थात् **(निराकरण, खण्डन) है।** वास्तव में तो विकल्प जो शुभराग है, उसमें यह वचनसम्बन्धी के पुद्गल निमित्त हैं, इसलिए वचनवर्गणा के त्याग करने के आशय में शुभभाव भी त्याग करनेयोग्य है, ऐसा कहा है। **यह...** कहेंगे। निश्चय परम-आवश्यक है न! यह तो व्यवहार है। व्यवहार आता है, होता है, परन्तु वह छोड़नेयोग्य है, त्यागनेयोग्य है। क्या? **पाक्षिक आदि...** दिवस, रात्रि, पाक्षिक, संवत्सरी आदि **प्रतिक्रमणक्रिया का...** शुभभाव की क्रिया का **कारण, ऐसा जो निर्यापक आचार्य के मुख से निकला हुआ,...** शिक्षा में दृढ़ करे, श्रावक में दृढ़ करे, शिक्षादायक—दीक्षादायक हो, उसे यहाँ निर्यापक आचार्य कहा जाता है।

यहाँ तो वहाँ तक कहते हैं कि ऐसे निर्यापक आचार्य के मुख से निकली हुई वाणी प्रतिक्रमण की... प्रतिक्रमण पहला एक ही शब्द लिया है, पश्चात् (दूसरा) लेंगे। पाक्षिक आदि में दिवस, रात्रि, पाक्षिक, मास, छहमास और संवत्सरी ऐसी जो प्रतिक्रमण क्रिया है शुभभाव की, उसका **कारण, ऐसा जो निर्यापक आचार्य के मुख से निकला हुआ,...** वचनवर्गणा, वह पुद्गल **समस्त पापक्षय के हेतुभूत,...** है। आचार्यों ने प्रतिक्रमण आदि क्रिया, व्यवहार से वचनवर्गणा में जो कोई रचनायें हुई हैं, उन्हें सुनना अथवा

शुभभाव में उनका निमित्तपना है, इसलिए वह क्रिया अथवा वह स्वयं वचनवर्गणा स्वाध्याय (आदि) पापक्षय का हेतु है।

मुमुक्षु : आत्मा तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात यहाँ नहीं। यहाँ तो सम्यग्दृष्टि जीव की बात है। सम्यग्दृष्टि जीव की बात है। आत्मा का स्वभाव अखण्ड आनन्द का जिसने आश्रय लिया है, आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का निश्चयभाव प्रगट किया है—उसकी यहाँ बात है। समझ में आया? अज्ञानी की अकेली (क्रिया) की बात इसमें नहीं है। जिसने, भगवान आत्मा पुण्य-पाप के विकल्प से रहित और पूर्ण आनन्द और ज्ञान से सहित ऐसे आत्मा का आश्रय लेकर अनुभव में आत्मा क्या है, ऐसा भान हुआ है। समझ में आया? ऐसा आत्मा सन्तों ने बाँधी हुई वचनवर्गणा की प्रतिक्रमणादि के शब्द, वह उसे सुने, तब वहाँ उसे शुभभाव होता है और अशुभ का नाश (होता है), ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

निर्यापक आचार्य के मुख से निकला हुआ, समस्त पापक्षय के हेतुभूत,... यह वचनवर्गणा प्रतिक्रमण की, प्रत्याख्यान की, नियम-अभिग्रहादि की और आलोचना की, वह सब विधि वचनवर्गणा से द्रव्यश्रुत जो बनाया द्रव्यश्रुत, वह द्रव्यश्रुत सुनते हुए उसे शुभक्रिया के परिणाम होते हैं, उसमें उस वचनवर्गणा का—द्रव्यश्रुत का निमित्त है। वह द्रव्यश्रुत स्वयं ही समस्त पापक्षय के हेतुभूत कहा गया है। वीरजीभाई! आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को—चैतन्य के आश्रय में पड़ा है उसे—आचार्यों ने बनाये हुए शास्त्र की जो पद्धति के प्रतिक्रमणादि के पाठ वचनवर्गणा... आहाहा! उसे सुनते हुए वह द्रव्यश्रुत स्वयं वचनवर्गणा सब पाप के नाशरूप हेतुभूत है, धर्मरूप नहीं, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया? शुभ-अशुभ के भाव के नाश का हेतु है, वह नहीं। समझ में आया?

कहते हैं कि जहाँ श्रद्धा ने अपने स्वरूप का अवलम्बन—आधार लिया है, श्रद्धा ने, ज्ञान ने और शान्ति ने, ऐसे दशावन्त प्राणी को भी आचार्यों ने—सन्त धर्मात्मा मुनि, समकिती और चारित्रवन्त सन्त उन्होंने—जो प्रतिक्रमणादि के पाठ बनाये... 'मुख से

निकला हुआ' कहा है न। सम्यग्दृष्टि को वह **समस्त द्रव्यश्रुत...** पाप के क्षय का निमित्त हेतु है। समझ में आया? वह **सम्पूर्ण द्रव्यश्रुत,... समस्त पापक्षय के हेतुभूत,...** भाई! जैसा है वैसा उसे जानना चाहिए या नहीं? समझ में आया? उसे व्यवहार ऐसा होता है, ऐसा बतलाते हैं, परन्तु वह सब हेय है। निश्चय परम-आवश्यक है न! समझ में आया? वह हेय है, उसका स्वरूप क्या है, ऐसा बतलाना तो पड़े न।

कहते हैं कि वे मुनि-सन्त-धर्मात्मा मोक्ष के मार्ग से सिद्ध हुए, ऐसे सन्त... निर्यापक का अर्थ ऐसा किया न कि निर्वाह करावे सामनेवाले का। किसका? दीक्षा-शिक्षा का निर्वाह करानेवाला। यहाँ शब्द में निमित्त से कथन है। कहा है न भाई! अपने प्रवचनसार (में)। कितनी गाथा है? प्रवचनसार में है। निर्यापक है। यह २१०। **निजावगाह समान...** निर्यापक—निर्वाह करनेवाले। 'सदुपदेश से दृढ़ करनेवाले' वापस ऐसा लिया। निर्वाह करनेवाले तो स्वयं अपना निर्वाह करनेवाले हैं। यह तो निर्वाह करनेवाले पर का, हों। और सदुपदेश से दृढ़ करनेवाले शिक्षागुरु सद्गुरु ने बनाये हुए शास्त्र। अज्ञानी ने नहीं, समझ में आया? ऐसे सन्तों ने कहे हुए व्यवहार प्रतिक्रमणादि के पाठ को सुनता है। अर्थात् स्वयं सुनता है अथवा स्वयं भाषा से बोले (ऐसा अर्थ) होता है।

यह वचनवर्गणा की स्थिति द्रव्यश्रुतरूप है, पुद्गलात्मक है, परन्तु वह पाप के नाश का निमित्त है। क्योंकि उसकी ओर लक्ष्य जाने पर उसका शुभभाव होता है। समझ में आया? उसे अशुभ का नाश होता है, परन्तु उसे, हों! जिसे आत्मदृष्टि हुई है, आत्मा का आश्रय लेकर शुद्धता सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्रगट हुई है, ऐसे जीव को निश्चयपना, स्थिरपना अन्दर नहीं, तब वह ऐसे प्रतिक्रमणादि के पाठ शाम-सवेरे बोलता है, वह यह धर्मात्मा—सर्वज्ञ के अनुयायी सन्तों ने किये हुए पाठ, ऐसा वापस। **मुख से निकले हुए...** देखो! समस्त पापक्षय के हेतुभूत... यहाँ तो ऐसी बात है। यह शुभभाव है प्रतिक्रमण का और वह शब्द बोलता है अथवा सुनता है, उसमें उसका शुभभाव है, वह पाप के क्षयभूत है। उसे यहाँ द्रव्यश्रुत और पाप के क्षयभूत का निमित्त कहा जाता है। समझ में आया?

क्या कहा? है तो शुभभाव वह पाप के क्षय का कारण, परन्तु उसे यहाँ इस प्रकार से लिया निमित्त से कि सन्तों ने कहे हुए शास्त्रों के पाठ सुनता है अथवा वाणी

द्वारा स्वयं भी बोलता है। वह द्रव्यश्रुत अशुभभाव के नाश का निमित्त है। समझ में आया? उपादान तो शुभभाव है। समझ में आया? है, वह वस्तु की स्थिति है। यह तो सर्वविशुद्ध अधिकार में ऐसा आता है न! द्रव्यप्रतिक्रमणादि क्रम से पाप का नाश करने में... आता है न। है, वह वस्तु की स्थिति है। व्यवहार है, परन्तु ग्रहण करनेयोग्य नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐसा है। समझ में आया? यह तो सर्वज्ञ से सिद्ध हुआ पंथ है। उसमें कहीं एक अंश भी फेरफार नहीं हो सकता। ऐसा यह तो मार्ग है।

कहते हैं, भाई! हितार्थियों ने—आत्मा के हित के अर्थियों ने तो आत्मा का आश्रय लिया है। समझ में आया? ऐसा आश्रय लेकर जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-स्थिरता के अंश, ऐसा निश्चय का परिणमन तो है, परन्तु अब अन्दर शुद्धोपयोगरूप से नहीं, तब उसे ऐसा श्रवण का, द्रव्यश्रुत का योग होता है, तब द्रव्यश्रुत पाप के क्षय का निमित्त है, ऐसा कहा। और शुभभाव है, वह पाप के क्षय का मूल कारण है। उसमें भी वह दृष्टि में द्रव्य का आश्रय है इसलिए। अज्ञानी को मात्र शुभभाव, वह पाप के क्षय का कारण नहीं है। समझ में आया? जिसकी दृष्टि में अभी शुभराग ही धर्म है, शुभराग का अस्तित्व ही दृष्टि में भासित हुआ है, उसके अस्तित्व में पूरा भगवान भासित नहीं हुआ—उसकी यहाँ बात नहीं। समझ में आया? आहाहा! 'जहाँ जहाँ जो जो योग्य है, वहाँ समझना वही' आता है या नहीं? तथापि यहाँ तो अन्य वचनसम्बन्धी व्यापार का खण्डन करना है। करना है तो खण्डन बताकर। समझ में आया? आहाहा! उसका निराकरण करना है, निरास करना है। आहाहा! निरास है न, निरास। निरास।

ऐसा **सम्पूर्ण द्रव्यश्रुत,...** ऐसा। **वह वचनवर्गणायोग्य पुद्गलद्रव्यात्मक होने से ग्राह्य नहीं है।** वास्तव में तो वह होने पर भी और सुनने में शुभोपयोग होने पर भी वह ग्राह्य नहीं, पकड़नेयोग्य नहीं। आहाहा! समझ में आया? मार्ग तो ऐसा है, भगवान! आहाहा! उसकी जो-जो पर्याय की जितनी योग्यता है, उतनी उसे बतलानी तो पड़े न! समझ में आया? कहते हैं कि भाई! तेरा भगवान तो तुझे साक्षात्कार हुआ है, उसकी यहाँ बात है। समझ में आया? सच्चिदानन्द प्रभु पूर्ण आनन्द और ज्ञान का पुंज नाथ, ऐसा जिसने दृष्टि में लिया है, ऐसे साधकजीव को, सम्यग्दर्शन, ज्ञान और शान्ति के अंश प्रगट हुए हैं, ऐसे जीव को, सन्तों ने वर्गणा—वचन की वर्गणा से रचित श्रुत, ऐसे जीवों

को वह द्रव्यश्रुत पाप के क्षय का निमित्त है और उपादानरूप से पाप के क्षय (रूप) शुभभाव (होता है)। चन्द्रभाई! आहाहा! तथापि वह ग्राह्य नहीं।

मुमुक्षु : गुरुदेव! पापरूप है, वह द्रव्यश्रुत के आश्रय से (और) शुभ आत्मा के आश्रय से (क्षय होता है)—ऐसा आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : पापरूप है न वह। पाप का क्षय उससे... पुण्य-पाप दोनों का क्षय द्रव्य के आश्रय से हुआ। यह तो पहले बात हो गयी। इसके लिये तो यह अलग करना है इतना। द्रव्य चैतन्य भगवान के आश्रय से तो पुण्य-पाप दोनों का नाश है। उसके आश्रय में तो पुण्य भी नहीं और पाप भी नहीं। आहाहा! यह तो बात पहले की थी। समझ में आया? ....में यह सर्वस्व पुण्य....

कहते हैं कि भाई! यह भगवान आत्मा एक समय की पर्याय से भी दूर और भिन्न है तथा पुण्य-पाप के विकल्पों से तो अत्यन्त-अत्यन्त उसकी पर्याय में भी उनसे भिन्न है। यह भगवान आत्मा तो एक समय की निर्मल पर्याय से भी भिन्न है। अब निर्मल पर्याय जो है, वह भी पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न है। समझ में आया? यह तो हीरा कसौटी पर चढ़ा है, उसकी रज भी अलौकिक होती है। भगवान! यहाँ शुभभाव का नाश करने की बात करनी है। समझ में आया? परन्तु उसके साथ होता है, ऐसा बतलाकर... आहाहा! अलौकिक रचना है। सन्तों की ऐसी रचना दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त कहीं देखने में नहीं आती। इस मार्ग के रास्ते पड़े बातें करते हैं। समझ में आया?

कहते हैं कि वह समस्त पापक्षय के हेतु निमित्तभूत... आहाहा! शैली कैसी है! **सम्पूर्ण द्रव्यश्रुत, वह वचनवर्गणायोग्य...** वह तो वचनवर्गणा के योग्य है। वह **पुद्गलद्रव्यात्मक होने से ग्राह्य नहीं है।** आहाहा! सुनने में आवे, बोलने में आवे, परन्तु ग्राह्य नहीं, कहते हैं। समझ में आया? ऐसा **प्रत्याख्यान...** वचनवर्गणा की यह... ऐसे प्रत्याख्यान करता हूँ, मुनि सुनाते हैं कि ऐसे प्रत्याख्यान देता हूँ, ऐसी वचनवर्गणा। **नियम**—अभिग्रह... नियम—अभिग्रह... वचनवर्गणा से ऐसे नियम लेता हूँ, यह नियम मुनि देते हैं, ऐसे अभिग्रह... **आलोचना...** वह निश्चय आलोचना अलग और यह व्यवहार आलोचना है। **(पुद्गलद्रव्यात्मक होने से)...** वह सब वचनवर्गणा की शब्दधारा

सन्तों ने कही ऐसी वह स्वयं वाणी द्वारा बोली जाती है, उस काल में उसे शुभभाव है... समझ में आया?

परन्तु वह **ग्रहण करनेयोग्य नहीं हैं।** भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु के द्रव्य में और उसके आनन्द की पर्याय में उसे मिलानेयोग्य नहीं। आहाहा! होता है, ऐसी अस्ति सिद्ध की। समझ में आया? परन्तु वह निश्चय स्व के आश्रय में आवश्यक की क्रिया में उसे ग्रहण करनेयोग्य नहीं। यह अधिकार निश्चय परमावश्यक चलता है न! जो वास्तव में आवश्यक की क्रिया है, अवश्य करनेयोग्य है, ऐसा तो '**णियमेण य जं कज्जं...**' भगवान आत्मा पूर्ण स्वरूप—सन्मुख का सम्यग्दर्शन, उसके सन्मुख का सम्यग्ज्ञान, उसके सन्मुख की क्रिया चारित्र—यही निश्चय से—नियम से '**णियमेण य जं कज्जं...**' —निश्चय से करनेयोग्य तो यह है। समझ में आया? पहले अपने बात की थी। चौथे गुणस्थान से निश्चय और व्यवहार आवश्यक शुरु होते हैं। समझ में आया? आ गया है अपने अन्तर आत्मा में। १४९। १४९ है न?

निश्चय-व्यवहार दो नयों से प्रणीत जो परम आवश्यक क्रिया, उससे जो रहित हो, वह बहिरात्मा है। इस अर्थ हुआ कि अन्तरात्मा जब से शुरु होता है, उसे निश्चय और व्यवहार दो आवश्यक उसके योग्य होते हैं। समझ में आया? १४९ (गाथा)। चौथे गुणस्थान सम्यग्दर्शन से निश्चय आवश्यक और व्यवहार आवश्यक—दोनों शुरु होते हैं, परन्तु व्यवहार, वह आदरणीय नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? चौथे गुणस्थान में स्वद्रव्य के आश्रय से दृष्टि, ज्ञान और स्वरूपाचरण स्थिरता, वह तो निश्चय आवश्यक है। निश्चय अवश्य करनेयोग्य तो वह है। सम्यग्दृष्टि को भी इतनी मर्यादावाला निश्चय और उसकी भूमिका में भगवान की भक्ति-पूजा आदि का भाव व्यवहार आवश्यक, वह पुण्यभाव होता है, परन्तु वह हेय है—ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया?

चौथे से शुरु होता है निश्चय आवश्यक और व्यवहार (आवश्यक)। पाँचवें में श्रावक सच्चा, उसे शान्ति की विशेष वृद्धि का आवश्यक कर्म होता है, उसके साथ उसे बारह व्रत के विकल्प, छह आवश्यक—देव की पूजा-भक्ति, गुरुवन्दन, दया, दान

इत्यादि आते हैं न छह आवश्यक, ऐसे विकल्प उसे व्यवहार से (होते हैं)। निश्चय यह और व्यवहार यह, ऐसे मेलवाला चौथे से शुरु हुआ है। समझ में आया? इसमें चर्चा आयी है न! पढ़ी है चर्चा मक्खनलालजी के साथ की? उत्तमचन्द भारिल्ल है एक। कहाँ? सिवनी... सिवनी। उत्तमचन्द लड़का है जवान। बहुत.... है। मुमुक्षु में वाँचता होगा। वह है न यहाँ का पक्का। उसमें मक्खनलालजी निकले होंगे। उन्हें नहीं सुहाया, इसलिए जरा सा पूछा। कैसे क्या कहते हो? एक प्रश्न ऐसा पूछा। निश्चय सहित व्यवहार... किसी ने पूछा। वह कहे, निश्चय बिना का व्यवहार हो सकता ही नहीं। ऐसे लड़के पके हैं। शादी का निश्चय हुए बिना बारात जोड़ना किसकी? ऐसा उसने जवाब दिया। जिसका विवाह निश्चित किया नहीं, उसकी शादी करना निश्चित किया नहीं, उसकी बारात जोड़ना कहाँ? निश्चय बिना का व्यवहार होता नहीं। ऐसा जवाब दिया। जेठाभाई!

दूसरा। मिट्टी का घड़ा वस्तुरूप से न हो और उसे घी का घड़ा कहना, ऐसा नहीं हो सकता। लालचन्दभाई! बहुत सरस जवाब है। बहुत होशियार व्यक्ति है। यहाँ आया है पत्रिका में। होशियार है। वस्तु जहाँ स्वयं नहीं घड़ा, मिट्टी का घड़ा ही जहाँ नहीं, वहाँ घी का घड़ा कहना, कहाँ से आया वस्तु बिना? इसी प्रकार जहाँ निश्चय नहीं, वहाँ व्यवहार किसका कहना? तब इतना उन्होंने स्वीकार किया कि निश्चय का ज्ञान तो होना चाहिए, इतना तो इतना जितना यह कहते हैं, ले न! निश्चय का आचरण श्रद्धा-ज्ञान का ऐसा न लेकर, उसका पहले निश्चय का ज्ञान (होना चाहिए)। ठीक भाई! इतना तो इतना... ऐ पण्डितजी! ऐसा लिखा है। आहाहा! भाई! यह तो मार्ग है। यह तो अनादि सनातन सत्य की रीति की पद्धति है। यह कोई तोड़-मरोड़कर बैठाना, ऐसी चीज़ नहीं है। आहाहा!

जहाँ निश्चय वस्तु ही नहीं, मिट्टी का घड़ा ही जहाँ नहीं, उसे घी का घड़ा कहना किस प्रकार? इसी प्रकार जहाँ आत्मा का आश्रय—निजाश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का अंश भी जिसे प्रगट नहीं हुआ, उसे व्यवहार कहना किस प्रकार? यह बात यहाँ करते हैं। समझ में आया? निश्चय आवश्यकवाला तो यह है। समझ में

आया? परन्तु उसकी भूमिका में अभी जब सवेरे-शाम प्रतिक्रमण बोलता है... तब उसे शुभभाव है, उस वचनवर्गणा के ऊपर उसका लक्ष्य है। आत्मा के ऊपर नहीं, शुभभाव में यहाँ लक्ष्य नहीं, ऐसा कहते हैं। इसलिए कहा न, **पापक्षय के हेतुभूत, सम्पूर्ण द्रव्यश्रुत, वह वचनवर्गणायोग्य...** उसका लक्ष्य वहाँ है न! निमित्त तो वह है। परन्तु उस स्व के निश्चय आश्रयवाले जीव को ऐसा भाव हो, वह पाप के क्षय का कारण कहने में आता है। परन्तु वह ग्रहणयोग्य नहीं, क्योंकि वह शुभभाव राग है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

जिसका मार्ग... वह जिसका फल मुक्ति सादि-अनन्त आनन्द, अरे! उसका उपाय भी अलौकिक ही होगा न! जिसके फलरूप से अनन्त-अनन्त आनन्द अनन्त-अनन्त काल रहे, आहा! सादि-अनन्त ऐसी जो आत्मा की मुक्ति की पूर्ण दशा अनन्त काल रहे और एक समय में अनन्त-अनन्त आनन्ददशा अनुभव करे, ऐसी जो मुक्ति, उसका उपाय तो अलौकिक ही होगा न, भाई! समझ में आया? उसका उपाय तो भगवान आत्मा स्वभाव की मूर्ति के आश्रय में जाकर स्वभाव प्रगट करे, क्योंकि आत्मा स्वयं जिनराज जिनस्वरूप है। भगवान आत्मा... 'जिन सो ही आत्मा...' श्रीमद् ने कहा है न! 'अन्य सो ही कर्म, कर्म कटे जिनवचन सो...' देखो! वहाँ ऐसा है। भाषा ऐसी है। 'कर्म कटे जिनवचन सो...' यह तो निमित्त से बात है। 'उभयनय विरोधध्वंसिनी' नहीं आया? (समयसार कलश ४)। आहाहा! 'जिनवचन में रमे...' आया है न, 'जिनवचन में रमे...' जिनवचन में रमना है? कथन तो ऐसे हैं। समझ में आया?

इस यह सज्झाय कहा जाता है। देखो! स्वाध्याय कहा जाता है। यह शुभभाव, वचनवर्गणा को सुनना, उसे स्वाध्याय कहते हैं। 'स्वाध्याय तप है' वह यह नहीं। व्यवहार से स्वाध्याय यह है, उसे व्यवहार से तप कहा जाता है, परन्तु निश्चय स्वाध्याय जिसे है उसे। समझ में आया? आहाहा! वह पुद्गलद्रव्य ग्रहण करनेयोग्य नहीं। आहाहा! एक ओर रचना करे सन्त, और कहे, वह ग्रहण करनेयोग्य नहीं। भाई! उस भूमिका में होता है, इसलिए उसे रचना का विकल्प भी आया और उस भाव से... और इसलिए तो उसे ऐसा कहा कि वह पाप के क्षय का निमित्त है, अशुभभाव टलने में वह

निमित्त है धर्मी जीव को। समझ में आया? यहाँ तो जितना प्रतिशत जिसका हो, उसका उतना समझना पड़ेगा। (उससे) कम, अधिक और विपरीत ले जाये, यह वह वस्तु में नहीं समाता। आहाहा!

कहते हैं कि **वह सब पौद्गलिक वचनमय होने से स्वाध्याय है, ऐसा हे शिष्य! तू जान।** ऐसा कहा न! वह जाननेयोग्य है, (ऐसा) इसका अर्थ है। समझ में आया? आदरनेयोग्य नहीं। समझ में आया? अपने आ गया न कल? नहीं, परसों। परपरिणति... क्या कहा यह? यह टीका करने से... हाँ, तीसरा कलश। यह समयसार की टीका करने से... तीसरा कलश है। '**समयसारव्याख्यया एव...**' समयसार की टीका करने से ही मेरी परम विशुद्धि हो। ऐई! ऐसा कहा वहाँ तो। मैंने टीका की है, वह स्वाध्याय है, वह तो व्यवहार है, व्यवहार विकल्प है, व्यवहार वचनवर्गणा की रचना में निमित्त होता है। समझ में आया? पाठ ही ऐसा लिया है। पण्डितों! इसका अर्थ लें तो संस्कृत प्रमाण तो ऐसा होता है। '**समयसारव्याख्यया एव...**' समयसार की टीका से ही मेरी शुद्धि बढ़ जाओ।

और यहाँ कहते हैं कि शुभभाव ग्रहण करनेयोग्य नहीं। वह स्वाध्याय है। अरे... अरे गजब! इसका अर्थ कि हम हमारे चैतन्य के आनन्द की ओर के जोरवाले हैं। हमारे द्रव्य की ओर के जोरवाला हमारा भाव है, उसमें यह विकल्प उठा है तो यह जोरवाले काल में ही हमारी शुद्धि हम से हो जाओ। ऐई! आहाहा! हमारा घोलन स्वभाव-सन्मुख का ही वर्तता है। ऐसे काल में यह विकल्प आया और टीका होती है, उस काल में ही हमारी ओर के झुकाव का जोर बढ़कर शुद्धि हो जाओ। समझ में आया?

ऐसा भी कहने में आता है न कि.... धर्मी को समय-समय में अनन्त शुद्धि बढ़ती है। किस कारण से? समझ में आया? समय-समय में अनन्त शुद्धि... अनन्त-अनन्त ऐसा भगवान आत्मा, उसका जहाँ अनुभव में, दृष्टि में आया और बैठा, उसे वह भाव, उसे समय-समय में शुद्धि ही है। यह विकल्प आवे तो भी शुद्धि है। हाँ, अशुभराग के काल में द्रव्य का आश्रय कम है, शुभ के समय अधिक है, शुद्ध के समय उससे अधिक है। समझ में आया? परन्तु आश्रय तो वही वस्तु है, वही उपादेय है, वही ग्रहण करनेयोग्य है और वही मोक्ष का मार्ग है। अब इसमें तकरार और वाद-विवाद को

स्थान कहाँ है भगवान? यह तुम्हारा खोटा और हमारा... भाई! इसमें खोटा-सच्चा की...? यह तो सत्य ऐसा है। समझ में आया?

कहते हैं कि **स्वाध्याय है...** लो। स्वयं कहते हैं, कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं कहते हैं पहली गाथा में। मेरा और तुम्हारा मोह नष्ट करने के लिये यह कहता हूँ। दर्शनमोह तो नाश हुआ ही है, उन्हें स्वयं को... उन्हें दर्शनमोह तो नाश हुआ ही है और श्रोता को भी कहा न कि तेरी एकाग्रता अमुक प्रकार की होनी ही चाहिए। वह राग को मोह कहा है। समझ में आया? और यह विशेष लेने पर ऐसा हो कि सुनते हुए उसे मिथ्यात्व का नाश हो जाये। मिथ्यात्व का रस मन्द पड़ा है और सुनते-सुनते उसका अभाव हो जायेगा, ऐसा। समझ में आया? वहाँ आचार्य स्वयं ऐसा बोलते हैं। दूसरी ओर ऐसा स्वयं आचार्य कहते हैं कि शास्त्र में वर्तती बुद्धि व्यभिचारिणी है, हों! नहीं? भाई! जहाँ-जहाँ जैसा है, वैसी अपेक्षा जाननी चाहिए न, भाई! शास्त्र में वर्तती बुद्धि... देखो! यहाँ कहा, वह तो पाप के क्षय का निमित्त है, परन्तु है तो शुभराग व्यभिचार। समझ में आया?

शास्त्र परवस्तु है और उसकी ओर का लक्ष्य है, वहाँ राग का व्यभिचारपना (है क्योंकि) स्व में नहीं रहा, पर में गया वह तो। आहाहा! व्यभिचार हुआ, कहते हैं। संयोग हुआ परद्रव्य का, उतना स्वद्रव्य का संयोग छूट गया। आहाहा! समझ में आया? एक ओर शास्त्र में गयी हुई बुद्धि को व्यभिचार कहना, एक ओर कहना कि शास्त्र के स्वाध्याय से असंख्यगुणी निर्जरा होती है। धवल में ऐसा पाठ है। शास्त्र की स्वाध्याय से असंख्यगुणी—बहुत निर्जरा (होती है)। समकिती की बात है, हों! अज्ञानी की बात नहीं। एक ओर कहना कि परसन्मुख का राग, वह व्यभिचार है और एक ओर कहना कि इस टीका के काल में ही मेरी शुद्धि बढ़ जाओ। और कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं कि मैं यह टीका करता हूँ, वह मेरा और पर का मोह का नाश होने के लिये यह टीका (ग्रन्थ) करता हूँ। यह तो... किस अपेक्षा से कथन है, ऐसा जानना चाहिए। किस नय की क्या अपेक्षा चलती है, ऐसा जानना चाहिए।

मुमुक्षु : यह तो माथापच्ची है।

पूज्य गुरुदेवश्री : माथापच्ची होगी? उलझन टाले, ऐसी बात है। समझ में

आया ? आहाहा ! वरना विकल्प है वह अलग बात है। वस्तुस्थिति ऐसी है, ऐसा जानने के विकल्प काल में भी ऐसा होता है। आहाहा !

हे शिष्य ! तू जान ! ऐसा तो कुन्दकुन्दाचार्य बोलते हैं। पाठ में है ऐसा ? '**तं सव्वं जाण सज्झायं**' लो। आहाहा ! गजब बात है ! शास्त्र कुन्दकुन्दाचार्य के (और) अमृतचन्द्राचार्य की टीका, गजब बातें हैं ! एक-एक शब्द में बड़ा भाव, एक वाक्य में अनन्त आगम भरे हैं। आता है न श्रीमद् में ? 'ज्ञानी के एक-एक वाक्य में अनन्त आगम भरे हैं।' वस्तुस्थिति में से आवे, उसमें क्या ? वह आत्मा की वाणी है, ऐसा कहते हैं वहाँ। वहाँ तो ऐसा कहा, लो। वाणी आत्मा को होगी ? यहाँ आया न अपने, कल नहीं आया ? दोपहर में। भाववचन और द्रव्यवचन। यह शुरु करता हूँ। भाववचन (अर्थात्) मेरे ज्ञान का—स्वसंवेदनज्ञान का क्षयोपशम, उसमें से धारावाही परिणति चलती है मेरी, इस प्रकार से मैं शुरु करता हूँ और विकल्प से जो यह बात है, वह भी मैं शुरु करता हूँ। भाव सूक्ष्म आनन्दकन्द ज्ञानानन्द ज्ञानधारा, उससे मैं शुरु करता हूँ—ऐसा कहा है वहाँ। जब-जब वाणी निकलेगी, तब वह-वह निकलने के योग्य थी, परन्तु उस काल में वह मेरा ज्ञान था, जिस प्रकार से मैं कहना चाहता हूँ, वैसा मेरा भाव, उस भाव को अनुसरकर ही उसकी वाणी होगी। समझ में आया ? आहाहा ! यह तो अगमनिगम की बातें हैं।

श्लोक कहते हैं। इसे सज्झाय कहा। अमृतचन्द्राचार्य ने कहा कि टीका करते हुए मेरा मोह नाश होगा। समझ में आया ? शुद्धि बढ़ेगी। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, टीका करते हुए मेरा मोह और तेरे मोह का नाश होगा। यहाँ कहते हैं कि सज्झाय है, वह ग्रहण करनेयोग्य नहीं। आहाहा ! उस काल में मुझे निर्मलता होगी और उससे होगी—ऐसा कथन का अन्तर है। समझ में आया ? आहाहा ! टीका के काल में ही मेरा घोलन अन्दर इतना बढ़ेगा (कि) शुद्धि होगी। ऐसे विश्वास से बात करता हूँ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा ! कलश, २६३ कलश है न।

मुक्त्वा भव्यो वचन-रचनां सर्वदातः समस्तां,
निर्वाणस्त्रीस्तनभरयुगाश्लेषसौख्यस्पृहाढ्यः।

नित्यानन्दाद्यतुल-महिमा-धारके स्व-स्वरूपे,
स्थित्वा सर्वं तृणमिव जगज्जालमेको ददर्श॥२६३॥

आहाहा! **श्लोकार्थः ऐसा होने से,...** कहते हैं, राग का भाव होने पर भी वह ग्रहण करनेयोग्य नहीं। **मुक्तिरूपी स्त्री के पुष्ट स्तनयुगल के आलिंगन-सौख्य की स्पृहावाला....** अहो! (जैसे) स्तन की पुष्टि होती है, इसी प्रकार जिसे अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान की दशा में पुष्टि होती है, मुक्ति की पर्याय में अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द की पुष्टि पूर्ण होती है। ऐसे पुष्टि का स्वादिया जीव... समझ में आया? ऐसा कहते हैं न, देखो! मुक्तिरूपी स्त्री के आलिंगन के सौख्य से... उसके पुष्ट आनन्द और ज्ञान के अनुभवने के स्पृहावाला। है न? आत्मा की मुक्ति अर्थात् कि अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान और अनन्त गुण की पुष्टि पूरी हो गयी है। आहाहा! दृढ़ वज्र की भाँति, ऐसी जो मुक्तिरूपी स्त्री, उसके स्तनयुगल का आलिंगन सौख्य की स्पृहावाला (अर्थात्) पूर्ण आनन्द के सौख्य को अनुभवनेवाला, उसकी स्पृहावाला। आहाहा!

भव्य जीव... भव्य जीव की बात है न? उसके योग्य है वह, ऐसा कहते हैं। **समस्त वचनरचना को सर्वदा छोड़कर,...** लो, समस्त वचनरचना को सर्वदा छोड़कर... सुनना-बुनना छोड़ दे, कहते हैं। ऐई! सुनना और सुनना सब छोड़ दे, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। वस्तु तो जैसी हो, वैसी होगी न। आहाहा! वीतराग त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव का पंथ जगत से निराला है। किसी जगत के साथ कहीं मिलान खाये, ऐसा नहीं है। आहाहा! कहते हैं कि भव्य जीव वह वचनरचना... 'समस्त और सर्वदा' दो शब्द पड़े हैं। यह व्यवहार समस्त ही और सब काल में... भगवान! तेरा स्वरूप तेरे आश्रय से प्रगटे, वह दशा है। बाकी पर के आश्रय से है, वह भाव समस्त ही और सब काल में छोड़ दे। आहाहा! जेठाभाई! बहुत कठिन! ऐसा कहना, सुनाना, उसमें उत्साह और हर्ष करता हो तो छोड़ दे। उसमें से कुछ लाभ होगा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : करता ही नहीं, होता है। 'धर्म करता नहीं' का अर्थ करता ही नहीं। आहाहा! अरे! अटपटी बातें! वीतराग के घर में अलौकिक बातें हैं भाई! समझ में आया?

कहते हैं कि ऐसे परम आनन्द की दशा... यह नियमसार है न! नियमसार अर्थात् मोक्ष का मार्ग। और मोक्षमार्ग का फल मोक्ष। तो उस मोक्ष की स्पृहावाला, ऐसा। भव्य जीव... अब उसका मार्ग ... है न। यह तो फल स्पृहादि... अब उसका मार्ग? कि वचनरचना को सर्वदा छोड़ दे। आहाहा! महाराज! आप वचनवर्गणा को छोड़ने का कहते हो और तुम तो वचनवर्गणा से शास्त्र बनाते हो। भाई! तुम वचनवर्गणा के विकल्प में तो आये हो, उसका लक्ष्य करके। नहीं आये भाई! सुन! कहा था एक बार सम्प्रदाय में। चर्चा आवे न, वचननिरोधे... मौन रहने से क्या लाभ होगा? ऐसी बात आती है २९ अध्याय में। उत्तराध्ययन में ७३ बोल का स्पष्टीकरण।

उसमें ऐसा बोले और फिर व्याख्यान करते हुए वाणी तो है। वचन मौन नहीं। शिष्य शंका करता है कि तुम वचनमौन से लाभ (कहते हो तो) तुम क्यों वचनमौन करते नहीं? अरे भगवान! सुन न, भाई! उस समय बोलते हुए भी ज्ञानी तो मौन ही है। ऐई! आता है या नहीं, भाई? समयसार, समयसार नाटक। नाटक में बहुत बोल आते हैं। बोलने पर भी मौन है, चलने पर भी समाधि में है। प्रवचनसार में (आता है कि) खाते हुए भी अनाहारी है; विहार करते हुए भी अविहारी है। यह प्रवचनसार की २२७वीं (गाथा)। आहाहा! समझ में आया? नय अर्थात् क्या परन्तु? यह नय से ऐसा कथन किया जाता है, वह आदरणीय नहीं। समझ में आया? मार्ग ऐसा है, भाई!

नित्यानन्द आदि अतुल महिमा के धारक निजस्वरूप में स्थित रहकर,... लो। ऐसे व्यवहार के विकल्प को सुनना-बुनना छोड़ दे। आहाहा! अरे! परन्तु सन्तों ने बनाये हुए स्वाध्याय के पाठ, प्रतिक्रमण के, सामायिक के... यह तो कहा हमने। पहले से हम कहते हैं। परन्तु भगवान के मुख से निकली हुई वाणी, कहते हैं, आहाहा! वह वाणी पुद्गल वचनरचना है। सुनने के काल में उसका शुभभाव है, अशुभ का नाश होता है, परन्तु स्व का आश्रय उसमें नहीं। इसलिए **नित्यानन्द आदि अतुल महिमा...** भगवान आत्मा प्रभु तेरा नाथ आत्मा... आहाहा! नित्यानन्द—जो उसमें नित्य आनन्द पड़ा है। वस्तु वह कहीं दुःखरूप होगी? दुःख तो विकृत (पना) बतलाता है। विकृत तो दशा में हो, वस्तु विकृत नहीं होती। त्रिकाली वस्तु और वस्तु का स्वभाव विकृत नहीं होता, अपूर्ण नहीं होता। आहाहा! समझ में आया?

नित्यानन्द—नित्य आनन्द आत्मा प्रभु... आहाहा! **आदि अतुल...** नित्य ज्ञान, नित्य आनन्द, नित्य स्वच्छता, नित्य प्रभुता, नित्य जिनराजपना, परमेश्वरपद नित्य आत्मा में है। समझ में आया? देखो! स्वयं नित्य है, ऐसे उसके गुण भी नित्य है, ऐसा कहते हैं। नित्य, तेरा आनन्द भी नित्य। आहाहा! ऐसे नित्यानन्द आदि... नित्य ज्ञान, नित्य स्वच्छता, नित्य प्रभुता, नित्य परमेश्वरता इत्यादि **अतुल महिमा का धारक...** भगवान... आहाहा! जिसकी महिमा के साथ दूसरे की तुलना (नहीं होती), ऐसा प्रभु तू नित्य द्रव्य है। आहाहा! समझ में आया? ओहोहो! टीका और उसके कलश! अब यह मुनि की ऐसी बात कितनों को सुहाती नहीं। (वे) कहते हैं, इसमें भूल है, फलाना है। तुझमें भूल है, इसलिए सबमें भूल देखता है... सुन न! सच्चे में भूल देखता है। खोटे में देख न!

अतुल महिमा का धारक... जिसकी महिमा का पार नहीं ऐसा प्रभु तेरा, ऐसा **निजस्वरूप,** उसमें **स्थित रहकर...** यह नित्य आवश्यक। यह निश्चय स्व-आश्रय आवश्यक (अर्थात्) अवश्य करनेयोग्य क्रिया, जिसे यहाँ सत्क्रिया कहा है। समझ में आया? और उसे एक अपेक्षा से—राग की अपेक्षा से उसे अक्रिया भी कहा है। समझ में आया? राग को जब क्रिया कहते हैं, (तब) स्वरूप में स्थित दशा को अक्रिय कहते हैं, परन्तु द्रव्य को जब निष्क्रिय कहते हैं, तब पर्याय को सक्रिय कहते हैं। भगवान आत्मा वस्तु जब निष्क्रिय है, तब उसमें स्थिति है, वह सक्रिय है और राग को जब सक्रिय क्रिया कहा जाता है, तब निर्मल आवश्यक सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को निष्क्रिय कहा जाता है। समझ में आया?

अरे! **निजस्वरूप में स्थित रहकर, अकेला...** आहाहा! अभी रास्ते में आते थे तब भाई थे न जयन्तीभाई। वह पीपल। पीपल नहीं, आंक। आंक का वृक्ष बीच में आता है। कहा, यह अकेला पड़ा है। स्त्री नहीं, पुत्र नहीं, घर नहीं, मकान नहीं। अकेला है भगवान (आत्मा) तो। उसमें राग नहीं, द्वेष नहीं, हिंसा नहीं, उदय नहीं; कुछ नहीं। वह तो अकेला है। **अकेला निरालम्बरूप से...** आहाहा! भाषा देखो! क्या कहते हैं? व्यवहार के आलम्बनरहित, ऐसा। व्यवहार हुआ अवश्य भले, परन्तु वह अकेला

निरालम्बन—व्यवहार के विकल्प का भी जिसे आलम्बन नहीं ऐसा **सर्व जगतजाल को...** आहाहा! **(समस्त लोकसमूह को) तृण समान (तुच्छ) देखता है।** बड़े-बड़े महात्मा दिखाई दे अज्ञानी या पैसेवाले दिखाई दे, वह यहाँ... नहीं। वह तुच्छ है, उसकी कुछ गिनती नहीं।

ऐसे स्वभाव के समक्ष धर्मात्मा सर्व जगतजाल को तृण समान अर्थात् कीमत बिना की चीज़ गिने। समझ में आया? ऐसे बड़े पैसेवाले और ऐसे बड़े इज्जतवाले और बड़ी कीर्ति हो, बापू! यह कोई वस्तु है? वस्तु तो अपनी जो है, उसमें एकाग्र हुआ जीव अकेला है, इसलिए अकेला निश्चय की दशावाला है, ऐसा। व्यवहार के आलम्बनरहित सर्व जगतजाल को... आहाहा! सर्व जगतजाल में विकल्प से लेकर सब पूरी दुनिया, उसे तृण समान देखता है। आहाहा! उसकी कुछ कीमत नहीं, भाई! मेरी कीमत के समक्ष उन सब चीज़ों की कीमत नहीं। उसे निश्चय परम-आवश्यक होता है और वह निश्चय परम-आवश्यक, वही निश्चय मोक्षमार्ग है। नियमसार है न! नियमसार की यह सब पर्यायें नियमसाररूप से बतलायी हैं। निश्चय परमावश्यक, समाधि, प्रतिक्रमण (आदि) सब नियमसार की—मोक्षमार्ग की पर्यायरूप के सब नाम अलग-अलग हैं। समझ में आया? **तृण समान देखता है।** लो, और पर को किसलिए तृण समान देखना? यह जानने में मेरी कीमत के समक्ष उस कोई दूसरी चीज़ की कीमत नहीं है, ऐसा कहते हैं। यह श्लोक (पूरा हुआ)।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण १३, सोमवार, दिनांक - १५-११-१९७१
गाथा-१५४, प्रवचन-१७८

निश्चय परम-आवश्यक अधिकार, १५३ गाथा का कलश हो गया। श्लोक आधारवाला है, देखो! **इसीप्रकार (श्रीमूलाचार में पंचाचार अधिकार में २१९वीं गाथा द्वारा) कहा है कि:—**

परियट्टणं च वायण पुच्छण अणुपेक्खणा य धम्मकहा।
थुदि-मंगल-संजुत्तो पंच-विहो होदि सज्झाउ॥

कहते हैं, वचनवर्गणा जितनी प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान आदि बोलने में आवे, वह सब स्वाध्याय कही जाती है अर्थात् कि उसमें शुभराग है। समझ में आया? प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना, नियम इत्यादि व्यवहार जो सब है, उस वचनवर्गणा के बोलनीरूप से **वयण** है और उसमें उसका लक्ष्य (जाने से) शुभराग होता है। वचन के ऊपर (लक्ष्य) जाता है, इसलिए शुभराग होता है। वह स्वाध्याय है, वह धर्म नहीं।

मुमुक्षु : उससे अशुभ टले।

पूज्य गुरुदेवश्री : अशुभ टले, वह दृष्टि की अपेक्षा से। दृष्टि है तो टलता है, तथापि वह धर्म नहीं। यह बात तो हो गयी। सम्यग्दृष्टि को शुभ जो है, वह पापक्षय का निमित्त है। है वर्तमान शुभराग, वह यहाँ सिद्ध करना है। अशुभराग तो टलता है, दृष्टि है न स्वभाव के ऊपर, इसलिए जो स्वाध्याय में राग आता है, उसमें अशुभ टलता है, परन्तु दृष्टिवन्त को (टलता है)। यह अज्ञानी की बात नहीं है। समझ में आया? इसे विशेष लेते हैं अब।

गाथार्थः परिवर्तन (पढ़े हुए को दुहरा लेना वह),... विकल्प एक राग है, स्वाध्याय है। आहाहा! शास्त्र दुहरा लेना, पर्यटन करना, परिवर्तन—बदलना—वह भी एक शुभराग है, स्वाध्याय है। वचनवर्गणा है न इसलिए उसे स्वाध्याय कहा जाता है। **वाचना (शास्त्र-व्याख्यान),...** करना। वाँचनी देना, वह भी एक स्वाध्याय है, शुभराग

है। वाँचना बहुत चलती है श्वेताम्बर में। खबर है न! वाँचनी ली, वाँचणी लो। यह सब वाँचणी-बाँचणी वह तो सब ठीक, परन्तु सच्चा हो तो भी यह वाँचणी का भाव शुभराग है। धर्म नहीं, निर्जरा और संवर नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। निश्चय परमावश्यक है न! वह सब व्यवहार आवश्यक है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : यहाँ तो व्यवहार को निश्चय माने....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब एक ही। व्यवहार का निश्चय दूसरा कौनसा? वही यह। आहाहा! इतना वापस स्पष्टीकरण किया। निश्चय परमावश्यक अधिकार चलता है। तथापि यहाँ व्यवहार डाला १५३ में। यह सब वचनवर्गणा से बोलना, सुनना, स्वाध्याय करना—समस्त ही स्वाध्याय शुभराग ही है।

पृच्छना (शास्त्र श्रवण) अथवा पूछना। प्रश्नों को पूछना, तत्त्वचर्चा। वह भी एक शुभराग, स्वाध्याय है। कहो, समझ में आया? आत्मा का—चैतन्यस्वभाव का आश्रय होने पर भी उसे जब ऐसा शुभराग का भाव होता है, तब ऐसी वचनवर्गणायें स्वतन्त्ररूप से परिणमती है, परन्तु उसका निमित्तपना शुभराग है, ऐसा कहकर उस वचनवर्गणा को स्वाध्याय कहा जाता है। समझ में आया? शास्त्रश्रवण करना, वह भी एक शुभराग है। है या नहीं अन्दर? शास्त्रश्रवण करना, पूछना, उत्तर देना, वह सब स्वाध्याय है, शुभराग विकल्प है। स्वभाव का आश्रय है, इसलिए उस समय अशुभराग टलता है, परन्तु स्वयं वस्तु है, वह तो शुभराग है। समझ में आया?

अनुप्रेक्षा (अनित्यत्वादि बारह अनुप्रेक्षा).... तत्त्वार्थसूत्र में अनुप्रेक्षा संवर में डाली है। बारह अनुप्रेक्षा, वह स्वभाव के आश्रय की घोंटनदशा है, ऐसी बारह अनुप्रेक्षा को वहाँ संवर (अर्थात्) पुण्य-पाप के विकल्परहित की दशा उसे गिना गया है। यहाँ अनुप्रेक्षा, वह शुभराग है। समझ में आया? यह शरीर अनित्य है, कोई शरण नहीं—इत्यादि विकल्प, वह स्वाध्याय है। आहाहा! समझ में आया? शुभविकल्प राग है। **अनुप्रेक्षा** आ गया न? **और धर्मकथा...** धर्मकथा कहना, वह शुभराग, स्वाध्याय है। वे तेरापंथी आदि कहते हैं कि धर्मकथा कहने से निर्जरा होती है। धर्मकथा करना, वह निर्जरा है। धूल भी नहीं निर्जरा, सुन न! समझ में आया?

मुमुक्षु : नहीं सुना।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं सुना?

मुमुक्षु : वृत्ति का उत्थान हो, वही हुआ न.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह विकल्प वृत्ति है, वृत्ति है। स्वरूप की अन्तर एकाग्रता नहीं। आहाहा! स्व के आश्रय से हो, वह निश्चय आवश्यक है और पर के लक्ष्य से उसे स्वाध्यायादि हो, वह व्यवहार आवश्यक। व्यवहार का अर्थ राग, शुभ उपयोग। समझ में आया?

धर्मकथा की व्याख्या ऐसी की है। **(६३ शलाकापुरुषों के चारित्र)...** वह तो सब धर्मकथा कोई भी धर्मकथा में विकल्प ही है। छद्मस्थ की बात है न! केवली की बात नहीं कहीं। निश्चय आवश्यक का साधन जहाँ है, उसे ऐसे भाव होते हैं, उसे विकल्प और स्वाध्याय कहा जाता है, ऐसा है। आहाहा! भगवान आत्मा अपना अतीन्द्रिय आनन्दस्वभाव, उसका आश्रय करके जो एकाग्रता प्रगट हो, वह संवर-निर्जरा अथवा वह धर्म है अथवा वह सच्चा आवश्यक, सच्ची सामायिक उसे कहा जाता है। समझ में आया?

अन्दर ऐसा स्वाश्रय वर्तता है उसे भी, जब सामायिक का पाठ बोलता है... समझ में आया? तब वह शुभ विकल्प और स्वाध्याय है। कहो, चिमनभाई! ऐसी सामायिक होगी? वह तो सामायिक करके बैठे, हो गयी सामायिक, जाओ। आहाहा! हो गया धर्म। जाओ, अब २३ घण्टे करो पाप चाहे जैसे। एक घण्टे धर्म हो गया जाओ। अब घड़ी नहीं, अब तो घड़ियाल है, पहले था। लो, यह घड़ियाल आयी उस घड़ी के बदले। आहाहा! उसकी तो बात ही नहीं। यह तो सम्यग्दृष्टि जीव को स्व के आश्रय से जो दशा निश्चय आवश्यक क्रिया होती है, उसे ऐसी धर्मकथा के काल में स्वाध्याय अथवा शुभराग कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा!

इसके अतिरिक्त **ऐसे पाँच प्रकार का, स्तुति तथा मंगल सहित, स्वाध्याय है।** देव और मुनि को वन्दन... देव और गुरु को वन्दन, वह भी एक स्वाध्याय है। समझ में आया? कहो, पण्डितजी! है या नहीं उसमें? **देव और गुरु-मुनि को वन्दन** करना।

इच्छामि... जो भाषा हो वह। तुम्हारे नहीं होगी। इसकी बात है न अभी। समझ में आया? यह तो दिगम्बर सनातन सत्य में क्या है, उसकी बात है। समझ में आया? यह जब देव और गुरु को वंदे, वह भी स्वाध्याय कही जाती है। वह संवर-निर्जरा नहीं, निश्चय आवश्यक नहीं।

स्तुति तथा मंगल... यह मांगलिक करना, व्यवहार से पहले कहा न मांगलिक करो। वह व्यवहार मांगलिक, वह भी शुभ विकल्प और स्वाध्याय है। कहो, समझ में आया? 'णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं' करो मांगलिक पहले। वह वचनवर्गणा है, उसमें शुभराग है। जेठाभाई! ऐसा स्वरूप है। 'चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहु मंगलं, केवलीपण्णत्तो धम्मो मंगलं।' यह वचनवर्गणा है, उस काल में उसे शुभराग होता है। समझ में आया? 'चत्तारि मंगलं' कहनेवाले को और सुननेवाले को दोनों को शुभराग होता है। समझ में आया?

स्तुति और मंगल मिलकर स्वाध्याय का पाँचवाँ प्रकार माना जाता है। धर्मकथा, स्तुति और मंगल, यह तीन बोल होकर। वे चार ऐसा करके, एक यह तीन होकर पाँच गिनना है। बहुत स्पष्ट किया है। मूलाचार में है। कहो, समझ में आया? यहाँ तो, मांगलिक सुनने जाऊँगा तो अपना काम सफल होगा इसके लिये मांगलिक सुनने जाता है। विवाह करने जाये न, मांगलिक सुने, तो फिर हमारे सब व्यवस्थित रहेगा। वह तो सब मिथ्याभ्रम, अज्ञानभाव है। उसकी यहाँ बात नहीं। उसकी तो यहाँ बात ही नहीं। समझ में आया? परन्तु जिसे आत्मा चिदानन्द भगवान का आश्रय—अवलम्बन वर्तता है... ऐसी अमुक प्रकार की स्वाश्रित क्रिया धार्मिक तो है ही, परन्तु स्वरूप में शुद्ध उपयोग में स्थिर नहीं है, इसलिए उसे ऐसे स्वाध्याय का विकल्प होता है, परन्तु वह सब मांगलिक कहना, सुनना, वह सब शुभराग है; वह धर्म नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार मांगलिक कहो। व्यवहार मांगलिक अर्थात् क्या? बन्ध का कारण। वह वाणी सुनना, वह भी व्यवहार मांगलिक है, शुभराग है, ऐसा कहते हैं। केवली को तो कुछ राग है नहीं, इसलिए उनकी धर्मकथा तो निर्जरा खाते है,

उदय है वह खिर जाता है। परन्तु छद्मस्थ को—धर्मात्मा को निश्चय के आश्रय में रहा हुआ होने पर भी, अन्दर में स्थिर नहीं है, इसलिए उग्ररूप से तब उसे ऐसे भाव आते हैं, इसलिए उसे स्वाध्याय करके जरा सा कुछ मानो ठीक स्वाध्याय है... स्वाध्याय है। ऐसा कहा है न पाठ में भी देखो! गाथा १५३ में।

वयणमयं पडिकमणं वयणमयं पच्चखाण णियमं च।
आलोयण वयणमयं तं सव्वं जाण सज्झायं॥१५३॥

सज्झाय जान। सज्झाय का अर्थ कि उसे पुण्यभाव जान। समझ में आया? ऐसा स्वरूप है। वह मंगलसहित स्वाध्याय जानना। धर्मकथा में स्तुति और मांगलिक भी आ जाता है। वह मांगलिक करना कि पहले करो व्यवहार। 'णमो अरिहंताणं' लिखो। शास्त्र में पहले मांगलिक करके, परन्तु है वह सब स्वाध्याय, विकल्प। आहाहा! गजब बात है न! गणधर भी शास्त्र रचते हैं, तब पहले 'णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं...' ऐसा कहे। कहते हैं, वह स्वाध्याय है। समझ में आया? वह शुभविकल्प है। स्वाध्याय कहकर वहाँ मानो ऐसे खड़ा रखा। वह शुभराग है। वह निश्चय आवश्यक नहीं। स्व के आश्रय से हुई दशा, उससे यह विरुद्धभाव है। आहाहा! समझ में आया? (अब) १५४ (गाथा)।

'**जदि सक्कदि कादुं जे**' ऐसी बात की है, अब ऐसा कहते हैं कि यदि तुझे ऐसा हो, अरेरे! ऐसा अन्तर आश्रय का निर्विकल्प ध्यान—अध्यात्मध्यान, वह क्रिया सब कही। वह यदि न हो सके कदाचित्, परन्तु श्रद्धा में तो रखना कि वस्तु का अन्तर आश्रय करना, वही धर्म है। जितना बाहर के आश्रय से विकल्प होता है, वह धर्म नहीं है। आहाहा! भारी किया।

जदि सक्कदि कादुं जे पडिकमणादिं करेज्ज झाणमयं।
सत्ति-विहीणो जा जइ सद्दहणं चेव कायव्वं॥१५४॥

जो कर सको तो ध्यानमय प्रतिक्रमण आदिक कीजिये।
यदि शक्ति हो नहिं तो अरे श्रद्धान निश्चय कीजिये॥१५४॥

आहाहा! देखो यह मार्ग! श्रद्धा में गड़बड़ करना नहीं, कहते हैं। कि भाई! ऐसी

क्रिया होती है, ऐसी क्रिया होती है, निश्चय स्थिरता नहीं, इसलिए वह भी अभी धर्म है, ऐसा करना नहीं। समझ में आया? अन्दर निर्विकल्प ध्यान में नहीं रह सकता, इसलिए ऐसे विकल्प होते हैं, इसलिए वह भी एक धर्म है, मोक्ष का मार्ग है—ऐसा मानना नहीं। समझ में आया? आहाहा!

टीका : यहाँ शुद्धनिश्चयधर्मध्यानस्वरूप प्रतिक्रमणादि ही करनेयोग्य हैं, ऐसा कहा है। आत्मा को ध्येय बनाकर उसमें स्थिर होना, वह सब प्रतिक्रमण आदि की क्रिया है। आहाहा! प्रतिक्रमण वह, प्रत्याख्यान वह, नियम वह, स्वाध्याय—निश्चय स्वाध्याय भी वह। समझ में आया? ऐसा **शुद्धनिश्चयधर्मध्यान...** भाषा कैसी स्पष्ट प्रयोग की है। धर्मध्यान कहा, तथापि शुद्ध निश्चयधर्मध्यान (कहा)। स्वभाव पूर्ण आनन्द और ज्ञान में एकाग्रता होना, उसे यहाँ धर्मध्यान कहा है। तब कहते हैं कि शुभभाव हो तो धर्मध्यान, शुद्ध हो तो शुक्लध्यान। ऐ पण्डितजी! तुम्हारे लिये पण्डित लोग कहते हैं। यह जवाब देते हैं, मीठा जवाब देते हैं। ऐसा कि मीठी तो बात है, कहते हैं पण्डितजी। रतनचन्दजी ऐसा कहते हैं कि शुभभाव अभी धर्मध्यान होता है, शुद्ध नहीं। यहाँ कहते हैं कि शुद्ध आत्मा के आश्रय से... यह पंचम काल के मुनि कहते हैं, पंचम काल में रहे हुए।

कहते हैं कि **शुद्धनिश्चयधर्मध्यान...** भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द और ज्ञान का स्वभाव, उसका आश्रय लेकर शुद्धपने स्थिर हो, वह शुद्धनिश्चय धर्मध्यान है। उसमें शुभ के विकल्प की गन्ध भी नहीं। पहले तो बात कर गये हैं। निश्चयसहित शुभ की तो कर गये हैं, कहते हैं कि परन्तु करनेयोग्य तो निश्चय है। समझ में आया? आहाहा! करनेयोग्य वह (शुभ) है, ऐसा नहीं कहा। आता है, वह ऐसा है, ऐसा जान—ऐसा कहा है। आहाहा! 'व्यवहार ऐसा जान' ऐसा कहा है वहाँ। ऐसा होता है एक। परन्तु वह स्वाध्याय है, ऐसा जान। वह करनेयोग्य है, ऐसा नहीं। चरणानुयोग के व्यवहार में करनेयोग्य—ऐसा आता है। समझ में आया? परन्तु इसका अर्थ कि होता है, वह जाननेयोग्य है। समझ में आया? वीतराग का मार्ग अलौकिक है, भाई! उसका फल भी अलौकिक है न! सिद्धपद हो, मुक्ति हो, उसे क्या कहना!

यहाँ—इस गाथा में **शुद्धनिश्चयधर्मध्यान...** तब एक व्यवहार धर्मध्यान भी है, ऐसा कहा, वह शुभ विकल्प है, वह व्यवहार धर्मध्यान है। व्यवहार धर्मध्यान है, वह बन्ध का कारण है। समझ में आया? एक भगवान आत्मा पूर्णानन्द और पूर्ण ज्ञान का धाम, उसमें प्रविष्ट होना, स्थिर होना, बस, यही शुद्ध, यह सच्चा धर्मध्यान है। यह सच्चा प्रतिक्रमण, सच्ची सामायिक, सच्चा प्रत्याख्यान, सच्ची आलोचना, सच्चे लिये हुए नियम—वह सब यह है।

सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर के शिखामणि,... आहाहा! अपनी बात करते हैं। सहज... पर से सहज वैराग्य, निमित्तों से और राग से। अस्तित्व में तो दृष्टि द्रव्य—ध्येय के ऊपर है और ऐसे से—पर से सहज वैरागी है। सहज स्वभाव पूर्ण ध्रुव चैतन्य की दृष्टि में तो पूरा आत्मा ही अस्तिरूप से है। नास्तिरूप से ऐसे वैराग्य (अर्थात् कि) राग से हट गया है, सारे संसार से जो अन्तर उदास है। समझ में आया? स्वाभाविक वैराग्य है। अर्थात् कि पुण्य का विकल्प जो राग और उसके निमित्त, उन सबसे जिसे वैराग्य है, विरक्तपना है। आहाहा! समझ में आया? पुण्य-पाप में ऐसा कहा है न कि वैराग्य उसे कहना कि जो शुभ-अशुभराग है, उससे हटे, हटे उसका नाम वैराग्य है। समझ में आया? स्वाभाविक वैराग्य अर्थात् कि वस्तु के पूर्ण स्वभाव में पड़ा है, दृष्टि और स्थिरता वहाँ है, इससे इस ओर से हट गया है। इस ओर ढल गया है और इससे (पर से) हट गया है। परन्तु वह सहज हटा है, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

स्वाभाविक वैराग्यरूपी महल... महल अर्थात् मकान बड़ा बँगला। उसका शिखर, उसका शिखामणि (अर्थात्) ऊपर टोंच। ऐसा जो धर्मात्मा अथवा स्वयं (मुनि) ऐसा कहते हैं कि ऐसा मैं हूँ। **परद्रव्य से पराङ्मुख...** देखो! भाषा। ऐसे सन्मुख है न, इसलिए यहाँ से (पर से) पराङ्मुख है। भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध द्रव्यस्वभाव के सन्मुख है धर्मात्मा, इसलिए परद्रव्य से विमुख है। **परद्रव्य से पराङ्मुख और स्वद्रव्य में निष्णात बुद्धिवाले,...** आहाहा! अपना भगवान आत्मा ऐसा जो स्वद्रव्य, उसमें निपुण बुद्धिवाला है, निष्णात है। लोग नहीं कहते? कि उसमें निष्णात है, पारगामी है।

मुमुक्षु : एक्सपर्ट।

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थात्? निष्णात (शब्द) नहीं था, परन्तु हमारे गुजराती (शब्द) चाहिए था। तुम तो कर रहे हो इंग्लिश। निष्णात है अर्थात् पूरा है, पारगामी है, ऐसा। उसमें पूरा निष्णात है। यहाँ तो अपने सादी भाषा चाहिए न। समझ में आया? आहाहा!

पर से पराङ्मुख और स्वद्रव्य में निष्णात बुद्धि—ज्ञानवाला है। स्वद्रव्य चैतन्य... राग और विकल्प से रहित ऐसा जो स्वद्रव्य, एक समय की पर्याय से भी रहित, ऐसे स्वद्रव्य में निष्णात ज्ञानवाला है, परिपूर्ण ज्ञानवाला है, उसमें निपुण है। समझ में आया? आहाहा! स्वद्रव्य में निष्णात बुद्धिवाला **पाँच इन्द्रियों के विस्ताररहित...** मुनि की बात करते हैं न स्वयं की। पाँच इन्द्रियों का विस्तार ही नहीं जहाँ (अर्थात्) संकुचित हो गयी है। अन्दर अतीन्द्रिय में आ गया है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? पाँच इन्द्रिय के फैलाव, खण्ड-खण्ड इन्द्रिय की ओर का झुकाव, वह सब संकुचित हो गया है। समझ में आया? मुनि की व्याख्या है न मुनि की। सम्यग्दर्शन में स्वसन्मुख है, राग से विरक्त तो है, परन्तु उसे अभी राग बहुत है। इन्हें तो राग की अस्ति ही अल्प रह गयी है, उससे भी वे विरक्त हैं—ऐसा कहना है। पंच महाव्रत पालना, स्वाध्याय कहा न, उन सब विकल्प से भी वह वैराग्यवन्त है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कठिन मार्ग, भाई!

वीतराग का मार्ग, इसे आना, महा अनन्त पुरुषार्थ है। यह ऐरे-गैरे का काम नहीं है। आहाहा! और जिसे आत्मा की आवश्यकता है, दूसरी कोई आवश्यकता नहीं, किसी बात की—पूरी दुनिया की। समझ में आया? पूरी दुनिया से हट गया है, कहते हैं न! कल आया था, नहीं? **जगतजाल सर्व को तृण समान देखता है।** उसकी कुछ कीमत उसके मस्तिष्क में होती नहीं। आहाहा! दुनिया क्या बोले, प्रशंसा करे, निन्दा करे। उन सब परद्रव्यों को कीमतरहित चीज़ मानता है। उसमें कुछ कम है नहीं। आहाहा! उस चीज़ में माल ही नहीं। यहाँ तो तृणवत् देखता है, (अर्थात् कि) उसका कुछ वजन ही नहीं है, उसकी कुछ कीमत नहीं है। समझ में आया? आहाहा! ऐसे पाँच इन्द्रियों के विस्तार अर्थात् इन्द्रियाँ ऐसे बाहर काम करती है, वह है ही नहीं वहाँ, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

देहमात्र परिग्रह के धारी,... मुनि की बात है न! मुनि तो एक देह हो, इसके अतिरिक्त वस्त्र-पात्र (आदि) कोई चीज़ नहीं होती उन्हें। श्रीमद् में भी आता है न, 'देहमात्र संयम हेतु होय जब...' आता है। 'मात्र देह वह संयम हेतु होय जब...' और वापस वह डाले, जातिवेश का भेद नहीं। वहाँ और यह डाले। देखो! यहाँ जातिवेश का भेद नहीं, चाहे जो जाति हो। परन्तु यहाँ कहते हैं न, भगवान। यह तो वस्तु का स्वरूप ऐसा है। तुझे उल्टे अर्थ करना आते हैं। जीव को तो भगवान रूप से सम्बोधित किया है। 'मात्र देह वह संयम हेतु...' अब उसमें कहाँ वस्त्र और पात्र आये? वह जहाँ आवे 'जातिवेश का भेद नहीं, कहा मार्ग जो होय,' वहाँ जोर देते हैं। अभी दिया था न वहाँ उसने। भगवानदास? भगवानदास, मनसुखभाई का पुत्र। जाति-वेश का... देखो! किसी भी जाति, किसी भी वेश में साधुपना हो (तो) मोक्षमार्ग है। लोग प्रसन्न हो जाये। यहाँ तो कहते हैं, मुनि तो उसे कहते हैं कि जिसे शरीर मात्र परिग्रह होता है। परिग्रह अर्थात् ममता नहीं, परन्तु उनके पास रही हुई एक चीज़, ऐसा। दूसरी (चीज़) होती नहीं, ऐसा समझ में आया?

परमागमरूपी मकरन्द झरते... आहाहा! मुनि के मुख में से परमागमरूपी पुष्प का रस-फूल का पराग झरता है। फूल में रस (पराग) होता है न। यह भँवरे घनघनाहट करते हुए वहाँ जाते हैं। कहते हैं, वह भँवरा घनघन करता जाये, वह वनस्पति के फूल होते हैं, वे खिले हों और वहाँ पराग हो अन्दर। पद्मनन्दि में आया है न! इसी प्रकार सर्वज्ञ और सन्तों की धर्मदेशना की ध्वनि घनघन करती जो आवे, वह पात्र हो, वे खिल जाते हैं। लकड़ी के फूल और संगमरमर के फूल, वे खिलते नहीं। समझ में आया? कहते हैं कि जो पुष्प में रस होता है, पराग होती है, पराग। भँवरा चूसता है न पराग? पराग कहते हैं न? उसी प्रकार परमागमरूपी पराग—परमागम का रस झरता है।....यह वस्तु की स्थिति वर्णन करते हैं। अर्थात् वास्तव में तो स्वयं अपने को कहते हैं, हे पद्मप्रभ मुनि शार्दूल! **मुखकमल से शोभायमान हे मुनिशार्दूल!** ऐसा कहकर स्वयं को कहते हैं। आहाहा!

परमागमरूपी... 'परमागम' भाषा है, देखा! भगवान की वाणी सन्तों ने—गणधरों ने रची हुई ऐसा जो परमागम, उसका सार—उसका पराग—फूल का रस—फूल का

पराग **झरते मुखवाले...** आहाहा! मुखरूपी कमल में से परमागमरूपी रस झरता है, कहते हैं। सन्त तो ऐसे होते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! नग्न मुनि दिगम्बर वनवास में बसते होते हैं। उस परमागम का जब कथन करेंगे, कहते हैं कि परमागम का रस झरता है मुख में से। आहाहा!

ऐसे **मकरन्द झरते मुखकमल से शोभायमान हे मुनिशार्दूल!** हे मुनि सिंह! उसमें सिंह जैसा था। समझ में आया? जैसे सिंह मृग को थाप मारकर उसे फडाक देकर नीचे दबा देता है... इसी प्रकार धर्मात्मा अन्तर में वीर्य की गर्जना से रागादि को मारकर नष्ट कर डालते हैं। समझ में आया? स्वभाव-सन्मुख जो वीर्य की जागृति हुई है... हे मुनि सिंह-शार्दूल! देखो! 'शार्दूल' शब्द प्रयोग किया है न। शार्दूल (अर्थात्) केसरिया सिंह होता है, ऐसा। आहाहा! केसरिया पहनावा पहना है। आनन्द और शान्ति के स्वभाव में चढ़ा है, राग के विकल्प को तो फाड़कर-तोड़कर नाश कर डालता है। आहाहा! समझ में आया? व्यवहार कहा था न यहाँ, उस व्यवहार को फोड़ डालता है, तोड़ डालता है। समझ में आया? आदरनेयोग्य तो नहीं था, जाननेयोग्य था, उसे भी फाड़-तोड़ डालता है। आहाहा! क्या परन्तु सन्त की कथनी!

मुनि शार्दूल... **(अथवा परमागमरूपी मकरन्द झरते मुखवाले हे पद्मप्रभ मुनि शार्दूल!) संहनन और शक्ति का प्रादुर्भाव हो...** यदि संहनन की मजबूती, यह निमित्त और शक्ति अन्दर की उसकी... पहले तो प्रादुर्भाव—उत्पत्ति हो। दो बातें ली हैं। समझ में आया? मजबूत संहनन भी निमित्त होता है और पुरुषार्थ की जागृति उग्र हो यहाँ। समझ में आया? संहनन और शक्ति का सद्भाव प्रादुर्भाव... संहनन की शक्ति जड़ की, वह निमित्त (और) अपनी शक्ति उग्र, स्वरूप के ध्यान में जम जाना ऐसी।

ऐसा यदि हो **तो मुक्तिसुन्दरी के...** मुक्तिरूपी सहजदशा। सहज सिद्ध गति... .... 'परिणति' गति का अर्थ ऐसा किया है जयसेन आचार्य ने। सिद्धगति। गति अर्थात् सिद्धपरिणति। ऐसी सिद्ध की परिणतिरूपी मुक्ति, उसके **प्रथम दर्शन की भेंटस्वरूप...** अर्थात् मोक्ष तुरन्त होता है, ऐसा। राग से तो भिन्न है और ऐसे स्वद्रव्य के आश्रय से जो यह वीतरागी क्रिया, ऐसी शक्ति। अन्दर ध्यान में मस्त हो जाये, ऐसी हो तो **प्रथम दर्शन की भेंटस्वरूप निश्चयप्रतिक्रमण,...** यह क्रिया कर्तव्य है। आहाहा! अन्दर में निर्विकल्प

ध्यान में रहना, वही तेरा कर्तव्य है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? शक्ति और संहनन—यह उपादान और निमित्त, ऐसे दो साथ में लिये हैं। समझ में आया?

ऐसी यदि शक्ति हो, तब तो निश्चय प्रतिक्रमणस्वरूप में स्थिर हो जाना, वही तेरी क्रिया है। आत्मा के आनन्द में जमवट जम जाना... जमी है न... कल बोले थे, वह याद आया। बोले थे, कल रात्रि में बोले थे। ...आहार करके घूमते थे न। 'जामी' यह सबका शब्द हो प्रथम। उसे वही आया करे। 'जामी है न' ऐसा कहे। जामी है। बर्फ जैसे स्थिर होता है (अर्थात्) जम जाता है, उसी प्रकार आत्मा के अन्दर स्थिर हो जाना, वह 'जम जाना' ऐसा कहने में आता है। दही जमता है न, लो न! दही जमता है अर्थात् क्या? दही... दही। ...कठोर। प्रवाही मिटकर जम जाना। अकेला... ऐसे विकल्परूपी प्रवाह में न जाकर जम जाना अन्दर में दही की भाँति कठिन। क्या कहते हैं दही को? खोट जैसा। यह सब भाषा होती है न स्वतन्त्र। दही, खोट जैसा दही है, कहे। अकेला ऐसा कठिन लोंदा। नीचे पानी अलग पड़ जाये। दही जमे न। ऊपर... अकेला खोट जैसा नीचे। किसी में पानी न आवे अकेला खोट हो जाये। पानी जरा भी न हो, ऐसा दही है। अकेला खोट ही दिखे। नीचे भी नहीं और ऊपर भी नहीं, कहीं नहीं।

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं, जम जाना अन्दर आत्मा में... आहाहा! ऐसी **प्रथम दर्शन की भेंटस्वरूप निश्चयप्रतिक्रमण,...** ऐसी क्रिया तुझे करनेयोग्य है, हों! बात तो यह है। निश्चयप्रतिक्रमण... पुण्य-पाप के विकल्प से हटकर स्वभाव में लीनता करनेयोग्य है। आहाहा! यह धार्मिक क्रिया है। **निश्चयप्रायश्चित...** वह भी यह। स्वभाव में प्रायः ऐसा स्वरूप—अपना ज्ञानस्वरूप, उसमें स्थिर हो जाना। यह निश्चयप्रायश्चित का अधिकार आ गया है न! **निश्चयप्रत्याख्यान...** प्रत्याख्यान अर्थात् कि स्वरूप में—द्रव्यस्वभाव में वीतरागी परिणति में जम जाना, वह सच्चा प्रत्याख्यान है। सब **इत्यादि...** सामायिक, भक्ति (आदि) सब बोल आये थे न! आलोचना, नियम, योग, समिति, गुप्ति इत्यादि। अन्तर में... अन्तर में स्थिर होना, वह समिति और गुप्ति है। समझ में आया? आहाहा! यह **शुद्धनिश्चयक्रियाएँ ही कर्तव्य है।** देखो! शुद्धनिश्चयक्रियायें ही कर्तव्य है।

परन्तु **यदि इस दग्धकालरूप...** अरे! **(हीनकालरूप)...** अपनी पुरुषार्थ की कमजोरी में निमित्त है, उसकी बात करते हैं। समझ में आया? अरे! हीन काल में...

अरे! यह दग्धकाल—अकाल में... आहाहा! अर्थात्? मुक्ति होने की पर्याय का काल अभी नहीं है, आहाहा! अकाल है। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द का धाम, उसकी पूर्ण आनन्द और ज्ञान की दशा होना, इसका नाम मुक्ति, इसका नाम दुःख से और अपूर्णता से छूटा और आनन्द और ज्ञान की पूर्णता की प्राप्ति हुई, उसका नाम मुक्ति, उसका नाम मोक्ष। आहाहा! ऐसी मुक्ति की क्रिया के लिये अकाल वर्तता है, कहते हैं। समझ में आया?

लो, यह अकाल। पाठ में उस दग्धकाल का अर्थ 'हीनकाल' शब्द कहा। दग्धकालरूप अकाल, ऐसा। जिसमें भगवान आत्मा जम जाये अन्दर में, इतना स्थिर कि विकल्प की वृत्तिमात्र न रहे। और वही क्रिया अन्तर की मुक्ति का कारण है। ऐसी तुझसे न हो सके तो, ऐसा कहते हैं... उसमें संहनन और शक्ति दो लिये थे पहले। यहाँ तो कहते हैं कि शक्तिरहित हो तो... समझ में आया? संहनन का निमित्त कुछ नहीं, वह तो यहाँ शक्ति नहीं, इसलिए संहनन का निमित्त नहीं। समझ में आया? आहाहा!

अरेरे! ऐसे दग्धकाल—**अकाल में तू शक्तिहीन हो तो तुझे केवल निज परमात्म-तत्त्व का श्रद्धान ही कर्तव्य है।** आहाहा! निज परमात्मा भगवान आत्मा... अरे! कितना बड़ा है, उसकी कहाँ इसे खबर है? वह अनन्त-अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, पूर्ण अनन्त वीतरागता आदि से भरपूर परमेश्वर स्वयं है। आहाहा! अरेरे! पामर की दृष्टि में परमेश्वर कैसे परखा जाये? समझ में आया? कहते हैं, अरे! तुझे तो केवल... यह छोड़ना नहीं, कहते हैं। वह आत्मा में स्थिर हो जाना ध्यान में, वही मुक्ति का कारण है, ऐसी तो श्रद्धा बराबर आत्मा के आश्रय से होती है। इतना सब आत्मा के आश्रय से क्रिया का—स्थिरता का भाव निश्चय का न हो सके, इस कारण से शक्तिहीन हो तो... समुच्चय बात ही की है यहाँ। ऐसा हो तो ऐसा, ऐसा हो तो ऐसा। समझ में आया?

यह **शुद्धनिश्चयक्रियायें...** भगवान आत्मा में स्थिर हो जाने की निर्विकल्प वीतरागी शान्ति और समाधि, वही क्रिया करनेयोग्य है, शक्ति और संहनन का निमित्त हो तो। शक्तिहीन हो तो, फिर निमित्त का यहाँ कुछ नहीं। समझ में आया? तू शक्तिहीन हो तो **तुझे केवल निज परमात्मतत्त्व...** अखण्ड अभेद ज्ञायकभाव, आनन्दभाव, शुद्ध... शुद्ध... अकेला पवित्र के स्वभाव का धाम, ऐसा निज परमात्मतत्त्व उसकी केवल...

निज परमात्मतत्त्व का श्रद्धान ही कर्तव्य है। श्रद्धा में गड़बड़ करना नहीं, ऐसा कहते हैं। निज परमात्मतत्त्व और उसमें स्थिरता की क्रिया—यही मोक्ष का कारण है, ऐसी श्रद्धा निश्चित रखना। बीच में अभी हमारे तो यह शुभभाव, वह भी साधन है, ऐसी गड़बड़ करना नहीं, कहते हैं। समझ में आया? भीखाभाई! आहाहा!

आचार्य ने—मुनि ने भी काम किया है न यह टीका का! आहाहा! भगवान! तू यदि शक्तिवान हो, तब तो अकेले स्वरूप में स्थिर हो जाना, वही क्रिया मुक्ति के कारण के लिये करना। दर्शन की पहली भेंट अर्थात् मुक्ति का कारण। परन्तु वह पर्याय में प्रगट करने की शक्ति न हो, तो भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप है, पूर्ण परमात्मा हूँ और उसमें स्थिर होने की क्रिया, वही मोक्ष का कारण है—ऐसी निज परमात्मा की श्रद्धा तो रखना ही। इतना स्व-आश्रय तो छोड़ना नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

तुझे केवल निज परमात्मतत्त्व का... इसका अर्थ हुआ या नहीं? कि निज परमात्मतत्त्व का श्रद्धान का अर्थ कि इतना आश्रय लेकर पड़ा है। त्रिकाल भगवान आत्मा, वही वस्तु है। उसमें स्थिर होना, वह मोक्ष का कारण है। न हो सके तो इतनी श्रद्धा तो बराबर आश्रय से रखना। भगवान (आत्मा) के आश्रय से जो श्रद्धा हुई, वही मुक्ति का कारण है, ऐसे आत्मा के आश्रय से जो स्थिरता हो, वही मुक्ति का कारण है। पर के आश्रय में रागादि आवे, वह मुक्ति का कारण किंचित् है नहीं। श्रद्धा में गड़बड़ करना नहीं। आहाहा! कहो, कपूरभाई! कपूर में से तो मात्र सुगन्ध ही निकले। धुँआ निकले? इसी प्रकार भगवान आत्मा में स्थिर होने में तो वीतरागता ही पर्याय आवे। उसमें से क्या राग आवे? और राग साधन हो?

इतना सब नहीं किया जा सकता तो कुछ तो रखो इसे। ऐसी क्रिया इस काल में नहीं होती तो व्यवहार से कुछ साधन है।—ऐसी गड़बड़ करना नहीं, भाई! साधन तो स्वभाव में एकाग्र होना, वही साधन है। दूसरा कोई साधन है नहीं। आहाहा! यह श्रद्धा स्वाश्रय की दृढ़ रखना। दुनिया बदल जाये, प्रतिकूलता के संयोग के गंज कदाचित् आवे, परन्तु यहाँ से फिरना नहीं। समझ में आया? आगे तो कहेंगे कि कोई ईर्ष्या करके ऐसे मार्ग की निन्दा करे, तू रखना बनाकर। तेरा मार्ग तो यही है। दुनिया को न बैठे,

दुनिया न माने और विरोध में पड़कर निन्दा में जाए, तुझे कुछ नहीं, तू उसकी कीमत करना नहीं। समझ में आया? उनके बोल के समक्ष तू देखना नहीं। बहुत अच्छी (गाथा है)। लो, हमारे पोपटभाई प्रसन्न हुए। पहले कियें हैं न ढोंग बहुत।

आहाहा! क्या परन्तु अमृत बहाया है, हों! आहाहा! भाई! श्रद्धा में तो... उसमें आता है न मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में, आता है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... यह षट्पाहुड़ में भी आता है। षट्पाहुड़ है न... टीका में। गाथा में भी आता है। यहाँ तो कहते हैं कि श्रद्धा, ज्ञान... मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में सातवें अध्याय में (आता है) कि जब तक स्थिरता न हो, तब तक इसे शुभभाव आवे, परन्तु श्रद्धा में रखना कि शुभभाव धर्म का कारण नहीं है। लिया है उसमें। श्रद्धा रखना कि शुभभाव धर्म का कारण नहीं। यदि धर्म का कारण माना (तो) मिथ्यात्व है। समझ में आया? सातवाँ अध्याय है न! मोक्षमार्गप्रकाशक में इस ओर के पृष्ठ पर है। आहाहा!

भगवान! तुझमें—स्वभाव का अध्यात्मध्यान, वह मोक्ष का कारण तत्काल होता है, ऐसी शक्ति न हो... आयेगा बाद में टीका में। कलश में आयेगा। तो तुझे केवल अकेला भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ अनन्त-अनन्त समाधि की सामग्री का भरपूर है, वही वस्तु है और उसमें स्थिर होना, वही मोक्ष का कारण है—ऐसी श्रद्धा पक्की करना स्व के आश्रय से। समझ में आया? लो, मुनि होकर ऐसा कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं, ऐसा न करे तो इतना तो करना। आहाहा! ज्ञान में जो बात बैठी, वह परिणति फिर कैसे फिरे? जानकर, परीक्षा करके जो बात बैठी, उसका फिरना (बदलना) कैसे (हो)? द्रव्य बदले तो वह बदले। आहाहा! समझ में आया?

यह कहते हैं न कि अभी पंचम काल है, इसलिए शुभभाव अभी साधन है। ऐसा कहते हैं। दर्शन... अभी तो शुभभाव ही होता है। उसमें जरा भी राग बाकी है, वह बन्ध का कारण है, उसमें राग घटा, वह संवर-निर्जरा है, ऐसा (अज्ञानी) कहते हैं। आहाहा! परन्तु जिसकी दृष्टि ही राग के ऊपर है, उसे राग जरा भी घटा नहीं। आहाहा! क्योंकि

रागरहित चीज़ क्या है, (ऐसी) निजस्वभाव की दृष्टि जहाँ हुई नहीं, उसे राग शुभ में घटता है, यह बात ही खोटी है। वह तो तीव्र कषाय को माननेवाला है। राग से धर्म माननेवाला, उसमें तीव्र कषाय-मिथ्यात्व है यह। समझ में आया? वह तो तीव्र कषायवाला है, तीव्र कषाय अर्थात् मिथ्यात्व का भाव। आहाहा!

यहाँ तो स्वभाव का भान होने पर भी, जितनी स्थिरता—मुक्ति के लिये स्व के आश्रय की उग्रता चाहिए, उतनी न हो तो, ऐसा। ऐसी श्रद्धा भगवान आत्मा अकेला पूर्णानन्द प्रभु है, उसे कोई व्यवहार के अवलम्बन की आवश्यकता नहीं और व्यवहार से कुछ लाभ हो, ऐसा उसमें है नहीं, वह उसका स्वभाव ही नहीं। अकेला भगवान ज्ञानरूपी चैतन्य प्रभु की केवल एक की ही श्रद्धा रखने से उसमें स्थिरता की क्रिया, वह मुक्ति का कारण है, यह श्रद्धा में आ जाता है। समझ में आया? परन्तु व्यवहार ऐसा हो, व्यवहार ऐसा हो, उसमें से भी कुछ... एक व्यक्ति और ऐसा कहता था। व्यवहार आता है, उसमें थोड़ी सी विश्रान्ति मिलती है। आया था कल। समझ में आया? एक छोटालालजी हैं न, यहाँ फिर हाँ कर गये थे और वहाँ फिर वापस बदल गये। यह आया है समाचारपत्र में। व्यवहार है, वह जरा सा विश्रान्त होना, थोड़ी शान्ति मिले, फिर अन्दर जाया जाये। अरे! ऐसी व्यवहार की मिठास....

इसीलिए तो यहाँ बात करते हैं। भाई! मिठास छोड़ दे, भगवान की मिठास प्रगट कर। ऐसा आत्मा, उसके आश्रय से एक श्रद्धान ही तुझे कर्तव्य है। आहाहा! करनेयोग्य, स्वद्रव्य के आश्रय से निश्चयश्रद्धा, वही तेरा कर्तव्य है और उसमें निश्चय की क्रिया हो तो मुक्ति का कारण है, यही श्रद्धा कर्तव्य है। व्यवहार बीच में आवे, इसलिए मुक्ति का कारण है, ऐसा है नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण १४, मंगलवार, दिनांक-१६-११-१९७१
श्लोक-२६४, गाथा-१५४-१५५, प्रवचन-१७९

यह नियमसार सिद्धान्त शास्त्र हैं। हिन्दी आये हैं, हिन्दी लोग। निश्चय परम-आवश्यक का अधिकार है। निश्चय परम-आवश्यक क्या? अथवा नियमसार क्या? वह तो नियमसार कहो या निश्चय परम-आवश्यक कहो—दोनों एक बात है। अपना आत्मा शुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द में सन्मुखता करके एकता का ध्यान (करना), स्वरूप में एकता और रागादि की पृथक्ता का नाम नियमसार अथवा सच्ची आवश्यक क्रिया कही जाती है। है न? १५४। गाथा का कलश है। २६४ कलश है।

असारे सन्सारे कलि-विलसिते पाप-बहुले,
न मुक्तिर्मार्गेऽस्मिन्ननघ-जिन-नाथस्य भवति।
अतोऽध्यात्मं ध्यानं कथमिह भवेन्निर्मलधियां,
निजात्म-श्रद्धानं भव-भयहरं स्वीकृत-मिदम्॥२६४॥

पद्मप्रभमलधारि दिगम्बर सन्त-मुनि हैं, जंगलवासी हैं। उन्होंने यह कलश बनाया है। कहते हैं कि अरे! **श्लोकार्थ : असार संसार में...** संसार में कोई सार है नहीं। संसार शब्द से उदयभाव। उदयभाव अर्थात् राग-द्वेष विकल्प आदि जो उदयभाव, वह संसार है। उसमें कोई सार है नहीं। उसमें धर्म है नहीं, उसमें सार है नहीं। नियमसार है न! उदयभावरूपी संसार में कोई सार है नहीं। **पाप से भरपूर कलिकाल का विलास होने पर,...** अरे! पंचम काल... पाप से भरपूर कलिकाल... ऐसे कलिकाल के विलास की प्राधान्यता होने से **इस निर्दोष जिननाथ के मार्ग में मुक्ति नहीं है।** इस काल में निर्दोष जिननाथ वीतराग परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने जो मुक्ति का मार्ग कहा, उस मुक्ति के मार्ग से मुक्ति हो, ऐसा जो मुक्ति का मार्ग (कहा), उससे मुक्ति हो, ऐसी मुक्ति अभी नहीं है। समझ में आया?

इसलिए इस काल में अध्यात्मध्यान कैसे हो सकता है? अर्थात् मुक्ति—पूर्णानन्द

की प्राप्तिरूप मुक्ति अभी जिननाथ के मार्ग में है नहीं। तो यह मुक्ति का जो मार्ग कि जो साक्षात् अध्यात्मध्यान है, साक्षात् मुक्ति प्राप्त हो, ऐसा अध्यात्मध्यान कैसे हो सकता है? समझ में आया? पाठ तो ऐसा है कि **इस काल में अध्यात्मध्यान कैसे हो सकता है?** अर्थ दूसरा किया। इसका अर्थ कि मुक्ति हो, ऐसा ध्यान इस काल में है नहीं। समझ में आया? तो इस काल में अध्यात्मध्यान कैसे हो सकता है? भगवान आत्मा पूर्णानन्द में लीनता, जिससे मुक्ति प्राप्त हो, ऐसी लीनता का तो अभी अभाव है। समझ में आया?

इसलिए निर्मलबुद्धिवाले... जीव को... जिसको सम्यग्ज्ञान, अपना चैतन्यस्वभाव के आश्रय से सम्यग्ज्ञान उत्पन्न हुआ है... समझ में आया? इसलिए निर्मलबुद्धिवाले जीव **भवभय का नाश करनेवाली ऐसी इस निजात्मश्रद्धा को अंगीकृत करते हैं।** पाठ कुन्दकुन्दाचार्य का है। इतनी स्थिरता (कि) जितनी मुक्ति को प्राप्त होने को चाहिए, उतनी है नहीं। स्थिरता इतनी न हो और विशेष भूमिका के योग्य, सातवें गुणस्थान के योग्य स्थिरता जब न हो, तो ऐसे नहीं मानना कि शुभभाव विकल्प आते हैं, उससे क्रम से-क्रम से मुक्ति होगी—ऐसी मान्यता नहीं करना। समझ में आया? मुक्ति तो अपना भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध ध्रौव्य द्रव्यस्वभाव में एकता करके (होती है)। यदि पूर्ण स्थिरता न हो सके तो एकता करके निजात्मा की श्रद्धा तो कर्तव्य है। मैं तो आत्मा पूर्णानन्द हूँ। श्रद्धा अर्थात् परलक्ष्यी श्रद्धा की बात यहाँ नहीं है। समझ में आया?

कहते हैं कि मुनि को करना तो आवश्यक क्रिया अन्दर ध्यान की करना। यह तो पहले भी आ गया है। अन्तर आनन्दस्वरूप में लीनता, वही आवश्यक क्रिया और वही मुक्ति का मार्ग है। समझ में आया? भाई! आवश्यक है न? अवश्य करनेयोग्य, जरूरतवाली क्रिया। जरूरत की क्रिया तो भगवान उसे कहते हैं कि अपना भगवान ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप के सन्मुख होकर एकाग्रता करना, उसका नाम सच्ची—निश्चय आवश्यक क्रिया कही जाती है, वही मुक्ति का मार्ग है। समझ में आया? बीच में व्यवहार प्रतिक्रमण और व्यवहार सामायिक का विकल्प जो होता है, वह मुक्ति का मार्ग नहीं है। स्थिर न हो सके, तब बीच में ऐसा विकल्प आता है, परन्तु वह बन्ध का कारण है, वह मोक्ष का कारण नहीं। ऐसी निजात्मा के आश्रय से श्रद्धा तो पक्की रखना

चाहिए कि निजात्मा के आश्रय से श्रद्धा हुई, ऐसे निजात्मा के आश्रय से चारित्र होगा और निजात्मा के आश्रय से मोक्ष का मार्ग पूर्ण होगा, तब मुक्ति होगी।

ऐसी दखल नहीं करना कि ऐसा ध्यान और स्थिरता नहीं है तो शुभभाव से, व्यवहारक्रिया से भी मुक्ति होगी। ऐसी श्रद्धा नहीं करना। समझ में आया? यह गाथा तो अष्टपाहुड़ में भी है। समझे? मोक्षप्राभृत में है न? पण्डितजी! गाथा बोलते थे न। ... अष्टपाहुड़ में टीका में है। श्रद्धा करना... बोले थे न कल? **'जं सक्कइ तं कीरइ जं च ण सक्केइ तं च सद्दहणं'** (दर्शनपाहुड़, गाथा २२)। उसकी ध्वनि यही है। जब तक आत्मा में पुण्य का परिणाम—दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का होता है, वह मुक्ति का कारण नहीं। समझ में आया? जितनी परलक्ष्यी वृत्तियाँ शुभभाव की उठती हैं, वह धर्म भी नहीं और वह मुक्ति का कारण भी नहीं। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि ऐसी स्वरूप में स्थिरता की क्रिया न बन सके, स्व के आश्रय में पूर्ण लीनता न हो सके, तो निजात्मश्रद्धा (करना) कि मैं पूर्णानन्द अखण्ड अक्रिय—राग से रहित चीज़ हूँ—ऐसी अनुभव में स्वाश्रय की दृष्टि तो रखना और श्रद्धा में ऐसा रखना कि स्वद्रव्य का आश्रय विशेष करूँगा, तब मेरी मुक्ति होगी। समझ में आया? लो, यह आया था।

निर्मलबुद्धिवाले... ऐसा लिया है न यहाँ तो। (अर्थात्) सम्यग्ज्ञानी लिया है। अपना आत्मा पूर्ण ज्ञान-आनन्दस्वरूप है, उसके अन्तर में लीनता... शुभ-अशुभ विकल्प से हटकर, निमित्त का भी लक्ष्य छोड़कर और शुभराग का—शुभोपयोग का भी आश्रय, लक्ष्य छोड़कर, भगवान आत्मा पूर्ण ज्ञान-आनन्द का आश्रय करके सम्यक्-श्रद्धान करना और सम्यक्-श्रद्धान रखना। गड़बड़ नहीं करना कि ऐसे स्व के आश्रय से ध्यान नहीं होता है तो मुक्ति नहीं है तो व्यवहार से भी कभी क्रम से-क्रम से मुक्ति होगी। ऐसा नहीं करना। समझ में आया? यहाँ तो निजात्म की—(निज) परमात्मा की श्रद्धा ली है न! **'सद्दहणं चेव कायव्वं'** है न? फिर उसका स्पष्टीकरण किया। **'सित्तविहीणो जा जइ सद्दहणं चेव कायव्वं'** यति को—मुनि को कहते हैं, हों! आहाहा!

मुनि की तो क्रिया... वास्तव में तो धार्मिक क्रिया वह है कि अन्तर आनन्दमूर्ति में एकाग्र होना, वही धार्मिक क्रिया है। मुनि की क्रिया तो वही है। समझ में आया? और वही परम आवश्यक क्रिया मुक्ति का कारण है। यहाँ तो (कहा कि) निश्चय-

आवश्यक है, वही क्रिया धर्म की है और वही सत्क्रिया है। बीच में राग आता है पंच महाव्रत आदि का, वह असत्क्रिया है, वह सत्क्रिया नहीं, वह मुक्ति के कारण(रूप) परिणति—क्रिया नहीं। तो ऐसे स्वरूप में लीनता की उच्च श्रेणी की सत्क्रिया न हो तो ऐसा नहीं मानना कि ऐसा नहीं है तो शुभ में से कभी धर्म लाभ होगा। ऐसा नहीं मानना। **निजात्मश्रद्धा...** कहा न? निजात्मश्रद्धा को अंगीकार करना। मैं भगवान आत्मा ज्ञाता-दृष्टा हूँ, पूर्ण आनन्द हूँ, पूर्ण ज्ञान हूँ—ऐसे सन्मुख में—स्वभाव के सन्मुख होकर निजात्मा के आश्रय से होनेवाली श्रद्धा—सम्यग्दर्शन तो पक्का करना चाहिए। कहो, समझ में आया?

ऐसी गड़बड़ नहीं करना भाई! कि यह तो पंचम काल है तो महाव्रत की क्रिया से भी कल्याण होगा। अट्ठाईस मूलगुण है न साधु का, वह विकल्प है, वह तो राग है। उससे भी मुझे कल्याण होगा, ऐसी श्रद्धा नहीं करना। यह श्रद्धा मिथ्यात्व है। आहाहा! कठिन काम, भाई! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य १५४ गाथा में ऐसा फरमाते हैं। मोक्षप्राभृत में भी है, टीका में भी है, पण्डितजी बोले वह टीका। समझ में आया? अष्टपाहुड़ है न। मूल पाठ .... संस्कृत और उस पाठ में भी है मोक्षपाहुड़ में। आहाहा! मोक्षप्राभृत, पृष्ठ ३२? मोक्षपाहुड़ पृष्ठ ३१। मूल श्लोक... अष्टप्राभृत, पृष्ठ ३३१... गाथा २२, दर्शनपाहुड़ की है, वह टीका में होगी।... वह टीका में है, संस्कृत टीका में है, मूल श्लोक में नहीं। वह दर्शन का क्या आया? दर्शन का कहा था न। दर्शनपाहुड़, गाथा २२।

जं सक्कइ तं कीरइ जं च ण सक्केइ तं च सद्दहणं।
केवलीजिणेहिं भणियं सद्दमाणस्स सम्मत्तं॥२२॥

कुन्दकुन्दाचार्य का श्लोक है। '**केवलीजिणेहिं भणियं**' तुम जो बोले थे, वह संस्कृत टीका में है ४३ गाथा। '**जं सक्कइ तं कीरइ**' यदि शक्ति हो तो आत्मा की अन्तर निर्विकल्प अमृत के अनुभव में रहना, वह मार्ग है। समझ में आया? '**जं सक्कइ तं कीरइ जं च ण सक्केइ तं च सद्दहणं।**' न कर सके तो श्रद्धा तो ऐसी करना कि भगवान आत्मा के आश्रय से निर्विकल्प परिणति वीतरागदशा हो, वही मुक्ति का कारण है। राग और विकल्प उठते हैं, बीच में आता है, वह मुक्ति का कारण नहीं। समझ में आया?

'**केवलीजिणेहिं भणियं सद्दमाणस्स सम्मत्तं।**' केवली परमात्मा... यह संस्कृत... यह भाई बोले थे, परन्तु यह तो पाठ है न यहाँ।

'**जं सक्कइ तं कीरइ**' शक्ति हो तो आत्मा के आनन्दस्वभाव में लीन होना, वही धार्मिक क्रिया, वही मुक्ति का कारण और वही परम-आवश्यकक्रिया है। '**जं च ण सक्केइ**' शक्ति न हो—अन्तर आत्मा में अमृत की परिणति करने की सामर्थ्य न हो तो '**केवली जिणेहिं भणियं**' सर्वज्ञ परमात्मा ऐसा कहते हैं (और) कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं कि भगवान ऐसा कहते हैं। '**सद्दमाणस्स सम्मत्त**' भगवान आत्मा अखण्ड आनन्द और शुद्ध चैतन्य है, ऐसा अनुभव करके श्रद्धा करना और श्रद्धा में (रखना कि) पूर्ण शुद्धि तो प्राप्त होगी, तब मेरी मुक्ति होगी। ऐसे राग से और विकल्प से और व्यवहार से परम्परा मुक्ति होगी, ऐसी श्रद्धा छोड़ देना—ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह तो गाथा अपनी है। नियमसार, १५४ लिखा है इसमें। वह तो टीका में है, वह टीका में है ४३ में।

जं सक्कइ तं कीरइ जं न सक्केइ तं च सद्दई
सद्दहणं जीवो पावइ अजरामरं ठाणं

सम्यग्दर्शन—निर्विकल्प आत्मा की प्रतीति... आहाहा! स्वसंवेदन—आत्मा का—ज्ञान का वेदन होकर, उसमें शुद्धता का भाव प्रगट होकर, ऐसा आत्मा पूरा शुद्ध है, ऐसी प्रतीति, वह '**सद्दहणं जीवो**' ऐसी श्रद्धा करनेवाले का '**पावइ अजरामरं ठाणं**' जन्म-मरणरहित मुक्ति प्राप्त करेगा। यह '**सद्दहणं जीवो**' यहाँ कहा है, हों! आशय तो यहाँ दूसरी बात है। उत्कृष्ट क्रिया न कर सको तो, ऐसा यहाँ है। स्याद्वद अधिकार में तो... समझ में आया?

आत्मा परम पवित्र स्वभाव का धाम, उसके अवलम्बन से जितनी वीतराग शुद्ध परिणति—पर्याय प्रगट हो, बस वही एक मुक्ति का मार्ग है। बीच में शुभभाव हो, आते हैं, होते हैं... वह तो कहा भाव-द्रव्यस्तुति में। दोनों साथ में हो, परन्तु वह द्रव्यस्तुति और विकल्प मुक्ति का कारण नहीं। समझ में आया? कठिन काम, भाई! व्यवहार के आग्रही को तो यह बहुत कठिन पड़े। कठिन पड़े? जँचे नहीं? ऐसी बात है। तू प्रभु पूर्णानन्द सच्चिदानन्द नाथ है न! है न तेरी चीज़ पूर्णस्वरूप? पूर्ण इदं। उसमें एकाग्र

होकर राग की क्रियारहित अरागी परिणति की क्रिया उत्पन्न हो, वही जैनमार्ग में एक मुक्ति का पंथ है। अन्य में तो कहीं है ही नहीं। समझ में आया?

इसीलिए ऐसा कहा न, **इस निर्दोष जिननाथ के मार्ग में मुक्ति नहीं है।** धर्मात्मा का मार्ग जो वीतराग का है, उसमें तो अभी इसकाल में मुक्ति, केवलज्ञान है नहीं। मुक्ति न हो तो अध्यात्मध्यान भी उस प्रकार का... उसमें यह शब्द ऐसा लिया है यहाँ नियमसार में, 'उस प्रकार का'। ऐसा गाथा में नहीं आता, परन्तु शब्द ऐसा लिया है। भाई ने बताया था। यह तो हो सकता है... पहले कह गये हैं न! ...प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान सब ध्यानमय करना, उसकी योग्यता प्रमाण। परन्तु यह उत्कृष्ट मुक्ति के कारण की जो दशा स्थिर होना। ऐसा ध्यान न हो तो श्रद्धा में तो, स्वभाव के आश्रय से पवित्रता—शुद्धता प्रगट हो, वह एक ही मुक्ति का मार्ग है, ऐसी श्रद्धा में डाँवाडोल नहीं करना, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

ऐसी निश्चल-निष्कम्प श्रद्धा... वह श्रद्धा मान्यतापूर्वक ऐसे अकेली नहीं। अन्तर स्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन—प्रतीति होना, वह तो पक्का रखना और वह श्रद्धा आत्मा के आश्रय से उत्पन्न हुई तो आत्मा के आश्रय से—उग्र आश्रय से उत्कृष्ट परिणति होगी, यह परिणति मुक्ति का कारण है। समझ में आया? इसलिए **निर्मलबुद्धिवाले...** मलिन बुद्धिवाले तो कहते हैं कि व्यवहार से लाभ होगा, मुक्ति होगी। वे तो मलिनबुद्धि-मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा! समझ में आया? निर्विकल्प सम्यग्दर्शन... समझ में आया? निर्विकल्प का अर्थ, अपना चैतन्य महाप्रभु, उसमें जहाँ एकत्व होता है, तो विकल्प से विभक्त हो जाता है। राग से विभक्त और स्वभाव से एकत्व। यह स्वभाव में एकत्व हुआ तो राग से विभक्त हुआ, ऐसी आत्मा की निर्विकल्प सम्यग्दर्शन-श्रद्धा... समझ में आया? ऐसी श्रद्धा तो पक्की करना चाहिए। समझ में आया?

इतना सिद्ध करते हैं कि व्यवहार है। है, वह तो यहाँ सिद्ध करते हैं। परन्तु व्यवहार है तो व्यवहार मुक्ति का कारण है, इस बात की गड़बड़ नहीं करना। समझ में आया? वह कहा न। अपने सोगानी में आया न? भाव-द्रव्यस्तुति से... आत्मा की भावस्तुति और द्रव्यस्तुति। देखो! दोनों साथ में लिया (समयसार) पहली गाथा में

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने। हो द्रव्यस्तुति। वीतराग सिद्ध के स्तवन में अपनी अन्तर की एकाग्रता, वह निश्चयस्तुति, आनन्द में लीनता, वह निश्चयस्तुति और सिद्धभगवान—सन्मुख में बहुमान का विकल्प, वह व्यवहारस्तुति। है सही दोनों ही।

मुमुक्षु : एक साथ....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक साथ होता है। समझ में आया?

द्रव्यसंग्रह में कहा न, कौनसी गाथा? '**दुविहं पि मोक्खहेउ पाउणदि जं मुणि णियमा...**' (गाथा ४७)। साथ में ध्यान में है, वह कब कहा? निश्चय धर्मध्यान, निश्चय मोक्षमार्ग और व्यवहार मोक्षमार्ग एक साथ है। पहला मोक्षमार्ग व्यवहार और फिर निश्चय होता है, ऐसा है ही नहीं। समझ में आया? पण्डितजी! यह भाई ने जवाब नहीं दिया? क्या नाम? उत्तमचन्दजी। एक उत्तमचन्द है सिवनी में, बड़ा होशियार है। मुमुक्षु में व्याख्यान करते थे। मक्खनलालजी आये। बड़ा विद्वान। भाई प्रवचन करते थे। उसको जरा खटक लगी कि यह इतना छोटा बच्चा और हम तो कितने वर्ष... यह क्या बात करता है। क्या है निश्चय-व्यवहार? पण्डितजी! निश्चय होता है तो व्यवहार होता है। निश्चय बिना व्यवहार नहीं। शादी निश्चित किये बिना बारात किसकी जोड़ना? ऐसा जवाब दिया भाई ने। उत्तमचन्द अपने आ गया है। बहुत होशियार है। मास्टर है। पढ़ाता है। तत्त्व का अभ्यासी है। पण्डितजी वे मक्खनलालजी, मुरैना। ऐसे बड़े अर्थात् दुनिया में प्रसिद्धि हो न!

यह कहा, किसके साथ शादी—विवाह करना है, ऐसा निश्चित हुए बिना बारात जोड़ देना? इसी प्रकार निश्चय बिना व्यवहार कैसा? वह तो स्तब्ध हो गया। दूसरा दृष्टान्त दिया। मिट्टी का घड़ा नहीं और उसको घी का घड़ा कहना, ऐसा कहाँ से आया? मिट्टी का घड़ा है—निश्चय घड़ा है तो उसको घी का घड़ा कहना, वह व्यवहार है। वह तो होशियार लड़का है। अब तो बहुत जगह हो गये हैं न! चारों ओर लगी है। आहाहा! इतना तो स्वीकार करना पड़ा उसे अभी तक का कि निश्चय का ज्ञान पहले होना चाहिए। बस इतना स्वीकार तो इतना, जा। ऐसा नहीं कि निश्चय की पहली श्रद्धा और ज्ञान निश्चय का होना चाहिए। अकेला ज्ञान, ऐसा नहीं। उसे ऐसा कि निश्चय का ज्ञान

हो, ज्ञान हो व्यवहार से ऐसा करके... वह निश्चय का... तो भी इतना तो कहा न कि निश्चय का ज्ञान... इसका अर्थ कि स्वरूप की निश्चय दृष्टि और ज्ञान निश्चय हो तो फिर विकल्प को व्यवहार कहा जाता है। निश्चय है नहीं तो व्यवहार कहाँ से आया?

यहाँ यह कहते हैं, निश्चयस्वभाव ध्यान में एकाकार निर्विकल्प अमृत का अनुभव... आहाहा! ऐसा जो तुझसे ध्यान—मुक्ति का कारण न हो सके तो... वीतरागमार्ग में मुक्ति के लिये मोक्ष का मार्ग उत्कृष्ट चाहिए, वह तो अभी है नहीं। तो **निर्मलबुद्धिवाले भवभय का नाश करने...** देखो! सम्यग्दर्शन से भवभय का नाश होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्योंकि भगवान आत्मा में भव भी नहीं और भव का भाव भी नहीं। उसमें कहाँ है? वह तो पूर्णानन्द प्रभु आत्मा है। आहाहा! वास्तव में तो एक समय की निर्मल पर्याय भी उसमें है नहीं। ऐसा निर्मलानन्द भगवान की श्रद्धा, वह पर्याय है। परन्तु उसकी श्रद्धा का अर्थ ऐसा नहीं कि अपने (बिना भान के) माने, ऐसा नहीं। अन्दर स्वभाव के आश्रय से प्रतीति होना और राग से पृथक् होकर, स्वभाव से अभेद होकर, अनुभव में भान—प्रतीति होना, उसका नाम निजात्म की श्रद्धा अंगीकार करो, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया?

ऐसा मार्ग है, भाई! मार्ग को दूसरे प्रकार से नहीं करना, ऐसा कहते हैं। तुझसे न हो सके, मुनिपना न हो सके अथवा मुनिपने के योग्य स्थिरता भी न हो सके... समझ में आया? आया था न कहीं? नहीं आया पद्मनन्दि में? ... प्रभु! तेरी भक्ति हमको तारेगी। आता है। पद्मनन्दि में आता है। प्रभु! इस काल में आप जो कहते हो मुनिपना, ऐसा मुनिपना हमारे जैसे को कहाँ हो? पद्मनन्दि मुनि जैसे (कहते हैं)। महासन्त दिगम्बर मुनि वनवासी, आत्मध्यान में मस्त। वे भी जरा अपनी कमजोरी के कारण से ऐसा कहते हैं, अरे प्रभु! आपने जो मार्ग कहा मुनि का, ऐसा हमारे जैसा प्राणी इस काल में कैसे कर सकता है? परन्तु, प्रभु! तेरी भक्ति है हमें। भक्ति का अर्थ यह। समझ में आया?

तेरी भक्ति अर्थात् भगवान जिनराज आत्मा उसकी निजाश्रय सहित जो प्रतीति और अनुभव हो, वह उसकी भक्ति कहने में आती है। समझ में आया? प्रभु! वह भक्ति हमको तारेगी। भाई! ऐसा कहा है वहाँ। हमको वह तारेगी। यह कहा न! वह और

अलग बात। यह तो कारण से यहाँ तो, हमको, ऐसा आपने कहा इतना चारित्र इस पंचमकाल में हमारे जैसे प्राणी से नहीं होता। है तो मुनि छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलनेवाले। समझ में आया? परन्तु विशेष उग्रता नहीं है। हमारे जैसे प्राणी, प्रभु! आपने कहा हुआ मार्ग कैसे कर सकते हैं? परन्तु प्रभु! तेरी भक्ति है न हमको। पूर्णानन्द का नाथ हम हैं शुद्ध अखण्ड अभेद आनन्दकन्द, उसका हमको आश्रय (रूप ऐसी) जो सम्यग्दर्शन की भक्ति हुई है, वह हमको तारेगी। हमारे जन्म-मरण का उद्धार करके हम केवलज्ञान लेंगे। समझ में आया?

श्रीमद् ने कहा, 'यही परमपद प्राप्ति का किया ध्यान मैं...' लो और यह आया उसमें। 'शक्तिविहीन अवस्था मनरथरूप जब।' अभी तो मनोरथ है। समझ में आया? 'तो भी निश्चय राजचन्द्र मन में रहा, प्रभु आज्ञा से...' प्रभु की ऐसी आज्ञा है कि जिसने आत्मा का आश्रय लेकर निर्विकल्प सम्यग्दर्शन प्रगट किया, उसे अल्पकाल में चारित्र और मुक्ति होगी। आहाहा! समझ में आया? ऐसी प्रभु आज्ञा, हों! 'प्रभु आज्ञा से होऊँगा वही स्वरूप जो।' आहाहा! 'अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा?' वह दशा। परन्तु हमारे... मनोरथ—विकल्प की प्रार्थना है। बाकी स्वरूप का आश्रय है, इतना सम्यग्दर्शन-ज्ञान और स्थिरता, इससे आगे बढ़ नहीं सकते। समझ में आया? ... मनोरथ है। निश्चय से, हमारे द्रव्य के आश्रय से भान हुआ, उस भान द्वारा हम निश्चय से मुक्ति को प्राप्त करेंगे। **भवभय का नाश करनेवाली ऐसी इस निजात्मश्रद्धा को अंगीकृत करते हैं।** अंगीकार करते हैं अन्दर में। भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध, उसके प्रकाश में प्रवेश करते हैं। समझ में आया? चैतन्य का प्रकाश ध्रुव नित्य में प्रवेश करते हैं। ऐसी श्रद्धा तो अंगीकार करना चाहिए। कहो, समझ में आया? १५५ गाथा।

'**जिणकहियपरमसुत्ते**' कुन्दकुन्दाचार्य महाराज की गाथा है। संवत् ४९ में भगवान सीमन्धर परमात्मा के पास गये थे। वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाया। मानो ध्वनि उठी है अन्दर में, विकल्प तो है। शास्त्र की गाथा बोलते हैं अन्दर से '**जिणकहियपरमसुत्ते**' उस शब्द की ध्वनि जब उठती होगी, उस काल में विकल्प तो है। समझ में आया? नहीं तो शब्द तो शब्दों से निकलते हैं, वे कहीं विकल्प से नहीं। वह ध्वनि परिणमी तो उसके कारण से है। अनादि भाषा (वर्गणा) का परिणमन होने का एक समय का काल,

वहाँ उस परमाणु का था, इसलिए भाषा परिणमती है। '**जिणकहियपरमसुत्ते**' शब्द आया, उस समय वही परिणमन उसका था। आहाहा! समझ में आया? और अन्दर में ज्ञान की धारा में भी वही कहना था, ऐसी ही वहाँ क्षयोपशमधारा ज्ञान में है। आहाहा! जंगल में रहे मुनि कहते हैं कि '**जिणकहियपरमसुत्ते**' भगवान ने कहे हुए परम शास्त्र।

जिणकहियपरमसुत्ते पडिकमणादि य परीक्खऊण फुडं।
मोणव्वएण जोई णिय-कज्जं साहए णिच्चं॥१५५॥

देखो! ऐसी परीक्षा करके मानना, ऐसा कहते हैं। पहले परीक्षा करके जानना, ऐसा कहेंगे।

पूरा परख प्रतिक्रमण आदिक को परम जिन सूत्र में।
रे साधिये निज कार्य अविरल साधु! रत व्रत मौन में॥१५५॥

शब्दार्थ करते हैं, शब्दार्थ। परीक्षा आयी है न जरा अन्दर इसलिए। '**जिनकथित परमसूत्रे**' वीतराग परमेश्वर ने कहे हुए परम सिद्धान्त—परम आगम, उसमें '**प्रतिक्रमणादिक स्फुटम् परीक्षयित्वा**' प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, समाधि, भक्ति, आलोचना, प्रायश्चित, समाधि और नित्य आवश्यक इत्यादि। यह नित्य आवश्यक... **स्पष्ट परीक्षा करके... 'स्फुटम्'** है न! परीक्षा करके निर्णय करना। ऐसा का ऐसा बिना भान के निश्चित नहीं हो सकता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ओघे समझ में आता है? समझे बिना ऐसा का ऐसा माना कि यह आत्मा है, यह ऐसा है। ऐसा नहीं। उसकी ऐसी क्रिया हो नहीं! उसकी स्फुट परीक्षा करके... आहाहा! लो, अर्थ में यह आयेगा।

सत्क्रिया को जानकर... है न वह परीक्षा का शब्द 'जानकर' डाला। पाठ में ऐसा लिया 'परीक्ष करके'। टीका में लिया 'सत्क्रिया को जानकर।' दूसरी लाईन। आत्मा में जो त्रिकाली ज्ञायक और आनन्दस्वभाव, उसमें अन्तर में अन्तर्मुख एकाग्रता से... यह कहा जाता है... परसन्मुख से हटकर, स्वसन्मुख में आने पर... 'हटकर' कहना, वह भी नास्ति से कथन है। परन्तु इस ओर जहाँ ध्याता है, वह पर से हट जाता है। 'हट जाता है' ऐसा कहे न? खसी जाये अर्थात् हट जाता है। समझ में आया?

प्रतिक्रमणादिक... देखो! जितनी निर्मल आनन्द की क्रिया... सामायिक भी,

वह, आत्मा के आनन्द में लीनता करना, आनन्द प्रगट करना, वह सामायिक। प्रतिक्रमण भी वह कि आत्मा के आनन्द में लीनता करके आनन्द का प्रगट करना, प्रत्याख्यान भी वह कि अन्तर अपना वीतराग जिनवरस्वरूप में लीनता होकर वीतरागपर्याय प्रगट (करना)। ऐसी जो क्रिया **स्पष्ट परीक्षा करके...** आहाहा! ज्ञान में प्रत्यक्षरूप से परीक्षा करके, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? मार्ग गजब, भाई! ज्ञान में उसका भास होना चाहिए कि यह क्रिया ऐसी होती है। समझ में आया? अन्तर में भगवान आत्मा में इस ओर की एकाग्रता ऐसी हो, ऐसा पहले जानकर, ऐसा कहते हैं न? उसकी परीक्षा— स्पष्ट परीक्षा करके फिर **मौनव्रत सहित...** पहले तो उसका यथार्थ ज्ञान होना चाहिए, ऐसा कहते हैं। परीक्षा करने का अर्थ, उसका ज्ञान यथार्थ। यह जानकर कहा न फिर।

चैतन्यपुंज प्रभु आत्मा में अन्तर की लीनता, एकाग्रता, वीतरागता, निर्विकल्प स्वभाव, ऐसी जो पर्याय—अवस्था ऐसी हो, वह रागरहित हो, व्यवहाररहित हो, पर के आलम्बनरहित हो, निजालम्बी वह क्रिया हो, आहाहा! ऐसा पहले परीक्षा करके... स्पष्ट का अर्थ किया न प्रत्यक्ष अर्थात् जानना। मति-श्रुताान में उसे बराबर जानना चाहिए। पश्चात् **मौनव्रतसहित योगी को...** वह वचनमौ आया था न! वचनमौन, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय। इसलिए यह मौन आया इसमें। मुनि को **निज कार्य...** आहाहा! यह निज कार्य। ठीक! राग के परिणाम, वे कहीं आत्मा का कार्य नहीं। आहाहा! आत्मा का कार्य तो निर्मल, निर्दोष, अरागी—वीतरागी निर्विकल्पदशा, वह आत्मा का निज कार्य है। समझ में आया? गजब!

धर्मात्मा को निज कार्य... **नित्य,** वापस ऐसा शब्द है न? प्रत्येक क्षण में—समय में द्रव्य के आश्रय की यह क्रिया उसे निरन्तर—अन्तर पड़े बिना, वस्तु के स्वभाव का आश्रय निरन्तर साधना चाहिए। आहाहा! समझ में आया? पोपटभाई! बहुत महँगा... फिर लोग ऐसा ही कहे, सोनगढ़वाले... सोनगढ़ का है या आत्मा का है? यह सोनगढ़वाले अकेला निश्चय... निश्चय... निश्चय करे। व्यवहार का लोप कर डालते हैं। एकान्त है। अरे भगवान! सुन तो सही प्रभु जरा! इसे खबर नहीं कि व्यवहार क्या है। है, वह तो प्रसिद्ध किया, परन्तु उसका आश्रय छोड़कर स्वभाव के आश्रय में पड़ते हैं और उग्र पुरुषार्थ से जब चारित्र प्राप्त किया तो उसने निज कार्य साधा। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा कहते हैं, राग बीच में आता है, वह अपना निजकार्य नहीं। होता है व्यवहार... समझ में आया? कहते हैं कि.... बराबर है। कहते हैं कि व्यवहार नहीं, ऐसा नहीं। है अवश्य, चौथे-पाँचवाँ गुणस्थान, छठवें में पर्याय है, वह सब व्यवहार है। निश्चयमोक्षमार्ग, वह व्यवहार है। है न? आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा परिपूर्ण प्रभु के आश्रय से जो निरालम्बी रागरहित वीतरागी श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति प्रगट हो, वह उसका व्यवहार है, वह आत्मा का व्यवहार है, वह व्यवहार है। आहाहा! ऐसा क्या साधना? ऐसी निर्विकल्पदशा साधना, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? गुण-गुणी का भेद विचार करना, वह भी विकल्प और राग है। दया-दान-व्रत परिणाम आवे, वह तो राग है ही, परन्तु गुणी यह है और गुण यह है—ऐसे राग के कण बिना ऐसा भेद पड़ता नहीं। समझ में आया?

चीज़ तो अभेद अखण्ड है, उसमें 'यह (गुण)' और 'यह (गुणी)' ऐसा भेद करते हैं तो राग हो गया। यह शुभ भी छोड़कर... आहाहा! अपने स्वभाव के आश्रय से कार्य करना। गजब काम भाई! समझ में आया? **नित्य साधना चाहिए,** ऐसा है न? साधक जीव की दृष्टि द्रव्य के ऊपर कायम है। निर्विकल्पदृष्टि द्रव्य के ऊपर कायम है, तो कायम द्रव्य की साधना उसको प्रगट होती है। व्यवहार बीच में आवे तो विश्रान्ति ले, कुछ न कुछ व्यवहार में आवे, फिर अन्दर जाये। आता है या नहीं? पंचास्तिकाय। ... यह कार्य करते-करते ऐसा होगा... धीरे-धीरे... आता है या नहीं? वे सब पीछे हैं न? पंचास्तिकाय है न, (गाथा) १७२। आहाहा! **अनादि काल से भेदवासित बुद्धि होने के कारण प्राथमिक जीव व्यवहारनय से भिन्न साध्यसाधनभाव को अवलम्बकर सुख से तीर्थ की शुरुआत करते हैं...** 'सुख से' अर्थात्? उसमें हठ नहीं न! हठ नहीं, सहज वहाँ ऐसा विकल्प होता है, ऐसा कहना है। समझ में आया?

पाठ यह अमृतचन्द्राचार्य का है, लो। यह अमृतचन्द्राचार्य और यह पद्मप्रभमलधारिदेव। दोपहर में समयसार की टीका अमृतचन्द्राचार्य की है। है या नहीं? **अनादि काल से भेदवासित बुद्धि होने के कारण...** कल कहा था न वह अनादि काल का। द्रव्य-गुण ... अनादि का है। वह अनादि की पर्याय पड़ी है न... भले भेद पड़ा है, परन्तु रही है वह तो अनादि की है, ऐसा कहते हैं। वीतराग हो गया, परन्तु राग आया

है, ऐसा है? मुनि को भी अभी अनादि का राग है उसे। आहाहा! समझ में आया? **भेदवासित बुद्धि होने के कारण प्राथमिक जीव व्यवहारनय से भिन्न साध्यसाधनभाव को अवलम्बकर सुख से तीर्थ की शुरुआत करते हैं...** लो, ठीक! आहाहा! ऐसा ही आवे, भाषा क्या करे? ...साध्यसाधनभाव। क्या अपेक्षा है भाई? ऐसा कहते हैं कि जहाँ आगे स्वरूप की स्थिरता का निश्चय परिणति—भाव नहीं, वहाँ आगे उसे साध्य तो निश्चय है, परन्तु उसे ऐसा विकल्प बीच में होता है, उसे साधनरूप से आरोप करके कथन किया है। वह साधन नहीं, उसे साधन कहना, इसका नाम व्यवहार।

पहला तो... अन्दर स्थिर नहीं हो सके, इसलिए व्यवहार का थोड़ा आश्रय ले लेवे। फिर थोड़ी शान्ति बढ़े, फिर अन्दर जाये।—ऐसा नहीं। व्यवहार के आश्रय से शान्ति बढ़ती होगी? वह तो एकदम उग्ररूप से पुरुषार्थ की स्थिरता अन्दर नहीं—नहीं है, तो व्यवहार विकल्प है, उसे साधन आरोप से कहा। साधन दो नहीं, साधन का कथन दो है। साधन एक ही है। समझ में आया? शुद्ध आनन्दकन्द का स्वभाव का अन्तर साधन करना, वह साधन है। विकल्प साधन है नहीं। निरुपण—कथन दो साधन का आता है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

टीका : यहाँ साक्षात् अन्तर्मुख परमजिनयोगी को यह शिक्षा दी गयी है। लो, ठीक! **साक्षात् अन्तर्मुख...** अन्तर में साक्षात् अन्तर्मुख हुआ है मुनि, ऐसा कहते हैं। **परम जिनयोगी...** है न, यह तो छठवें में परम जिनयोगी है। परम जिनयोगी (अर्थात्) परम वीतरागी योगी, अन्तर भगवान आत्मा में योग—जुड़ान करनेवाला। उसको यह शिक्षा दी है। उसे भी यह समझाया है, ऐसा कहते हैं। उसे कहते हैं कि तेरा ऐसा होना चाहिए। तेरा ऐसा होना चाहिए, ऐसा कहते हैं।

श्रीमद् अर्हत् के मुखारविन्द से निकले हुए... देखो! श्रीमद्—स्वरूपलक्ष्मीवन्त अर्हत्... जिसको कोई... अर्हत् है न? बाकी नहीं। पूर्ण पूज्य और कोई रहस्य जानने का बाकी नहीं रहा। **मुखारविन्द से निकले...** भगवान के मुखारविन्द से, भाषा ऐसी है, देखो! मुखरूपी अरविन्द से निकले हुए... भगवान की वाणी ऐसे होती नहीं। वह तो पूरे प्रदेश से निकलती है। कहो! भाषा ऐसी है। लोग ऐसा जानते हैं या नहीं कि मुख से

बोला जाता है? तो ऐसी भाषा करके शब्द आया है। **मुखारविन्द से...** मुख से भाषा निकलती है भगवान को? ऐसा है ही नहीं। परन्तु मुख भाषा का मुख्य स्थान है लोगों का, तो ऐसे मुख्य करके कहा। पूरे आत्मा में से आवाज निकलती है। समझ में आया? आहाहा!

.....तकरार करे। पंचास्तिकाय में ऐसा लिया 'सर्वज्ञ के मुख से निकली हुई वाणी।' .... इसका अर्थ है कि पूरे आत्मा में से—(सर्व प्रदेशों से) ओम ध्वनि विकल्प बिना पूर्व के प्रारब्ध के कारण से ऐसी आवाज—ध्वनि निकलती है। उसको यहाँ 'मुखारविन्द से निकले हुए' ऐसा कहा है। **समस्त पदार्थ जिसके भीतर समाये हुए हैं,...** जिस वाणी के गर्भ में सब पदार्थ आ जाते हैं। सर्वज्ञ की वाणी में सब पदार्थ आ जाते हैं। **जिसके भीतर समाये हुए हैं, ऐसी...** वाणी—आहाहा! **चतुरशब्दरचनारूप...** अद्भुत शब्द की रचना। 'शब्द की रचना' अर्थ ऐसा है हों! **चतुरशब्दरचनारूप...** शब्द से शब्द रचित हैं। आहाहा!

द्रव्यश्रुत में... भगवान ने कही वाणी, वह द्रव्यश्रुत है। उसमें **शुद्धनिश्चयनयात्मक परमात्मध्यानस्वरूप प्रतिक्रमणादि सत्क्रिया को जानकर,...** लो! शास्त्र में ऐसा कहा है कि शुद्ध निश्चयस्वरूप परमध्यानस्वरूप परमात्मा का ध्यान। यह परमात्मा अपना। समझ में आया? उसमें ध्यान तो प्रतिक्रमण आदि सत्क्रिया। परमात्म(रूप) अपने स्वरूप में ध्यान की जो क्रिया होती है, उसको पहले जानकर... पहले उसको जानना—यथार्थ ज्ञान (करना)। देखो! सत्क्रिया है पर्याय। उसको जानकर... ऐ देवानुप्रिया! चेतनजी! पर्याय क्या है, कैसी होती है... ध्यान तो करना है या नहीं? आश्रययोग्य नहीं। समझ में आया? जानकर फिर अपना कार्य करना अन्दर में। विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर शुक्ल १, गुरुवार, दिनांक-१८-११-१९७१
गाथा-१५५, श्लोक-२६५-२६६, प्रवचन-१८०

निश्चय परम-आवश्यक अधिकार। नियमसार का अर्थ ही यह है कि '**नियमेण य जं कज्जं**' ऐसा तीसरी गाथा में आया है। कि आत्मा में नियम से शुद्धपर्याय... मोक्षमार्ग पर्याय का ग्रन्थ है न यह? जीव की अस्ति प्रगट हो, वह अलग बात है। शुद्धता की पर्याय को, रागरहित निर्दोष दशा को, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणति का कार्य साधना—यह पहले से बात है और इसमें भी यह आता है।

टीका : यहाँ साक्षात् अन्तर्मुख परमजिनयोगी को यह शिक्षा दी गयी है। श्रीमद् अर्हत् के मुखारविन्द से निकले हुए... श्रीमद् (अर्थात्) स्वरूप की लक्ष्मीवाले केवलज्ञानी परमात्मा अर्हत् के... जिन्हें कुछ बाकी नहीं और जो पूजनेयोग्य है, उनके मुख-अरविन्द में से निकले हुए... मुखरूपी कमल में से वाणी निकली। (निकलती है) सब (प्रदेशों) से, परन्तु बाह्य में ऐसी भाषा आवे न कि यह मुख से बोलते हैं, इसलि ऐसा कहने में आता है। बाकी तो पूरे आत्मा के प्रदेशों से भगवान को तो ओम ध्वनि खिरती है। उसे यहाँ 'मुखारविन्द से निकली' ऐसा कहा जाता है।

समस्त पदार्थ जिसके भीतर समाये हुए हैं,... कहते हैं कि द्रव्यश्रुत ऐसा जो भगवान का कहा हुआ (अर्थात्) तीर्थंकरदेव के मुख से निकला हुआ द्रव्यश्रुत, जिसमें, समस्त—सब पदार्थ जिसके अन्दर गर्भ में अन्दर पड़े हैं। वाणी में सब स्वरूप जगत का—लोकालोक का, आत्मा का सब उसमें भरा हुआ है। वाणी में समस्त पदार्थ जिसके अन्दर समाहित हैं, **ऐसी चतुरशब्दरचनारूप...** वीतराग की वाणी... सर्वज्ञ परमात्मा उनकी जो चतुरशब्दरचनारूप गणधरों ने रची। भगवान के मुख में सूत्ररूप से आया, गणधरों ने अर्थरूप से रचना की। गणधरों ने सूत्ररूप से रचना की, भगवान को अर्थरूप से आया, ऐसा है। समझ में आया? भाषा तो ऐसी है, **शब्दरचनारूप द्रव्यश्रुत...** देखो! उसमें... उसमें जो कहा है वह जान, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

शुद्धनिश्चयनयात्मक परमात्मध्यानस्वरूप... उसमें—द्रव्यश्रुत में वीतराग ने और वीतराग की वाणी में जो कहा, उसमें शुद्धनिश्चयस्वरूप **परमात्मध्यानस्वरूप प्रतिक्रमणादि सत्क्रिया को जानकर,...** प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना, समाधि, भक्ति इत्यादि ऐसा जो परमात्मध्यानस्वरूप... शुद्ध पूर्णानन्द का अन्दर ध्यान, उस स्वरूप यह प्रतिक्रमणादि की क्रिया है। ऐसी प्रतिक्रमण आदि सत्क्रिया अर्थात् शुद्ध परिणति, वीतरागीदशा, उसे जानकर... ऐसा है न? पाठ में तो ऐसा है कि 'परीक्षा करके' इसका अर्थ 'जानकर' कहा। परीक्षा का अर्थ यह है। '**परीक्खऊण**' इसका अर्थ है। '**परीक्खऊण**'—परीक्षा करके। परीक्षा करके अर्थात् जानना, ऐसा। भगवान की वाणी में सत्क्रिया किसे कहा गया है, उसे बराबर जानना चाहिए। सत्क्रिया कहो या मोक्ष का मार्ग कहो या परम-आत्मा का ध्यानस्वरूप कहो। समझ में आया?

यह वीतराग की वाणी में ही ऐसा आता है, ऐसा कहते हैं। इसके अतिरिक्त अज्ञानियों ने कल्पना से बात की हो, उसमें यह चीज़ होती नहीं, ऐसा कहते हैं। **सत्क्रिया को जानकर,...** सत्क्रिया शब्द से शुद्ध परिणति कैसी होती है, उसे जानकर, ऐसा कहते हैं। वह प्रगटे भले द्रव्य के आश्रय से... समझ में आया? परन्तु वह परिणति कैसी है? चेतनजी! यहाँ तो 'परिणति को जानकर' ऐसा कहा, 'पर्याय को जानकर' ऐसा कहा। पाठ में ही ऐसा है न, देखो न! कुन्दकुन्दाचार्य का मूल उनका स्वयं का पाठ है। '**पडिकमणादिय परीक्खऊण फुडं**' प्रतिक्रमण आदि (अर्थात्) अपना परमात्मा स्वभाव, उसका जो ध्यान होना... उसका जो ध्यान करना, वह पर्याय है। परमात्मा स्वयं त्रिकालीस्वरूप; उसका ध्यान, वह पर्याय है। समझ में आया? उस ध्यानस्वरूप सत्क्रिया... प्रतिक्रमणादि तो उसका नाम है। समझ में आया? वह निर्विकल्पध्यान की जो दशा, ऐसी जो सच्ची स्वरूप की परिणतिरूप क्रिया, उसे परीक्षा करके जानना, कि कैसी है वह परिणति? कैसी होगी?

पश्चात्, **केवल स्वकार्य में परायण...** आहाहा! अपना जो कार्य है, यह ध्यानस्वरूप मोक्ष का मार्ग ऐसा जो स्वकार्य... **केवल स्वकार्य में परायण...** जिसे विकल्प से पर का करूँ, ऐसा कराये और हो, वह भी विकल्प जहाँ नहीं। अकेला आत्मा का कार्य है। कार्य शब्द पर्याय है। समझ में आया? यह है या नहीं? शब्द-शब्द यह है। पर्याय वह

कार्य है, द्रव्य उसका कारण है। यहाँ तो **कार्य में परायण...** ऐसा शब्द प्रयोग किया है, मेरा यह कहना है। वस्तुस्थिति है, ऐसी उसे जानना चाहिए न! ऐसी की ऐसी कल्पना से करना चाहे तो कुछ हाथ नहीं आवे।

मुमुक्षु : ध्रुव को पकड़े, फिर कहाँ बाधा आवे?

पूज्य गुरुदेवश्री : समझे बिना ध्रुव कहाँ से पकड़े? जैसा स्वरूप है, वैसा जाने बिना ध्रुव पकड़े कहाँ से? माने भले। समझ में आया? ऐसी तो यह गाथा आयी यह।

केवल स्वकार्य में परायण... ऐसी भाषा है न? टीका है न, संस्कृत है न। वह कैसा? पद्मप्रभमलधारिदेव। '**केवलं स्वकार्यपरः**' पाठ है न संस्कृत में? केवल अपनी शुद्धकार्यरूप पर्याय में जो तत्पर है। यहाँ तो, कार्य में—पर्याय में तत्पर है, ऐसा कहते हैं। अपना काम... लोग ऐसा कहते हैं न, सबके काम में सब तत्पर रहो। यह आत्मा का कार्य, शुद्ध वीतरागपर्याय अथवा निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह आत्मा का कार्य। समझ में आया? उसमें परायण... **परः** है न? **कार्यपरः** संस्कृत में। गजब टीका है! यह तो वस्तु से उसकी टीका अलौकिक वस्तु है यह! अकेला नियमसार है न यह तो! नियमसार अर्थात् मोक्ष का मार्ग। मोक्ष का मार्ग तो पर्याय है। व्यवहारमोक्षमार्ग की बात यहाँ नहीं है। निश्चयमोक्षमार्ग, वह भी पर्याय है, गुण-द्रव्य नहीं। ऐसा **स्वकार्य में परायण परमजिनयोगीश्वर को...** स्वकार्य में परायण ऐसा परम योगी—मुनि... उत्कृष्ट बात ली है न!

प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त वचनरचना को परित्यागकर,... भाषा 'वचन को त्याग कर' है, परन्तु 'उस विकल्प को त्यागकर' ऐसा अर्थ है। इसका अर्थ आ गया इकट्ठा। प्रशस्त अर्थात् शुभ, अप्रशस्त अर्थात् अशुभ—ऐसी समस्त रचना को परित्यागकर **सर्वसंग की आसक्ति को छोड़कर...** लो, मुनि की उत्कृष्ट (बात है)। आत्मध्यान में रहना है, परमात्म ध्यानस्वरूप क्रिया में रहना है न! आहाहा! **सर्वसंग की आसक्ति को...** 'मेरे हैं' यह तो छोड़ा है सम्यग्दर्शन में, परन्तु उसकी आसक्ति जो है, ऐसे विकल्प उठे कि ऐसा है, वैसा है... अस्थिरता की आसक्ति की बात है न! ऐसे **सर्वसंग की आसक्ति को छोड़कर अकेला होकर,...** अकेला परमात्मा स्वयं स्वभाव, ऐसा अन्दर अकेला

होकर... **मौनव्रत सहित...** भाषा तो समझावे क्या? उस 'वचनरचना को त्यागकर' उसमें आ गया, मौनव्रत हो गया। वह '**त्यागकर**' था, यह **सहित** है, ऐसा है।

समस्त पशुजनों (पशु समान अज्ञानी मूर्ख मनुष्यों) द्वारा निन्दा किये जाने पर भी... ...किसी का कुछ करना नहीं और यह मूढ़ होकर गये अन्दर में। अपना कार्य अपना... अपना पेट तो कुत्ते भी भरते हैं, ऐसा एक व्यक्ति कहता था। ...खतरगच्छ। नाम कुछ था। ...वहाँ गये थे। अपना कार्य तो कुत्ता भी करता है, पेट भरता है। अरे भाई! क्या कहते हो यह? ऐसा कि पर का करना, वह जगत में विशेषता और महत्ता है। अरे भगवान! क्या कहता है? साधु का वेश। खरतरगच्छ का था। आया था... आहाहा! यहाँ तो सन्तों की मुख्य बात निश्चयमोक्षमार्ग की है न? और निश्चयमोक्षमार्ग तो निश्चय -सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की एकतारूप मोक्षमार्ग है। वह तो मुनि को ही होता है। समझ में आया? गर्भित के अंश में चौथे और पाँचवें में भी होता है। समझ में आया?

निश्चय आवश्यक चौथे और पाँचवें में भी होता है। निश्चय आवश्यक अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, स्वरूप की स्थिरता का अंश, वह तो चौथे गुणस्थान में भी होता है। वह निश्चय आवश्यक क्रिया—परिणति। आनन्द की वेदनदशा में प्रतीति, ज्ञान और रमणता का अंश जो है, वह स्वद्रव्य के आश्रय से (होनेवाली) निश्चय क्रिया, (उसे) चौथे गुणस्थान में भी आवश्यक उतना कहने में आता है। उसके साथ विकल्प होता है। पूर्ण नहीं, इसलिए देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प (होता है)। उसे चौथे में तो भक्ति आदि का विकल्प होता है। पाँचवे में उससे आगे बढ़कर शान्ति अधिक बढ़ी है, आत्मा के आश्रय से उग्रपने अवलम्बन लेकर दूसरी कषाय (चौकड़ी) का नाश हुआ है, इसलिए उतना अकषायभाव पाँचवें गुणस्थान में स्वरूप की स्थिरता बढ़ी है, वह उसका निश्चय आवश्यक है। व्यवहार के बारह व्रतादि के विकल्प होते हैं उसे। समझ में आया? उसे परमात्मा की भक्ति, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा—यह सब विकल्प व्यवहार होता है।

निश्चय और व्यवहार दो आवश्यक गिने हैं न १४९ में। १४९ गाथा में आ गया है। यहाँ मुनि की उत्कृष्ट बात है। मुनि तो **मौनव्रत सहित, समस्त पशुजनों...** जिन्हें तत्त्व का क्या स्वरूप है और तत्त्व का कैसे साधन हो सकता है—इसकी जिन्हें खबर नहीं।

वे जीव तो ऐसे निन्दा ही करे। लो, आत्मा... आत्मा... आत्मा... पूरे दिन आत्मा। पण्डितजी! पर का करना कुछ? कहते हैं कि **पशुजनों (पशु समान अज्ञानी मूर्ख मनुष्यों) द्वारा निन्दा किये जाने पर भी अभिन्न रहकर,...** (अर्थात्) **छिन्न-भिन्न हुए बिना; अखण्डित; अच्युत।** द्रव्यस्वभाव की एकता में खण्ड न पड़ने दे। ऐसे निन्दा करनेवाले (होने पर भी), ऐसा कहते हैं। ... चाहिए, करो, व्यवहार करो, ऐसा करो, व्यवहार किये बिना तुम्हारी महिमा बढ़ेगी नहीं। आहाहा! समझ में आया?

अभिन्न रहकर, निजकार्य को... अपना कार्य जो परमात्मध्यान अथवा प्रतिक्रमणादि की सत्क्रिया, (ऐसे) उसके निजकार्य को साधे, ऐसा कहते हैं। अपना कार्य साधे। सधता है द्रव्य के आश्रय से। समझ में आया? परन्तु कार्य साधे, ऐसा सिद्ध करना है न यहाँ तो। कार्य तो पर्याय में होता है न? समझ में आया? मैं ध्रुव हूँ, अभेद हूँ, अखण्ड हूँ, निष्क्रिय हूँ—वह तो सब बातें पर्याय में होती हैं। कहीं द्रव्य में वह होता नहीं। वह तो पर्याय में वे सब स्वाद आते हैं अथवा ज्ञान होता है, द्रव्य में तो है नहीं। समझ में आया? हम तो परमपारिणामिक स्वभाव हैं। यह कौन जानता है? पर्याय। पर्याय में जानना होता है, द्रव्य में जानना होता नहीं। समझ में आया? ऐसा कि हम तो अखण्ड, अभेद द्रव्य हैं। परन्तु यह जाना किसने? द्रव्य कहता है ऐसा? वह तो पर्याय में यह भाव होता है। ऐ चेतनजी! द्रव्य तो ध्रुव है। हम तो ऐसे हैं, ऐसे हैं—ऐसा ध्रुव में है ही कहाँ? समझ में आया?

मुमुक्षु : यह विकल्प ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विकल्प नहीं, ऐसा नहीं। यह यहाँ बात नहीं। अभी पकड़ने में देर लगती है। एकदम स्पष्ट नहीं न! पकड़ने में देरी लगती है। उसकी यहाँ बात भी नहीं। विकल्प है (वह नहीं)। यहाँ तो, मैं द्रव्य हूँ, अभेद हूँ, अखण्ड हूँ, मैं रागरहित की क्रिया रहित का हूँ—यह सब होता है किसमें? पर्याय में। ध्रुव में क्या हो? आहाहा! बात की खबर नहीं होती मूल इसलिए यह... यह तो अलौकिक मार्ग है, भाई! समझ में आया? अलौकिक अर्थात् साधारण लौकिक से तो पकड़ में आये ऐसा नहीं। समझ में आया? आहाहा! 'पर्याय' आती है न (निहाल) भाई में। 'पर्याय मेरा ध्यान करे (तो करो), मैं किसका चिन्तवन करूँ?' कौन जानता है? पर्याय। 'पर्याय

मेरा ध्यान करे' परन्तु वह जानता कौन है ? आवाज किसमें उठती है ? वह पर्याय में। ध्रुव में कहाँ था ? मेरा ध्यान...

मुमुक्षु : उसका अर्थ तो आप समझाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहते हैं न! बात तो आती है। ऐई! अर्थ करने में अन्तर है। 'पर्याय मेरा ध्यान करे (तो करो), मैं किसका करूँ ?' यह कौन जानता है ? किसमें यह भाव आता है ? उस पर्याय में। स्वसन्मुख की पर्याय का भी आता है, ऐसा। पर्याय ऐसा कहती है कि मैं अखण्ड, अभेद हूँ। पर्याय ऐसा कहती है। ध्रुव में कहाँ अखण्ड अभेद हूँ, ऐसा है ? वह तो है। आहाहा! समझ में आया ? ऐ बाबूभाई! सूक्ष्म बातें हैं। अपनी कल्पना से पढ़े और फिर... अर्थ। उल्टे बैठे।

मुमुक्षु : क्षायिक सम्यग्दर्शन में जाने के लिये नजदीक में आ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या ? परन्तु ध्यान अर्थात् क्या ? ध्यान अर्थात् क्या ? ध्यान तो पर्याय है।

मुमुक्षु : शास्त्र पढ़ना, विचारना, इसकी अपेक्षा तो वह नजदीक में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह नजदीक के विकल्प हैं, इसलिए नजदीक का उपाय है, ऐसा नहीं। उसके विकल्प आवे कि ऐसा (आत्मा), ऐसा (आत्मा) ऐसा (आत्मा)। वह तो पुण्यबन्ध का कारण है, वह साधन नहीं। कठिन काम, भाई! समझ में आया ? यह ऐसा है, यह ऐसा है, यह ऐसा है—यह सब होता है विकल्प में। यहाँ तो दूसरी बात है। पर्याय ऐसा कहे, निर्मल पर्याय जाने, हों! निर्मल। विकल्प नहीं। 'मैं तो अभेद, अखण्ड वह मैं' (ऐसा) जानती है, वह तो पर्याय में आता है। द्रव्य में कहाँ आती थी वह वस्तु ? आहाहा!

मुमुक्षु : वह पर्याय स्वयं अपना विचार करती है कि यह मैं ध्रुव हूँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पर्याय स्वयं ऐसा कहती है कि मैं हूँ, यह हूँ, यह हूँ—वह पर्याय में होता है, ऐसा कहते हैं। द्रव्य में होता नहीं। यहाँ निजकार्य की बातें करनी हैं न। अन्यत्र और क्यों नहीं... ? अन्यत्र रखते हों वे रखें। उनकी जो है वह है न। यह हूँ, द्रव्य हूँ, ऐसा हूँ, ऐसा हूँ—यह किसमें ज्ञात होता है ? जाननेवाली तो पर्याय है, कार्य तो

वहाँ होता है। समझ में आया? द्रव्य में ऐसा है कि मैं द्रव्य हूँ, ध्रुव हूँ, अभेद हूँ, अखण्ड हूँ? द्रव्य में है? सूक्ष्म बातें हैं यह। आहाहा!

अपने आप कल्पना से अर्थ करे और माने (तो) कुछ का कुछ हो जायेगा। उल्टे रास्ते चला जायेगा। समझ में आया? द्रव्य की प्रधानता से जब भाव आवे, परन्तु वह भाव आते किसमें हैं? पर्याय में। द्रव्य में कहाँ है? परिणमना, बदलना या आलोचना, ऐसा पर्याय में है। द्रव्य में कहाँ है? आहाहा! ऐ चेतनजी! तुम्हारी यह बात आयी थी कल बहुत। बाबूभाई बैठे थे। रामजीभाई ने निकाली थी। यह रात्रि में तुमको स्मरण किया था। तुम नहीं थे।

मुमुक्षु : यह परिणमना बोले थे दूसरे अर्थ में....

पूज्य गुरुदेवश्री : परिणमना अर्थात् पर्याय का... कहलाये उसे तो। आहाहा! ऐई!

पर्याय की एकता छोड़नी है, वह भी पर्याय में ज्ञात होती है या अन्यत्र ज्ञात होती है? पर्याय और द्रव्य की एकता मानी है ऐसे अनादि से, परन्तु वह एकता मानी है, वह पर्याय में और एकता तोड़नी है, वह भी पर्याय में। समझ में आया? द्रव्य में एकता तोड़ने का है? सूक्ष्म बात है, भाई! मूल मार्ग को पकड़ना (कठिन)। इसलिए यहाँ कहा है न, अर्हंत के मुखारविन्द से निकले हुए पदार्थ जिसमें भरे हैं, ऐसी जिनवाणी। उस जिनवाणी में यह कहना है। समझ में आया? **निजकार्य...** चाहे जिस रीति से अभेद की ध्रुव की बातें आवे, पर्याय और द्रव्य भिन्न है, ऐसा आवे। भाई! पर्याय और द्रव्य भिन्न, परन्तु आवे किसमें? हीरालालजी! समझ में आया? इसलिए कहते हैं कि **अभिन्न रहकर, निजकार्य साधना।** अभिन्न का अर्थ? लोक में निन्दा करे या यह करे, इससे उसके विकल्प में नहीं आना। यह तो पहले आ गया है। समझ में आया?

लोकसमूह को तृण समान देखते हैं। जिसे तत्त्व की खबर नहीं, वे लोग चाहे जिस प्रकार से कहें, उसमें इसका क्या? समझ में आया? बड़ा बछड़ा हो बड़ा, लो, परन्तु ऐसे देखे तो भय नहीं होता। उसे ख्याल में है कि बछड़े को ऐसी क्रूरता नहीं होती। ज्ञान है न उसे। और सिंह का बच्चा देखे तो ख्याल में आ जाये कि यह क्रूर है।

यह ज्ञान किया। ज्ञान में आया कि यह क्रूर है और यह क्रूर नहीं। समझ में आया? उसका ख्याल आ गया कि उसका स्वभाव ऐसा है, इसलिए फिर उससे डरना—नहीं डरना, वह रहता नहीं। सिंह का ज्ञान हुआ कि यह सिंह है। उसका बच्चा उसकी माँ से डरेगा? उसके ख्याल में है कि यह तो मेरी माँ है।

इसी प्रकार जिसे यथार्थ ज्ञान हुआ, वह यथार्थ ज्ञान होता है पर्याय में। अखण्ड अभेद चीज़ हूँ, यह द्रव्य हूँ, शुद्ध हूँ, परमपारिणामिकभाव निष्क्रिय हूँ। निष्क्रिय शब्द से जिसमें राग की क्रिया नहीं। और वास्तव में तो परिणमन की क्रिया भी जिसमें नहीं। यह उसमें नहीं, यह निर्णय—ज्ञान पर्याय में होता है या द्रव्य में? परिणमन ने निश्चित किया है यह तो। अपरिणामी क्या करे? अपरिणामी तो एकरूप वस्तु पड़ी है। समझ में आया? अगम्य मार्ग है, भाई! यह वीतराग परमात्मा का मार्ग है। समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं कि वस्तु की स्थिति में निजकार्य को साधना। उसमें लोग चाहे जिस प्रकार बोलते हों, उसकी दरकार नहीं करना। उसकी दरकार करके ऐसा नहीं आना कि यह सब लोग ऐसा कहते हैं तो कुछ व्यवहार के कार्य करें तो उसमें से ठीक होगा। ऐसी अभिन्न जो क्रिया है, (उसमें) खण्ड पड़ने देना नहीं। है तो अभिन्न क्रिया वह पर्याय। समझ में आया?

निजकार्य को—कि... अब वापस वह कार्य कैसा है? **कि जो निजकार्य...** अपना कार्य... पर्याय का कार्य कि जो मोक्षरूपी कार्य का कारण है। कहो, समझ में आया? मोक्ष, वह पर्याय है; मोक्ष कहीं द्रव्य-गुण नहीं। सिद्ध, वह पर्याय है। कहते हैं कि परन्तु सिद्ध की पर्याय के कार्य को साधना, उस कार्य को साध। द्रव्य के आश्रय से अभेद दृष्टि, अभेद ज्ञान, उसकी स्थिरता, ऐसा जो निजकार्य **निर्वाणरूपी सुलोचना के सम्भोगसौख्य का मूल है...** ऐसा जो निजकार्य, वह मोक्षरूपी सुलोचना—स्त्री—परिणति की अनुभवदशा का सुख का मूल है। अतीन्द्रिय आनन्द ऐसी मुक्तदशा, अतीन्द्रिय आनन्द ऐसी सिद्धदशा, वह भी दशा है, पर्याय है। उस दशा का मूल निज कार्य है। व्यवहार विकल्पादि बीच में हों सही, (परन्तु) कार्य का वह कारण नहीं। समझ में आया?

निजकार्य को—कि जो निजकार्य... ऐसा है न? मोक्षरूपी सुलोचना... अनन्त ज्ञान-दर्शन की आँखें जिसे है... आहाहा! उसके साथ एकाग्रता, उसका सुख उसका

मूल। उसके सुख का यह मूल है। शुद्ध परिणति का कार्य, वह पूर्ण मुक्ति का कारण है। कारण, यहाँ पर्याय को कारण कहा है। समझ में आया? पर्याय का, वापस पर्याय का कारण तो द्रव्य है। परन्तु यह पर्याय उसका कारण—मोक्ष का कारण। एक दूसरे प्रकार से... जब जिस पर्याय को सिद्ध करना हो... यहाँ पर्याय को सिद्ध करना है। मोक्षमग्ग और मोक्ष का फल—ऐसी दो बातें कहनी है न यहाँ तो। पहले से यह उठायी है।

मुमुक्षु : प्राथमिक शिष्य के लिये है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्राथमिक होगा? यह तो सबके लिये यह है।

मोक्षमग्ग आया है न? क्या है? यह कहेंगे, ऐसा है या नहीं?

मुमुक्षु : यह तो मुनि के लिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! सबके लिये है। मुनि तो मुख्यता से। मुनि तो मुख्य... परन्तु समूहरूप से सबके (लिये) है। मुनि के लिये कहा (ऐसा) किसने कहा? '**मग्गो मग्गफलं**' देखो! '**दुविहं जिणसासणे समक्खादं**' जैनशासन में ही यह बात है। मार्ग और मार्ग का फल। दूसरी गाथा। दूसरी... दूसरी... पर्याय, सब मार्ग और मार्ग का फल दोनों पर्याय। '**मग्गो मोखउवाओ तस्स फलं होइ णिवाणं।**' लो। किसके लिये कहते हैं? पाँचवें काल के लिये नहीं, चौथे काल के लिये है, ढींकणा के लिये है? आहाहा!

उसे—निरन्तर साधना चाहिए। वापस देखा! '**अनवरत साधयेदिति**' संस्कृत। गजब टीका है! आहाहा! एक-एक श्लोक को समझने के लिये इसे बहुत तैयारी चाहिए। समझ में आया? वजुभाई! '**अनवरतं**' संस्कृत में है, देखो! निरन्तर '**साधयेदिति**' निरन्तर साधो। राग को साधना और निमित्त को साधना, यह नहीं, यह पर्याय को साधना, कहते हैं। आहाहा! साधन तो पर्याय होती है न। उसका साधन भले द्रव्य हो। समझ में आया?

इस १५५वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक कहते हैं:— २६५।

हित्वा भीतिं पशुजनकृतां लौकिकीमात्मवेदी,
शस्ताशस्तां वचन-रचनां घोरसन्सार-कर्त्रीम्।

मुक्त्वा मोहं कनक-रमणीगोचरं चात्मनात्मा,
स्वात्मन्येव स्थितिमविचलां याति मुक्त्यै मुमुक्षुः ॥२६५॥

श्लोकार्थः आत्मज्ञानी मुमुक्षु... लो। जिसे आत्मज्ञान... आत्मज्ञान हो। शास्त्रज्ञान या परज्ञान की यहाँ बात नहीं है। आहाहा! **आत्मज्ञानी मुमुक्षु जीव...** शुद्ध स्वरूप आनन्द और अभिन्न अखण्ड है, ऐसा जिस पर्याय में ज्ञान हुआ, वह आत्मज्ञान। आत्मा, वह वस्तु और ज्ञान, वह पर्याय... पर्याय है वह तो। समझ में आया? **आत्मज्ञानी मुमुक्षु जीव पशुजनकृत लौकिक भय को तथा...** पशुजनकृत लौकिक... साधारण बेचारे को खबर न हो। बड़ा सिर हो, बड़ा साधु नाम धराता हो, करोड़पति हो, अरबोंपति हो या बड़े विद्वान हो। परन्तु तत्त्व क्या है, उसकी पर्याय क्या है, उसकी कुछ खबर नहीं होती। ऐसे जनों के बोल पर तौल नहीं करना। उसका तौल नहीं करना। वे सब ऐसे होते हैं। समझ में आया? **पशुजनकृत लौकिक भय...** उसे छोड़ दे। आहाहा!

घोर संसार की करनेवाली प्रशस्त-अप्रशस्त वचनरचना... भाषा देखो! वचन की रचना घोर संसार का कारण है? वचन की रचना तो जड़ की पर्याय है, पुद्गल की पर्याय है। जड़ की पर्याय संसार का कारण है ही नहीं। परन्तु वचनरचना के काल में जो शुभ-अशुभ विकल्प होता है, वह कैसा है? कि घोर संसार करनेवाला है वह राग। आहाहा! देखो! शुभ-अशुभराग दोनों, हों! भवभय करानेवाले जानकर... घोर संसार करनेवाली... यह बात बैठे नहीं। रतनचन्दजी को यह टीका... सुधारनी है, बैठता नहीं। कलशटीका सुधारनी है। पंचाध्यायी में क्या लिखा है....

घोर संसार की करनेवाली... कहते हैं कि शुभ विकल्प जो है, वह भी संसार का कारण है। वह राग है न, अग्नि है न! शुभराग भी अग्नि है, भट्टी है। समझ में आया? शुभ-अशुभ विकल्प में ज्ञान-उपयोग अस्थिर होता है। कहते हैं, वह घोर संसार को करनेवाली है। व्यवहार राग घोर संसार को करनेवाला है, ऐसा कहते हैं। अप्रशस्तराग तो होता ही है, परन्तु प्रशस्तराग भी घोर संसार को करनेवाला है। आहाहा! गुण-गुणी का भेद करके विचार करे कि यह ऐसा है और ऐसा है, वह भी विकल्प है। वह विकल्प भी घोर संसार का कारण है। अन्तर में एकाग्र होने का कारण नहीं। उसका स्वभाव स्वयं से ज्ञात हो, ऐसा सीधा है। समझ में आया?

शुद्ध व्यवहार कहना किसे? यह शुद्धपरिणति, वही शुद्ध व्यवहार। सत्क्रिया वह व्यवहार निश्चय से तो। पर्याय है, वही व्यवहार—सद्भूत व्यवहार; द्रव्य है, वह निश्चय। यहाँ तो मोक्षमार्ग साधना, ऐसा सिद्ध करना है न! तीसरी गाथा से ही लेते आये हैं न '**णियमेण य जं कज्जं**' पर्याय निश्चय से करनेयोग्य है, ऐसा सीधे शुरु किया न! पर्याय को सिद्ध करना है न, मोक्षमार्ग को सिद्ध करना है न! समझ में आया? गाथा में ही कुन्दकुन्दाचार्य ने स्वयं उठाया है। '**णियमेण य जं कज्जं**' तीसरी गाथा। उसमें स्तुति की पहले में। केवली-श्रुतकेवली ने कहा हुआ है यह, ऐसा कहा। स्पष्ट कर दिया। समयसार में अभी 'श्रुतकेवली ने कहा हुआ', इसके दो अर्थ करने पड़े हैं। परन्तु वह बराबर है। करने पड़े नहीं, उनका—आचार्य का आशय भी यही है। समझ में आया?

'केवली-श्रुतकेवली ने कहा हुआ'—ऐसा आया न पहली गाथा में। केवली ने और श्रुतकेवली ने कहा हुआ है यह। केवलज्ञानी सर्वज्ञ परमात्मा का कहा हुआ है, उसमें आ गया कि स्वयं भगवान के पास सुना है। ऐसा गूढ़ लिखा है यह। यह कहा तब केवली तो यहाँ कोई नहीं थे। केवली-श्रुतकेवली ने कहा है, वह कहूँगा। महाराज! परन्तु तुम कहते हो कि कहने का विकल्प नहीं करना तो फिर 'कहूँगा' ऐसा विकल्प तुम किसलिए करते हो? समझ में आया? तुम्हें तो यह सिद्ध करना है। मैं कहूँगा। 'वोच्छामि' आया न? समयसार में आया न? मैं कहूँगा। भावचन और द्रव्यवचन से कहूँगा। तुम तो कहते हो न कि द्रव्यवचन में उठता है विकल्प, वह तो घोर संसार का कारण है। तो तुम ऐसा किसलिए करते हो? उस समय होता है, उसका ज्ञान है। समझ में आया? वे स्वयं उसके विकल्प के ज्ञान में हैं, विकल्प में नहीं। आहाहा! समझ में आया?

एक दूसरी चीज़ है, वह हो। हो, वह कौन इनकार करता है? छह द्रव्य नहीं? परन्तु वे मुझमें नहीं। इसी प्रकार इस विकल्प में मैं नहीं। समझ में आया? आहाहा! गजब बात है! कुन्दकुन्दाचार्य तीसरे नम्बर में इसीलिए आये हैं न! 'मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी...' आये गणधर और तीसरे नम्बर में ये आये। 'मंगलं कुंदकुंदार्यो, जैनधर्मोस्तु मंगलं।' समझ में आया? ....श्लोक चला आता है ठेठ से—कुन्दकुन्दाचार्य से। इसीलिए तो डाला कुन्दकुन्दाचार्य का। परन्तु ठेठ तो कहाँ

कुन्दकुन्दाचार्य थे? वे थे, परन्तु यह रचना तो बाद में की है। आहाहा! ....वे स्वयं ऐसा कहते हैं कि मैं कहूँगा। परन्तु महाराज! आप वाणी कर सकते नहीं, विकल्प तुम्हारा कर्तव्य नहीं और 'मैं कहूँगा' ऐसा कैसे कहते हो? भाई! सुन न! इस प्रकार से वाणी और विकल्प में ज्ञान का निमित्त है, इसलिए इससे 'मैं कहता हूँ' ऐसा कहने में आता है। आहाहा! गजब शैली!

आत्मज्ञानी मुमुक्षु जीव पशुजनकृत लौकिक भय को... वह बाहर में... लौकिक, यह अन्दर में विकल्प। आहाहा! **कनक-कामिनी सम्बन्धी मोह को तजकर,...** कनक अर्थात् सोना आदि, कामिनी अर्थात् स्त्री—उस सम्बन्धी मोह को तजकर **मुक्ति के लिये स्वयं अपने से अपने में ही अविचल स्थिति को प्राप्त होते हैं।** मुक्ति के लिये—मोक्ष के लिये... समझ में आया? मुक्ति तो पर्याय है। पर्याय के लिये... यह भी पर्याय और वह भी पर्याय। मुक्तिपर्याय स्वयं पर्याय है। मुक्ति कहाँ द्रव्य-गुण है? समझ में आया? **मुक्ति के लिये...** एक बात। क्या करना? **स्वयं अपने से अपने में ही अविचल स्थिति को प्राप्त होते हैं।** साध्य तो मुक्ति है न। यहाँ साधन द्रव्यस्वभाव लेना नहीं। मुक्ति साध्य है, पूर्ण लक्ष्य वहाँ है।

समयसार में उठाया पीछे से। साध्य सिद्धपद है। है तो पर्याय, वह साध्य है (और) साधन आत्मा के आश्रय से मोक्ष का मार्ग, यह चीज़ कही जाती है वह। समझ में आया? मुक्ति के लिये धर्मी सन्तों ने... सन्तों ने (अर्थात्) जिन्हें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन की एकता हुई उन्होंने... उसे कहते हैं। ऐसा आया है न ऊपर **परमजिनयोगी को शिक्षा...** उसे भी कहते हैं कि भाई! तू **स्वयं** आत्मा **स्वयं से**—इस आत्मा से... विकल्प और व्यवहार से नहीं। **अपने में** अर्थात् अपने आनन्द में। अविचल आनन्द में ही... व्यवहार में जरा भी नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! व्यवहार हो, आवे, परन्तु वह मोक्ष का कारण नहीं, मुक्ति का उपाय नहीं। स्वयं अपने में से और अपने में, यह आधार। 'अपने से' यह साधन, स्वयं कर्ता। साधन स्वयं अपना शुद्ध, अपने में आधार स्वयं। उसमें ही अविचल स्थिति को पाता है। चलित नहीं, ऐसी पर्याय में स्थिर होता है। समझ में आया? **स्वयं अपने से अपने में ही अविचल...** अविचल—चलित नहीं, विशेषपना बिल्कुल (नहीं), अविचल—स्थिर। द्रव्यस्वभाव में लीनता, वह तो पर्याय

है। उस पर्याय में स्थिति को पाता है (अर्थात्) वहाँ आगे अपनी स्थिति होती है। २६६। २६६ कलश।

भीतिं विहाय पशुभिर्मनुजैः कृतां तं,
मुक्त्वा मुनिः सकललौकिकजल्पजालम्।
आत्म-प्रवाद-कुशलः परमात्म-वेदी,
प्राप्नोति नित्य-सुखदं निज-तत्त्व-मेकम्॥२६६॥

श्लोकार्थ : आत्मप्रवाद में... आत्मप्रवाद नाम का शास्त्र। भगवान ने आत्मा का अध्यात्म का कथन जिसमें किया है, ऐसा शास्त्र। उसमें **कुशल...** आत्मप्रवाद नामक सिद्धान्तशास्त्र में **कुशल ऐसा परमात्मज्ञानी मुनि,...** परमात्मज्ञानी अर्थात् परमस्वरूप अपना... अपना त्रिकाली। स्वयं ही परमात्मा है वस्तु, उसका ज्ञानी (अर्थात्) उसका ज्ञान करनेवाला। 'परमात्मज्ञानी' यह पर्याय है। **मुनि, पशुजनों द्वारा किये जानेवाले...** ढोर जैसे मूर्ख मनुष्य, तत्त्व की खबर नहीं होती, वे सब निन्दायें करें। दुनिया तो ऐसी ही चलती है अनादि से। 'जामे जितनी बुद्धि है, उतनो दियो बताय, वांको बुरो न मानिये और कहाँ से लाय।' यह तो ऐसा ही है। उसकी मर्यादा में हो, वह बात ही कहे न!

परमात्मज्ञानी मुनि... देखो, भाषा! परमात्मा अर्थात् सिद्ध, अरिहन्त स्वयं। स्वयं परमात्मा—परम-आत्म अर्थात् स्वरूप। त्रिकाली भगवान ध्रुव नित्यानन्द ज्ञायकभाव एकरूप वस्तु स्वयं, ऐसे एकरूप से उसके गुण एकरूप ध्रुव। वस्तु स्वयं ध्रुव और उसके गुण ध्रुव। ऐसा जो परमात्मस्वरूप, उसका ज्ञानी, उसका वेदनेवाला। ऐसे परमात्मस्वरूप को जाननेवाला अर्थात् कि उसके आनन्द को वेदनेवाला। ऐसा आनन्दित मुनि... चौथे गुणस्थान में उसके प्रमाण में आनन्द होता है, पाँचवें में उससे विशेष, मुनि को (छठवें में) उससे विशेष, सातवें में (उससे विशेष)।

कहते हैं कि **पशुजनों द्वारा किये जानेवाले भय को छोड़कर...** दुनिया को गिनना नहीं, यह बात। वह कहीं मनुष्य कहलाये? ऐसा कहते हैं। पशु जैसे हैं, ऐसा कहते हैं। ऐसा कहा न? विकल (अर्थात्) जिसे तत्त्व का भान नहीं और तत्त्व को किस प्रकार साधना, उसका साधन क्या—उसकी खबर नहीं। बाहर से सब मान बैठे हैं, ऐसों

को यह बात नहीं रुचती। ईर्ष्या करेंगे, द्वेष करेंगे, निन्दा करेंगे, परन्तु सामने देखना नहीं। कहो, समझ में आया इसमें?

आनन्दघनजी तो ऐसा कहते हैं कि 'लही भव्यता मोटुं मान, पण अभव्य त्रिभुवन अपमान...' भगवान के ज्ञान में आया कि यह पात्र है, ... है ... समझ में आया? अब तुझे किसका मान चाहिए है? भगवान के ज्ञान में आया कि यह अपात्र है। अरे! दुनिया में तुझे किसका अपमान चाहिए है? समझ में आया? 'लही भव्यता मोटुं मान...' परमात्मा के ज्ञान में ऐसा आया, परमात्मा ने कहा कि यह धर्मी जीव है... समझ में आया? अब तुझे किसका मान चाहिए है? 'पण अभव्य त्रिभुवन अपमान...' उनके ज्ञान में ऐसा आया कि यह व्यक्ति नालायक है। किसका अपमान चाहिए है तुझे अब? भले पूरी दुनिया मान दे। आहाहा! दुनिया के सामने देखना नहीं....

और उस (प्रसिद्ध) सकल लौकिक जल्पजाल को... में से निकाला न! '**कृतां तं**' यह? '**तं...**' भाई! आया था न 'वह'। अपने आया था। पहले आ गया है। उसमें आ गया है पहले। आहाहा! कहते हैं कि अरे! वे सकल लौकिकजल्पजाल... बेचारे लौकिकजल्पजाल... **सकल लौकिक...** अपनी बात की है, पर की बात... अपनी आयी। **(प्रसिद्ध) सकल लौकिकजल्पजाल...** विकल्प को छोड़कर **शाश्वत् सुखदायक एक निज तत्त्व को पाता है।** शाश्वत् सुखदायक एक निज तत्त्व को पर्याय में पाता है। तत्त्व तो है, वह है। समझ में आया? आहाहा! आत्मा की उपलब्धि कहीं है न मोक्ष की। मुक्ति की पर्याय, वह आत्मा की उपलब्धि है (अर्थात्) आत्मा उसे प्राप्त हुआ है... आत्मा उसे प्राप्त हुआ है। आहाहा! समझ में आया? **शाश्वत् सुखदायक एक निज तत्त्व को...** पूर्ण दशा की प्राप्ति (ऐसे) तत्त्व को प्राप्त करता है। मार्ग भी कहा और मार्ग का फल भी साथ में कहा—दोनों कहा। विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर शुक्ल २, शुक्रवार, दिनांक-१९-११-१९७१
गाथा-१५५, श्लोक-२६५, प्रवचन-१८१

यह नियमसार सिद्धान्त है। उसमें निश्चय परम-आवश्यक अधिकार। नियमसार अर्थात् क्या? यह 'नियमसार' शब्द में... आत्मा जो सच्चिदानन्दस्वरूप है आत्मा। यह देह, वह तो जड़, मिट्टी है, वाणी जड़ है, अन्दर कर्म भी जड़ है और उसमें जो होनेवाली पुण्य-पाप की लगनियों की वृत्तियाँ, रागादि वासना, वह भी पर, विभाव और विकार है, वह भी वास्तव में तो अचेतन है। आत्मा तो अन्दर अनादि-अनन्त ज्ञानानन्द, नित्यानन्द, सहजानन्द ऐसा उसका स्वभाव त्रिकाल है। उसमें नियमसार अर्थात् वह वस्तु जो है त्रिकाली आनन्द और ध्रुव नित्यानन्द, उसमें अन्तर एकाग्र होना, वह पर्याय हुई। यह वस्तु—द्रव्य है, वह त्रिकाली है और पर्याय है, वह क्षणिक उत्पन्न होती है। जिसे अन्दर द्रव्य-गुण-पर्याय का ख्याल नहीं, उसे तत्त्व की दृष्टि नहीं हो सकती। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिकालज्ञानी परमात्मा अनन्त हो गये (और) वर्तमान में महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं, जिन्हें एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल, तीन लोक का ज्ञान वर्तता है। जगत को बैठना भारी कठिन है, इसलिए सब दूसरे रास्ते चढ़ गये, यह क्या समझे हैं, इसके बिना। समझ में आया?

साक्षात् परमात्मा विराजते हैं महाविदेह में मौजूद वर्तमान, उनके ज्ञान में तीन काल—तीन लोक ज्ञात हुए। यह पहले आ गया न १५५ में। १५५ गाथा। यह १५६ है, परन्तु १५५ में आ गया, देखो! **श्रीमद् अर्हत् के मुखारविन्द से निकले हुए समस्त पदार्थ...** परन्तु अभी तो सर्वज्ञ है या नहीं, इसके विश्वास का ठिकाना नहीं। सर्वज्ञ हो सकते हैं? एक आत्मा में एक समय में तीन काल-तीन लोक को जानना, ऐसा बन सकता है? ऐसा तो अभी श्रद्धा का ठिकाना नहीं होता। आहाहा! इसलिए आत्मा इतना बड़ा है, इसकी उसे खबर नहीं। इसलिए दूसरे को महत्ता (दे कि) दूसरा यह कर देगा, इससे होगा और इससे होगा। ऐसा अज्ञान से अनादि काल से पर के कारण कुछ होगा

मुझमें, (ऐसा मानता है)। क्योंकि अपनी महत्ता अर्थात् कि जिसे महत्ता प्रगट हुई है... वर्तमान में अन्तर वस्तुस्वभाव सर्वज्ञस्वरूप आत्मा है। यह एक-एक आत्मा सर्वज्ञ अर्थात् ज्ञानस्वभावी चैतन्यवस्तु है न! तो उसका ज्ञानस्वभाव है। स्वभाव हो न! कुछ भाव बिना वस्तु होगी? शक्कर है तो उसका मिठास स्वभाव है, अफीम है तो उसका कड़वा स्वभाव है। तो भगवान आत्मा है तो उसका स्वभाव क्या?

उसका स्वभाव है ज्ञान—जानना, चैतन्य। ऐसा जो स्वभाव, वह सर्वज्ञशक्ति से भरपूर तत्त्व है। लोगों को इस बात की (खबर नहीं होती, इसलिए) बेचारे कल्पित अज्ञानियों ने कहे हुए मार्ग में चले जाना अनादिकाल से। वह का वह वर्तमान में भी चालू रखते हैं। जिसे आत्मा, यह वस्तु है देह से अत्यन्त भिन्न, उसमें सर्वज्ञ... अनन्त आनन्द उसमें पड़ा है। दो बातें हुई। एक तो वस्तु है आत्मा, वह अविनाशी है और उसमें ज्ञान और आनन्दादि गुण हैं, वे भी अविनाशी हैं। अब वह अविनाशी शक्ति और शक्तिवान... भारी कठिन! शक्ति—उसके गुण और शक्तिवान वह वस्तु—द्रव्य-पदार्थ। पदार्थ-वस्तु। वस्तु है, वह शक्तिवान है और उसके गुण हैं, वह शक्ति है। क्योंकि वस्तु है, वह वस्तु तो तत्त्व हो गया पदार्थरूप से, परन्तु अब उसकी शक्ति—उसका स्वभाव—उसका गुण—उसका सत्त्व, उस सत् का सत्त्व क्या? समझ में आया?

उस सत् का सत्त्व ज्ञान, दर्शन, आनन्दादि उसकी शक्तियाँ कहलाती हैं। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने एक समय में—सेकेण्ड के असंख्य भाग में अपनी ज्ञानपर्याय में तीन काल-तीन लोक जाने, वह ज्ञान की पर्याय उन्हें व्यक्त हो गयी। ऐसे सिद्ध परमात्मा अनन्त हैं और वर्तमान में (अरिहन्त) महाविदेह में विराजते हैं। अकेले शास्त्र के आधार से, भगवान कहते हैं, शास्त्र कहते हैं—ऐसा नहीं। समझ में आया? ऐई! परमात्मा महाविदेह में वर्तमान में ५०० धनुष का देह है, करोड़ पूर्व की आयु है, करोड़ों वर्ष से केवलज्ञान हुआ है, देहसहित वाणी की आवाज—ओम ध्वनि निकलती है। यह अमुक आयुष्य पूरा होने पर, आगामी चौबीसी के १३वें तीर्थंकर के काल में उनका आयुष्य पूर्ण हो जायेगा, अकेले सिद्धदशा, अकेला आत्मा रह जायेगा। अभी तो अब अरिहन्त पद में हैं। पहला 'णमो अरिहंताणं' है न! भगवान जाने 'णमो अरिहंताणं' क्या होगा? कोई अरिहन्त हो गया होगा। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि जिसने अपने स्वभाव की शरण लेकर अरि अर्थात् राग-द्वेष और अज्ञान का नाश किया और उसके स्थान में सर्वज्ञपना और वीतरागदशा जिसने दशा में—पर्याय में—अवस्था में (प्रगट की)। अभी पर्याय किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती। गुण क्या और पर्याय क्या? जय भगवान! अन्ध-अन्ध खाता। समझ में आया? यहाँ नियमसार सिद्ध करना है। नियमसार अर्थात् पर्याय है। कार्य करना है न उसे कुछ। हित का, लो। कार्य करना है न! वह अनादि काल से अहित में है। यदि अहित में न हो तो उसे प्रगट आनन्द का अनुभव व्यक्तरूप से प्रत्यक्ष होना चाहिए। न्याय समझ में आता है? उसकी दशा में यदि अहितपना न हो तब तो उसे हितपनेरूप प्रगटपने का अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आना चाहिए। आहाहा! यह उसका अभाव है, इसलिए अहित में है।

कुछ समझना चाहता है न। चाहे जिस प्रकार, परन्तु वह समझना तो चाहता है न। इसका अर्थ है कि नहीं समझा हुआ, ऐसी एक उसकी दशा है। उसमें उसे 'समझना है' वह दशा दूसरी है। समझ में आया? उस नासमझ की दशा का नाश होकर, समझ की दशा प्रगट हो, वह दशा में होता है, उसकी पर्याय—हालत में होता है। यदि ऐसा न हो, हालत न हो तो कार्य नहीं हो सकता। और उस कार्य का कारण त्रिकाली द्रव्य और गुण वस्तु है। पदार्थ है न, वस्तु है न। अस्ति है या नहीं? 'है' ऐसा तत्त्व है या 'नहीं' ऐसा है वह? तो 'है' ऐसा तत्त्व, उसमें अनन्त ज्ञान, दर्शन आदि के स्वभाव (रहे हुए हैं)। स्वभाव हो वह माप बिना की शक्ति होती है। न्याय—लॉजिक से उसे समझना पड़ेगा या नहीं? जिसका स्वभाव हो, उसे हद और माप नहीं होता, जिसका स्वभाव हो, वह विपरीत नहीं होता, जिसका स्वभाव हो वह अल्प नहीं होता। अर्थात् इसका अर्थ यह हो गया कि वस्तु जो भगवान आत्मा, उसमें ज्ञान-दर्शन-आनन्दादि परिपूर्ण हैं गुणरूप से—शक्तिरूप से—तत्त्वरूप से—भाववान के भावरूप से। दो बातें हुईं। द्रव्य, वह भाववान है—वस्तु और उसका भाव अर्थात् दर्शन-ज्ञान उसका भाव अर्थात् गुण हुआ। अब उसमें से नियमसार निकालना है।

'नियमसार' पाठ है न शब्द। ऐसे कुछ शब्द (ऐसा नहीं), उसका कुछ अर्थ—भाव समझना चाहिए न! नियम अर्थात् जो त्रिकाली भगवान आत्मा और त्रिकाली ध्रुव वस्तु है न, अविनाशी है न! उसकी शक्ति, जैसा स्वयं नित्य है, ऐसी शक्तियाँ भी नित्य

भाव है। भाववान नित्य है तो भाव नित्य है। अब उसमें वर्तमानदशा में उसका अहितपना और अज्ञान है। क्योंकि अपनी जाति क्या है, उसकी उसे खबर नहीं और ज्ञानी उसे मिले नहीं और ज्ञानी की सेवा से, सर्वज्ञ ने कहा हुआ आत्मा क्या चीज़ है, वह उसे खबर नहीं। इसलिए उसकी पर्याय में राग और पुण्य की विकल्पदशा और या एक समय की प्रगट अवस्था, वह मैं, (ऐसी) उसकी दृष्टि वहाँ अनादि की पड़ी है। समझ में आया? सोमचन्दभाई! यह तो जरा लॉजिक से आया। आहाहा! भारी कठिन है जगत को।

यह वस्तु एक-एक आत्मा ऐसा, हों! अर्थात् वस्तु है, उसमें अनन्त शक्तियाँ बसी हुई हैं, रही हुई है, शक्तियाँ उसमें—शक्तिवान में रही है। यह तो और दूसरा आया भाई! अनन्त धर्मों में रहा हुआ धर्मी। सूक्ष्म बात है जरा। अरे! जैनदर्शन का तत्त्व क्या है, वह सम्प्रदाय को सुनने को मिला नहीं। यह रात्रिभोजन नहीं करना, रोटियाँ नहीं खाना और अपवास करना और यह करना, सामायिक—प्रौषध करना, वह क्रिया, वह जैनदर्शन (ऐसा अज्ञानी मानते हैं)। यह जैनदर्शन ही नहीं। वह जैन को समझता नहीं। जैन, वह कोई सम्प्रदाय नहीं। वह तो आत्मा का स्वभाव... कोई भी व्यक्ति ऐसा तो कहना चाहे न कि हमारे अहित है, दोष है और हित में नहीं, इसलिए दोष टालना है और दोष टालकर उसके स्थान में निर्दोषता लानी है। इसका अर्थ यह हुआ कि निर्दोषता उसकी वर्तमान दशा में नहीं है। और निर्दोषता उसकी दशा में नहीं तो वह निर्दोषता उसके स्वभाव में यदि न हो तो सदोषता टलकर निर्दोषता आयेगी कहाँ से? न्याय समझ में आता है कुछ? आहाहा!

यह द्रव्य-गुण-पर्याय तीन सिद्ध होते हैं। यह बात जिनेश्वरदेव के मार्ग में होती है, अन्यत्र कहीं नहीं होती। क्योंकि दूसरे ने जाना नहीं, अज्ञानियों ने अपनी कल्पना से आत्मा की बातें की हैं। समझ में आया? सर्वज्ञ परमेश्वर वर्तमान साक्षात्, उन्होंने यह द्रव्य अर्थात् वस्तु और वस्तु की शक्ति (कही), ऐसा आत्मा, उसमें अन्तर एकाग्र होना। राग में, पुण्य में, विकल्प में एकाग्र है, इससे तो वह अहित में है, दुःख में है, भटकने में है, परिभ्रमण में है। अब उसे परिभ्रमण टालना हो तो, अर्थात् संसार की दुःखदशा का नाश करना हो तो, जिसमें वह विकार नहीं, ऐसा त्रिकाली तत्त्व भगवान आत्मा (और) उसके अनन्त गुण, उसकी अन्दर एकाग्रता (करना)। न्याय समझ में आता है?

वस्तु ऐसी है। ऐसी ही वस्तु होती है, वरना दूसरे प्रकार से वस्तु साबित नहीं हो सकती। सर्वज्ञ ने कही है (और) इस प्रकार से है। समझ में आया?

ऐसा जो आत्मा त्रिकाली अनन्त आनन्द और ज्ञान का भण्डार, उसमें वर्तमान में अहितपना—अनियमसार है। उसे नियमसार अर्थात् मोक्ष का मार्ग अर्थात् कि दुःख से छूटने का पंथ अर्थात् कि छूटकर पूर्णानन्द की प्राप्ति का कारण—ऐसा जो नियम, वह प्रभु आत्मा... यह १५५ में आ गया सब। स्वयं दुनिया की दरकार छोड़े (कि) दुनिया क्या कहेगी, दुनिया क्या मानेगी। यह दुनिया तो अनादि से अज्ञान में पड़ी है। वह तुझे नहीं गिनेगी, तुझे नहीं मानेगी। यह पशु है जगत के प्राणी बेचारे। बड़े पण्डित होकर घूमते हों तो भी सब ढोर जैसे हैं। आत्मा क्या चीज़ है, उसकी शक्तियाँ क्या हैं, उसकी व्यक्तदशा होने पर क्या आनन्द आवे पर्याय में—इसकी खबर नहीं, इसलिए तेरी ईर्ष्या और निन्दा करेंगे। सुनना। सोमचन्दभाई! यह १५५ में आ गया है।

तू भगवान आत्मा ऐसा है। यदि तू सुखी होना चाहता है तो वह सुख कहीं बाहर में नहीं है, वह अन्दर में है। वह सुखी होने की पद्धति तुझे खबर नहीं, इसलिए यह करूँ और यह करूँ, कुछ विकल्प करूँ, दया-दान करूँ, भक्ति-पूजा करूँ, गुरु की सेवा करूँ तो कल्याण हो जाये, (ऐसा मानता है)। यह सब रास्ता (नहीं है)। तुझे रास्ते की खबर नहीं। समझ में आया? आहाहा! तेरा आत्मा अन्दर... जो कोई पूर्ण सुखी होना चाहता है अतीन्द्रिय सुख, हों! यह अज्ञानी बड़े जगत के सुख तो धूल में मानते हैं। परन्तु जो सुख—अतीन्द्रिय सुख चाहते हैं, उस अतीन्द्रिय सुखरूप पूर्ण होना चाहते हैं या थोड़ा होना चाहते हैं? तब वह अतीन्द्रिय सुखपना है कहाँ? वह अन्तर आत्मा के स्वभाव में है, कहीं बाहर से नहीं आता। प्राप्त की प्राप्ति है। हो, उसमें से आता है। तो आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान, वह तो ध्रुवपना है। यह उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य। उसमें अन्तर में एकाग्र होकर, विकल्प की वृत्तियाँ कि ऐसा है और वैसा है, वह सब छोड़कर, ऐसे स्वभाव में एकाग्र होना, वह क्रिया उसकी सत्क्रिया कही जाती है। उसका नाम धार्मिक क्रिया है। बाकी बातें थोथेथोथा (व्यर्थ) है। समझ में आया?

परन्तु ऐसा आत्मा जानकर, उसकी शक्तियों को पहिचानकर ऐसे आत्मा में एकाग्र होना। ...द्रव्य-गुण और पर्याय तीन आये। जहाँ द्रव्य, गुण, पर्याय की व्याख्या

जिसमें नहीं, उसमें यह मार्ग हो नहीं सकता। समझ में आया? क्योंकि न्याय से भी ऐसा सिद्ध होता है कि जो कुछ करना चाहता है सुख, शान्ति, आनन्द, धर्म। वह उसकी दशा में नहीं है, उस दशा में दूसरा है। तो दशा पलट सकती है, (क्योंकि) वह अवस्थावाला तत्त्व है। और वह अवस्था पलटने पर, त्रिकाली वस्तु—गुण के आश्रय से जो शक्ति में जो पड़ी है अवस्था, उसमें एकाग्र होकर बाहर प्रगट करता है। अर्थात् गुण सिद्ध होते हैं, द्रव्य सिद्ध होता है और पर्याय सिद्ध होती है। यह वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ परमात्मा अरिहन्तदेव ने केवलज्ञान में जानकर ओम ध्वनि द्वारा यह कथन किये हैं। समझ में आया?

इसलिए नियमसार की यह व्याख्या है। भगवान आत्मा वस्तु और उसकी शक्तियों का पिण्ड प्रभु अस्ति अनादि-अनन्त है। उसकी वर्तमानदशा में नियमसार प्रगट करना है। वह त्रिकाली ज्ञानानन्द में एकाग्र (हो) उसका नाम प्रतिक्रमण, उसका नाम प्रत्याख्यान। यह बाहर से हाथ जोड़कर प्रतिक्रमण (करे), वे सब बातें थोथा। समझ में आया? राग और द्वेष के विकल्पों से विमुख होकर अन्तर के आनन्दकन्द में एकाग्र हो, तब उसे निर्मल दशा प्रगट होती है, उस निर्मल दशा का नाम नियमसार कहा जाता है। जेठाभाई! लॉजिक से—न्याय से तो समझ में आये ऐसा है, परन्तु अब कभी इसने दरकार ही की नहीं। संसार में या ऐसे कुगुरु और कुशास्त्र मिले, उसमें फँस गया। यह जैनदर्शन की बात उसे सुहावे नहीं। क्योंकि यह बाहर का क्रियाकाण्ड अकेला, उसे लोगों ने जैनदर्शन माना है। इसलिए लोग बेचारे साधारण सुननेवाले को (ऐसा लगे कि) ऐसा जैन? ऐसी बातें करनेवाले दूसरे भी बहुत हैं। वहाँ घुस गये बेचारे अज्ञान में। समझ में आया?

परन्तु जैनदर्शन अर्थात् कि जैन अर्थात् जीतना। उस 'जीतने में' यह ध्वनि उठती है, इतनी कि राग और द्वेष और अज्ञान को टालना। अर्थात् कि वह है, अस्ति है, उसे टालना और उसके स्थान में वीतरागता और सर्वज्ञता प्रगट करना। तो वह वीतरागता और सर्वज्ञता प्रगट करना अर्थात् पूर्ण सुख की प्राप्ति करना, वह कहाँ से आयेगा?—कि अन्दर में से। अर्थात् द्रव्य और गुण में अनन्त आनन्द और ज्ञान है, ऐसा सिद्ध होता है और विकार का टलना, वह द्रव्य के आश्रय से टल सकता है। कोई देव-गुरु और शास्त्र

की कृपा हो जाये और मिल जाये, ऐसी वह चीज़ नहीं है। समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो वह आ गया न! १५५ में आता था। '**मोणव्वएण**' करना क्रिया। हाँ।

अन्तर में भगवान सच्चिदानन्द प्रभु पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... तू एक ही पूर्ण है। सब होकर नहीं। यह वेदान्तादि कहते हैं न व्यापक, सर्व व्यापक। एकदम झूठी दृष्टि है। समझ में आया? उसने खण्ड-खण्ड आत्मा को माना है। सब होकर एक है, ऐसा नहीं। एक ही आत्मा परिपूर्ण अखण्ड है। आहाहा! समझ में आया? वरना वह वस्तुरूप से वस्तु सिद्ध नहीं होती। भगवान ने तो कहा है, परन्तु न्याय—लॉजिक से भी सिद्ध नहीं होती। एक ही भगवान आत्मा द्रव्य से और गुण से परिपूर्ण है, उसकी पर्याय में मलिनता और अज्ञान है, उसे टालना हो तो द्रव्य में एकाग्र होने से टल सकता है। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उसका मार्ग है नहीं। समझ में आया? सोमचन्दभाई! ऐसा है भाई! यह तो लॉजिक का आया।

यह जैनदर्शन अर्थात् वस्तुदर्शन। जैनदर्शन कोई सम्प्रदाय नहीं। क्योंकि जिसे निर्दोषता प्रगट करनी है... वह निर्दोषता कहो या वीतरागता कहो। सदोषता टालनी है। सदोषता अर्थात् अज्ञान और राग-द्वेष, वह सदोषता है। वह सदोषता टलकर दशा में—पर्याय में निर्दोषता होती है, बदले उसमें होती है। त्रिकाली में तो त्रिकाली वस्तु है। इसलिए पलटने में पलटा खाती है। अज्ञान का नाश होकर, अन्तर द्रव्य के त्रिकाली ध्यान में अज्ञान का नाश और उसमें से प्रगट होनेवाली निर्मल दशा का उत्पाद। अर्थात् पूर्व की अवस्था का व्यय, नयी अवस्था का उत्पाद और जिसमें से आवे, वह त्रिकाली ध्रुव। यह 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्' ऐसा त्रिकाली स्वरूप है। समझ में आया?

जिसे अभी उत्पाद क्या, व्यय क्या, ध्रुव क्या, इसका भान न हो, वह फिर आत्मा का ध्यान करने जाये, थोथा निकले। समझ में आया? जिन्दगी चली जाये। यहाँ आचार्य महाराज कहते हैं कि हे आत्मा! नियमसार हों। नियमसार अर्थात् मुक्ति के—मोक्ष के कारण की क्रिया। मोक्ष अर्थात् पूर्ण आनन्द की प्राप्ति। मोक्ष का अर्थ, कोई दूसरी चीज़ नहीं, (परन्तु) पूर्ण आनन्द की प्राप्ति। उसकी प्राप्ति करने का कारण यह नियमसार अर्थात् मोक्ष का मार्ग। यह मोक्ष का मार्ग अर्थात्? भाई! तू आत्मा शुद्ध आनन्द का धाम, अतीन्द्रिय ज्ञान का सागर है। आहाहा! कैसे विश्वास में आवे पामर होकर? एक उड़द

की दाल व्यवस्थित न हो तो लकड़ी का टुकड़ा* उछले। उसे कहे कि ऐसा भगवान है तू पूर्ण। किस माप से मापेगा वह? समझ में आया?

कहते हैं... आहाहा! यह १५५ में बहुत आ गया है। भगवान के शास्त्रों में... त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव जिन्हें एक समय में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान है। यह बात कितनों को नहीं बैठती, भाई! यह वाडावालों को तो नहीं बैठी और वाडा में से निकल गये, उन्हें भी नहीं बैठी कि ऐसा होता नहीं। एक समय में तीन काल का ज्ञान, ऐसे केवली तुम मानो? तुम्हारी (बात) हम मानते नहीं। आहाहा! इसलिए यहाँ कहते हैं। पण्डितजी! परन्तु ऐसा यदि न हो तो आत्मा का परिपूर्ण ज्ञानस्वभाव ही सिद्ध नहीं होता। भगवान आत्मा... ऐसे आत्मा कैसा और उसका फिर ज्ञानस्वभाव गुण... गुण... गुणस्वभाव और उसकी परिपूर्णता जो पर्याय में प्रगट न हो तो उस परिपूर्ण गुण और परिपूर्ण अवस्था का सिद्धपना साबित नहीं होता। वह वस्तु को जानता नहीं। अज्ञानी मिथ्यादृष्टि में पड़े हैं और मूढ़रूप से धर्म ऐसे होता है, ऐसा मान रहे हैं, उसे धर्म की खबर नहीं। समझ में आया?

कहते हैं कि भाई! **परमात्मध्यानस्वरूप...** ऐसा १५५ में आया है। **प्रतिक्रमणादि सत्क्रिया को जानकर...** आहाहा! परीक्षा करके (मानना)। ऐसा का ऐसा मान लेना कि भगवान ने ऐसा कहा, इसलिए हम मानते हैं—ऐसा नहीं। वह तो अन्ध श्रद्धा है। समझ में आया? तीर्थंकर ने छह काय के जीव कहे और छह द्रव्य कहे, ऐसा मान लेना—ऐसा नहीं है। लो, यह भाई यह फिर से कहा भाई ने। टीका १५५ की देखो!

श्रीमद् अर्हत् के मुखारविन्द से निकले हुए... १५५ (गाथा)। पहली लाईन है न इस ओर। श्रीमद्... श्रीमद् अर्थात् स्वरूप की लक्ष्मीवाले परमात्मा तीर्थंकरदेव सर्वज्ञदेव। उनके मुखारविन्द से... उन्हें पूर्ण वीतरागता प्रगट हुई, सर्वज्ञता प्रगट हुई, परन्तु शरीर और चार अघातिकर्म बाकी रहे हैं, इससे मुखारविन्द से निकली हुई वाणी है। मुखारविन्द से निकली हुई (कहना), वह भी व्यवहार है। पूरे शरीर में से ओम ध्वनि उठती है। यह मुख तो जड़ है, यह मिट्टी है। परन्तु आत्मा का जहाँ सर्वज्ञपना प्रगट होता है, पूरे शरीर में से ओम, ऐसी ध्वनि—आवाज उठती है। समझ में आया? परन्तु लोगों में ऐसे मुख

* ढीचणीयुं—पुराने समय में भोजन करते समय थाली के नीचे रखा जानेवाला लकड़ी का छोटा टुकड़ा।

से वाणी निकले, वैसी बाहर में पद्धति है, इसलिए इस प्रकार से कहा है। पाठ है 'मुखारविन्द'। मुखरूपी कमल में से ध्वनि निकले, ऐसा।

आत्मा असंख्य प्रदेशी है। सूक्ष्म बात है। सब एक-एक सिद्ध करने जायें तो देरी लगे। असंख्य प्रदेशी है न! लॉजिक से—युक्ति से सब सिद्ध हो सकता है। ऐसा नहीं कि अद्धर से ऐसा मानना। यह असंख्य प्रदेश में एक-एक प्रदेश में अनन्त-अनन्त गुण—शक्तियाँ पड़ी हैं। ऐसे असंख्य प्रदेश हैं। उनमें पूर्ण दशा जहाँ प्रगट होती है, तब से असंख्य प्रदेश में—पूरे आत्मा में विकल्प बिना ओम ध्वनि उठे। ओम ऐसा। 'ओमकार ध्वनि सुणी अर्थ गणधर विचारे...' ऐसी ध्वनि अन्दर उठे साक्षात्। उसमें से ओम के दो प्रकार। एक ओर अर्थात् आत्मा आनन्दकन्द द्रव्य-गुण-पर्यायवाला और एक ओम अर्थात् अक्षर। ओम ऐसा अक्षर उठे, वह तो विकल्प है। ओम... ओम... ओम... करे न! वह तो विकल्प—राग है। अक्षर है, वह तो जड़ है। उस ओमकार में से जो ध्वनि आयी... समझ में आया?

यहाँ नहीं तो कहीं है या नहीं? और शरीररहित होने के बाद कुछ स्थान है, वह भी है या नहीं? 'णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं' की यह व्याख्या चली। समझ में आया? जिसने पूर्ण जाना और वाणी निकली, तब उसका अर्थ हुआ कि अभी उसे सिद्धपद हुआ नहीं। इसलिए अभी वाणी का योग है। और वाणी का योग न हो तो उन्होंने पूर्ण जाना, वह कहा कहाँ से? वह वाणी बिना कहाँ से ज्ञात हो? इसलिए सहज वाणी का योग अन्दर से उठता है ध्वनि—ओम ध्वनि उठती है। वह **मुखारविन्द से निकले हुए...** समझ में आया? यह सब प्रत्यक्ष हो गया है, हों! ऐसा नहीं कि ऐसा होगा और वैसा होगा, भगवान ने कहा, इसलिए मान लेना—ऐसा नहीं। ऐई! आहाहा! क्या हो?

समस्त पदार्थ जिसके भीतर समाये हुए हैं,... उस वाणी में तीन काल—तीन लोक के पदार्थ... एक पदार्थ नहीं, अनन्त आत्मायें हैं, अनन्त परमाणु यह रजकण धूल अनन्तगुणी संख्या से है। वे सब पदार्थ भगवान की वाणी में समा गये हैं। भगवान की वाणी के गर्भ के पेट में समाये हैं। वाणी में, हों! **भीतर समाये हुए हैं, ऐसी चतुरशब्द-रचनारूप...** दिव्यध्वनि चतुरशब्दरचनारूप... **द्रव्यश्रुत**—भगवान ने कही हुई वाणी। और वाणी भगवान करे? वाणी तो जड़ है। परन्तु सम्बन्ध बताते हैं। यहाँ वाणी उठती

है, वहाँ भगवान का सर्वज्ञपना निमित्त है, इतना। ऐसे **द्रव्यश्रुत में शुद्धनिश्चयनयात्मक...** शुद्धनिश्चयनयस्वरूप... शुद्ध सच्चे स्वरूप **परमात्मध्यानस्वरूप प्रतिक्रमणादि सत्क्रिया को जानकर,...** यहाँ आयी न... यह परीक्षा करके (जानना), ऐसा कहते हैं पाठ में। यह आत्मा है, शक्तियाँ हैं, उसकी निर्मल सत्क्रिया। विकल्प दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह तो राग है, वह सत्क्रिया नहीं। यह विवाद।

सवेरे जरा एक विचार आया था कि यह किसके साथ वाद करेगा। व्यवहार मोक्षमार्ग असत्यार्थ है; निश्चय मोक्षमार्ग, वह सत्यार्थ है।

मुमुक्षु : भूतार्थ और अभूतार्थ दोनों हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : भूतार्थ-अभूतार्थ की व्याख्या आयी रास्ते में। जब आत्मा भगवान अपने आनन्द में एकाग्र होकर जो क्रिया—परिणति निर्मल वीतरागता हो, वह सत्क्रिया, वह सच्चा-सत्यार्थ मोक्ष का मार्ग और विकल्प उठे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का, मान्यता का आदि विकल्प, वह तो राग है। वह राग असत्यार्थ है। मोक्ष के मार्ग की अपेक्षा से असत्यार्थ है। है सही। है, कहना और फिर असत्यार्थ कहना। यह मार्ग समझना भारी (कठिन, इसलिए) वाद-विवाद करना नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

एक ओर कहना कि नियमसार अर्थात् आत्मा की सत्क्रिया। यह नियमसार, यह मोक्ष का मार्ग। विकल्प उठे भगवान... भगवान... भगवान... णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... वह सब राग है, धर्म नहीं। आहाहा! वह असत्क्रिया है। यह गजब बात है! आहाहा! भगवान... यहाँ तो 'भगवान' रूप से ही बुलाते हैं आत्मा को। समझ में आया? आहा! प्रभु! तेरी प्रभुता—परिपूर्ण प्रभुता तुझमें पड़ी है और पर्याय में प्रभुता—महत्ता प्रगट हो, वह कहाँ से आयेगी? अन्दर पड़ी है, भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा! या तो भगवान का ध्यान करके मिल जायेगा, ढींकणा का ध्यान करने से मिल जायेगा। किसी से मिलेगा नहीं, सुन न! भगवान तो पर है। वहाँ कहाँ...? उनका ध्यान करने जायेगा तो विकल्प उठेगा। वह तो राग है। आहाहा! समझ में आया? गुरु दे देंगे। सोमचन्दभाई! गुरु भी नहीं देंगे, सुन न! कहाँ तेरे पास नहीं? और उनके पास कहाँ अधिक है कि तुझे दे? आहाहा! किसी की जवाबदारी कुछ नहीं होती। आहाहा!

कहते हैं कि **सत्क्रिया को जानकर...** ऐसा कहा है। परीक्षा करना। ऐसा का ऐसा मान लेना नहीं। फलाना ऐसा कहते हैं, ढींकणा ऐसा कहते हैं, फलाना ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अभी तो सब चला है न! वेदान्त में ऐसा कहते हैं, अरविन्द घोष ऐसा कहते हैं और वह कौनसा एक दूसरा? रमण महर्षि। बहुत पढ़ा है न, देखा है न सब। फलाना ऐसा कहते हैं... आहाहा! अरे बापू! यह मार्ग अलग है, यह कहीं है नहीं। समझ में आया? परन्तु उसमें जन्मे, उन्हें उसकी खबर नहीं। कहनेवाले को खबर नहीं कि यह क्या कहते हैं वीतराग और क्या मार्ग है। इसलिए लोग बेचारे सम्प्रदाय से भी हटकर दूसरे में मिल जाते हैं हैरान... हैरान होने के लिये। आहाहा! ऐई! यहाँ कहते हैं कि ऐसी **सत्क्रिया को जानकर...** करना, ऐसा कहते हैं। क्रिया तो पर्याय हुई, अवस्था हुई, वर्तमान हालत हुई, वर्तमान दशा हुई। उस दशा में क्रिया हो। कहीं त्रिकाली द्रव्य-गुण में होगी? त्रिकाली तो ध्रुव है। आहाहा!

ऐसी **सत्क्रिया को जानकर, केवल स्वकार्य में परायण...** केवल अपने कार्य में तत्पर। यह कार्य अर्थात्? आत्मा के आनन्द में एकाग्र होकर जो कार्य हुआ—शान्ति, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र जो वीतरागी पर्याय सत्क्रिया हुई—वह स्वकार्य। वह जीव का—आत्मा का स्वकार्य। पर के कार्य तो कर सकता नहीं। तीन काल में, अंगुली फिराना, वह आत्मा के अधिकार की बात नहीं है। क्योंकि वे जड़तत्त्व हैं। जड़तत्त्व अपना कार्य क्रिय बिना रहते नहीं, पर्याय हुए बिना रहती नहीं। परन्तु तुझमें रागादि हो, वह उसका कार्य नहीं। आहाहा! भगवान की भक्ति का राग, दया-दान का राग, वह भी आत्मा का कार्य नहीं। गजब बात, भाई! आहाहा! यह तो वृत्ति की वासना-विकल्प उठता है। समझ में आया?

यहाँ तो स्वकार्य... भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द का नाथ, उसकी अन्तर की दृष्टि करके अन्तर में एकाग्र होने से जो निर्मल निर्दोष... निर्दोष अवस्था—वीतरागी परिणति (हो), वह सत्क्रिया, वह आत्मा का कार्य। कहो, अब इसमें क्या हुआ? पोपटभाई! आहाहा! यह देह की क्रिया तो जड़ है, वह कहाँ आत्मा की क्रिया थी? यह हिलना-चलना, बोलना, वह तो जड़ की क्रिया है। वह आत्मा में है नहीं और आत्मा से होती नहीं। अन्दर में पुण्य के भाव हों, वह भी राग की क्रिया है, विभाव है। इसलिए तो कहा, वह

असत् है। असत् शब्द से (आशय यह है कि) आत्मा को लाभदायक नहीं। आहाहा! भारी काम बापू! समझ में आाय? और वापस मन्दिर बनाना, यह करना, एक व्यक्ति ऐसा कहता है, लो! अध्यात्म का उपाय...? उसे कहते हैं तपस्या, त्याग और सेवा, तो कहे निश्चयनय के विषय में यह नहीं, ऐसा कहकर उड़ा देते हैं। अरे! सुन न अब! जेठाभाई!

यह मन्दिर बनाना, ढींकणा कौन बनावे? वह तो पुद्गल की अवस्था है। आत्मा करे उसे? कठिन बात, भाई! और उसमें राग आवे, वह राग उसका कर्तव्य है निश्चय से? ऐसा लिखा है उसने एक बार। अरे भगवान! तुझे खबर नहीं, भाई! बापू! आत्मा की क्रिया तो ज्ञान... जानने का... जानने का... जानने का... जानने का... यह श्रद्धा करने का, यह स्थिरता की क्रिया, वह आत्मा की क्रिया है। वह निर्विकल्प और निर्दोष पर्याय, वह आत्मा की क्रिया है। आहाहा! भारी कठिन काम जगत को यह तत्त्व बैठना और कहनेवाले इस प्रकार के बहुत। जगत के बेचारे घुस जाते हैं वहाँ। कुछ करना तो है न बेचारे को। करना तो है न। धर्म करना, धर्म करना, ऐसा तो बेचारे को है न! भला करना, ऐसा भाव है, परन्तु भला कैसे हो, कहाँ से हो, कैसे हो—इसकी खबर नहीं होती। आहाहा! समझ में आया?

स्वकार्य में परायण—तत्पर, आहाहा! **परमजिनयोगीश्वर ने...** परमस्वरूप आनन्द का धाम शक्ति का पिण्ड प्रभु, उसमें पर्याय जो एकाकार हुई, उसे साधनेवाले को परमजिनयोगी कहा जाता है। योगी अर्थात् आनन्दकन्द का नाथ भगवान, उसमें आनन्द में जुड़ान करना, उसका नाम योगी। मन और वचन में विकल्प उठाना, ऐसा करना और वैसा करना—वे सब योगी नहीं, भोगी है। समझ में आया? यह तो परायण (अर्थात्) आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु एक अखण्ड ध्रुवस्वरूप की एकाग्रता की पर्याय से उसमें जुड़ान करना—द्रव्य में जुड़ान करना—वस्तु में जुड़ान करना। निर्विकल्प पर्याय द्वारा अन्दर में जुड़ना। आहाहा! कठिन काम, भाई! उसे यहाँ परमजिनमुनि कहते हैं, उसे यहाँ परमजिनमुनि कहते हैं। वह गुणवाचक शब्द है। वह पक्षवाचक शब्द नहीं। समझ में आया?

प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त वचनरचना को परित्यागकर,... आहाहा! यह तो नास्ति से बात की है। ऐसा हुआ, इसलिए वे विकल्प शुभ-अशुभ छूट जाते हैं। परन्तु 'परित्याग कर' ऐसा कथन उपदेश की शैली है तो आया है। समझ में आया? भगवान

आत्मा, वह अतीन्द्रिय सुखी होने के लिये प्रयास करता है। वह अतीन्द्रिय सुख अन्दर में है, उसमें से प्राप्त की प्राप्ति (होती है), इसलिए उसमें एकाग्र हो तो पर्याय में प्रगट होता है, उसका नाम जिनयोगी कहा जाता है। समझ में आया? पंच महाव्रत पालना और देखकर चलना (आदि) क्रिया को भगवान सत्क्रिया कहते नहीं। वचनरचना छोड़कर, **सर्वसंग की आसक्ति को छोड़कर...** लो। फिर कहते हैं कि देव-गुरु-शास्त्र ऐसे हैं, वैसे हैं—यह भी सुनना छोड़कर।

मुमुक्षु : श्रीमद् ने....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह खड़े रखे हैं सबको। क्या करे? स्वच्छन्दी बहुत थे वे। अन्त में एक बार ऐसा भी कहा है कि सद्गुरु... सद्गुरु करते हो, वह कौन? यह आत्मा। ऐसा कहा है। २९ (वर्ष में) छाया में कहा है। २९वें वर्ष में उपदेशछाया है न! देखा है, सब देखा है न सबका। पूरी पुस्तकें सब हजारों देखी हैं सबकी। आहाहा! उपदेशछाया में आता है, २९वें वर्ष में। सद्गुरु अर्थात् आत्मा, ऐसा वहाँ कहा। भले (दूसरे को) सद्गुरु व्यवहार से कहा जाये। स्वयं अपने स्वरूप को आनन्द का साक्षात् करके वेदन करे, अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन करे पर्याय में—अवस्था में। द्रव्य-गुण तो ध्रुव है, तब उसे स्वयं को स्वयं का गुरु और देव कहा जाता है। तब दूसरे समझानेवाले सर्वज्ञ परमेश्वर और ऐसे सन्त को गुरु कहा जाता है। समझ में आया? व्यवहार से। व्यवहार आवश्यक... ऐसी आस्था। समझ में आया?

बापू! मार्ग अनन्त काल में इसे मिला नहीं। एक सेकेण्ड भी सत्य क्या है, वह इसने सुना नहीं। श्रीमद् ऐसा कहते हैं, सत् सुना नहीं। श्रीमद् ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! **सर्वसंग की आसक्ति को छोड़कर अकेला होकर,...** अकेला... ऐ नेमिदासभाई! मुझे कहा था सवेरे कि अकेला है यह। अकेला जीव है। दोकला कब था? अभी कमरे में कहा। अकेला रहा है। अकेला है। जीव अकेला है अनादि का। ...जड़ है, उसमें विकल्प उठे बोलने का, वह विकल्प—राग है। आहाहा! केवलज्ञानी को वाणी—ओम ध्वनि निकले, वह बिना इच्छा के निकलती है। छद्मस्थ जब वाणी करे—हो, तब उसे विकल्प—राग होता है। राग बिना वाणी में निमित्त दूसरा हो नहीं सकता।

आहाहा! मुद्दे की वस्तु ही यह है, उसमें मुद्दे की कहे कि पीछे की कहे, जो है यह है। समझ में आया?

कहते हैं कि **मौनव्रत सहित, समस्त पशुजनों (पशु समान अज्ञानी मूर्ख मनुष्यों) द्वारा...** दूसरे को तो ऐसा लगे कि यह गजब! पागल है, मूर्ख है। मजाक करे मजाक दूसरे।

मुमुक्षु : पागल के अस्पताल में रखाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहते हैं न, सोनगढ़वालों को पागल के अस्पताल में भेजो। बहुत सच्ची बात है, बापू! जरा ऐसा आया था। परन्तु यों भी जिसने यह बात सुनी नहीं, उसे तो ऐसा लगे कि यह क्या जैन? यह जैन की बातें करते हैं। जैन क्या होगा, कुछ (खबर) नहीं होती। अन्दर मजाक (करे)। सच्ची बात है, सुन! तू कौन है, कहाँ है, वह सब खबर है हमको। समझ में आया? आहाहा! ऐई! यहाँ कहते हैं परमात्मा और सन्त... आहाहा!

पशुजनो—ढोर जैसे जो अज्ञानी, जिन्हें द्रव्य की खबर नहीं होती। द्रव्य अर्थात् वस्तु, हों! द्रव्य अर्थात् यह तुम्हारा पैसा नहीं। जिसे गुण... कैसे द्रव्य उसे कहते हैं न? एक हमारे है न वहाँ चौका। 'द्रव्यदृष्टि वह समकितदृष्टि।' एक व्यक्ति आया थान का माणेकचन्दभाई पोटरीवाला। महाराज! यह द्रव्यदृष्टि वह समकितदृष्टि...? क्योंकि यहाँ करोड़पति बहुत आवे, पैसेवाले बहुत आवे, लाखोंपति बहुत ही आवे, करोड़पति आवे। इन पैसेवालों को सम्यग्दृष्टि कहाँ से कहा? अरे! कुछ समझे बिना... द्रव्यदृष्टि अर्थात् यह आत्मा वस्तु जो अखण्ड अभेद चिदानन्द आत्मा की अन्तरदृष्टि होना, वह द्रव्यदृष्टि है। तेरे पैसे की बात कहाँ धूल में थी? पैसा कहाँ तेरा था? समझ में आया? आहाहा!

पशु समान अज्ञानी मूर्ख ऐसे द्वारा **निन्दा किये जाने पर भी...** वह मजाक करेगा... वाला हो जा... कहीं किसी की सेवा करनी नहीं, व्रत पालना नहीं, तपस्या-अपवास करना नहीं और हम धर्मी। सुन, सुन, बापू! उपवास तू कहता है, वह उपवास नहीं, वह तो लंघन है। यहाँ तो भगवान आनन्दमूर्ति गुण—शक्ति का पिण्ड ऐसे उप अर्थात् समीप में एकाग्र से बसना, उसका नाम उपवास है। इसके भान बिना सब लंघन है। यह वर्षीतप करते हैं न सब। समझ में आया? ऐई पोपटभाई! किया नहीं न वर्षीतप? किया था? बच गये हैं। आहाहा! दो-पाँच-दस हजार खर्च करे तो वर्षीतप मनाया

कहलाये वापस। ....मर गये हैं न ऐसे के ऐसे। यहाँ तो आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड द्रव्य—वस्तु और उसकी अनन्त शक्तियाँ, उसमें एकाग्र होकर उप-वास—स्वरूप में समीप होकर अन्तर बसना, उसका नाम भगवान उपवास कहते हैं। इसके बिना की सब क्रियाओं को लंघन कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

समस्त पशुजनों द्वारा निन्दा किये जाने पर भी अभिन्न रहकर,... आहाहा! खण्ड नहीं करना। अरे! लोग ऐसा क्यों कहते हैं? यह बहुत ऐसा मानते हैं न! लाखों ऐसे माननेवाले हैं न! माननेवाले तो चींटियों के नगर बहुत होते हैं, वह क्या है? वह कहीं मनुष्य में गिनी जाती है? इसी प्रकार अज्ञानियों के झुण्ड कहे कि यह नहीं होता, ऐसा मार्ग नहीं होता। अन्तर में अकेला अपना काम करना। अब कुत्ते भी पेट भरते हैं अपना। दूसरे का काम करे, वह होशियार अच्छा कहलाये। धूल भी कर सकता नहीं। मुफ्त में हैरान होकर मर जायेगा। दूसरे की सेवा करते हैं, वह सेवा हम कर सकते हैं—यह मिथ्याभ्रम अज्ञान का है। समझ में आया?

'**अभिन्न रहकर**' है न? (शब्दार्थ)—**छिन्नभिन्न हुए बिना; अखण्डित; अच्युत।** एक-एक शब्द में गूढ़ता है। अन्दर भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द का सागर प्रभु, उसमें एकाग्रता की क्रिया में खण्ड नहीं होने देना। अर्थात् विकल्प नहीं उठाना कि यह क्या कहते हैं, यह क्या... कहनेवाले ऐसा ही कहेंगे। समझ में आया? **निजकार्य को—**अपने कार्य को... देखो! अपना कार्य यह कि आत्मा के आनन्द में एकाग्र होना वह। वह ज्ञानपुंज प्रभु है, ज्ञान का पिण्ड प्रभु अकेला ज्ञान का पुंज है। उसमें एकाग्र होकर निर्विकल्प कार्य करना, वह आत्मा का कार्य है। समझ में आया? उसे समझण में तो अभी ले। अभी श्रद्धा का ठिकाना नहीं होता, व्यवहार समझण का ठिकाना नहीं होता, उसे यह कहाँ से आता होगा? समझ में आया? आहाहा!

निज कार्य, **कि जो निजकार्य...** आहाहा! **निर्वाणरूपी सुलोचना के सम्भोगसौख्य का मूल है...** पूर्ण आनन्द की प्राप्तिरूपी मुक्ति, पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द की अन्तर में से प्राप्तिरूपी मुक्ति। ऐसी निर्वाणरूपी सुलोचना अर्थात् परिणति स्त्री, उसके आनन्द का अनुभवना, यह आत्मा के आनन्द में एकाग्रता की क्रिया, वह मुक्ति का मूल कारण है, मोक्ष का वह कारण है। समझ में आया? आहाहा! दया, दान, व्रत और भक्ति और

पूजा—वे सब भाव पुण्य हैं, वह मुक्ति का कारण नहीं, धर्म नहीं। निर्वाण अर्थात् मुक्ति। आत्मा की पूर्ण पवित्रता की प्राप्ति का नाम मुक्ति, उसे यहाँ निर्वाण कहते हैं। निर्वाण अर्थात् शान्ति—पूर्ण शान्ति। पूर्ण शान्तिरूपी मुक्ति उसकी ... रूपी सुलोचना। सुलोचना अर्थात् स्त्री, उसके—आनन्द के साथ एकाग्र होना, ऐसा जो अनन्त आनन्द का सुख, ऐसी जो मुक्ति, उसका मूल कारण यह निजकार्य है। आत्मा में अन्तर एकाग्र क्रिया—सत्क्रिया, वह मुक्ति का मूल कारण है। बाकी मोक्ष का कोई दूसरा मूल कारण है नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें?

श्लोकार्थः आत्मज्ञानी मुमुक्षु जीव... श्लोकार्थ है न नीचे। 'आत्मज्ञानी' शब्द कहकर उसे ज्ञानवाला, भानवाला, कार्यवाला लिया। आहाहा! दूसरा ज्ञान हो-न हो शास्त्र का, तो उसका कुछ नहीं। आत्मा जो आनन्द का धाम भगवान, उसका वेदन, उसका स्वसंवेद्य ज्ञान—अपने आनन्द और ज्ञान को वेदनेवाला जो ज्ञान, उसे आत्मज्ञान और उसके धारक को आत्मज्ञानी कहा जाता है। आहाहा! कठिन बातें भाई ऐसी! एक व्यक्ति ऐसा कहे, महाराज बड़ी-बड़ी बातें करे, परन्तु कैसे करना, यह बात नहीं करते। यह करने का ही यह है। यशोविजय और ऐसा कहते हैं।

आहाहा! अरे भगवान! बापू! तेरी महत्ता की तुझे खबर नहीं। आहाहा! तेरे अनन्त गुणों में एक-एक गुण महामहत्ता अनन्त शक्ति से भरपूर है। ऐसी-ऐसी तो अनन्त शक्तियाँ तुझमें—एक द्रव्य में पड़ी है। कहाँ से ख्याल आवे? ऐसी अनन्त शक्तियों का सत्त्वरूपी द्रव्य एक, उसमें एकाकाररूपी निजकार्य। जेठाभाई! वह अपना कार्य। ओय...! यह तो स्वार्थी हो गये सब। पर का कुछ करे, सेवा करे, दूसरे को सहायता दे। धूल में भी सहायता देता नहीं। कौन दे? सब स्वतन्त्र तत्त्व है। प्रत्येक तत्त्व की अवस्था उस तत्त्व को उस काल में हुए बिना रहती नहीं। उसमें क्या करे पर को? आहाहा!

पशुजनकृत लौकिक भय को तथा घोर संसार की करनेवाली प्रशस्त-अप्रशस्त वचनरचना को छोड़कर... यह तो वाणी—भाषा कही, परन्तु राग को छोड़कर, ऐसा कहना है। कहो, यह तो शुभराग को घोर संसार करनेवाला कहा। वीतरागभाव से हो, उसे धर्म कहा। ऐसा भाव राग है, उसे धर्म कहा नहीं किसी ने। **घोर संसार की करनेवाली प्रशस्त-अप्रशस्त (शुभ-अशुभ) वचनरचना...** वाणी की रचना कहीं संसार

का कारण नहीं, परन्तु वाणी के काल में जो राग होता है, वह शुभराग है, वह संसार का कारण है। आहाहा! उपदेश के काल में वाणी निकले तो वाणी के कारण से। वहाँ आत्मा वाणी करता नहीं। आत्मा वाणी करे, यह मान्यता मूढ़ अज्ञानी की है। यह विकल्प उठा है, वह राग है, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। छद्मस्थ है न, तो वाणी के काल में उसे राग होता ही है वह। केवली को नहीं होता।

मुमुक्षु : वाणी न हो तो समझे कहाँ से?

पूज्य गुरुदेवश्री : समझे—न समझे, स्वतन्त्र है। उसके साथ क्या सम्बन्ध है? और वाणी से वह समझता है? ऐई! बात तो ऐसी है, बापू! यह तो उसकी योग्यता के कारण से उसकी दशा में वह समझता है, तब उस वाणी को निमित्त कहा जाता है। अर्थात् कि वह वाणी कुछ करती नहीं।

मुमुक्षु : परन्तु चाहिए तो सही न?

पूज्य गुरुदेवश्री : चाहिए का अर्थ क्या? पूरे जगत में छह द्रव्य पड़े हैं, तत्त्व अनन्त पड़े हैं, हों! परन्तु उसके कारण यह समझता है... (ऐसा नहीं है)। इसीलिए अभी कहेंगे १५६ में। दूसरे को समझाने में आकुलता करना नहीं। सब एक विचार के नहीं होते। अनेक लब्धियाँ, अनेक कर्म, अनेक प्रकार के जीव जगत में हैं। यह १५६ में कहेंगे। उतावला होना नहीं कि यह सबको समझा दूँ, विकल्प में जुड़ा दूँ, एकाकार हो जाऊँ। कौन समझे? भगवान के मार्ग में तो जीव की जाति भव्य-अभव्य आदि अनेक प्रकार से वर्णन किया है। उनकी योग्यता भी अनेक प्रकार की वर्णन की है। वे सब एक विचार के हो जायें, (ऐसा) उतावला होना नहीं। समझ में आया? आहाहा!

और कनक-कामिनी सम्बन्धी मोह को तजकर, मुक्ति के लिये स्वयं अपने से अपने में ही अविचल स्थिति को प्राप्त होते हैं। आहाहा! **स्वयं** अर्थात् भगवान आत्मा आनन्दधाम, **अपने से...** अर्थात् निर्विकल्पध्यान से, राग के विकल्प की अपेक्षा छोड़कर अन्दर आनन्द के अन्तर स्वरूप में परिपूर्ण के लक्ष्य से होनेवाली दशा से, **अपने में ही...** (अर्थात्) अपने ज्ञानानन्द ज्ञानस्वभाव में **अविचल स्थिति को प्राप्त करता है।** ऐसी अन्तर क्रिया करनेवाला मुक्ति की अविचल दशा को प्राप्त होता है। आहाहा! ऐसा त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा, सन्तों का यह कथन है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर शुक्ल ३, शनिवार, दिनांक-२०-११-१९७१
श्लोक-२६६-२६७, गाथा-१५६, प्रवचन-१८२

यह नियमसार, निश्चय परम-आवश्यक अधिकार। श्लोक आ गया है, फिर से। २६६।

भीतिं विहाय पशुभिर्मनुजैः कृतां तं,
मुक्त्वा मुनिः सकललौकिकजल्पजालम्।
आत्म-प्रवाद-कुशलः परमात्म-वेदी,
प्राप्नोति नित्य-सुखदं निज-तत्त्व-मेकम्॥२६६॥

कहते हैं कि जीव को आवश्यक काम क्या? आत्मा के हितार्थी को आवश्यक अर्थात् जरूरी कार्य-काम क्या? वह आत्मप्रवाद में कुशल होना चाहिए। जिसमें आत्मा की बात... अध्यात्म ग्रन्थों में आत्मप्रवाद नाम का एक सूत्र है—शास्त्र है, उसमें से यह सब बने हुए हैं। आत्मा जिसमें भरा हुआ हो विशेष, ऐसे आत्मप्रवाद नामक शास्त्र में कुशल होना चाहिए। कहो, समझ में आया? जिसे आत्मा का हित करना हो, उसकी बात है। अनन्त काल से अहित तो कर रहा है।

मुमुक्षु : हित मान रहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मानता है अर्थात्? मानता है तो क्या हो गया? अनादि काल से अपनी जाति को भूलकर, पर को अपना मानकर और अन्दर में शुभ और अशुभराग की—परिणाम की क्रियायें, वे मैंने की हैं, वे मेरी हैं और मुझे उसमें लाभ है—ऐसा मानकर चार गति में दुःखी होकर भटकता है। समझ में आया?

चौरासी के अवतार में वह अपनी जाति क्या है, सर्वज्ञ क्या कहते हैं... परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतरागदेव के शास्त्र में आत्मा किसे कहना, कैसा है और कैसे प्राप्त हो—इसके ज्ञान बिना बाह्य का ज्ञान किया, वह संसार के भटकने का—व्यापार और धन्धे का। वह तो सब चार गति में भटकने के रास्ते हैं, दुःखी होने के रास्ते हैं। जिसे

आत्महित करना हो, उसे आत्मा की बात पहली जो शास्त्र में है, उस शास्त्र को बराबर जानना चाहिए। कहो, समझ में आया? आत्मप्रवाद नाम का सूत्र है न। मूल आगम का शब्द है न। यहाँ ज्ञान के अन्दर नहीं, परन्तु पहली आगम की बात है। जिनकथित परमसूत्र है न मूल पाठ में, उसके यह कलश हैं सब। भगवान आत्मा की बात समयसार, नियमसार इत्यादि परमागम महाशास्त्रों में जो कही है, उस बात में वह बराबर कुशल-निपुण होना चाहिए। वरना अनन्त काल से भटकता है, उसे कहीं का कहीं रास्ता उल्टा हो जायेगा, तो उसका जन्म-मरण मिटेगा नहीं।

श्लोकार्थः आत्मप्रवाद में (आत्मप्रवाद नामक श्रुत में) कुशल... श्रुत में—शास्त्र में, हों! **ऐसा परमात्मज्ञानी...** परमात्मा अपना स्वरूप ही है। वह शास्त्र में—अध्यात्मशास्त्र में उसे बतलाया है। परमस्वरूप भगवान आत्मा निजानन्द शुद्धता के, पवित्रता के धामरूप आत्मा उसका ज्ञानी—उसे जाननेवाला। जिसे हित करना है, वह हित करनेवाला कौन है, उसे जाननेवाला, ऐसा कहा। समझ में आया? ऐसे **परमात्मज्ञानी मुनि,...** मुनि की मुख्यता से बात है। **पशुजनों द्वारा किये जानेवाले भय को छोड़कर...** अरे! साधारण प्राणी बेचारे को, आत्मा क्या चीज़ है, कैसे प्राप्त हो, उसका द्रव्यस्वरूप क्या है, पर्यायस्वरूप क्या है—उसकी खबर नहीं, वे लोग तो ऐसी बात सुनकर मजाक में ही उड़ावे। समझ में आया?

संसार के होशियार हों भटकने के, उसमें कुशल और ऐसी बातें सुनें अथवा कोई (आत्मा की बात) करनेवाला हो, उसे देखे (तो कहे) यह क्या...? वह तो उसकी निन्दा ही करे। कहो, पोपटभाई! ये संसार के चतुर हों सब लो होशियार। एक बात निकाले तो कितनी बातों के तर्क उठावे। ऐसों को यह अध्यात्म की बात और अध्यात्म के करनेवाले, अपने आत्मा में समाने के अभिलाषी ऐसे जीवों की (निन्दा करे), वे सब पशु हैं। समझ में आया? आत्मा की चीज़ क्या है, परमेश्वर ने क्या कहा है—उसका जिसे ज्ञान नहीं, उसे (ऐसा लगे कि) यह क्या अध्यात्म की (बात)? एक आत्मा... आत्मा... आत्मा... लो आत्मा। समझ में आया?

ऐसे पशु अर्थात् विकल—अज्ञानियों (द्वारा) किये जानेवाले भय को छोड़कर...

उसकी दरकार न करे। दुनिया तो ऐसी ही चलेगी। चला ही करती है, ऐसा कहते हैं न। चला ही करती है दुनिया उसकी जाति की, उसमें कुछ नवीन है नहीं। भय छोड़ देना कि यह दुनिया ऐसे-ऐसे बड़े यह धर्म की मजाक करे, समूचा धर्म को माने नहीं और हम मानो दुनिया के होशियार हैं। हो, भले माने, वे सब जानेवाले हैं नीचे। समझ में आया? वे निगोद के पंथ में पड़े हुए हैं। उनकी बात को तू गिनना नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? उनका भय छोड़ देना कि ऐसे सब बड़े-बड़े मुझे ऐसा कहे तो। ...किस प्रकार? अब यह दुनिया ढोर जैसी है, उसके घर में रही। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को देखना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थात् क्या? द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को देखना चाहिए अर्थात् क्या? विपरीत करना द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को देखकर? ऐ चेतनजी! द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव देखना पड़े, कहते हैं। आहाहा! द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव दुनिया जाने। अज्ञानी हो, वह चाहे जो माने। उनकी संख्या अधिक हो और विरोध भी करे। खबर नहीं वहाँ। चीज़ क्या है और कैसे सधती है और कैसे उसकी पूर्ण की प्राप्ति होती है, उसके उपाय की वस्तु की, कारण की और उसके कार्य की? कारण ऐसा आत्मा, उसका उपाय वह मोक्ष का मार्ग और उसका फल ऐसा मोक्ष—वह क्या चीज़ है, उसे कदाचित् सुनी नहीं इसने। इसे ऐसा लगे लो, यह आत्मा। नहीं करनी किसी की सेवा। सेवा नहीं करनी। तुम तो गौशाला का करते हो वहाँ। खबर है न! परन्तु यह तो लोग ऐसा कहे न कुछ! यह ठीक लो! .... किसी की सेवा की नहीं जा सकती और यह त्याग-तपस्या करना, वह कहीं आत्मा का स्वरूप नहीं। यह बाह्य त्याग... समझ में आया? ...ठीक यह जगे वाडा में।

अपवास करो, यह करो, यह करो। परन्तु यह अब वह तो भाई! राग की, बन्ध की क्रिया है, वह स्वरूप में है नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह त्याग करो, स्त्री-पुत्र छोड़ो, परिवार छोड़ो, यह छोड़ो, यह छोड़ो। त्याग की बात आवे तो कहे, यह छोड़ सकता नहीं आत्मा। कहनेवाले ऐसा कहे न कि छोड़ सकता नहीं, ऐसा करके उसे अपना संग छोड़ना नहीं। हाँ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? तपस्या बिना... आवे? अपवास करना, ऐसा व्रत करना—यह तो आत्मा कर सकता नहीं पर का त्याग। आत्मा

के भान बिना के अपवास, वह तो सब लंघन है। ... ऐसा कहकर तपस्या को उड़ाते हैं अध्यात्मी, ऐसा (अज्ञानी) कहते हैं।

मुमुक्षु : करो तो खबर पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : करो तो खबर पड़े। यह बात सेठ ठीक कहते हैं। स्वयं करे तो खबर पड़े कि कैसे अपवास होता है। आहाहा! बात सच्ची, भाई! ऐसा लोग कहते हैं। अरे भाई! यह आत्मा क्या चीज़ है, उसे जाने बिना, उसके भान बिना यह सब त्याग-तपस्या, वह सब लंघन है। आहाहा! क्या हो? जगत लुटाया है न, अनादि से धर्म के नाम से। और उसके कहनेवाले भी उसे ऐसे मिले रहते हैं।

कहते हैं, उनसे भय छोड़कर... दुनिया चाहे जो बोले, परन्तु तेरा आत्मा क्या भगवान कहते हैं, उसे जानकर—उसका ज्ञान करके स्थिर हो। यह उसे करने का है। आहाहा! समझ में आया? एक व्यक्ति कहता था कि तुम दान में धर्म नहीं होता, ऐसा (कहकर) पैसा रखना ठीक बताते हो। और अब ऐसा कहता था। समझ में आया? जामनगर में। आये। ठीक, तुम (कहते हो) पैसेवाले को कि पैसा-बैसा दिया नहीं जा सकता, पैसा दे सकता नहीं। ठीक रखने का कहा यह। यह कहाँ उसे बैठे? ऐसी मजाक की उपाश्रय में आकर। आहाहा! दान में धर्म नहीं और पैसा-बैसा जड़ है, वह दिया नहीं जा सकता—ऐसा कहकर यह ठीक तुमने धर्म निकाला। अरे भगवान! पोपटभाई! वह बोले, ऐसा बोले। भाई! कौन किसे छोड़े, कौन किसे ग्रहे? आत्मा स्वतन्त्र पदार्थ है। आहाहा! वह परवस्तु को ग्रहे कैसे और छोड़े कैसे? यहाँ तो राग को भी ग्रहा नहीं तो राग को छोड़ना, वह वस्तु में नहीं है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

यह दुनिया के भय को छोड़कर **और उस (प्रसिद्ध) सकल लौकिक जल्पजाल को (वचनसमूह को)...** बोलने का लौकिक सब ऐसा छोड़कर—**तजकर, शाश्वतसुखदायक एक निज तत्त्व को प्राप्त होता है।** मुक्ति पाता है, ऐसा कहते हैं। शाश्वत् भगवान आत्मा ऐसा सुखदायक—सुख का देनेवाला—आनन्द का देनेवाला आत्मतत्त्व है, उसमें अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है, ऐसे तत्त्व में उसका ज्ञान करके स्थिर होने से उसकी पूर्ण पर्याय की प्राप्ति होती है। **एक निज तत्त्व को प्राप्त होता है।** पूर्ण

स्वरूप की प्राप्ति एक को पावे, उसका नाम मुक्ति और उसका नाम धर्म का फल। १५६। यह बात तो आ गयी है। अब यह गाथा नयी आयी। कल.... वे सब लोग....

'**णाणाजीवा णाणाकम्मं**' कहते हैं, भाई! तू किसके साथ वाद-विवाद करेगा? ऐसी गहन विषयवस्तु... आहाहा! और जीव की उसकी अवसर की—लायकात—योग्यता अनेक प्रकार की, जीव अनेक प्रकार के, उसे जन्म के देनेवाले कर्म अनेक प्रकार के, उसकी वर्तमान दशा में अनेक प्रकार की भिन्न-भिन्न योग्यता अवसर की। अब तू किसे समझायेगा? भाई! समझ में आया? वादविवाद कर्तव्य नहीं है, ऐसा कहा। वह कर्तव्य है, यह कर्तव्य नहीं, ऐसा कहते हैं। निश्चय परम-आवश्यक है न! अज्ञानी के साथ में कि अरे! स्वसमय के साथ—दोनों की बात की। वादविवाद करना नहीं, क्योंकि इस वस्तु की गम्भीरता इतनी है कि उस गम्भीरता को नहीं पहुँच सकता, उसे यह बात नहीं बैठती। और उस जीव की भी योग्यता का काल न हो, तब तक नहीं बैठती। समझ में आया?

णाणाजीवा णाणाकम्मं णाणाविहं हवे लद्धी।
तम्हा वयण-विवादं सग-पर-समएहिं वज्जिज्जो॥१५६॥

निश्चय परमावश्यक में यह डाला इन्होंने कि पर से वादविवाद करना, वह कहीं आवश्यक है नहीं। आहाहा!

हैं जीव नाना, कर्म नाना, लब्धि नाना विध कही।
अतएव ही निज-पर समय के साथ वर्जित वाद भी॥१५६॥

टीका : यह वचनसम्बन्धी व्यापार की निवृत्ति के हेतु का कथन है... वचन के व्यापार का निवृत्ति का कारण बताते हैं। **(अर्थात् वचनविवाद किसलिए छोड़नेयोग्य है, उसका कारण यहाँ कहा है)।** किसके साथ वाद करना? वह कहे, चलो विचार करते हैं। 'वादविवाद' भाषा न लेकर, अपने विचार करते हैं, (ऐसा कहे)। आहाहा! अर्थात् यह वचन का वाद। ऐसा है, वैसा है—ऐसा करने जायेगा तो वह उसे नहीं बैठेगा, ऐसा कहते हैं मूल तो। वचन को छोड़ दे बात को। स्वसमयवाला हो या अन्यमत हो, सबके साथ वादविवाद छोड़ने योग्य है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

जीव नाना प्रकार के हैं... अनेक प्रकार के, जीव ही अनेक प्रकार के हैं। एक तो **मुक्त हैं और अमुक्त,...** सिद्ध और संसारी। अमुक्त अर्थात् संसारी। **भव्य और अभव्य, संसारी—त्रस और स्थावर। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा (पंचेन्द्रिय) संज्ञी तथा (पंचेन्द्रिय) असंज्ञी ऐसे भेदों के कारण त्रस जीव पाँच प्रकार के हैं।** यह संसार जीव ऐसे इतने हैं, ऐसा कहते हैं। **पृथ्वी**—पृथ्वी के जीव हैं, **पानी** के जीव हैं, आहाहा! पत्थर का एक कण राई जितना लो सचेत तो उसमें असंख्य जीव हैं। पानी की एक बूँद लो, उसमें असंख्य जीव हैं। अग्नि, **तेज** अर्थात् अग्नि। कणकी लो (उसमें) असंख्य जीव हैं। **वायु...** एक बार पवन आवे, उसमें असंख्य जीव हैं। **और वनस्पति...** साधारण और असाधारण। ऐसे साधारण के अनन्त अवतार धारण (किये। और) प्रत्येक। ऐसे जीव **यह (पाँच प्रकार के) स्थावर जीव हैं।** ऐसी जीव की योग्यता प्रमाण यह दशा है, ऐसा कहते हैं। तू किसके साथ वादविवाद करेगा?

अब, भव्य जीव है जगत में। **भविष्य काल में स्वभाव-अनन्त चतुष्टयात्मक सहजज्ञानादि गुणोंरूप से भवन के योग्य (जीव) वे भव्य हैं;...** जिसे स्वभाव अनन्त-अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त पुरुषार्थ—ऐसा अनन्त चतुष्टय-स्वरूप—अनन्त चार स्वरूप... सहज ज्ञानादि गुणरूप से... गुण शब्द से पर्याय। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, ऐसा भव्य का वह होने का स्वभाव है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **भवन के योग्य—परिणमन; होना सो।** देखा! स्वाभाविक ज्ञान अनन्त, स्वाभाविक दर्शन अनन्त, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य—पुरुषार्थ, ऐसा पर्याय में परिणमन होना भविष्य में, उसे यहाँ भव्य जीव कहते हैं।

उनसे विपरीत (जीव) वे वास्तव में अभव्य हैं। जिनमें दर्शन, ज्ञान, चारित्र (रूप से) परिणमने की शक्ति नहीं, ऐसे अभव्य जीव भी अनन्त हैं। **द्रव्यकर्म** जड़, **भावकर्म**—पुण्य-पाप के अनेक प्रकार के विकल्प जगत में हैं। जड़कर्म भी अनेक प्रकार का उनके पास निमित्तरूप से पड़ा है कि जो जन्म का कारण है, संयोग का निमित्त है, ऐसा। और **भावकर्म**—विकारी परिणाम अनेक प्रकार के विकल्प की जाति अज्ञानी के पास होती है। **और नोकर्म**—शरीरादि, वाणी आदि अनेक प्रकार के होते हैं।

ऐसे भेदों के कारण... कर्म भी अनेक प्रकार का होता है। किसके साथ वादविवाद करेगा? कहते हैं। आहाहा! गजब....

इसी प्रकार कर्म की **(आठ) मूल प्रकृति और (एक सौ अड़तालीस)...** मूल आठ और उसके अन्तर्भेद १४८—उत्तर प्रकृति भेद १४८। **अथवा** कर्म में भी **तीव्रतर, तीव्र, मन्द और मन्दतर...** तीव्रतर अर्थात् कठोर उदय, तीव्र अर्थात् उससे कुछ मन्द उदय और मन्द उदय और उससे मन्द। ऐसे **उदयभेदों के कारण...** कर्म के उदय के ऐसे प्रकार जगत को है। तीव्र... तीव्रतर अर्थात् कठोर, तीव्र, उससे मन्द, मन्द (अर्थात्) उससे (तीव्र से) मन्द (और) मन्दतर, उससे मन्द। समझ में आया? **कर्म नाना प्रकार का है।** जो संसार का कारण है, ऐसा कहते हैं मूल।

जीवों को सुखादि की प्राप्तिरूप लब्धि... बाहर की सामग्री मिलना, अनुकूलता, प्रतिकूलता इत्यादि—ऐसी लब्धि प्राप्त होना, वह भी अनेक प्रकार से है। प्याला फट जाये अन्दर से (अभिमान चढ़ जाये), दो-पाँच करोड़ रुपये हुए, रूपवान शरीर हो, कण्ठ ठीक हो, स्त्री-पुत्र अच्छे हों, हो गया मैं... मैं... मैं। कहो, पोपटभाई! आहाहा! अनेक प्रकार के सुख-दुःख के संयोग और कल्पना में भी सुख-दुःख की प्राप्ति के परिणाम भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। **काल**लब्धि। कहते हैं कि उसे धर्म और अधर्म पाने का समय होता है। ऐसी काललब्धि भी जीव की भिन्न-भिन्न होती है। समझ में आया? **करण**लब्धि। सम्यग्दर्शन पाने के काल में करणलब्धि होती है न—अधःकरण, अपूर्वकरण (अनिवृत्तिकरण)। **उपदेश**लब्धि—देशनालब्धि। सन्तों और ज्ञानियों से प्राप्त देशनालब्धि भी अनेक प्रकार से जगत को मिली हो। समझ में आया?

उपशमलब्धि—विशुद्धि-शुभभाव—राग की मन्दता का शुभभाव... ...स्वरूप है, वह तो जाननेवाले को, देखनेवाले को आनन्दमय है। वह किसी का करे और किसी से उसमें हो, ऐसा यह जीव नहीं है। आहाहा! त्याग, तपस्या और सेवा की बात आवे तो अध्यात्मी, यह निश्चयनय में होता नहीं, ऐसा कहकर उड़ाते हैं। आहाहा! भगवान! क्या करता है तू? त्याग किसका? यहाँ तो परमार्थ से राग का, मिथ्यात्व का त्याग, वह वस्तु में नहीं। आहाहा! ऐसा जिसने परमार्थ जाना है, उसे तो ज्ञानानन्दस्वरूप प्रभु

आत्मा का अन्तरभान होने पर रागादि-विकल्पादि उत्पन्न नहीं होते, उसने 'त्याग किया', ऐसा निमित्त से कथन कहा जाता है। ऐसा मार्ग जहाँ है, कहते हैं।

परमार्थ के जाननेवालों को स्वसमयों... सिद्धान्तिक अपने पक्ष में आये हुए के साथ वादविवाद का क्या काम है? कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? वचन में विकल्प उठे और वचन में रुकने से राग में आ जाये और उससे कुछ लाभ जीव को हो—ऐसा है? और दूसरे को समझाने के लिये इतनी आकुलता, उतावल नहीं करना कि तू तेरे स्वरूप को खो बैठे। क्योंकि सब एक विचार के हों, यह सम्भव नहीं है। आहाहा! समझ में आया? क्यों बराबर है? सब एक विचार के हों, ऐसा कैसे बने? जगत में अनेक प्राणी भिन्न-भिन्न हैं, ऐसा कहा न? द्रव्य की योग्यता भिन्न, अवसर की योग्यता भिन्न-भिन्न है। आहाहा!

इसलिए परमार्थ ऐसा भगवान आत्मा आनन्द का धाम ज्ञानस्वरूप ही वह तू है। उसे **जाननेवालों को स्वसमयों तथा परसमयों...** अन्यमती के **साथ वाद करने योग्य नहीं है।** उन जीवों को आवश्यक कार्य नहीं, ऐसा कहते हैं कि वादविवाद करके उन्हें जीत लूँ। समझ में आया? भले जैनशासन की प्रभावना के लिये (हो, परन्तु) वह कुछ कर्तव्य नहीं है। ऐई! आहाहा! स्वसमय और परसमय अर्थात् स्वसिद्धान्त के यथार्थ माननेवाले और विपरीत माननेवाले—दोनों के साथ यह वचन का कहना छोड़ दे, इसका अर्थ कि उस ओर के विकल्प को छोड़ दे। आहाहा! समझ में आया? यह तो समझकर समाने की बाते हैं। समझ में आया? बाहर के दूसरे को समझायें, बड़ी सभा भरे, लोग ऐसे प्रसन्न हों वाह... वाह... उपदेश। बापू! उसमें तेरा कुछ भला नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

श्रीमद् कहते हैं न, समझे वे समा गये। समझे तो समाकर रहे, ऐसे दो शब्द हैं। दोनों एक हैं। समझ में आया? किसके साथ कहना? ऐसा कहा मोक्षमार्गप्रकाशक में कि कोई धर्म के लोभी जीव आवे और राग का विकल्प हुआ, वे समझाते हैं, भाई! मोक्षमार्गप्रकाशक में है। समझ में आया? यहाँ मुनि की मुख्यता से बात है न! और एक ओर कहे, एक जीव को भी धर्म प्राप्त कराये तो तीर्थंकरगोत्र बाँधे। श्रीमद् में आता है।

परन्तु बाँधे न? लोग प्रसन्न हो जाये। आहाहा... गजब बात कही, हों! परन्तु वहाँ कहा क्या? सम्यग्दृष्टि को ही ऐसा विकल्प होता है कि जिसमें तीर्थंकरगोत्र बँधता है, अज्ञानी को होता नहीं। परन्तु तो भी कहते हैं कि विकल्प से बन्ध पड़ा न! आत्मा को लाभ क्या हुआ उसमें? समझ में आया?

उसे कर्तृत्वबुद्धि नहीं होती। समकिती को कर्तृत्वबुद्धि होती ही नहीं और तत्त्वबुद्धि होती है, उसे ऐसा विकल्प होता नहीं। सूक्ष्म बात है। परन्तु ऐसा विकल्प आया, उसमें दूसरे जीव... फिर तीर्थंकररूप से परिणमुं और बहुत जीवों को धर्म का लाभ होगा, परन्तु उसमें तुझे क्या? ऐसा कहते हैं। उसे तो उसकी योग्यता प्रमाण तब उस काल में होगा, तेरी वाणी से होगा—ऐसा है नहीं। आहाहा! गजब बात है। समझ में आया? अर्थात् वाणी और विकल्प दोनों छोड़ने योग्य है, ऐसा कहते हैं। जिसे आत्मा का साधना है, उसे ऐसे में रुकना नहीं, ऐसा कहते हैं। जीव की अनेक जाति—भव्य-अभव्य, उसकी लब्धि की योग्यता के अनेक प्रकार जिनमार्ग में वर्णन किये हैं, उसमें तू किसे किस प्रकार से समझाकर ठिकाने लगायेगा? कहो, पण्डितजी! आहाहा! ऐसा अवसर होगा, तब वह समझेगा, उसमें तू बलजोरी करने जायेगा तो तेरा वचन और विकल्प दोनों आयेंगे तुझे। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ : जगत में जीव... अनेक प्रकार के, ऐसा लो। **उनके कर्म...** अनेक प्रकार के, **उनकी लब्धियाँ**—पर्याय की योग्यतायें **इत्यादि अनेक प्रकार के हैं...** आहाहा! समाधिशतक में दूसरा कहा, मैं किसके साथ बात करूँ? ऐसा कहकर मौनपने की बात आती है। किसके साथ बात करूँ? जो आत्मा है, वह दिखता नहीं और शरीर है, वह दिखता है। जड़ को मुझे क्या समझाना? वचन को छोड़ने की कला बतलानी हो, तब ऐसा बतावे न! वहाँ ऐसा कहा समाधिशतक में। मैं किसके साथ बात करूँ? वह जो अन्दर है, वह तो दिखता नहीं, वह भी मुझे देखता नहीं, मेरा आत्मा क्या है, वह देखता नहीं। किसके साथ बात करूँ? ऐसा करके वचन से निवृत्त होने की यह पद्धति है। समझ में आया? यह भी वचन से निवृत्त होने की पद्धति है। आहाहा!

इसलिए सर्व जीव समान विचारों के हों, ऐसा होना असम्भव है। आहाहा!

सभी जीव एक विचार के और एक दृष्टि में आ जायें, ऐसा होना असम्भवित है। तीर्थंकर परमात्मा त्रिलोकनाथ भगवान के समय में भी अनेक पाखण्ड थे। इसलिए सबको एक समान विचार कराने के लिये उतावल नहीं करना। समझ में आया? आहाहा! कुछ तर्क आवे। व्यवहार क्या झूठा है? व्यवहार है ही नहीं? है ही नहीं, (ऐसा) किसने कहा? व्यवहार आश्रय करनेयोग्य नहीं और व्यवहार, वह धर्म नहीं। अरे यह! समझ में आया? वहाँ भी विवाद उठे जगत को।

मुमुक्षु : यह सहारा देनेवाले अधिक (हों न)?

पूज्य गुरुदेवश्री : मिले, ऐसी जाति की योग्यता हो तो। क्या हो? प्रवचनसार में आता है कि श्रावक को शुभभाव, वही परम्परा मोक्ष का कारण है। उससे ही उसकी मुक्ति होती है, ऐसा वहाँ लिखा है। उससे ही होती है। क्योंकि अशुभभाव बहुत हैं, उसकी अपेक्षा से शुभभाव में अशुभराग घटता है, इस अपेक्षा से वहाँ कथन किया है। वहाँ तो यह लिखा, श्रावक को तो शुभभाव से ही मुक्ति होती है, ऐसा। उसका अर्थ यह।

श्रावक चौथे, पाँचवें गुणस्थान में है, उसे अशुभराग बहुत अमुक समय हो। स्त्री-परिवार-व्यापार-धन्धे में जब बातें करने बैठा हो, तब तो अशुभभाव है। वहाँ तो उत्साहित होकर बैठे और अवसर आवे शुभभाव का, तो कहे, यह नहीं... यह नहीं, यह हेय है। तुझे अभी दृष्टि की खबर भी नहीं। स्त्री के साथ बात करने बैठा हो बराबर रास्ते में या घर में, उत्साह से उठता हो सर्वत्र, ऐसा बराबर है... समझ में आया? और धर्म की बात आवे तब (कहे कि) यह तो सुनने में शुभभाव है और भक्ति आदि भगवान की करना, वह भी शुभभाव है। बहुत अच्छी बात है। क्या कहना है तुझे अब? समझ में आया? कहो, उत्साह का अशुभभाव आवे और शुभभाव के समय तुझे ऐसा हो कि यह शुभभाव तो भट्टी है। यह अशुभभाव भट्टी नहीं? वह तो तीव्र भट्टी है। जादवजीभाई! आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें?

खाने बैठा हो तब भी बराबर कैसी रोटी आयी, कैसे है, ऐसे है, फलाना है, ऐसा बराबर ध्यान रखे। जहाँ आत्मा का सुनने का काल हो, भक्ति का काल हो (तो कहे),

यह शुभभाव नहीं, हेय है। बहुत अच्छी बात है। उसे कुछ खबर ही नहीं कि हम क्या करते हैं और कहाँ हैं? समझ में आया? दस-दस, आठ-आठ घण्टे दुकान के धन्धे में—व्यापार में, अन्यत्र, स्त्री के साथ बैठा हो, पुत्र के साथ बैठा हो तो लहर करता हो अशुभभाव में। वहाँ उसका उत्साह। ऐ चेतनजी! क्या कहा? ज्ञानी को अशुभभाव निर्जरा के लिये है। अरे भगवान! आहाहा! तो फिर शुभभाव आवे, तब वह निर्जरा के लिये आता है। ऐसा कहे तो बाधा क्या है उसे? तत्त्व को समझना भारी सूक्ष्म, भाई! समझ में आया?

कहते हैं कि सबके विचार एकसरीखे हों, यह बनना असम्भवित है। **इसलिए पर जीवों को समझा देने की आकुलता करना योग्य नहीं है।** आकुलता विशेष करके। **स्वात्मावलम्बनरूप निज हित में प्रमाद न हो,...** लो। आहाहा! एक व्यक्ति ने ऐसा कहा था बहुत वर्ष पहले। दूसरे को समझावे, वह बड़ा या स्वयं समझकर एक ओर पड़े रहें वे बड़े? ...ऐसा प्रश्न किया था। दूसरे को समझावे, सभा भरे, पाँच-पाँच हजार, दो-दो हजार, तीन-तीन हजार को समझावे। तुम एक ओर रहो यहाँ। अन्दर में उतरना अन्दर में—आत्मा के ज्ञान में, आनन्द को वेदना, नहीं बोलना, नहीं समझाना, नहीं किसी को समझाने की शक्ति। ठीक ऐसा खोज निकाला है, ऐसा कहे। वह और कर्म की यहाँ कहाँ बात है? वह बात अलग। तुमने कहीं का कहीं... कहीं बोलने का मेल-(सुमेल) बिना का... कहो, समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो पर को समझाने की आकुलता नहीं करना, इस अपेक्षा से बात ली है। वचन की निवृत्ति का हेतु कहते हैं न! आहाहा!

स्वात्मावलम्बनरूप... भगवान आत्मा का अवलम्बनरूप **निज हित में प्रमाद...** कर्तव्य नहीं। समझ में आया? दुनिया समझे-न समझे, माने-न माने, उसके साथ तुझे कुछ सम्बन्ध नहीं है। और दुनिया माने इसलिए तुझे लाभ हो जाये और दुनिया न माने इसलिए यहाँ नुकसान हो जाये, ऐसा होगा? आहाहा! और दुनिया जाने कि यह धर्मी है तो तुझे लाभ हो, ऐसा होगा? तुझे धर्मी न जाने तो तुझे नुकसान हो, ऐसा होगा? भाई ने लिखा है न एक निहालभाई ने। कोई बाग का फूल सूँघे तो उसकी कीमत और न सूँघे तो कीमत नहीं—ऐसा है कहीं? समझ में आया? बाग में फूल हो, सूँघने आये तो

उसकी कीमत। नहीं आये तो कीमत नहीं, ऐसा? फूल तो अपनी कीमत से ही पड़ा है। समझ में आया? यह तो लौकिक दृष्टान्त। आहाहा!

इसी प्रकार बाहर में दुनिया कहे कि यह तो भारी धर्मी भाई! तो उसका धर्म रहे, ऐसा होगा? और दुनिया ऐसा कहे कि इस व्यक्ति को तो कुछ भान नहीं होता, किसी का करना नहीं और यह धर्मी... धर्मी... धर्मी। अध्यात्मी का नाम धराना और किसी का करना (नहीं)। अपना व्यवहार का काम आवे, तब लपेट जाये। आया है न। और धर्म में व्यवहार का काम आवे तो, यह नहीं, हमारा नहीं। अरे भाई! दोनों तेरी भूल है। व्यवहार के काम में ज्ञानी लपेटता नहीं। आहाहा! भारी कठिन काम।

स्वात्मावलम्बनरूप... भगवान पूर्ण स्वरूप आत्मा के अवलम्बनरूप निज कार्य। यह एक कार्य आत्मा का है। समझ में आया? उस **निज हित में**—निज कार्य में **प्रमाद न हो, इस प्रकार रहना ही कर्तव्य है।** तुम हमारे साथ वाद-विचार और चर्चा नहीं करो तो तुम्हारी क्या कीमत होगी जगत में? तुमको किस प्रकार से हमारे गिनना? नहीं गिनना, भाई ने कहा था। हम कहाँ तुझे कहते हैं? यह प्रश्न हुआ था... आहाहा! कहे, हमारे साथ बात-चर्चा न करो, भाषा न करे और इस साधारण व्यक्ति को तुम समझाने जाते हो और हमारे साथ बातचीत—विचार नहीं करो, फिर उसमें क्या मानेंगे लोग? दुनिया मानो, वह मानो, हमारे क्या है यहाँ? कहा। दुनिया माने नहीं कि कुछ आता नहीं, भान नहीं? हम वादविवाद करते नहीं। स्वतन्त्र हैं। बाधा क्या है? आहाहा!

अरे! किसके साथ वाद और किसके साथ विचार (करे)। ऐसे सीधा निकाला। लो, यह चश्मा उतारा। ज्ञात होता है? चश्मा चढ़ाने से ज्ञात होता है। लो, यह चर्चा। ठीक! चर्चा हो गयी। यह चश्मा चढ़ा है तो जानते हैं। पूछो सबको। क्या पूछना सबको? इसके कारण यह होता है, तब यह चढ़ा। अरे! क्या चढ़े और उतरे? सुन न! उस समय की ज्ञान की उस पर्याय की जाति है, उस प्रकार से कार्य हुआ करता है। चश्मा से ज्ञान आया और उपयोग हुआ, चश्मा नहीं था, वह चश्मे के कारण उपयोग गया—ऐसा नहीं है। आहाहा! कहो, पोपटभाई! प्रत्यक्ष दिखता है। उतारो, चश्मा उतार दो लो। तब चढ़ाया किसलिए? ज्ञान का अन्दर उपयोग बढ़े, ज्ञात हो, इसके लिये चढ़ाया है न चश्मा?

अरे भगवान! कौन चढ़ावे? भाई! उस काल में उसे आना हो, वह आवे और अपना कार्य जो है, वह चश्मा के कारण ज्ञान-उपयोग होता है, ऐसा है नहीं। आहाहा! अरे! क्या हो परन्तु? जहाँ सत् के विवाद उठे सत्य के, उसे क्या कहना? तू तेरा करना भाई! यह तो वह बात है। उसके कारण दलील देने के लिये रुकना वापस। उसमें यह होता है, उसका यह होता है और उसका यह होता है। आहाहा! तथापि उसे बैठना वापस उसकी योग्यता प्रमाण। इसलिए तुझे और कहे, इतना-इतना किया और नहीं बैठा? अब सुन न! शान्तिभाई! क्या होगा यह?

अब इस १५६वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:— २६७ कलश।

विकल्पो जीवानां भवति बहुधा सन्सृतिकरः,
तथा कर्मानेकविधमपि सदा जन्मजनकम्।
असौ लब्धिर्नाना विमलजिनमार्गे हि विदिता,
ततः कर्तव्यं नो स्व-पर-समयैर्वादवचनम्॥२६७॥

श्लोकार्थः जीवों के, संसार के कारणभूत... 'संसार के कारण' है न पाठ में '**संसृतिकरः**—संसार के कारण **ऐसे (त्रस, स्थावर आदि)...** ऊपर कहा सब बहुत वह। पृथ्वी, जल... **बहुत प्रकार के भेद हैं;...** जीवों के संसार के कारणवाले अनेक प्रकार के भेद हैं। पृथ्वी, पानी, वायु, वनस्पति... ओहोहो! देखो न! थोर के ढ़ेर के ढ़ेर हों ऐसे। एक कुल्हाड़ा मारे वहाँ थोक के थोक बड़े नीचे गिरे और वहीं के वहीं निश्चिन्तता से फिर सूख जायें। अरे! यह वह कहीं... यह थोर... थोर। बड़ा ... निकाल दिया। अभी निकाला था। एक बड़ा थोर पड़ा... कुछ अवरोधक होगा। इतने थोक के थोक जीव। एक राई जितनी कणी में अनन्त जीव। आहाहा! क्रम-क्रम से वहाँ से मरकर अन्यत्र जायेंगे। वापस जायेंगे वहीं के वहीं। अनन्त-अनन्त में ही जाये, अन्यत्र कहाँ जाये? कोई निकलकर प्रत्येक में आवे। आहाहा! अनन्त जीव मरकर कहाँ जाये? बाहर में तो प्रत्येक में तो असंख्य हैं। वहीं के वहीं जाये। आहाहा!

ऐसी कोई संसार की स्थिति है। वह संसार के कारण ऐसे और **इसी प्रकार सदा**

जन्म का उत्पन्न करनेवाला... कर्म ऐसा। कोई कहीं जन्में, कोई कहीं जन्मे, कोई ब्राह्मण में, कोई ढोर में, कोई ऐकेनिद्रय में, कोई हरितकाय में। ओहोहो! **इसी प्रकार सदा जन्म का उत्पन्न करनेवाला कर्म भी अनेक प्रकार का है; यह लब्धि भी विमल जिनमार्ग में अनेक प्रकार की प्रसिद्ध है;...** वीतराग सर्वज्ञ के मार्ग में... आहाहा! अनेक प्रकार की योग्यतायें अनन्त गुण की, उसकी पर्याय की एक-एक समय की अनेक प्रकार की योग्यतायें, अनन्त पर्याय की अनेक होती हैं। वह जिनमार्ग में प्रसिद्ध है। **इसलिए स्वसमयों और परसमयों के साथ वचनविवाद कर्तव्य नहीं है।** आहाहा! उनके साथ वाद करनेयोग्य नहीं है।

यह शब्द नहीं प्रयोग किया था इन्होंने कि अपने विचार करते हैं। यह तो फिर समझे वह का वह है। परन्तु वादविवाद के लिये ही है। अरे भगवान! हम कहाँ ऐसा कहते हैं? और कहे, तुम सिंह हो और मैं सिंह का बच्चा हूँ। अब हम कहाँ कहते हैं सिंह? हम तो जो कहते हैं... ऐसा करके ऐसा कहे। समयसार में से भी निकाल दूँ। यह बारहवीं गाथा आवे न, वहाँ विवाद उठावे। '**व्यवहारदेसिदा पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे**' अपरम अर्थात् नीचेवाले को तो व्यवहार का ही उपदेश देना। परन्तु वहाँ यह नहीं, सुन न! कथन का अर्थ नहीं आता। सब एक साथ। स्थानकवासी में यह निकाला। नटु... नटु के साथ... मन्दिरमार्गी ने यह निकाला, दिगम्बर ने यह निकाला। सब बारहवीं गाथा निकाले।

यह तो अभी। वह तो पहले की बात है। बहुत वर्ष पहले की है। (संवत्) १९९४-९५। नटु आया था कपूरभाई का पुत्र। दरियापरी (उपाश्रय में) वढवान। फिर तो अभी मिला था कहीं। आया था। फिर नरम पड़ गया। होता है। अनेक प्रकार हैं। यह बारहवीं गाथा में कहा है। लाओ सिद्धान्त। निचली श्रेणीवाले को तो व्यवहार का ही उपदेश करना। भाई! ऐसा अर्थ नहीं है। ऐसा अर्थ ही नहीं है। तुझे बारहवीं गाथा का अर्थ ही नहीं आता। अब करना क्या उसमें? पाठ ऐसा है। '**अपरमे ट्ठिदा भावे**' लो। उपदेश कर्तव्य है। ठीक!

अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि भाई! धर्मी जीव को द्रव्य जो तत्त्व है, उसका आश्रय है। ध्रुवम् भगवान भूतार्थ के आश्रय से—निश्चय के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता

है। परन्तु पर्याय में अपूर्ण पर्याय, रागादिभाव है, उसे उस काल में जानना, उसे व्यवहार का उपदेश कहा जाता है, ऐसी जानने की बात है। टीका में स्पष्ट बात है। उस काल में जानना। आहाहा! हाँ, यह बात (संवत्) २०१३ के वर्ष में की थी इन्दौर। तब वे भाई थे पण्डित खूबचन्दजी। खूबचन्दजी सोलापुरवाले। खूबचन्दजी के भाइ बंसीधरजी। यह तत्त्वार्थसूत्र बनाया वे। यह सुनकर (कहे), ओहोहो! गजब बात है, भाई! व्यवहार के उपदेश की बात ही नहीं, भाई! वहाँ।

वहाँ तो, आत्मा का जहाँ श्रद्धा-ज्ञान-अनुभव प्रतीति हुई, वह निश्चय हुआ, अब उसकी पर्याय में राग होता है या नहीं और पर्याय अपूर्ण है या नहीं—उसे जानना, इसका नाम व्यवहार कहा जाता है। ऐसा तो यह टीका में कहा है। ऐसी बात कहीं सुनी नहीं, ऐसा बेचारा बोला। शास्त्र के अर्थ करना... तत्त्वार्थसूत्र ठीक किया है दूसरों की अपेक्षा। बोला था, सभा में बोला था कि ऐसी बात हमने अब तक सुनी नहीं। वे आँख निकालने लगे। अपने को सबको मूर्ख ठहराते हैं। 'व्यवहार का उपदेश' की व्याख्या यह है कि धर्मात्मा को जो कुछ पर्याय में राग आवे और पर्याय में अपूर्ण है, उसे जानना, इसका नाम व्यवहार का उपदेश कहा जाता है। व्यवहार का उपदेश देना, यह बात कहाँ है वहाँ? आहाहा! क्या करे? समझ में आया?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : ये खूबचन्दजी। नहीं, वे खूबचन्दजी नहीं, वे बंशीधरजी। बंशीधरजी इन्दौर के। इन्दौर की बात है (संवत्) २०१३ का वर्ष। पन्द्रह वर्ष हुए। बहुत पण्डित बैठे थे, यह बात की तब। ऐसी बात अभी तक बाहर में आयी नहीं। सत्य बात है। हम नरसियाजी में थे न, वहाँ आये। परन्तु गरीब जैसा दिखाव, अपने को पहिचाने नहीं। नीचे बैठकर चरण छुए। कौन हो तुम? हम बंशीधरजी। अरे पण्डित! कोई कुछ बेचारा... आजीविका का साधन... साधन (नहीं मिलता) पण्डित लोगों को। अरे! मैं तो बंशीधरजी। क्या? मैं अभिनन्दन देने को आया हूँ। ओहोहो! व्यवहार की यह व्याख्या! सुनी नहीं। पर्याय को जानना, इसका नाम व्यवहार। उपदेश देना कि ऐसा तुझे व्यवहार करना—यह बात ही कहाँ है? इसकी गन्ध भी नहीं। क्या हो? समझ में आया?

क्योंकि एक अंग राग की पर्याय का रह जाता है ज्ञान में। निश्चय में यह जाना कि वस्तु अभेद अखण्ड है, ऐसा भान हुआ, परन्तु पर्याय है। है या नहीं? और राग है या नहीं? उसे जानना अथवा ज्ञात हो जाना ज्ञान में, उसका नाम व्यवहार है। कहो, समझ में आया? यह व्यवहार करना, यह बात है ही नहीं वहाँ। पर्याय को करना और राग को करना? अरेरे! क्या हो? भाई! किसके साथ करना? वस्तु की मर्यादा बतलानी है, वहाँ तो यह होता है। त्रिकाली भगवान ध्रुव है, उसकी दृष्टि कर, वह सम्यक् है। और फिर पर्याय में जो कुछ अपूर्णता और राग तो है अभी, उसे जानना, इसका नाम व्यवहार है। यह निश्चय और व्यवहार दोनों का ज्ञान हो, वह प्रमाणज्ञान है। ऐई चेतनजी! परन्तु प्रमाण तो सद्भूत व्यवहार का उपचार है, हेय है। राग नहीं आता, वह तो ज्ञान करता है। परन्तु भेदवाला है, इसलिए छोड़नेयोग्य है, ऐसा वहाँ कहते हैं। जानकर छोड़नेयोग्य है या जाने बिना? भारी कठिन काम।

यहाँ तो कहते हैं कि जिनमार्ग में लब्धि भी अनेक प्रकार की प्रसिद्ध है। अपूर्वकरण, अधःकरण, (अनिवृत्तिकरण), यों भी समय-समय की जीव की योग्यतायें... उस-उस समय में वह-वह योग्यता हो, वैसी पर्याय हो, यह सब बात वीतरागमार्ग में प्रसिद्ध है। **इसलिए वचनविवाद कर्तव्य नहीं है।** यह निश्चय आवश्यक है न, उसके सामने यह बात की है। यह कहीं उसका आवश्यक—अवश्य कर्म है वादविवाद का और जीतना, यह है नहीं। अपना भगवान आत्मा जानकर और उसके अनुभव में रहना, उसमें स्थिर होना, यह उसका आवश्यक कर्तव्य है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर शुक्ल ३, रविवार, दिनांक-२१-११-१९७१
गाथा-१५७, श्लोक-२६८, प्रवचन-१८३

नियमसार, निश्चय परम-आवश्यक अधिकार। अन्तिम गाथायें हैं। १५७ (गाथा)। १५६ चली कल।

लद्धूणं णिहि एक्को तस्स फलं अणुहवेइ सुजणत्ते।
तह णाणी णाण-णिहिं भुंजेइ चइत्तु परतत्तिं॥१५७॥

निधि पा... मनुज तत्फल वतन में गुप्त रह ज्यों भोगता।
त्यों छोड़ परजन-संग ज्ञानी ज्ञान निधि को भोगता॥१५७॥

टीका : यहाँ दृष्टान्त द्वारा सहजतत्त्व की आराधना की विधि कही है। दृष्टान्त अर्थात् उपमा देकर। जो साधना है सहजतत्त्व, सहजानन्दस्वरूप भगवान आत्मा, पूर्ण आत्मनिधि अर्थात् ज्ञाननिधि। सहज ज्ञाननिधि ऐसा जो आत्मा का स्वरूप और स्वभाव, उसकी आराधना की—उसकी सेवा की विधि कही है। स्वयं भगवान आत्मा, ज्ञाननिधि अर्थात् यहाँ तो ज्ञानस्वरूप ही आत्मा कहा है। ज्ञाननिधि अर्थात् ही आत्मा। आत्मा अर्थात् ज्ञाननिधि। निधान, ज्ञान का निधान भगवान आत्मा की आराधना। ज्ञाननिधि, वह तो त्रिकाली चीज़ है। उसकी आराधना, वह वर्तमान दशा है। समझ में आया? सहज तत्त्व, वह त्रिकाली वस्तु, ज्ञानस्वरूप चैतन्यस्वरूप की आराधना—उसकी सेवा—उसके सन्मुख में उसकी क्रिया का निश्चय परम-आवश्यक का होना, उसे यहाँ आराधना कहते हैं। दृष्टान्त देते हैं।

कोई एक दरिद्र मनुष्य क्वचित् कदाचित्... 'क्वचित् कदाचित्' है। किसी को किसी काल में दरिद्र को **पुण्योदय से निधि को पाकर,... 'सुकृतोदयेन'** पाठ यह है। **'सुकृतोदयेन'** संस्कृत में है। पूर्व के कोई सुकृतभाव किये हों, उनसे पुण्य बँधा हो, उसके उदय के कारण... लो, यहाँ पुण्योदय से लक्ष्मी मिले, ऐसा कहते हैं। कहो, पोपटभाई! इतने अधिक पैसे इकट्ठे किये, चालीस लाख, पचास लाख, ऐसे हो गये होंगे

मुफ्त में? आहाहा! परन्तु कहलाये न कि पोपटभाई के पास इतने पैसे हैं। छह लड़के और इतने पैसे... यहाँ तो कहते हैं कि कोई दरिद्री जीव किसी को और किसी काल में, वापस ऐसा। पूर्व का कोई पुण्य हो, पुण्योदय—उसके उदय से निधि अर्थात् लक्ष्मी का निधान... है। पाँच-पचास लाख, करोड़-दो करोड़-पाँच करोड.... अरब लो न। अरब है न अभी। अरब को प्राप्त करके, लो न। धूल है। आहाहा!

उस निधि के फल को सौजन्य अर्थात्... अपना **जन्मभूमि...** स्थान में जाकर, ऐसा। जहाँ मिले उसे छोड़ दिया है और एकान्त जन्मभूमि में गये, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो ऐसी लाईन ली है। ऐसा कि हम जहाँ जन्मे, हमें वहाँ जाना। **ऐसा जो गुप्त स्थान...** जिसमें कोई ढ़िंढोरा न पीटना पड़े कि हम इतने पाँच लाख, पचास लाख लाये हैं। गुप्त रहकर, अपने गाँव में रहकर गुप्तस्थान **उसमें रहकर अति गुप्तरूप से भोगता है;...** अति अर्थात् लोग ऐसा न मान जाये कि इसके पास इतने पैसे हैं, इसलिए हम इसे हैरान करें। हैरान करें अर्थात् पैसे लाओ। अति गुप्तरूप से अर्थात् बाहर ढ़िंढोरा न पीटना कि हमारे पास पचास लाख मिले हैं निधान में। नींव खोदते हुए एक करोड़ मिले। कहो, समझ में आया?

हीरा-माणेक का होता है न। क्या कहलाता है? कॉन्ट्रेक्ट साईन। कॉन्ट्रेक्ट। कॉन्ट्रेक्ट लेते हैं, वे अरबों रुपये पैदा हो जाये। उसमें से—खान में से निकले। ...भाई दुर्लभजी झबेरी हैं न। अपने स्थानकवासी मोरबी के, जैतपुर। अफ्रीका में दो पन्ना की खान निकली है। क्या कहलाते हैं कॉन्ट्रेक्ट को हिन्दी में? ठेका... ठेका। उस खान का ठेक, उसमें कितने ही पैसे निकले, अरबोंपति हो गये। अरबोंपति—एक अरब। लोग तो दो अरब कहते थे, परन्तु एक अरब तो होगा। जो हो वह। अंक है न! भाई कहते थे कि दो अरब मिले। परन्तु एक व्यक्ति को पूछा हमने। दो अरब कहते हैं न। यह वेलजीभाई नहीं अपने? ...वाले भोगीभाई, मिलमालिक। उनके रिश्तेदार होते हैं। उनकी लड़की का लड़का... उनकी लड़की की लड़की वहाँ उनके लड़के के साथ में है। विवाह में आये होंगे न। कहा, यह दो अरब कहते हैं। महाराज! इतने अधिक तो नहीं, परन्तु पैसे होंगे सही बहुत। क्योंकि मेरी लड़की की लड़की विवाहने आये। यह भाई छेलशंकर। एक डेढ़ करोड़ के तो गहने लाये थे। डेढ़ करोड़ के गहने मात्र... तो

उसके प्रमाण में (पैसे होंगे न)। परन्तु वह सब धूल है। उसमें कुछ... यह तो दृष्टान्त दिया है। समझ में आया?

मुमुक्षु : धूल नहीं कहा, इसमें निधि कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह निधि अर्थात् दुनिया मानती है न! निधि अर्थात् धूल पैसा। माणेक निकले, वहाँ पन्ना निकले थे। अफ्रीका में खान ली है न पन्ना की।

निधि के फल को जन्मभूमि में गुप्तरूप से भोगे। **ऐसा दृष्टान्तपक्ष है।** यह तो दृष्टान्त है, कुन्दकुन्दाचार्य ने स्वयं दृष्टान्त दिया है। पाठ में है या नहीं? '**लब्ध्वा निधिमेकस्तस्य फलमनुभवति**' अब **दार्ष्टांतपक्ष से...** अर्थात् जो दृष्टान्त से समझाना है, ऐसी जो उपमेय चीज़, यह तो उपमा कही, अब उपमेय (अर्थात्) जो समझाना है वह (कहते हैं)। **भी (ऐसा है कि)—सहजनपरमतत्त्वज्ञानी जीव...** वह जो दरिद्र था, वह (निधि को) प्राप्त हुआ, यहाँ तो सीधे सहजपरमतत्त्वज्ञानी जीव, यहाँ से शुरु किया है। वहाँ तो ऐसा कि दरिद्र था और प्राप्त हुआ। यहाँ, अज्ञानी था और प्राप्त हुआ, ऐसा नहीं लिया। (ऐसी है) शैली पूरी। **सहज परमतत्त्व...** यह बाहर की बात नहीं, यह तो सीधा है। अज्ञानी था और प्राप्त हुआ, (ऐसा) नहीं, ज्ञानी ज्ञानरूप से था और ज्ञान को प्राप्त हुआ, ऐसा। आहाहा!

परमतत्त्वज्ञानी जीव... भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान की खान, ऐसा उसका जाननेवाला, ऐसा कहना है। उसका जाननेवाला... भगवान आत्मा के शुद्ध आनन्दस्वरूप को जाननेवाला। **क्वचित्...** यहाँ तो ऐसा लिया है, वहाँ 'कदाचित्' शब्द नहीं लेना। यह कहेंगे। **क्वचित् आसन्नभव्य के (आसन्न-भव्यतारूप) गुण का उदय होने से...** उसको **कदाचित् पुण्योदय से निधि को पाकर,...** ऐसा था। '**क्वचित् कदाचित्**' ऐसा था। इसे **क्वचित् आसन्नभव्यता...** (अर्थात्) जिसे मोक्ष प्राप्त करने की योग्यता नजदीक हो गयी है। आहाहा! जो परमानन्द की प्राप्ति के किनारे—नजदीक आया है। (आसन्नभव्य अर्थात्) आसन्न अर्थात् नजदीक, भव्यता—योग्यता। **गुण का उदय होने से...** ऐसी भाषा है। जैसे उसको 'पुण्य का उदय होने पर', इसको 'गुण की दशा प्रगट होने पर', ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

गुण का उदय अर्थात् परिणति शुद्ध। उसमें निधान देखा न—देखा न कि ओहोहो! यह चैतन्यमूर्ति भगवान पूर्ण है। **गुण का उदय होने से...** अर्थात् शुद्धगुण की परिणति, निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति, ऐसी जो गुण की प्रगट दशा। कि जो भान हुआ उसे, ओहो! धर्म की दशा में भान हुआ कि यह आत्मा तो त्रिकाल परम आनन्द और पूर्ण शुद्ध ज्ञायक ही है। समझ में आया? यह सम्यग्दर्शन प्राप्त करने पर उसके ज्ञान में ऐसा आता है कि यह तो पूरा आत्मा पूर्ण आनन्द और शुद्ध ही है। समझ में आया?

गुण का उदय होने से... उसको 'सुकृत का उदय होने पर' था, इसे सीधी बात है। '**गुणोदये सति**' है न पाठ में संस्कृत में? 'गुण का उदय' शब्द से गुण तो गुण है, परन्तु उसकी परिणति, वह गुण का उदय है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-शान्ति का जो भाव उदय हुआ, (क्योंकि) आसन्नभव्य जीव की योग्यता थी। देखो! इतना डाला है, हों! आहाहा! यह साधारण प्राणी की अनेक प्रकार की लब्धि की बात आ गयी है न! बहुत योग्यता जगत की अलग-अलग होती है। तू किसे समझायेगा? यह बात ही कोई अगम्य और गम्भीर चीज़ है। वह तो पात्र होगा—योग्यतावाला होगा, वह समझेगा। दूसरे को समझाने की आकुलता नहीं करना एकदम कि यह... आहाहा! ऐसा मार्ग है, क्यों समझते नहीं? समझ में आया?

यह जादवजीभाई का पौत्र है न दिलीप, दिलीप। तेरह वर्ष की उम्र चलती है। अभी तेरहवाँ चलता है। यहाँ तो छह महीना, बारह महीना पहले बैठा था। यहाँ बैठा था समयसार लेकर। ११वीं गाथा चलती थी (जैनदर्शन का) निचोड़। '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' बोला, आहाहा... ऐसा वस्तु का स्वभाव लोग क्यों नहीं समझते? ऐसा निकला। लड़का बहुत संस्कारी है। ऐ जादवजीभाई! जादवजीभाई के पुत्र का पुत्र है। उसके पास सुनने बैठे, सुनने समझने। ऐसा बोले...। समयसार बराबर ठोनी लेकर बैठे। बारह वर्ष की उम्र, हों! बारहवाँ पूरा हुआ और तेरहवाँ चलता है। इस बार वहाँ थे न, इसलिए नहीं आया। यह वृद्ध भी चले गये थे कलकत्ता। हम थे यहाँ जयपुर उस शिक्षणवर्ग में। वरना तो यहाँ आवे... बोला, आहाहा... ऐसी चीज़! माणेकचन्दभाई! लड़का बहुत... शरीर वह है व्यवस्थित।...संस्कार कहीं से लेकर आया है। हमारे वजुभाई तो ऐसा कहे जरा कि यह मुमुक्षु में से मरकर आया होगा? क्या है वह यह? .....

आहाहा! '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' भूतार्थ त्रिकाल भगवान आत्मा शुद्ध सच्चिदानन्द प्रभु का आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है, ऐसी चीज़ है। तब कहे कि आहाहा... ऐसी चीज़ है न! ओहो! इतना कहा वापस बोला कि ऐसी बातें सुनने को मिले, वे भाग्यशाली जीव हैं। समझ में आया? इसमें उम्र का कहाँ है वहाँ? आत्मा की उम्र ही कैसी? वह तो अनादि-अनन्त है। आहाहा! ऐसा आत्मा, कहते हैं कि उसे **गुण का उदय होने से...** अर्थात् विवेक और भान किया पहले। अन्तर में पर्याय में आनन्द और ज्ञानस्वभाव का प्रगटपना होने पर। द्रव्य-गुण तो है। समझ में आया? वस्तु और वस्तु की शक्ति तो निधानरूप से त्रिकाल है, परन्तु उसके गुण का उदय होने पर (अर्थात्) उसकी परिणति—वर्तमानदशा में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की दशा, वीतरागी परिणति, निर्विकल्प आनन्द की दशा प्रगट होने पर। पहले यह अस्ति से बात की। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म।

ऐसा मार्ग वीतराग का सूक्ष्म है। लोग कुछ अजैन को जैनपना मानकर बैठे हैं। आहाहा! यह पूजा और भक्ति, व्रत और तप, यह सब विकल्प का राग है। उस राग को धर्म मानकर बैठे हैं। अजैन को जैनपना माना है इसने। जैनपना अर्थात् यह तो वस्तु का स्वरूप है। वीतरागमूर्ति आत्मा अकषायस्वभाव का रसकन्द, वह तो वस्तु हुई, परन्तु 'गुण का उदय होने पर' ऐसा कहा अर्थात् परिणति—अन्दर दशा—पर्याय प्रगट हुई। समझ में आा? जिस पर्याय में 'यह ज्ञाननिधि है' ऐसा प्राप्त हुआ, ऐसा कहते हैं। शब्द थोड़े बढ़ाकर डाले। अन्त में यह है। ऐसा गुणोदय होने पर **सहजज्ञाननिधि को पाकर...** ऐसा है अन्त में योगफल। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि ऐसे क्वचित् आसन्नभव्यजीव को (अर्थात्) नजदीक में जिसकी भव्यता मोक्ष के मार्ग की और मोक्ष होने की तैयारी है। ऐसे **गुण का उदय होने से...** गुण उदय पाता होगा? गुण तो त्रिकाल है। समझ में आया? भाषा तो यह है। मुनि—सन्त की वाणी यह है। पंच महाव्रतधारी छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलनेवाले हैं ये तो। दिगम्बर सन्त हैं। नग्न दिगम्बर जंगल में वास (करनेवाले)। जंगल में शास्त्र लिखे हुए हैं। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं, अहो! भगवान आत्मा ज्ञान का सागर है। ऐसी यहाँ तो ज्ञान से बात उठायी है। वह ज्ञानस्वरूप ही है, ज्ञान की खान है पूरी। ऐसी निधि

को गुण का उदय होने पर (अर्थात्) पाकर, अन्दर प्रगट पर्याय में 'यह आत्मा है'— ऐसा पाकर, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

ऐसे **सहजवैराग्यसम्पत्ति होने पर,...** वापस इस ओर से राग से रहित होने पर... 'राग से रहित होने पर', यह वैराग्य सम्पदा है। समझ में आया? पहली उसकी पद्धति तो समझे कि मार्ग यह है। समझ में आया? भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु स्वयं परमात्मा है। ऐसे परमात्मा को गुण के उदय से प्राप्त करके, ऐसा कहते हैं। पर्याय में उसे पाकर कि यह आत्मा। पर्याय में अनादि से पुण्य-पाप के राग को पाकर था, वह संसार, मिथ्याभ्रम, अज्ञान था। समझ में आया? उसकी वर्तमानदशा में पुण्य-पाप के विकल्प की वृत्तियाँ पाकर (था), वह तो मिथ्यादृष्टि, अज्ञानी था। उसे निर्मलदशा की प्राप्ति होने पर (अर्थात्) निर्मलदशा में ज्ञाननिधि को पाकर, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मार्ग कोई ऐसा है, परन्तु लोगों को बैठना (जँचना) महाप्रयत्न और पुरुषार्थ हो तो बैठे, ऐसी बात है। अभी तो चारों ओर मार्ग ऐसा बिखर गया है। नोंच डाला है लोगों ने। यद्यपि मार्ग कभी बिखरता नहीं, परन्तु उल्टी दृष्टिवाले ने कुछ का कुछ मनाया। समझ में आया? यह व्रत पालो और अपवास करो, पूजा करो और भक्ति करो और दान करो, यह तुम्हारा कल्याण है। ऐसा अज्ञानियों ने जगत को उल्टे रास्ते लगाया है। समझ में आया? वह मार्ग वीतराग का नहीं। वीतराग का मार्ग तो, वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा को अवलम्ब कर जो सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति—वीतरागी परिणति हो, वह धर्म और धर्म की परिणति में आत्मा को प्राप्त हुआ है। कि यह आत्मा पूर्णानन्द का नाथ है, उसकी परिणति में पाकर... समझ में आया? आहाहा! गजब बातें, भाई!

गुण का उदय होने से... अस्ति तत्त्वज्ञान जिसकी परिणति प्रगट हुई, ऐसा कहते हैं। और इस ओर ढला, जब स्वभाव-सन्मुख, तो उस ओर वैराग्य में चला गया, राग से और विकल्प से हट गया है। ऐसी **सहजवैराग्यसम्पत्ति होने पर,...** पर से, राग से, निमित्त से स्वाभाविक उदासीन होने पर... स्वाभाविक निधि को स्वाभाविक परिणति से प्राप्त हुआ और इस ओर सहज वैराग्य की सम्पत्ति से (युक्त) होने पर... अब यह बात परमगुरु के चरणकमल सेवन करे, उसे मिले—ऐसी है, ऐसा कहते हैं। परमगुरु की

सेवा का अर्थ ? यह भी बात बदलकर कहते हैं। परमगुरु की चरण की सेवा अर्थात् पैर दबाना है ? तब सेवा अर्थात् क्या ?

मुमुक्षु : आज्ञा मानना।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वे कहते हैं ऐसा माने, उसने 'परमगुरु की सेवा की' (ऐसा) कहा जाता है। आहाहा! परन्तु बात में यह है कि ज्ञानी धर्मात्मा उसे प्राप्त होते हैं। समझ में आया ? और उन्होंने कहा, उसे मानता है, तब उसने परमगुरु की सेवा (की कहा जाता है)। यह अपने आयेगा चौथी गाथा में। ...में आयेगा समयसार में। ज्ञानी की सेवा कभी की नहीं, ऐसा भी आयेगा। समझ में आया ? स्वयं तो धर्म प्राप्त हुआ नहीं, परन्तु धर्मी धर्मात्मा ज्ञानी जिसे कहते हैं, ऐसे ज्ञानी की भी इसने कभी सेवा नहीं की। अज्ञानी की सेवा की। आहाहा! समझ में आया ? यह पुण्य में और शुभभाव में दया-दान के राग में धर्म मनानेवाले, ऐसे अज्ञानियों की इसने सेवा की है। समझ में आया ? ऐसा कहते हैं। यह आयेगा वहाँ।

परम गुरु के चरणकमलयुगल की... 'नलिन... नलिन' (अर्थात्) कमल। **'परमगुरुचरणनलिनयुगलनिरतिशयभक्त्या'** संस्कृत है। परम धर्मात्मा, वीतरागमूर्ति, अध्यात्मसागर ऐसे सन्त, उनके चरणकमलयुगल की युगल की—चरणकमलयुगल—पैर की सेवा... **निरतिशय भक्ति...** लो! 'अतिशय भक्ति' ऐसा है न ? **'निरतियशयभक्त्या'** आहाहा! ऐसी भक्ति द्वारा... बाहर की निमित्त की भक्ति तो व्यवहार कहो, परन्तु अन्दर में अपने स्वरूप की भक्ति द्वारा... समझ में आया ? ऐसा कहने से उपदेशदाता धर्मात्मा—ज्ञानी होते हैं, ऐसा सिद्ध करना है। अज्ञानी की देशना निमित्तरूप से हो नहीं सकती।

मुक्तिसुन्दरी के मुख के मकरन्द समान... मुक्तिरूपी स्त्री के मुख का मकरन्द अर्थात् फूल का रस, पराग। ऐसे मकरन्द समान **सहजज्ञाननिधि को...** लो, यह योगफल आया। मुक्तिरूपी सुन्दरी के रस को प्राप्त करानेवाले... समान अथवा उनके जैसा। ऐसी **सहजज्ञाननिधि...** भगवान, वह ज्ञान का पुंज प्रभु आत्मा, अकेला ज्ञान का रस, ज्ञानस्वभाव का पिण्ड, ऐसा जो सहभावी ज्ञान अर्थात् कि आत्मा। समझ में आया ? स्वाभाविक ज्ञान का स्वरूप भगवान आत्मा, वह निधि-निधान। आहाहा! उसे **गुण का उदय होने से...**

और **वैराग्यसम्पत्ति होने पर,...** (अर्थात्) **प्राप्त करके...** ऐसा कहा। समझ में आया? आहाहा

सहजज्ञाननिधि, वह तो त्रिकाली वस्तु हुई। **प्राप्त करके...** (अर्थात्) वह वर्तमानदशा में उसे प्राप्त करके। जो अनादि से राग और पुण्य को प्राप्त किया है, वे मेरे (है—ऐसा माना) है, वह मिथ्यादृष्टि मूढ़ अज्ञानी है। समझ में आया? आहाहा! परन्तु यह तो **सहजज्ञाननिधि को पाकर...** अपना स्वभाव त्रिकाल ज्ञान, आनन्द आदि अनन्त गुण इकट्ठे हैं, परन्तु 'ज्ञान, वही आत्मा', ऐसा कहा—सिद्ध किया। ज्ञान वही आत्मा, त्रिकाल, हों त्रिकाल। अकेला ज्ञानपुंज प्रभु ऐसा जो निधान (कि जिसमें से) अनन्त-अनन्त केवलज्ञान निकालो तो भी कम हो, ऐसा नहीं। ऐसा जो स्वाभाविक ज्ञाननिधान, उसे प्राप्त करके... ओहोहो!

स्वरूपविकल ऐसे पर जनों के समूह को... जो स्वरूप की प्राप्ति रहित हैं, चैतन्य क्या है, सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने जिसे आत्मा कहा, वह क्या है—उसकी खबररहित। आहाहा! स्वरूप में मूढ़ (अर्थात्) विकल, उन **स्वरूप प्राप्ति रहित; अज्ञानी। पर जनों के समूह को ध्यान में विघ्न का कारण समझकर...** भाषा देखो! ऐ! परन्तु परपदार्थ तो विघ्न का कारण होता नहीं। ऐई पण्डितजी! क्या है? टीका तो ऐसी है। **पर जनों के समूह को...** अज्ञानियों का समूह—अज्ञानियों का झुण्ड हो, उसे ध्यान में विघ्न का कारण जानकर अर्थात् स्वयं को उनकी ओर का झुकाव हो जाये, वह अन्दर विघ्न है। उसे छोड़कर, ऐसा। फिर विघ्न का कारण वह जनसमूह कहा। बाकी तो वह पर का संग होने पर जो विकल्प उठे पर की ओर जाने में, वह उसे विघ्न है, अन्दर में स्थिर नहीं होने देता। कहो, समझ में आया?

अरे! ऐसा धर्म कैसा होगा? वे तो लाखों लोग, करोड़ों लोग कर सके, धमाल... धमाल... धमाल लो! पाँच-पाँच लाख, दस-दस लाख, बीस लाख खर्च करे। कैसा लगे उसमें? ऐई! वह तो पैसा है, वह तो जड़ है, उसकी क्रिया तो आत्मा कर नहीं सकता। मन्दिर-बन्दिर का रचना, होना, वह आत्मा कर नहीं सकता। मन्दिर-बन्दिर तो जगत की जड़ चीज़ है, उससे बनता है, परन्तु तुझमें कोई शुभराग का भाव आवे, तो उसे

निमित्त से ऐसा कहा जाता है कि इसने बनाया। बने कौन और बनावे कौन? इसे भाव शुभ हो, वह पुण्य है, वह धर्म नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यह रागरहित भगवान आत्मा सहजानन्द की मूर्ति, ज्ञान का निधान, उसे प्राप्त करके, उसमें स्थिरता के लिये... ध्यान है न? उसमें एकाग्र होने के लिये पर जन के समूह को विकल्प का कारण जानकर... 'विघ्न का कारण जानकर' ऐसा कहा फिर। मूल तो विकल्प का निमित्त है। भाई! पर जन तो विकल्प का निमित्त है, परन्तु वह विकल्प विघ्न है न? विकल्प स्वयं विघ्न है। वह ऐसे (निमित्त) हुआ, इसलिए उसे विघ्न का कारण कहा। वह तो ज्ञेय है। आहाहा! कठिन बात! शैली तो भाई! जैसी हो, वैसी आवे न उपदेश तो। अपने स्वरूप का ध्यान करना अर्थात् कि चिदानन्द ज्ञाननिधि को अपने समझण के ध्यान में उसे ध्येय बनाकर उसमें एकाग्र होना। उसमें यह विकल्पों के निमित्त सब विघ्न करनेवाले हैं, इसलिए उनका लक्ष्य छोड़कर, ऐसा (कहा है)। समझ में आया?

विघ्न का कारण समझकर छोड़ता है। उस परसंग में, किसी भी परसंग में जाने से विकल्प उठे बिना नहीं रहता। रागी है न, रागी प्राणी है न! वीतरागी नहीं। आहाहा! इस कारण से... स्वरूपविकल ऐसे पर जनों के—अज्ञानियों के झुण्ड को... आहाहा! वे सब अज्ञानी हैं, ऐसा कैसे जानना? कहते हैं, लो। सभी धर्मात्मा, सभी ज्ञानी हैं आत्मा। तो यह बात खोटी पड़ती है। भीखाभाई! सब आत्मा भगवान नहीं? कहा न, 'सर्व जीव है ज्ञानमय, जो समझे वे होय।' यह तो और वह... क्या कहा? 'वर्ते समता धार।' सब ज्ञानमय है। यह तो भगवान है। यह तो वस्तु की अपेक्षा से कहा। परन्तु वस्तु का भान नहीं, ऐसे अज्ञानियों को यहाँ गिनकर (कहा)। पर्यायदृष्टि से जो अज्ञानी है... समझे न? द्रव्यदृष्टि से तो वस्तु है, वह है। उसे कहाँ दृष्टि थी अज्ञानी को? समझ में आया?

स्वरूपविकल... ऐसा किसलिए देखना स्वरूपविकल को? वे सब स्वरूपवाले हैं, ऐसा देखे तो? ऐई! परन्तु पर्याय में स्वरूप का भान नहीं, वे स्वरूपविकल हैं। आहाहा! कठिन काम, भाई! वीतरागमार्ग को समझना (कठिन)। त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव जो गणधरों और इन्द्रों के समक्ष में, बड़े जगत के—लोक के स्वामी अर्धलोक के स्वामी

शकेन्द्र और ईशान इन्द्र... सौ इन्द्रों के समक्ष में, गणधरों के समक्ष में भगवान की ध्वनि ऐसी आयी थी। उस ध्वनि को कुन्दकुन्दाचार्य कह रहे हैं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि ओहो! ऐसा **विघ्न का कारण समझकर छोड़ता है।** अर्थात् कि उनके संग में आता नहीं। अपना असंगस्वभाव भगवान आत्मा, उसके ध्यान में रहने के लिये परसंग के समूह में वह आता नहीं। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : सार क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : सार यह कि आत्मा पूर्णानन्द प्रभु है, उसकी श्रद्धा, ज्ञान करके, उसके ध्यान में रहने के लिये प्रयत्न कर। पर के संग का समूह छोड़, यह सार है। तुझे दूसरों के साथ पता नहीं लगेगा। तू कहने जायेगा तो वे और वाद करेंगे, और विवाद करे। नहीं, नहीं। हाँ-ना। तो तुझे विकल्प उठेंगे। लो, यह तो ऐसा... ऐसा माना। छोड़ न अब! समझ में आया? आहाहा! आवश्यकक्रिया में अन्दर में यह करना है, ऐसा कहते हैं। भाई! निश्चय आवश्यक है न! आहाहा! दूसरे को समझाना, क्रिया के लिये रुकना, वह आवश्यकक्रिया नहीं तेरी। समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग है यह।

अब इस १५७वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक कहते हैं:— २६८ कलश।

अस्मिन् लोके लौकिकः कश्चिदेकः,
लब्ध्वा पुण्यात्काञ्चनानां समूहम्।
गूढो भूत्वा वर्तते त्यक्त-सङ्गो,
ज्ञानी तद्वत् ज्ञान-रक्षां करोति॥२६८॥

आहाहा! परजीव की रक्षा करूँ, यह यहाँ नहीं कहा। आहाहा! भगवान! तू ज्ञानस्वरूप चिदानन्द प्रभु है, उसकी रक्षा कर। आहाहा! यह तूने तेरी दया पालन की। पर की दया तो कोई पाल सकता नहीं। क्योंकि उसका आयुष्य हो, तब बचे और आयुष्य न हो तो मर जायेगा। तेरे आधीन है नहीं। विकल्प आता है कि इस जीव को ऐसा करूँ। परन्तु वह विकल्प कहीं पर में काम कर सके, (ऐसा) तीन काल में नहीं हो सकता। इसलिए यह विकल्प, वह तो आत्मा की अरक्षा है, कहते हैं। आहाहा! गजब बात है।

तेरा ज्ञानस्वरूप भगवान, उसकी रक्षा कर। देखो! यह दया स्व की। और यह कर सकता है। पर की दया कर नहीं सकता। आहाहा! माँ, जिसने नौ महीने गर्भ में रखकर जन्म दिया, वह मरती हो और विकल्प ऐसे-ऐसे होता हो। रख सकता है? दूसरे प्राणी को एक ओर रखा। अरेरे! मेरी माँ—जननी जिसके गर्भ में सवा नौ महीने रहा। माता को ऐसा लगता है कि अरर्र! अरे! मैं लड़का होकर कुछ भी कर नहीं सकता। क्या करे? किसकी कौन रक्षा करे? उसकी अवस्था और उसका भाव जो होता है, वह उसके कारण से है। पैर दबावे, उसमें भला क्या? पैर किसके? कि इस जड़ के। दवा लिखावे, परन्तु वह तो आनेवाली हो, वह आती है। उसमें इसे कहाँ दवा देगा आत्मा को? यह ऐसी बात है।

यहाँ तो कहते हैं कि ज्ञान की रक्षा कर सके। पहले यहाँ से शुरु किया। अन्त में यह है न? '**ज्ञानरक्षां करोति**' ज्ञान अर्थात् क्या? चैतन्यस्वरूप ज्ञानस्वभाव। उसमें एकाग्र होकर ज्ञान की रक्षा कर। कहो, समझ में आया इसमें? भारी कठिन काम इसमें। पर की रक्षा कर सकता नहीं, परन्तु पर की रक्षा का विकल्प उठे, वह भी आत्मा की अरक्षा है। राग है न, भाई! वीतराग त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव का पंथ है यह तो। यह कोई ऐरे-गैरे रंक ने इकट्ठा करके खड़ा नहीं किया। यह तो अनन्त-अनन्त दशा जिसे केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द... आहा! अरे! जीव में सर्वज्ञपना—सर्वज्ञदशा हो सके, ऐसी भी जिसे अभी श्रद्धा का ठिकाना नहीं, अरेरे! उसे आत्मा की श्रद्धा नहीं। जिसे आत्मा की श्रद्धा नहीं—आत्मा ऐसा है, ऐसी श्रद्धा नहीं, वह (आत्मा की) हिंसा करता है। समझ में आया? वह अपने जीव की हिंसा करता है।

प्रत्येक आत्मा सर्वज्ञस्वभावी है। ज्ञानस्वरूप कहा न यहाँ? ज्ञानस्वरूप अर्थात् कि पूर्ण ज्ञानस्वरूप है। उसमें फिर अपूर्ण, ऐसा कहाँ आया? सर्वज्ञानस्वभावी आत्मा है। समझ में आया? प्रत्येक का आत्मा सर्वज्ञानस्वभावी है। यहाँ ज्ञान कहा न ऊपर? सहजज्ञाननिधि कहो या पूर्ण ज्ञानस्वभाववाला कहो। समझ में आया? उसकी रक्षा कर, प्रभु कहते हैं। आहाहा! एक तो, पूर्ण स्वरूप सर्वज्ञस्वभावी हूँ—ऐसी प्रतीति होने से जीव की सर्वज्ञशक्ति की रक्षा की कही जाती है। समझ में आया? मैं तो अल्पज्ञ ही हूँ, रागवाला ही हूँ—यह सर्वज्ञशक्ति की इसने अरक्षा की। आहाहा! समझ में आया?

यह तो कुछ मुझे दे देवे, कुछ मुझे दे तो प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। उस अरविन्द में कहे न, ऊपर से स्वर्ग उतारेंगे। ...पागल है न! पागल के कहीं गाँव अलग होते हैं? वहाँ, देव रचते हैं। देव रचते हैं, वह अभी पूरा हुआ नहीं, पूरा होकर आयेगा सड़सड़ाहट ऊपर से। बेचारे को ऐसा कि आहाहा... अपना कर देंगे। रंक-भिखारी मिथ्यात्व के पक्के सेवन करनेवाले हैं। ... उन सबको कर देंगे। पागल का माप क्या होगा? गाय का माप हो तो... आहाहा! हाथ रखे तो आत्मा दिखाई दे। हमारे तो ऐसा है, ऐसा हम मानते हैं। बहुत चला। गजब बात है। दूसरे का हाथ रखे तो वहाँ आत्मा दिखेगा अन्दर। हमारे ऐसा है। ऐई! भाई! हमारे चिमनभाई ने पूछा कि ऐ! दूसरे हाथ रखे तो तूने क्या किया? तेरे किये बिना तेरा आत्मा दिखाई दिया? ऐसा पूछा। बात सच्ची न? किसी ने हाथ रखा और तुझे आत्मा दिखाई दिया, परन्तु तूने क्या किया अन्दर? तेरे किये बिना तुझे दिखाई दिया या किसी के करने से दिखाई दिया? चिमनभाई तब बोले थे। समझ में आया? आहाहा!

भाई! किसी बात का ठिकाना नहीं होता। ऐसे स्वरूपविकल से दूर रहना, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह तो परम सत्य, त्रिकाल सत्य सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने कहा हुआ है। चैतन्यनिधान मेरी सर्वज्ञ की पर्यायें हैं, ऐसी अनन्ती तुझमें पड़ी है। तू तो ज्ञान का निधान है। आहाहा! ऐसी सर्वज्ञदशा आया करे, निकला करे अन्दर से, तो वह ज्ञाननिधि काम हो, ऐसा नहीं है। ऐसा तू है, ऐसा तू है और ऐसा मैं तुझे कहता हूँ। आहाहा! कहो, समझ में आया? सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ऐसा कहते हैं कि भाई! तुझमें ज्ञाननिधि इतनी है कि यह सर्वज्ञपर्याय हमको जो हुई और ऐसी अनन्त हुआ करेगी, ऐसी अनन्त सर्वज्ञदशा तुझमें पड़ी है, क्योंकि तू ज्ञान का निधान है। आहाहा! भाई! उसमें पुण्य-पाप के विकल्प हों, ऐसी खान नहीं है। समझ में आया? दया, दान, व्रत और पूजा के विकल्प की खान आत्मा नहीं है। वह तो अद्धर से, बाहर से विपरीत भाव होकर उत्पन्न होते हैं। आहाहा!

भगवान! तुझमें तो ज्ञान की खान पड़ी है। **ज्ञाननिधि...** कही है न? आहाहा! चैतन्यदल अकेला ज्ञान का रस पूर्ण... पूर्ण... उसकी पहले सन्मुख होकर श्रद्धा कर तो 'है', ऐसी उसकी रक्षा हुई। पश्चात् ध्यान करके अस्थिरता छूटे, तब विशेष स्थिरता की

रक्षा हुई। आहाहा! समझ में आया? अरे! ऐसी बातें, कहते हैं। यह तो वीतरागमार्ग की होगी यह बात? भाई! अपने तो यह हो कार्तिक की यात्रा करना, सम्मेदशिखर की करना, शत्रुंजय की करना, हरितकाय नहीं खाना, कन्दमूल नहीं खाना, फलाना नहीं करना, लो छह परबी ब्रह्मचर्य पालना। ऐसी सब बातें सुनते थे जैन में। यह तो सब जैन से दूसरी बात निकली। आहाहा! पोपटभाई! बातें तो ऐसी सुनते थे अभी तक तो। ऐसा करो, साधु को आहार दो, भगवान की भक्ति करो, मन्दिर बनाओ, लो व्रत ले लो, अपवास करो अपवास। इसमें तो एक भी बात आयी नहीं। आहाहा! भाई! वह सब तो विकल्प की बातें हैं। वह विकल्प तो आत्मा की रक्षा नहीं करता, अरक्षा होती है। गजब बात है। नेमिदासभाई! आहाहा! बड़ा फेरफार हो गया कलकत्ता से वह यहाँ। कलकत्ता में थे न वहाँ। बहुत फेरफार हो गया। आहाहा!

२६८ का **श्लोकार्थः इस लोक में कोई एक लौकिक जन...** लौकिक जगत के **इस पुण्य के कारण...** पाठ में '**कांचनानां**' है न? यह धन... धन। '**कांचना**' अर्थात् धन। कांचन अर्थात् सोना नहीं। सोना है? पाठ में है न, भाई! '**पुण्यात्कांचनानां**' सोना। फिर धन कहा। पुण्य के कारण सोना मिला, लो न पाँच-दस लाख, बीस लाख का। धन मिला, धन में वह सब आ जाये। चाँदी, सोना, हीरा, माणेक कहीं से मिल जाये। कलश-बलश पड़ा हो पाँच करोड़ का, दस करोड़ का। ऐसे जरा करने से ऐसा हो जाये। खोदते हुए निकल जाये। ऐसे करते... ऐसे करते... यह तो बहुत लगता है। ऐसा करते हुए यह कलश जैसा दिखता है। ओय...! ढँक दो अभी। दिन में दिख जाये, अपने रात्रि में ले जायेंगे। आहाहा!

पचास हजार का एक मोरियो निकला था घोड़ा का। बोटाद में जंगल में खोदते हुए (निकला था)। घोड़ा का होता है वह मोरियुं। पचास हजार का पहले का था। सोना का ही था। घोड़ा—अश्व। अश्व का वह चढ़ाते नहीं? क्या कहलाता है? गहने—आभूषण। यहाँ आभूषण, यहाँ सब बीच में... सोने का था। खोदते-खोदते ख्याल आया कि यह पचास हजार का सोना लगता है। आज्ञा दे दो। खोदनेवाले हो न वे कारीगर-बारीगर। आज्ञा दे दी। फिर वह निकला उसमें बाहर हो-हो कर दे तो। रात्रि में ले लूँगा। अभी अब काम नहीं, जाओ कारीगरों। धीरुभाई! मणिलालभाई के सामने। इन्हें खबर

है। मणिलाल गाँधी.. इन्हें खबर है। समझ में आया? वहाँ नहीं बोटाद? फिर मणिभाई ने... कि यहाँ पैसा हो तो बोवो कोने में। वृक्ष बोया। क्योंकि शास्त्र में ऐसा है न कि वृक्ष बोने से उसके वृक्ष का छोर उस ओर जाता है, वहाँ लक्ष्मी होती है। फिर बोया ऐसा, जिसकी ओर से खोदा, पूरा घर खोद डाला। वह तुम्हारा मनमोहन कहता था। आहाहा! तुम्हारा भानेज मनमोहन कहता था कि तुम थे खोदने में। कुछ निकला नहीं धूल भी वह। आहाहा!

अरेरे! पुण्य हो तो हो, ऐसा कहना है। किसी के **पुण्य के कारण धन के समूह को पाकर, संग को छोड़कर गुप्त होकर रहता है;...** फिर संग ऐसा न करे कि यह हमको पाँच करोड़ अभी मिले हैं। हीरा-पन्ना मिले हैं, वे निचिन्तता से बेचूँगा। बाहर से रखो गुप्त। **संग को छोड़कर गुप्त होकर रहता है;...** लो, आहाहा! लक्ष्मी पाकर। **उसी की भाँति...** वहाँ इतना लिया, उसमें **सौजन्य...** पाठ में लिया था। नहीं? '**सुजनत्वेन**' (इसका अर्थ कि) अपने वतन में। अपना वतन, ऐसा कहा। वास्तविक जन्म (स्थान) तो वतन है न? अपना वतन है, इसी प्रकार अपना वतन यह आत्मा है। वह अपने बाहर के जन्म के वतन में वहाँ जाकर। पहली पद्धति ऐसी थी, हों! परदेश में से निकलकर पैसे का... वहाँ रखे।

उसकी भाँति **ज्ञानी (पर के संग को छोड़कर गुप्तरूप से रहकर) ज्ञान की रक्षा करता है।** अर्थात् क्या? ज्ञान की रक्षा करे अर्थात् क्या? आत्मा चिदानन्द आनन्दकन्द प्रभु है, उसका ध्यान करके उसमें एकाग्र होता है। समझ में आया? उसका नाम ज्ञाननिधि। भगवान ज्ञान का अकेला सागर, ज्ञान का पुंज प्रभु, उसके अन्तर एकाग्र होकर ज्ञान को पाकर, पर्याय में 'यह ज्ञानस्वरूप है', ऐसा एकत्वरूप से पाकर, ज्ञान की रक्षा करता है। उसके स्वरूप में जाने के लिये तीव्र प्रयत्न करता है। राग से हटकर, संगति छोड़कर, यह करने का है, कहते हैं। आवश्यक अर्थात् यह करने का है-ऐसा कहते हैं। आवश्यक अधिकार है न? उसे करने का तो यह है। आहाहा! अपनी ध्यान की पर्याय ध्येय में झुकाकर... शुद्ध चिदानन्द ज्ञानपुंज प्रभु वह तो वस्तु—तत्त्व—द्रव्य—शक्तिवान। ऐसे शक्तिवान ऐसा जो ज्ञाननिधि, उसकी रक्षा कर अर्थात् पर्याय में वीतरागपर्याय द्वारा उसका रक्षण कर, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

.... सम्यक् सहित जो पूर्ण है, उसकी अन्तर प्रतीति, उसका ज्ञान और उसकी रक्षा अर्थात् चारित्र, यह उसकी रक्षा है। वस्तु है, उतनी ही मानना, उस द्वारा उसका ज्ञान और उसमें लीनता, वह जीव की ज्ञाननिधि की रक्षा है। मोक्षमार्ग, वह ज्ञाननिधि की रक्षा है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात कैसी परन्तु यह? जहाँ देखो वहाँ दूसरा सुनने का मिले। यह और तीसरा। यह कहीं नया निकाला होगा? ऐई भीखाभाई! कहो, समझ में आया? भगवान आत्मा पूर्ण है, वैसी अन्तर सन्मुख होकर निर्विकल्प प्रतीति करना, तब तो 'जीव इतना है', ऐसी रक्षा हुई श्रद्धा में। उसे हीन और विपरीत मानना, वह तो हिंसा हुई। समझ में आया? आहाहा! आज ललित आया है। लिखता है। होशियार है। कहो, समझ में आया?

ज्ञान की रक्षा करे अर्थात् क्या कहा? क्या कहा?

मुमुक्षु : आत्मा की रक्षा करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, आत्मा अन्दर ज्ञानस्वरूपी है। उस ज्ञानस्वरूप को स्वरूपपने प्रतीति, ज्ञान और रमणता करना, वह ज्ञान की रक्षा, आत्मा की रक्षा कही जाती है। आहाहा! गजब बात, भाई! ऐसा वीतरागमार्ग होगा? समझ में आया? यह स्वरूप हो तो एक दिगम्बर सन्तों में ही यह बात है। समझ में आया? उनके घर में यह है। ऐसी बात अन्यत्र कहीं नहीं है। लोग क्या करे? आगे जाते नहीं, विचार करते नहीं और जहाँ जन्मे हों, वहाँ मान बैठे हों अपनी बात को, (इसलिए) वह बात हाथ आती नहीं। कहते हैं, हाथ आयी हो तो रक्षा करना अब। ऐसा कहते हैं यहाँ। समझ में आया?

एक को हाथ आया जरा गाँव में। लड़के ने उसमें से पत्ता उठा लिया सोना का। माँ ने बाँधा हुआ। गाम-ठाम के नाम नहीं दिये जाते। अनजाने में उसे मिल गया कुछ। गरीब व्यक्ति था। पचास हजार का उसे मिल गया। पहले काठी लोग सोने के पत्ते और मोर... उसका लड़का होगा तो एक पत्ता ले गया सोना का। लिया, फिर लड़के को मारा बाँधकर। मर गया। लो, यह .... । यह मिला, उसकी रक्षा करने में लड़के को मारा। यह बनी हुई बात है। यहाँ गाँव-गाँव में जाते हैं, तब चारों ओर से बहुत सुनने को मिलता हो न! बहुत जगह... आहाहा! फिर तो बेचारे पीछे से तो... फिर क्या करे? लड़के को सोना का... क्यों तूने ले लिया? आज ले लिया, कल दूसरा ले लेगा, कल तीसरा ले

लेगा। उसे लकड़ी से बाँधा था। नहीं करते... ? गाँव के लोग, पुण्यहीन। उसमें मिल गया होगा, फट गया प्याला। ऐसा कैसे यह ले जाये लड़का ? अब लड़के का है, वह तेरा है... सुन न!

उसी प्रकार आत्मा को वास्तविक तत्त्व मिलने पर... समझ में आया ? सम्हालना। कोई नुकसान करनेवाले मिलें (और कहे कि) ऐसा नहीं होता, ऐसा मार्ग नहीं होता। सामने देखना नहीं, उनके सामने देखना नहीं, उसे सुनना नहीं। आहाहा! यह दुनिया... कहेंगे आगे। यह कहते हैं, देखो! हम लोक को सदा तृणवत् अवलोकते हैं। नीचे है। हम दुनिया को जानते हैं। दुनिया जिसे इस चीज़ की खबर नहीं। चाहे तो साधु हो... वे सब हम तृण जैसा मानते हैं। यह चीज़ भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, सहजानन्द की मूर्ति, वह जिसे मिला, वह अब दूसरे को गिनता नहीं और अपनी रक्षा करता है, ऐसा कहते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर शुक्ल ४, सोमवार, दिनांक-२२-११-१९७१
श्लोक-२६९, गाथा-१५८, प्रवचन-१८४

नियमसार सिद्धान्तशास्त्र है, यह निश्चय परम-आवश्यक (अधिकार है)। आत्मा को आवश्यक कार्य क्या है, उसका वर्णन है। २६९ कलश है।

त्यक्त्वा सङ्गं जननमरणातङ्कहेतुं समस्तं,
कृत्वा बुद्ध्या हृदयकमले पूर्णवैराग्यभावम्।
स्थित्वा शक्त्या सहजपरमानन्दनिर्व्यग्ररूपे,
क्षीणे मोहे तृणमिव सदा लोकमालोकयामः ॥२६९॥

कहते हैं कि जिसे आत्मा का कार्य करना है उसे, **श्लोकार्थः जन्म-मरणरूप रोग के हेतुभूत समस्त संग को छोड़कर,...** भगवान आत्मा असंग—राग से भी संगरहित चीज़ है। ऐसे आत्मा में जिसे एकाग्ररूपी कार्य करना है, उसे ऐसे संग को छोड़ देना। जन्म-मरणरूप रोग का हेतु—निमित्त... समझ में आया? यहाँ तो बाहर का संग देव-गुरु-शास्त्र का छोड़ना, ऐसा कहते हैं। क्योंकि परद्रव्य के ऊपर लक्ष्य जायेगा तो उसे राग होगा। समझ में आया? इसलिए स्त्री, कुटुम्ब-परिवार, संसार की सब चीज़ें, उनका संग तो छोड़, परन्तु... यहाँ 'समस्त संग' है न? स्वयं भगवान आत्मा तो असंग चीज़ है। उसका—असंग का संग करना हो, उसे बाह्य संग लक्ष्य में से छोड़ना पड़ेगा। बाकी छूटा हुआ ही पड़ा है बाह्य से। समझ में आया? ऐसी बात है।

निश्चय आवश्यक अधिकार है न! सच्ची क्रिया का कार्य अवश्य करनेयोग्य वह यह निश्चय आवश्यक। अर्थात् आत्मा आनन्द और ज्ञान... कहेंगे सब अभी उसमें से। यह जन्म-मरणरूप रोग का कारण... भाषा देखो! ओहोहो! गजब बात है। पर का संग है वह राग है। राग से संग होता है। राग बन्ध का कारण है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह अन्तिम गाथायें हैं न यह तो निश्चय आवश्यक की। जन्म-मरण के रोग का कारण परसंग। यह आत्मा के अतिरिक्त जितने परपदार्थ हैं, उनके संग का लक्ष्य हो तो

उसे भले शुभभाव हो या अशुभ हो, परन्तु दोनों भाव तो जन्म-मरण का कारण है। समझ में आया? प्रेमचन्दभाई! ऐसी बात है। कठिन काम, भारी।

भगवान आत्मा अन्दर... यह कहेंगे। **हृदयकमल में बुद्धिपूर्वक पूर्ण वैराग्यभाव करके,...** पर के संग को लक्ष्य में से छोड़कर, यहाँ हृदयकमल में भगवान आत्मा विराजता है अन्दर। आहाहा! स्वयं हृदयकमल में अर्थात् अन्तर ज्ञानस्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा यह भगवान आत्मा **बुद्धिपूर्वक पूर्ण वैराग्यभाव करके,...** समझणपूर्वक—विवेकपूर्वक—विचारपूर्वक अर्थात् कि सम्यग्दर्शनपूर्वक, ऐसा। राग और परसंग से छूटकर और अपना भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु को हृदयकमल में पर से भिन्न पड़कर... अपना ज्ञान यथार्थ चैतन्य क्या है, उसके भानपूर्वक... **पूर्ण वैराग्यभाव करके,...** (अर्थात्) परसन्मुख से, राग से भी वैराग्य करके। पूर्ण वैराग्य। अन्तिम बात है न! भगवान आत्मा आनन्द निर्मलानन्द—निर्मल सुख से भरपूर तत्त्व है, आत्मा अर्थात् निर्मल... कहेंगे वहाँ देखो!

सहज परमानन्द द्वारा... एक तो भगवान आत्मा और उसका भेदज्ञान से समझण करके और पूर्ण वैराग्य से... समस्त जगत के पदार्थ और उनकी ओर के झुकाववाला विकल्प—राग, उससे पूर्ण वैराग्यभाव करके (अर्थात्) उससे हटकर—खसकर, पूर्णानन्द नाथ आत्मा के समीप में रहना। आहाहा! कठिन बात, भाई! परन्तु 'वास्तविक बुद्धिपूर्वक', ऐसा कहा है न। वह क्या चीज़ है आत्मा? दोपहर में पढ़े थे वे सात बोल। इस प्रकार से वस्तु ऐसी है, ऐसा बराबर अन्तर की समझणपूर्वक, वैराग्य—पूर्ण वैराग्यभाव करके... पूरी दुनिया से उदास। आत्मा के अतिरिक्त सभी चीज़ों की उपेक्षा और भगवान पूर्णानन्द-स्वरूप की अपेक्षा। गजब मार्ग, भाई! साधारण व्यक्ति को लगे कि यह क्या करते हैं, यह क्या कहते हैं। बापू! तेरे हित का मार्ग तो ऐसा है, भाई! इसने अनन्त काल में तूने किया नहीं, सुना नहीं। आहाहा! ऐसा उसका—धर्म का मार्ग है, उसे देखा, उसे सुना नहीं।

कहते हैं कि परसन्मुख का सब लक्ष्य छोड़कर अन्तर के स्वभाव का समझणपूर्वक ज्ञान और आनन्द को प्रगट करके... 'समझणपूर्वक करके' इतना, आनन्द बाद में कहेंगे। **पूर्ण वैराग्यभाव करके,...** ओहोहो! विकल्प उठे देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का, उससे भी उदास होकर, ऐसा कहते हैं। भाई! तेरा स्वरूप ही वीतरागमूर्ति आत्मा है। समझ में आया? यह वीतरागपर्याय, केवलज्ञानपर्याय प्रगट करना चाहता है, वह सब पर्याय का

समूह आत्मा वीतराग—सर्वज्ञस्वभावी ही है। उसका यथार्थ ज्ञान करके, पूर्ण वैराग्यभावपूर्वक **भाव करके, सहज परमानन्द द्वारा...** आहाहा! कैसा है भगवान आत्मा? कि जब उसकी समझण होकर पूर्ण वैराग्य हुआ तो परम आनन्द द्वारा जो अनाकुल है। स्वाभाविक परमानन्द द्वारा **जो अव्यग्र (अनाकुल) है,...** प्रभु आत्मा स्वाभाविक सहज स्वरूप से परमानन्द का स्वरूप ही उसका है। उसके द्वारा जो अव्यग्र है। परमानन्द द्वारा जो अनाकुल और अव्यग्र ही अनादि से है।

ऐसे निज रूप में... ऐसा जो निजरूप अर्थात् निजस्वरूप। समझ में आया? वह सहज ज्ञान प्रभु सहजानन्द ऐसा परमानन्द का स्वभाव उसका है, उस द्वारा अनाकुल—अव्यग्र ही है। स्वरूप में व्यग्रता, आकुलता या व्यग्रता या अस्थिरता स्वरूप में नहीं है। समझ में आया? तौल-तौलकर शब्द हैं यहाँ। ऐसा जो परमानन्द का अव्यग्रस्वरूप भगवान आत्मा का अपना, नित्यानन्द ध्रुव भगवान ऐसा निजरूप, उसमें शक्ति से—वर्तमान सामर्थ्य—बल—वीर्य—पुरुषार्थ से स्थित रहकर... यह पर्याय हुई। यह निश्चय आवश्यक हुआ। गजब बात! भगवान आनन्दमूर्ति प्रभु का सहज अव्यग्र—अनाकुल-स्वरूप ही अनादि का उसका है। उसमें वर्तमान पुरुषार्थ और वीर्य के बल द्वारा उसमें स्थित होकर... अरे भारी क्रिया कही यह! यह धर्म। समझ में आया?

अपने निजरूप के सामर्थ्य से **उसमें स्थित रहकर,...** यह हित का कार्य आत्मा करे, उसे परम-आवश्यक क्रिया कहा जाता है। साधारण व्यक्ति को तो ऐसा लगे। साधन आत्मा में एकाग्र होना वह। वह साधन। यह तो, भाई! बाहर की चीज़ तो यह सब धूल मिले यह पाँच-पचास लाख, वह तो पूर्व का पुण्य जल जाये, तब मिलती है। उसमें कुछ पुरुषार्थ नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐ पोपटभाई! पूर्व के परमाणु पड़े हों, पूर्व में शुभभाव अनन्त बार किये हुए हैं, वे किये और परमाणु बँधे हों और गोटी बैठ जाये। वहाँ पाँच-पचास लाख, करोड़-दो करोड़ मिलने के वे मिलें। मिलें तो उसके पास आते नहीं, परन्तु नजदीक आते हैं तो मानता है कि मुझे मिले, ऐसा। वह पुण्य जला तब मिले, ऐसा दिखता है।

मुमुक्षु : पुण्य तो जलनेयोग्य ही है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कहाँ ऐसा मानता है? वह कहे, यह पुण्य से मिला। वह

तो पुण्य से मिला, ऐसा भी कहाँ मानता है ? मैं होशियारी—ध्यान रखकर... ऐ वजुभाई ! कैसे होगा यह ? अरबों रुपये मिले... अपने बनिया में अरबों रुपये हैं न अभी ? मानो होशियारी से हमने प्राप्त किये, ऐसा माने। आहाहा ! अरबों, हों ! करोड़ों तो कहीं नीचे रह गये। वह धूल तो पूर्व के परमाणु—बँधे हुए रजकण हों, उनके पाक का काल खिरने का आवे, तब वह चीज़ बाहर से उसके पास—समीप में दिखती है। वह पूर्व का पुण्य जले, तब बाहर से नोट दिखते हैं। उसमें आत्मा का पुरुषार्थ कुछ नहीं।

मुमुक्षु : पाप....

पूज्य गुरुदेवश्री : पाप का पुरुषार्थ, परन्तु यह पुरुषार्थ किया, इसलिए मिले, ऐसा नहीं है। जादवजीभाई ! राग का पुरुषार्थ है कि राग करूँ, ऐसा करूँ तो ऐसा मिले, ऐसा करूँ तो ऐसा मिले। मूढ़ जीव अनादि का इस प्रकार से वहाँ रुक गया है, कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसा माना था अभी तक वहाँ ? धमपछाड़ा (करे)। कहो, समझ में आया ?

कहते हैं कि यह निजरूप में पुरुषार्थ से स्थित रहना, वह उसका पुरुषार्थ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! है ? बनिया मिलावे तो सही, दशहरे में बहियाँ मिलाते हैं या नहीं पाप की ? बापू ! भगवान ! तेरी चीज़ अलग है। तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ परमात्मा परमेश्वर जिन्हें पूर्ण ज्ञान और कैसा आनन्द है, उनकी वाणी में ऐसा आया है, भाई ! समझ में आया ? यह कोई पामर की वाणी नहीं। यह तो प्रभुता की वाणी में से आया है। भगवान ! तेरा रूप तो परमानन्द से अनाकुल—अव्यग्ररूप से रहा हुआ है, कहते हैं। समझ में आया ? उसका यथार्थ ज्ञान करके, पूर्ण वैराग्यभाव करके, उस निजरूप में पुरुषार्थ से अन्दर स्थित होना, वह धार्मिक क्रिया है। आहाहा ! भारी कठिन पड़े लोगों को। समझ में आया ? क्या है नवलभाई ? भाई ने आज पूछा। समझे... पूछा, इसलिये लगा। कहो, समझ में आया ? यह तो शब्द निकले तब खबर पड़े न ! भाई बैठे थे उस ओर। आहाहा !

प्रभु ! यहाँ तो परमात्मा तीन लोक के नाथ, जिनके इन्द्र तलिया चाटे, रज मस्तक पर चढ़ावे, उन भगवान की वाणी में ऐसा आया है, भाई ! तेरे निजरूप में पुरुषार्थ से

स्थित रहना, उसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उसका नाम धार्मिक क्रिया, उसका नाम आवश्यक आचरण है। आहाहा! भारी अभी तो मस्तिष्क में घुसना कठिन पड़े कि क्या कहते हैं! समझ में आया? सत्य का पंथ तो यह है। जगपंथ से... भाई बोलते न! नहीं आता गायन? 'जगपंथ से सत्यपंथ दोह्यलो।' रमेश... रमेश। अभी बोला था, नहीं? कमल। प्रेमचन्दभाई के पुत्र का पुत्र। जगपंथ से सत्पंथ दोह्यला—भिन्न है, भाई! तुम्हारे है न यह गानेवाला। नवनीतभाई! घाटकोपर है न वह? आहाहा! जग के पंथ चलते हैं, उससे सत् के पंथ कोई अलग प्रकार के हैं। समझ में आया?

अरे! उसे सुनने को मिलता नहीं, उसकी पद्धति की कला भी सुनने को मिलती नहीं, वह कब समझकर अन्दर प्रयोग करे? आहाहा! दुर्लभ चीज़ है, अशक्य नहीं। समझ में आया? इसने किया नहीं अनन्त काल में, इसलिए इसे दुर्लभ लगता है। आहाहा! कहते हैं कि भगवान! तेरा रूप तो परमानन्द द्वारा अनाकुल की समझण करके, पूर्ण वैराग्य (अर्थात्) पर से हटकर और अपने पुरुषार्थ से उसमें स्थित रहकर... लो, यह आवश्यक क्रिया। समझ में आया? यह पुरुषार्थ से होता है, ऐसा कहते हैं। इसी प्रकार यह पैसा-बैसा पुरुषार्थ बिना मिलता है, अपने आप मिलता है। पोपटभाई! बहुत देखे हैं न हमने बुद्धि के बारदान हो कोथला। बारदान, समझ में आया? खोली बोरियाँ। पाँच-पाँच लाख पैदा करे महीने में। है क्या वह? उस चीज़ में क्या था? यहाँ पुरुषार्थ है, कहते हैं। वहाँ कुछ पुरुषार्थ काम नहीं करता। समझ में आया?

होशियार होकर घूमे बड़े मानो कि आहाहा... व्यवस्थित काम करते हैं तो यह सब प्राप्त होता है। हमने बाहुबल से यह सब इकट्ठा किया। हमारे पिता के पास नहीं था और यह प्राप्त हुआ। ऐसी सब बातें बहुत करे। ऐ पोपटभाई! यह बातें करे। यहाँ तो सब देखा है, बहुत देखा है। यहाँ शरीर को ८२ वर्ष हुए। ६० वर्ष तो दुकान छोड़कर बैठे हैं। बहुत जाना जगत का। ओहोहो! यह क्रीड़ा कहे, लो न, इस जगत की। पुरुषार्थ से हमने ऐसा प्राप्त किया, हमने बाहुबल से प्राप्त किया। नहीं था और मिला। क्या मिला धूल? सुन न भाई! आत्मा दृष्टि में नहीं था, वह प्राप्त हुआ, उसका नाम 'नहीं था और मिला' कहलाता है? समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा कभी प्राप्त नहीं किया इसने।

कठिन भाई! है न, प्रेमचन्दभाई! आहाहा! गजब टीका करते हैं। एक में कितना समाहित किया है!

निजरूप ऐसा है कि जो अनाकुल और आनन्द का धाम प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द अनन्त-अनन्त परमात्मा अपने स्वरूप में पड़ा है। आहाहा! ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ स्वयं प्रभु है, स्वयं परमात्मा आप है। उसके रूप में पुरुषार्थ से स्थित रहकर... आहाहा! **मोह क्षीण होने पर,...** मोह का नाश हो जाता है। उसकी प्राप्ति होती है और मोह का नाश होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अरे! हम धर्मात्मा, ऐसा कहते हैं मुनि स्वयं।

हम लोक को सदा तृणवत् देखते हैं। बड़े बादशाह बैठे हों चक्रवर्ती और राजा, एक-एक सेकेण्ड के मिनिट के लाखों रुपये की आमदनीवाले। समझ में आया? और शरीर रूपवान, लड़के अच्छे, स्त्री आज्ञाकारी, मकान सब बिना विचारा मिल जाये। किसी ने बनाया हो पचास लाख, करोड़ का और मिल जाये इसे दस लाख में। ऐई! होता है या नहीं? उसको जाना हो, इसे चाहिए हो। उसको जाना हो वहाँ से और इसे चाहिए हो। कोई कहता था। कहीं हुआ था। कैसा तुम्हारे मांडला में? कोई कहता था। किसी को वहाँ से निकलना हो, इसको वहाँ रहना हो। वह निकलनेवाले (से) कोई ले नहीं... दुकान ऐसी की ऐसी दे देवे समझकर। ऐसा हो जाये कि आहा... हम तो कितने रास आया और कितना प्राप्त किया। पोपटभाई!

धूल भी प्राप्त नहीं किया, सुन न! हार गया है आत्मा। जादवजीभाई! बराबर होगा? वहाँ हुण्डियाँ चलती हैं, लो, कलकत्ता में, आहाहा! इनको—पोपटभाई को पत्थर चलते हैं। पत्थर के अतिरिक्त दूसरा कुछ होगा। एक ही है? वहाँ तो देखा तुम्हारा थाणा में। पन्द्रह लाख की मशीन है न थाणा में। वहाँ उतरे थे, व्याख्यान दिया था। अब गाँव में दूसरा। बड़ा फैलाव है न इनका तो। यह फैलाव, कहते हैं कि किसी का है। मुफ्त का (मेरा) मानकर बैठा है, ऐसा कहते हैं। तेरा फैलाव तो, यहाँ आनन्दमय अव्यग्र वस्तु, वह तेरा फैलाव है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

अरे नाथ! तेरा आनन्द तो तेरे पास है न! वहाँ जा न, वहाँ स्थिर हो न! परन्तु पहले समझणपूर्वक करके स्थिर हो। समझे बिना अकेला स्थिर नहीं हो सकेगा वहाँ।

यह चीज़ ऐसी है और चीज़ में दूसरी चीज़ नहीं। 'वैराग्यपूर्ण' कहा न! ऐसे भानपूर्वक अन्दर पुरुषार्थ से स्थिर हो। मोह का नाश होने पर हम जगत को तृणवत् देखते हैं। कोई बड़ा हमारी नजर में दिखता नहीं, ऐसा कहते हैं। धर्मात्मा को अपने आत्मा की महिमा के अतिरिक्त दूसरी बाहर की चीज़ में कहीं महिमा, अधिकाई, विशेषता दिखाई नहीं देती। आहाहा! नवनीतभाई! क्या होगा यह? तुम्हारे काका को बहुत पैसा... २५-३० लाख, चालीस लाख। हो वह सही, लोगों को अंक गिनना है न! अपने आहाहा! कितने फले-फूले हैं। मुरझा गया अन्दर में कि फले-फूले उसकी इसे खबर नहीं होती। यह फले-फूले यह है। आहाहा! अरे! अपने घर की बातें प्रेमपूर्वक कभी इसने सुनी नहीं और जो जगत की चीज़ इसके पास नहीं, इसकी नहीं, उसे प्राप्त करने के लिये प्रेमपूर्वक उल्लसित वीर्य से काम किये। आहाहा!

कहते हैं, भाई! यह अनावश्यक है। ऐसा कहना है न यहाँ। बाहर की क्रियायें हैं, वे अनावश्यक हैं। उसमें हानि और नुकसान है। स्व आत्मा में स्थिर होना, उसमें अकेला आनन्द का लाभ और आत्मा की प्राप्ति है। आहाहा! आत्मा की प्राप्ति के अतिरिक्त तुझे क्या चाहिए है अब? समझ में आया? ऐसा मार्ग है, भाई! मुनि महाराज स्वयं कहते हैं। उत्कृष्ट बात है न यहाँ तो। हम हमारे आनन्द से अनुभव में रहते हुए पूरी दुनिया को तृणवत् देखते हैं। हमारी कीमत के समक्ष किसी बाहर की चीज़ की कीमत है नहीं। समझ में आया? १५७ गाथा हुई।

(अब) १५८। यह निश्चय आवश्यक की अन्तिम गाथा है। अभी दूसरी २९ (गाथायें) बाकी हैं। मूल गाथा १५८।

सव्वे पुराणपुरिसा एवं आवासयं च काऊण।
अपमत्तपहुदिठाणं पडिवज्ज य केवली जादा॥१५८॥

'**अपमत्तपहुदिठाणं**' यह अप्रमत्त से लिया है, हों! यह छठवाँ-बठवाँ नहीं। नीचे हरिगीत।

यों सर्व पौराणिक पुरुष आवश्यकों की विधि धरी।
पाकर अरे अप्रमत्त स्थान हुए नियत प्रभु केवली॥१५८॥

टीका : यह, परमावश्यक अधिकार के उपसंहार का कथन है। आवश्यक कार्य की कथनशैली यहाँ पूरी होती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान...** देखो! यह निश्चय। क्या कहा? निज स्वरूप भगवान आत्मा पूर्णानन्द से भरपूर पदार्थ, अनन्त-अनन्त परिपूर्ण आनन्द से भरपूर तत्त्व प्रभु आत्मा का, उसके आश्रय में... **स्वात्माश्रित...** ऐसी जो स्व-भगवान के आश्रित निश्चय धर्मध्यान, उसके आश्रय से होनेवाला सच्चा धर्मध्यान। कहो, समझ में आया? वीतरागमार्ग परम सत्य है। ऐसा मार्ग अन्यत्र कहीं नहीं है। सब चाहे जैसी मिथ्या बातें करते हों। समझ में आया? ऐसा सर्वज्ञ पंथ, वह तो आत्मा का पंथ है, ऐसा कहते हैं। क्योंकि भगवान आत्मा स्वयं ही सर्वज्ञ और वीतरागस्वरूप से है। उसका आश्रय करके—स्वस्वरूप का आश्रय करके जो निश्चय धर्मध्यान हो, वह बाह्य क्रिया से प्रतिपक्ष है। उससे प्रतिपक्ष है, ऐसा कहते हैं। क्या कहते हैं?

स्व-आत्मा भगवान पूर्णानन्द प्रभु का आश्रय करके जो ध्यान हुआ निश्चय धर्मध्यान, वह व्यवहारिक जो दया, दान, व्रत, पूजा, भक्ति, अपवास—ऐसी जो विकल्प की क्रिया, उनसे यह निश्चय धर्मध्यान प्रतिपक्ष है। समझ में आया? अरे! इसे करनेयोग्य कार्य नहीं, मुफ्त का हैरान होकर, दुनिया में होशियारी बताकर (मानता है कि) हम कुछ चतुर हैं, हम कुछ जगत के पावरधा हैं। जगत के पावरधा (अर्थात्) भटकने के। एक व्यक्ति कहता था कि ऐसा यदि महाराज का सुनें तो संसार में तो अपने काम के गिनाते नहीं। आहाहा! ऐ भीखाभाई! ऐसा हो तो चूड़ियों में बैठना और जाना, उसमें सब उत्साह उड़ जाता है, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया?

यह तो भाई ऐसा कहता था प्रेमचन्दभाई का पुत्र। गुणवन्त... गुणवन्त। गुणवन्त न? कालिदासभाई का दामाद। कहता था, ... ऐसा इसमें कुछ प्रेक्टिस नहीं की जा सकती। उसके लिये तो यह बात चलती है। धन्धे में किया जा सकता है राग और यह और यह और धूल। राग करे, हों! वहाँ कुछ दूसरा तो किया नहीं जा सकता। धन्धे में यह धन्धे की क्रिया कुछ की नहीं जा सकती। राग और विकल्प और संकल्प-विकल्प करे, वहाँ उसे सूझ पड़े। कहो, समझ में आया? यहाँ कहते हैं कि ऐसी सूझ पड़ना भारी कठिन है। कठिन है परन्तु इसका है न, इसका है न, अशक्य तो नहीं न! आहाहा!

उसकी अपनी महत्ता और माहात्म्य, इसे ख्याल में आता नहीं। माहात्म्य सबका यह बाहर का। बहुत-बहुत तो अन्दर में पाप के परिणाम को छोड़कर पुण्य के भाव हों, उनका माहात्म्य। इससे आगे चले तो उसकी वर्तमान अवस्था में कुछ ज्ञान का उघाड़ हुआ उसका माहात्म्य। यह सब माहात्म्य मिथ्यात्व के हैं। समझ में आया?

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का धाम प्रभु है। आहाहा! कहते हैं कि उसका आश्रय लेकर जो धर्मध्यान हो, वह व्यवहारिक क्रियाकाण्ड के विकल्प से प्रतिपक्ष है। इसका अर्थ यह कि निश्चय स्वभाव के ध्यान की क्रिया से विकल्प की क्रिया विपरीत है। यह मोक्ष का कारण है, तो वह बन्ध का कारण है। अरे, यह गजब! समझ में आया? शुरुआत में कह गये थे पहले। प्रतिपक्ष का पहला आया था न, शुरुआत में आया था। पहले जहाँ शुरु किया न! शुरु किया, वहाँ ही आया था। कितने में शुरु किया था? शुरु किया वहाँ है, देखो! पहली गाथा में शुरुआत में। **व्यवहार छह आवश्यकों से प्रतिपक्ष...** पृष्ठ है २८२। शुरुआत, निश्चय परम-आवश्यक का अधिकार। शुरुआत है पहली। १४१ गाथा के ऊपर है। **अब, व्यवहार छह आवश्यकों से...** यह सामायिक करना, ऐसा विकल्प; प्रतिक्रमण करना, ऐसा विकल्प; वदना करना, ऐसा विकल्प... आहाहा! **छह आवश्यकों से प्रतिपक्ष शुद्धनिश्चय का (शुद्ध निश्चय-आवश्यक का) अधिकार कहा जाता है।** पहले शुरुआत से। समझ में आया?

स्वात्माश्रित... पर आत्मा परमात्मा के आश्रित नहीं, ऐसा कहते हैं। परमात्मा का आश्रय करने जायेगा तो विकल्प उठेगा, वह तो अनावश्यक है, कहते हैं। उसे व्यवहार आवश्यक कहना, इसका अर्थ कि वह अनावश्यक है। **स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान...** भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दमय का आश्रय करके अर्थात् उसे ध्येय बनाकर जो ध्यान हुआ, वह निश्चय आवश्यक धर्मध्यान की क्रिया, वह मोक्ष का मार्ग। वह व्यवहार आवश्यक से प्रतिपक्ष है। आहाहा! श्रावक के छह आवश्यक कहे हैं न! देवपूजा, गुरुसेवा, (स्वाध्याय, संयम)—दया, तपस्या और दान के विकल्प (ऐसे) छह आवश्यक कहे, परन्तु वे छह व्यवहार आवश्यक बन्ध के कारण हैं। आहाहा! गजब बातें हैं न यह तो! उनसे प्रतिपक्ष यह स्व-आत्मा का ध्यान। ध्यान, वह वीतरागी पर्याय है और व्यवहार आवश्यक, वह राग है। समझ में आया?

और निश्चयशुक्लध्यानस्वरूप... शुद्धनिश्चय परम-आवश्यक, ऐसा कहेंगे। स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान और स्वात्माश्रित निश्चयशुक्लध्यान अर्थात् दूसरा उजला है, विशेष स्व का आश्रय है। ऐसा जो शुद्ध निश्चय परम-आवश्यक कि **जो बाह्य-आवश्यकादि क्रिया से प्रतिपक्ष...** है। कहो, समझ में आया? व्यवहार सामायिक शुभविकल्प, भगवान की स्तुति चौविसंथो, वन्दना, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान—छह आवश्यक आते हैं न? छह आवश्यक आते हैं, वह व्यवहार है, विकल्प है, राग है। उनसे यह प्रतिपक्ष वीतरागी पर्याय है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? प्रतिपक्ष है। निश्चय से व्यवहार प्रतिपक्ष है और व्यवहार से निश्चय प्रतिपक्ष है।

यहाँ तो निश्चय, व्यवहार से प्रतिपक्ष है—ऐसा कहना है। समझ में आया? परन्तु उसका अर्थ हुआ न कि निश्चय से व्यवहार प्रतिपक्ष है, व्यवहार से निश्चय प्रतिपक्ष है। आहाहा! ऐसा **शुद्धनिश्चय-परमावश्यक...** शुद्धनिश्चय (अर्थात्) जरूर की अन्दर आत्मा के ध्यान की क्रिया। आत्मा परमानन्दस्वरूप नित्यानन्द नाथ है, उसे ध्येय बनाकर, विषय बनाकर, उसे विषय बनाकर जो पर्याय हो, वह शुद्धनिश्चय परम-आवश्यक, अनाकुल आनन्द की दशा है। देखो! अनाकुल आनन्दस्वरूप है, वह स्वयं त्रिकाल, उसमें एकाग्र होने से अनाकुल आनन्द की दशा (हो), वह निश्चय परम-आवश्यक क्रिया है। आहाहा! समझ में आया?

अभी तो इसे लगता है कि यह तो क्या कहते हैं? ऐसा मार्ग होगा? कन्दमूल नहीं खाना, प्रत्येक वनस्पति खाये, उसमें पाप मानना, रात्रिभोजन नहीं करना, सामायिक, चौविसंथो—भगवान की स्तुति—ऐसा आवे तो कुछ समझ में भी आये। अरे! अब यह कहाँ लगायी? व्यवहार के तेरे क्रिया के विकल्प, वे बन्ध के कारण हैं, ले। वह धर्म नहीं। स्व-भगवान आत्मा के आश्रय से जो परिणति प्रगट हो, वह धर्म और अबन्ध परिणाम है। अबन्ध परिणाम कहो या मोक्ष का मार्ग कहो। समझ में आया? वह बन्धपरिणाम है तो यह अबन्धपरिणाम है। वह बन्ध का कारण है, तो यह परिणाम मोक्ष का कारण है। समझ में आया? आहाहा!

कितने ही कहते, यह सब निश्चय की बात है, निश्चय की बात है, परन्तु हमारे साधन क्या करना? ऐसा वापस कहे। ऐ नवरंगभाई! परन्तु यह दूसरा उसका साधन क्या?

यह निश्चय धर्मध्यान कहा, परन्तु अब पहला उसका साधन है या सीधे यह? कहा नहीं? कि उसका साधन आत्मा। आहाहा! क्योंकि आत्मा में अन्दर साधन नाम का गुण पड़ा है। आत्मा में करण नाम का एक गुण पड़ा है। करण कहो या साधन कहो। अनादि-अनन्त वह गुण पड़ा है आत्मा में। कर्ता, कर्म आते हैं न छह बोल? वे छहों शक्तियाँ—गुण आत्मा में है। कर्ता, कार्य, करण—साधन, अपादान (अर्थात्) उससे होना, अधिकरण और सम्प्रदान—ऐसी छह अनादि-अनन्त शक्तियाँ—गुण आत्मा में पड़े हैं। समझ में आया? आहाहा!

अगास में ऐसा होता था। लोगों ने सबने व्याख्यान सुना। ... क्या कहलाता है? ... पटेल है न रावजीभाई? हाँ, रावजीभाई। रात्रि में फिर एक मारवाड़ी आया। यह सब सही, परन्तु इसका साधन क्या? कहे। क्योंकि यह भक्ति करना, पूजा करना, वह साधन हो तो कुछ हो न! कठिन काम भारी, हों! चार बजे उठकर घण्टा बजे तो सभी इकट्ठे हों, गुनगुनाते हुए करे भक्ति,... वाँचन करे, वह साधन।

मुमुक्षु : बड़े साधन वे माने हुए।

पूज्य गुरुदेवश्री : माने हुए। वह साधन नहीं। उसे साधन कहना, वह व्यवहार है, अभूतार्थ है। निज स्वरूप का आश्रय करना। उसमें—आत्मा में साधन नाम की शक्ति पड़ी है, इससे पर्याय में साधन हो वीतरागी पर्याय। उस पर्याय में भी सत्शक्ति का सत् प्रकार का परिणमन है। समझ में आया?

स्व-आत्मा का आश्रय हुआ, वह पर्याय जो प्रगट हुई छह प्रकार की, उसमें यह कर्ता, कर्म, करण—साधन, यह पर्याय में भी साधनपना आया है। समझ में आया? क्या कहा यह? अन्दर में कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण छह शक्तियाँ—गुण है आत्मा में और उसके साथ अनन्त आनन्द की प्रधानता है। ऐसे आत्मा का आश्रय करने से वह साधन अन्दर है, उससे पर्याय में प्रगट होता है और वह स्वयं पर्याय में भी छह प्रकार के—कर्ता, कर्म, करण आदि छह प्रकार की पर्याय एक पर्याय में छह प्रकार पड़े हैं। समझ में आया? वह पर्याय, पर्याय स्वयं का साधन। पर्याय का साधन ऐसे द्रव्य, परन्तु पर्याय पर्याय का साधन। आहाहा! भारी सूक्ष्म। वीतराग का मार्ग ऐसा सूक्ष्म...

सूक्ष्म... सूक्ष्म और वह मार्ग कहीं अन्यत्र नहीं। जैन परमेश्वर के सिवाय सबने उल्टे मार्ग दिये हैं। समझ में आया?

देखो न! (मत) कितने अब? कोई वेदान्त, कोई वह अरविन्द घोष, कोई वह फलाना और ढींकणा, रमणर्षि, रजनीश। कितने उल्टे के रास्ते का पार नहीं होता। मुश्किल से मार्ग हाथ आना, सुनना, वह भी महापुण्य हो तो सुनाई दे। समझ में आया? यह जगत के पैसे के पुण्य की अपेक्षा यह पुण्य अलग प्रकार का होता है। सुनने में, ऊँची बात सुनने में पूर्व का पुण्य चाहिए है और वर्तमान में उसकी योग्यता क्षयोपशम की होती है और उसका शुभ विकल्प। समझ में आया? तथापि, पूर्व के पुण्य के कारण मिला, उसमें जो शुभविकल्प था, उसे वापस धर्म माने, तो पुण्य के कारण मिला, उसका हुआ वापस पाप। अरे, गजब बात है न! समझ में आया? सुनने को मिला, वह पूर्व का पुण्य, परन्तु यहाँ भाव हुआ वह शुभराग, वह पुण्य-वर्तमान पुण्य। वह पूर्व के पुण्य से मिला, संयोग है न, इसलिए संयोग में कर्म ही निमित्त होता है। परन्तु वर्तमान पीछे जो ज्ञान का उघाड़ था, उसमें जो विकल्प था, उसे माने कि यह धर्म है, यह तीव्र पाप है।....गजब!

यहाँ कहते हैं न! प्रतिपक्ष क्रिया कही न यह। समझ में आया? विकल्प है, वह निश्चय आवश्यक से प्रतिपक्ष क्रिया है। समझ में आया? भारी कठिन मार्ग, हों! यह सोनगढ़ में सब व्यवहार का तो नाश कर डाला है। परन्तु भाई! यह भगवान कहते हैं या सोनगढ़ कहता है? आहाहा! भाई! तुझे तेरी चीज़ की कीमत नहीं। तेरी चीज़ की तुझे कीमत नहीं। इसलिए तू दूसरे साधन की कीमत करके प्राप्त करना चाहे, ऐसे नहीं मिलेगा। समझ में आया? आहाहा! तेरी चीज़ तो अनन्त आनन्द के साधन से सम्पन्न पड़ी है। उसकी कीमत बिना तुझे बाह्य के विकल्प की कीमत लग जाती है, यह तुझे इसकी कीमत नहीं है। समझ में आया?

ऐसा **शुद्धनिश्चय-परमावश्यक—साक्षात् अपुनर्भवरूपी...** जिसमें भव नहीं ऐसी मुक्ति। ऐसा आवश्यक जो स्व-आत्मा के आश्रय से हो, वह दशा—वह क्रिया सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की निश्चयसहित की क्रिया, वह साक्षात् भवरहित मुक्ति... ऐसी **(मुक्तिरूपी) स्त्री के अनंग (अशरीरी) सुख का कारण...** है। समझ में आया? अनंग अर्थात् अशरीरी। अंग अर्थात् शरीर और अनंग अर्थात् अशरीर। यह शरीर का

सुख मानते हैं न मूढ़? शरीर कुछ मक्खन जैसा हो, रूपवान हो, अच्छा हो और उसमें रमणता-भोग लेने से सुख मानता है, कहते हैं, मूढ़ है...। आहाहा! समझ में आया? अतीन्द्रिय आनन्द का भोग लेना, वह आत्मा का आनन्द है, वह उसकी परम आवश्यक क्रिया है। समझ में आया?

वचनामृत वीतराग के, परम शान्तरसमूल;
औषध जो भव रोग के, कायर को प्रतिकूल॥

ऐसा मार्ग होगा? यह अभी तक बताते हैं, वे खोटे होंगे? अभी तक सुनते थे हमेशा बड़े-बड़े सिरवाले, आचार्यपदवाले, कोई उपाध्यायपदवाले, कोई गणीपदवाले, कोई महावाले। यह ऐसा (कहा) उससे वे सब खोटे होंगे? भाई! उसे छोड़ दे न! यह बात सच्ची है, ले। यह कह न! दूसरे की किसलिए लगायी है? तुझे न्याय में लगता नहीं कि यह वस्तु सत्य है और दूसरी वस्तु असत्य है? यह तो महा अतीन्द्रिय आनन्द के सुख का कारण है। ऐसी निश्चयधर्मध्यान और शुक्लध्यान जो आत्मा के आश्रय से हुई दशा है, वह अनंग अर्थात् अतीन्द्रिय सुख का कारण है। आहाहा! समझ में आया? यह तो सादी भाषा में आता है। बहुत यह महँगा आता नहीं कुछ। कोई संस्कृत या व्याकरण जाने (तो समझे) ऐसा कुछ नहीं। यह तो इसके घर की बातें सरल-सीधी हैं। समझ में आया? आहाहा!

ऐसे **अनंग सुख का कारण—उसे करके,...** आहाहा! ऐसा अनन्त पुरुष कर गये हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **सर्व पुराण पुरुष...** पुराण (अर्थात्) अनादि के—पुराने अनन्त पुरुष ऐसा कर गये हैं। आहाहा! **कि जिनमें से तीर्थंकर-परमदेव आदि स्वयंबुद्ध हुए...** तीर्थंकर परमात्मा आदि दूसरे जीव भी ऐसे हों कुछ। स्वयंबुद्ध (अर्थात्) अपने आप समझ गये हुए। समझ में आया? पूर्व में (अज्ञानी) थे, परन्तु वर्तमान में तो स्वयं ही स्वयंबुद्ध है। तीर्थंकर को कोई गुरु नहीं होते। स्वयं अपने से समझकर अन्दर स्थिर हो गये हैं। आवश्यक ऐसा हो, ऐसा स्वयं अपने से समझकर उसमें स्थिर हुए हैं। तीर्थंकर परमदेव इत्यादि। और स्वयंबुद्ध हुए... यह इत्यादि स्वयंबुद्ध हुए। स्वयं अर्थात् अपने से समझे, ऐसा। **और कुछ बोधितबुद्ध हुए....** कितने ही जीव ऐसा सुनकर फिर समझे। परन्तु उन सबने ऐसा किया। आहाहा!

वे—अप्रमत्त से लेकर... उत्कृष्ट बात ली है न! निश्चय परम-आवश्यक यह शुद्धोपयोग स्थिर हुआ है न, वहाँ से शुरु किया है। चौथे से निश्चय आवश्यक है, (परन्तु) यहाँ मुनि की बात ली है। पहली तो आ गयी। चौथे, पाँचवें में निश्चय आवश्यक और व्यवहार आवश्यक, दोनों होते हैं। चौथे, पाँचवें, छठवें में। सातवें में यहाँ से शुरु हो गया निश्चय आवश्यक (अकेला)। समझ में आया? व्यवहार को भी लिया है वहाँ बारहवें तक। पहले आ गया है १४९ गाथा में। चौथे गुणस्थान में भी निश्चय आवश्यक, व्यवहार आवश्यक होता है। निश्चय आवश्यक... १४९ गाथा में आया है। अपने आत्मा के आश्रित जितनी एकाग्र किया हुई, वह निश्चय आवश्यक है और देव-गुरु-धर्म की पूजा, विकल्प आदि आवे, वह व्यवहार (आवश्यक है)। यह चौथे से निश्चय-व्यवहार दोनों साथ में शुरु होते हैं। परन्तु यह तो उत्कृष्ट बात ली है न मुनि की! बुद्धिपूर्वक विकल्प छूटकर स्थिर होते हैं, उसकी बात ली है। है सही अभी अबुद्धिपूर्वक राग, वह व्यवहार है। आहाहा! दिगम्बर सन्तों की बात जगत से निराली है।

अप्रमत्त से लेकर सयोगीभट्टारक... अप्रमत्तदशा—सातवीं भूमिका, सातवाँ गुणस्थान। उससे लेकर सयोगी—योगसहित, ऐसे भट्टारक पूज्य (अर्थात्) तेरहवाँ गुणस्थान। **तक के गुणस्थानों की पंक्ति में आरूढ होते हुए,...** अन्दर में ध्यान में आरूढ़ हुए अप्रमत्त से लेकर तेरहवें तक। आहाहा! **गुणस्थानों की पंक्ति में आरूढ होते हुए, परमावश्यकरूप आत्माराधना के प्रसाद से...** वे सब जीव परमावश्यक आत्मा में एकाग्र (थे)। स्व-आत्मा के आश्रय से होनेवाली क्रिया, ऐसा परमावश्यक उसरूप आत्माराधना... **परमावश्यकरूप आत्माराधना...** लो। उसके **प्रसाद से केवली—सकलप्रत्यक्ष-ज्ञानधारी—हुए।** स्वद्रव्य के आश्रय से एकाग्र क्रिया से, अप्रमत्त से लेकर तेरहवें गुणस्थान इस प्रकार स्व का आश्रय किया, तब केवली हुए। कहो, समझ में आया? **प्रसाद से केवली—सकलप्रत्यक्षज्ञानधारी—हुए।** एक समय में सम्पूर्ण तीन काल-तीन लोक को जाननेवाली पर्याय उन्हें प्रगट हुई। समझ में आया? परन्तु यह अप्रमत्त आदि आवश्यक की क्रिया द्वारा केवली हुए। कोई व्यवहार से केवली हुए... समझ में आया? ऐसा नहीं है। यह दो कलश हुए।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर शुक्ल ५, मंगलवार, दिनांक-२३-११-१९७१
श्लोक-२७०-२७१, गाथा-१५९, प्रवचन-१८५

यह नियमसार सिद्धान्त है, इसका निश्चय परम-आवश्यक अधिकार। जीव को सुख के लिये अवश्य करनेयोग्य कर्तव्य क्या है। सुखी होने के लिये कहो या मुक्ति होने के लिये (कहो)। मुक्त में ही सुख है न, अन्यत्र कहीं सुख नहीं। सुखी होने के लिये, स्वतन्त्र आनन्द की पूर्ण प्राप्ति के लिये आवश्यक—जरूरी क्रिया—कर्तव्य क्या है, उसकी बात है। समझ में आया? पहले से कहा है न '**णियमेण य जं कज्जं**' निश्चय से जीव को करनेयोग्य हो तो वह आत्मा के अवलम्बन से (होनेवाला) सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र। आत्मा को निश्चय यथार्थरूप से कर्तव्य—करनेयोग्य कर्तव्य हो तो वह निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र। वह होता है आत्मा के आश्रय से, परन्तु कर्तव्य उसका यह है। समझ में आया? उसका यह श्लोक—कलश है अन्तिम दो। २७० कलश है न। इस आवश्यक का अधिकार पूरा होता है। फिर दूसरी गाथायें हैं, शुद्धोपयोग (अधिकार) की। २७० कलश है।

स्वात्माराधनया पुराण-पुरुषाः सर्वे पुरा योगिनः,
प्रध्वस्ताखिलकर्मराक्षसगणा ये विष्णवो जिष्णवः।
तान्नित्यं प्रणमत्यनन्य-मनसा मुक्ति-स्पृहो निस्पृहः,
स स्यात् सर्वजनार्चिताङ्घ्रिकमलः पापाटवीपावकः ॥२७०॥

श्लोकार्थः पहले जो सर्व पुराण पुरुष... अभी तक पूर्व में अनन्त पुरुष हो गये। **योगी...** अर्थात् कि वास्तविक आत्मा का स्वरूप जानकर जिन्होंने उसमें योग जोड़ा है। ऐसे योगी **निज आत्मा की आराधना से...** क्या किया उन्होंने? अवश्य कार्य (कि) निज आत्मा की आराधना। भगवान आत्मा निजस्वरूप... समझ में आया? अभी तक पुराण पुरुष अनन्त आत्मायें, वे सब निज आत्मा की आराधना से (हुए)। भगवान परमात्मा की आराधना से नहीं, देव-गुरु-शास्त्र की आराधना से भी नहीं। ऐसा है।

भगवान स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम परमात्मा स्वयं ही आत्मा है। आहाहा! ऐसा जो निज आत्मा, जो कारणपरमात्मा है, वह मोक्ष के कार्य को आवश्यक क्रिया का मूलकारण है—ऐसा जो भगवान पूर्ण प्रभु, उसकी आराधना, वह पर्याय। उसकी आराधना से **समस्त कर्मरूपी राक्षसों के समूह का नाश करके विष्णु... 'जिन'** शब्द प्रयोग किया। ऐसे निज आत्मा का आराधन करके आत्मा विष्णु हुआ और जिन हुआ।

विष्णु अर्थात् तीन काल, तीन लोक को जानने का ज्ञान, वह ज्ञान व्यापा पर को जानने का, इस अपेक्षा से विष्णु कहा। वह विष्णु नहीं कि जगत को करे। वह यहाँ बात नहीं। विष्णु और जिन एक ही है, वह यहाँ आया, लो भाई! वह कहा था न एक बार कि विष्णु और जिन एक है, परन्तु स्वार्थी ने अलग किये। यह कहे वह अलग और वह अलग। आहाहा! भगवान आत्मा अपना पूर्ण स्वरूप सर्वज्ञ वीतरागस्वभाव उसका है... वीतराग अर्थात् सर्वज्ञ निर्दोषस्वभाव अथवा सर्वज्ञ अकषायस्वभाव—ऐसा जो आत्मा, उसका आराधन किया। समझ में आया? उसका आराधन करके अर्थात् कि निश्चय मोक्षमार्ग को प्राप्त करके अर्थात् कि स्वरूप की पूर्णता में एकाग्र होने से आवश्यक—जो जरूरी क्रिया मोक्षमार्ग की थी, वह हुई, उससे समस्त कर्मरूपी राक्षसों का नाश (किया)।

कहते हैं न? भगवान तो राक्षसों का नाश करे और भक्तों को तारे। वह रचा है यह। समझ में आया? कर्मरूपी राक्षसों का नाश किया और तीन काल, तीन लोक — लोकालोक का ज्ञान व्यापकरूप से प्रगट किया, इसलिए आत्मा को विष्णु कहा जाता है, ऐसे आत्मा को। समझ में आया? स्वरूप की आराधना से जिसने अज्ञानरूपी राक्षस, कर्मरूपी राक्षसों के समूह का नाश किया। एक राक्षस रहा नहीं और विष्णु हुए अर्थात् लोकालोक को जाननेवाला ज्ञान व्यापक (हुआ)। ज्ञान लोकालोक को जाने, इस अपेक्षा से व्यापक कहा जाता है। क्षेत्र की अपेक्षा से नहीं। समझ में आया? वह ज्ञान लोकालोक—जगत जितना क्षेत्र-काल है, द्रव्य-भाव है, उन सबको जाननेवाला प्रगट हुआ। उसे यहाँ विष्णु (अर्थात्) ज्ञान की अपेक्षा से सर्वव्यापक कहा जाता है। समझ में आया?

और जयवन्त हुए (अर्थात् सर्वव्यापी ज्ञानवाले जिन हुए),... विष्णु हुए और

जिन हुए। समझ में आया? भगवान आत्मा निज परमात्मा का आराधन, उसके सन्मुख की सेवा करके, राक्षस जो कर्म का समूह, उसका नाश किया, इसलिए उसका ज्ञान विष्णु हुआ अर्थात् सर्वव्यापक जानने में हुआ और जिन हुए। यह विष्णु और जिन दोनों एक ही हैं, इस अपेक्षा से। कहो, समझ में आया? ऐसे तो कहा है वहाँ सर्वविशुद्ध अधिकार में कि जगत को करता है, ऐसा विष्णु कोई चीज़ नहीं। यह तो वहाँ कहा, यहाँ वापस उसे स्थापित किया। भगवान आत्मा स्वयं ही आनन्द और ज्ञान का धाम सर्वस्वरूप से प्रभु है। उसका अन्तर्मुख होकर सेवन करके, कर्म का नाश करके और जितना क्षेत्र, काल, द्रव्य, वस्तु और भाव है, उन सबको जानने की अपेक्षा से पर में व्यापक है, ऐसा कहा जाता है। कहो, पण्डितजी! भगवान राक्षसों का नाश करे और भक्तों के कष्टों को टाले, वह यह। समझ में आया? आहाहा!

स्वयं ज्ञान अपेक्षा से व्यापक हुए और '**जिष्णवः**' हुए। '**जिष्णवः**' (अर्थात्) जिन हुए, वीतराग हुए। सर्वज्ञ हुए और वीतराग हुए, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अरे ऐसा! स्वयं सर्वज्ञ वीतरागस्वभाव ही है उसका। भगवान आत्मा का त्रिकाली स्वभाव सच्चिदानन्द प्रभु है, वह सत्—शाश्वत्, चिद् अर्थात् ज्ञान और आनन्द के स्वभाव से भरपूर तत्त्व भगवान आत्मा है। अर्थात् कि सर्वज्ञ और निर्दोष आनन्दस्वरूप अर्थात् वीतरागस्वरूप ही है वह। कौन? स्वयं आत्मा एक-एक आत्मा। 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, कर्म कषे जिन वचनसौ...' आता है न, श्रीमद् में आता है। 'जिन वचनसौ', ये जैनधर्म का मर्म। आहाहा! 'जिन वचनसौ' का अर्थ वीतरागभाव।

अपना स्वरूप पूर्ण है, यह बात इसे बैठती नहीं अनन्त काल से। मैं ही स्वयं परमात्मा होने के योग्य अर्थात् परमात्मा ही हूँ स्वयं। आहाहा! मुझे परमात्मा होने के लिये मेरा परमात्मा जो कारण है। मेरी परमात्मदशा होने के लिये, दशा—हालत, वह मेरा परमात्मा ही उसके कारण में है, दूसरा कोई कारण नहीं। पर-परमात्मा भी उसमें कारण है नहीं। आहाहा! यह बात बैठना (कठिन)। गुजराती भाषा है, नहीं? कहो, समझ में आया? लो, एक बार आया था कि विष्णु और जैन एक है। वह इस प्रकार से। सच्चिदानन्द प्रभु स्वयं ही है अन्दर शक्ति और स्वभाव। अकेला चैतन्यसूर्य, चैतन्य के—ज्ञान के प्रकाशरूपी सूर्य है। इसलिए जब ज्ञान अकेला पूर्ण है तो उसका अर्थ ही

यह हुआ कि उसमें अत्यन्त निर्दोषदशा की शक्तिवाला वह तत्त्व है, अर्थात् वीतराग -स्वभाववाला वह तत्त्व है। समझ में आया? ऐसे भगवान निजस्वरूप को—स्वयं भगवान स्वयं ही आत्मा है, उसका सेवन करके, आहाहा! और आठ कर्मरूपी राक्षसों का जिसने नाश किया, और जो जिन, शक्ति और स्वभावरूप से जिन थे, वे उसकी वर्तमानदशा में ज्ञान की सर्वव्यापकता के साथ जिन हुए। आहाहा! कहो, समझ में आया?

उन्होंने... ऐसे परमात्मा ने, ऐसा कहते हैं अब। पूर्व में पुराण पुरुष इस प्रकार से परमात्मपद को प्राप्त हुए। समझ में आया? अनन्त-अनन्त आत्मायें पुराण अर्थात् आज से पहले अपने निजस्वरूप की पूर्णता को आराधकर पूर्णता को प्राप्त हुए। पहला पर-परमात्मा को नमस्कार करते हैं। पश्चात् स्व-(परमात्मा) को करेंगे। अन्तिम दो कलश है सही न, इस आवश्यक (अधिकार के)। ऐसे जो ज्ञान की परिपूर्णतारूप से और जिनरूप से हुए... जिस ज्ञान की परिपूर्णतारूप से और जिनरूप से था आत्मा, उसका सेवन करके पर्याय—अवस्था में ज्ञान की परिपूर्णता और वीतरागरूप हुए, उन्हें—ऐसे परमात्मा को इस प्रकार से पहिचानकर, ऐसा।

जो मुक्ति की स्पृहावाला... अब दूसरा जीव लिया, उन्हें वन्दन करनेवाला। ऐसा जो अकेली मुक्ति, मुक्त अर्थात् परमानन्द की दशा, उसकी स्पृहावाला... **निःस्पृह** (अर्थात्) उसकी—(मुक्ति की) स्पृहावाला और दूसरी स्पृहारहित, ऐसा कहते हैं। अस्ति-नास्ति किया। समझ में आया? 'मात्र मोक्ष अभिलाष' आता है न यह? 'दूजा नहीं मनरोग।' अकेला परमानन्द पूर्ण स्वरूप... आत्मा की पूर्ण आनन्द की—सुख की दशा, वह मुक्ति। ऐसी मुक्ति की स्पृहावाला... आहाहा! और दूसरी किसी भी स्पृहारहित निःस्पृह। पुण्य की भी स्पृहा नहीं, स्वर्ग की स्पृहा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : गुरु की स्पृहा तो रहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : उनकी स्पृहा तो नहीं। वन्दन करता है उन्हें। यह विकल्प है तो बहुमान आये बिना रहता नहीं, ऐसा यहाँ पहले सिद्ध करना है। कहो, समझ में आया?

कहा न अभी कहा, सर्वज्ञ उन जीवों को ज्ञान में निमित्त है। सर्वज्ञ के कारण से ज्ञान प्राप्त होता है। जैसे सूर्य के कारण से आँखों को प्रकाश मिलता है, प्रकाश ऐसे

दिखता है; उसी प्रकार भगवान सर्वज्ञ परमात्मा के कारण से जीव को ज्ञान मिलता है, ऐसे निमित्त ऐसे हैं, ऐसा जिसने स्वीकार करके अन्दर आत्मा का ज्ञान प्रगट किया, तो मानो भगवान के निमित्त से यह हुआ, ऐसा कहा जाता है, ऐसी बात है। समझ में आया? ऐसे परमात्मा जो विष्णु और जिन हुए आत्मा की दशा में, उन्हें मुक्ति की अभिलाषा—स्पृहावाला और दूसरी कोई भी स्पृहा और अभिलाषरहित, ऐसा **जीव अनन्य मन से नित्य नमन करता है,...** अनन्य मन से (अर्थात्) आत्मा के ज्ञान में एकाग्र होकर नित्य ऐसे परमात्मा को वन्दन करता है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

वह जीव पापरूपी अटवी को जलाने में अग्नि समान है... ऐसा जीव... पाप और पुण्य दोनों, पुण्य और पाप के भाव दोनों पाप हैं और आठों ही कर्म भी अकेला पाप ही है। दु:ख का उत्पन्न करनेवाले हैं न आठों ही कर्म। आहाहा! दु:ख का बीज है आठों कर्म। ऐसा जीव... परमात्मपद ऐसा होता है, ऐसी आराधना से प्राप्त होता है—ऐसा जिसे अन्दर भान है, ऐसे भानवाला जीव, ऐसा कहते हैं। ऐसे परमात्मा को **अनन्य मन से...** एकमेक आत्मा की एकाग्रता द्वारा नित्य प्रणमता है। आहाहा! जिसका नित्य झुकाव ही शुद्ध आत्म आनन्दकन्द में है। समझ में आया? ... मोक्ष का मार्ग अलौकिक है। जगत में दूसरा सब अनन्त बार मिला, धूल मिली, करोड़ों रुपये-अरबों रुपये, इज्जत, कीर्ति, मन्त्र-जन्त्र-तन्त्र ऐसे अनन्त बार किये, परन्तु यह इसने कभी किया नहीं। समझ में आया?

ऐसा जिन पुरुषों ने किया और कैसे किया, वह भी बताया कि निज स्वरूप की आराधना की उन्होंने तो। ऐसा करके जिसने परमात्मपद प्राप्त किया, उसे जो पुरुष इस प्रकार से पहिचानकर नमन करते हैं, अपने शुद्धस्वभाव में, मन को पृथक् रखकर, अनन्यरूप से अर्थात् अभेदरूप से जो अन्दर नमता है, **वह जीव पापरूपी अटवी को जलाने में अग्नि समान है...** वे संसार के पुण्य और पाप के भाव या कर्म उन्हें जलाने को अग्नि समान हैं। **और उसके चरणकमल को सर्व जन पूजते हैं।** पूर्ण परमात्मा को जहाँ यहाँ नमता है, उसे जगत के प्राणी नमते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? निरपेक्ष निरालम्बन का मार्ग पाया, कहते हैं कि वे स्वयं पाये और उन्हें जो जीव नमते हैं, वे जीव जगत से पूज्य होते हैं। **उसके चरणकमल को सर्व जन पूजते हैं।** लो, 'सर्व जन'

है न! '**सर्वजनार्चितांघ्रिकमलः**' 'आंघ्रि' का अर्थ कल पूछा था पण्डितजी को। आंघ्रि अर्थात् चरण। कहो, समझ में आया? एक कलश पूरा हुआ। दूसरा कलश २७१।

मुक्त्वा मोहं कनकरमणीगोचरं हेयरूपं,
नित्यानन्दं निरुपमगुणालङ्कृतं दिव्यबोधम्।
चेतः शीघ्रं प्रविश परमात्मान-मव्यग्ररूपं,
लब्ध्वा धर्मं परम-गुरुतः शर्मणे निर्मलाय॥२७१॥

नीचे इसका अर्थ है। **श्लोकार्थः हेयरूप ऐसा जो कनक और कामिनी सम्बन्धी मोह,...** लक्ष्मी और स्त्री का मोह, **उसे छोड़कर...** जगत और लक्ष्मी के प्रति प्रेम है और कामिनी के प्रति काम है, इससे मोह दुःखदायक है। समझ में आया? हेयरूप-छोड़नेयोग्य, ऐसा जो जहररूप **कनक और कामिनी सम्बन्धी मोह,...** आहाहा! उसे छोड़कर **हे चित्त!** ऐसा कहते हैं न? '**चेतः**' इसमें से निकाला? '**चेतः**' इसलिए **हे चित्त! निर्मल सुख के हेतु... 'शर्मणे निर्मलाय'** अन्तिम पद है न? '**शर्मणे निर्मलाय**' निर्मल सुख के लिये—परमानन्द के सुख के लिये... यह स्त्री और लक्ष्मी का मोह तो दुःखदायक है, कहते हैं। उसे माने कि सुख हमको होता है। धूल भी नहीं। समझ में आया? लक्ष्मी और स्त्री से हमको सुख होता है, सुखी हैं, ऐसा मानता है न? पोपटभाई!

मुमुक्षु : थोड़े प्रतिशत तो होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरे-पूरे प्रतिशत दुःख के। थोड़ा किसलिए ले? दुःख के पूरे प्रतिशत। धूल में भी कहाँ था सुख? स्त्री का शरीर मिट्टी, हड्डियाँ, माँस (और) पैसा, वह अजीव। उसमें सुख कहाँ था? आहाहा!

मुमुक्षु : बहुमति तो.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुमति, पागल की बहुमति क्या हो? उसकी मति—पागल की मति को गिनने में आवे बहुमत में? ऐई! आहाहा!

यहाँ तो समुच्चय लिये हैं न शब्द 'कामिनी' के साथ। पूरे परपदार्थ के प्रति का जो मोह है, उसे छोड़कर। कहीं कोई भी पुण्य-पाप का विकल्प, उसमें प्रेम है, वह मोह है, मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! हे आत्मा! **हे चित्त! निर्मल सुख के हेतु...** परमानन्द

प्रभु निर्दोष आनन्द... निर्दोष आनन्द के हेतु अर्थात् कि पूर्ण सुख और मुक्ति के हेतु। **परम गुरु द्वारा धर्म को प्राप्त करके...**

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह जानने में आवे ही नहीं। कहो, समझ में आया? निमित्त है न! उसमें हो। उसमें देशना उसकी ही होती है—ज्ञानी की ही देशना होती है, अज्ञानी की देशना नहीं होती। ... देशना निमित्तरूप से नहीं होती, ऐसा कहते हैं। उससे होता नहीं, परन्तु वह होता है। ज्ञानी का उपदेश (होता है)... दीपक से दीपक होता है। कहीं कोयले को छुआने से दीपक होता होगा? यह अन्तर्मुख हो उसके लिये ही यह बात है। यह अन्दर में समझे, तब उन परमगुरु ने समझाया, ऐसा कहा जाता है। ऐसी बात यह है।

कहते हैं कि **परम गुरु द्वारा धर्म को प्राप्त करके...** आहाहा! वह निमित्त ऐसा बतावे कि भाई! तेरा आत्मा परम आनन्द और अतीन्द्रिय सुख से भरपूर तत्त्व है, उसका सेवन कर। समझ में आया? उस देव की आराधना कर। यह देवी-देवला को आराधता है न? यहाँ तो कहते हैं कि तीन लोक के नाथ परमात्मा की आराधना नहीं। तू स्वयं तीन लोक का नाथ परमात्मा है, तेरी सेवा कर। ऐसा गुरु ने कहा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! **धर्म को...** अर्थात् आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त करके। अर्थात् उन्होंने ऐसे प्राप्त करने का कहा था कि तेरा भगवान तेरे पास है, वह तेरा गुरु और वह तेरा देव है। उसकी सेवना करने से तुझे मुक्ति मिलेगी, ऐसा गुरु ने कहा था। आहाहा! कठिन काम, भाई! यह क्रियाकाण्ड व्यवहारवाले को तो भारी कठिन लगे। उसमें कहीं व्यवहारक्रिया से हो, ऐसा आता नहीं इसमें। आहाहा!

कहते हैं कि **प्राप्त करके**—यह धर्म की दशा प्राप्त करके। अब यह प्राप्त करके क्या किया? कि **ते अव्यग्ररूप...** पहला शब्द आ गया है 'अव्यग्र'। परमात्मा में कि जो स्वयं परमात्मा नित्य आनन्दवाला है। आहाहा! **तू अव्यग्ररूप (शान्तस्वरूपी) परमात्मा में**—स्वयं परमात्मा शान्त—अकषाय शान्तरस का कन्द है। उसमें कषाय का—राग का कण और अंश नहीं और पूर्ण अकषायस्वभावरूप शान्तरसवाला प्रभु है। आहाहा! ऐसे

परमात्मा में **कि जो (परमात्मा) नित्य आनन्दवाला है,...** शान्तस्वरूपी और फिर आनन्द हो। समझ में आया? भगवान! तू स्वयं नित्य आनन्दवाला है, ऐसा कहते हैं।

निरुपम गुणों से अलंकृत है... जिसके गुणों की उपमा नहीं दी जा सकती, ऐसे निरुपम गुणों से अलंकृत—शोभित है। अपने अनन्त ज्ञानादिक गुणों से वह शोभित है। वह उसका अलंकार है। आहाहा! अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन—ऐसा तेरा भाव—गुण, उससे आत्मा शोभित ही है। समझ में आया? ...परन्तु ऐसा बैठना भारी, भाई! एक बीड़ी में बिक जाये, तम्बाकू में बिक जाये। एक बीड़ी ठीक से मिले वहाँ आहाहा... बैकुंठ चढ़ जाये मानो अन्दर। छींकणी सूंघे पाई की, जहाँ अन्दर ऐसे। वह हाथ में छींकणी हो ऐसे... आहाहा! कहाँ कीमत होगी? ऐसे विकल्प में हैरान हो गया है यह। अब उसे कहना कि तेरे आत्मा में अनन्त आनन्द और सुख है। जो सुख चाहता है, वह सुख से खाली नहीं है। समझ में आया? और दूसरे में तेरे सुख की गन्ध नहीं। आहाहा!

ऐसे **निरुपम गुणों से अलंकृत है तथा दिव्य ज्ञानवाला है...** मूल तो शान्तस्वरूपी आनन्द और ज्ञानवाला सिद्ध करना है यहाँ। ज्ञान और आनन्द, बस। अनन्त दिव्य ज्ञान भरा है उसमें। आहाहा! और दिव्य आनन्द है। वह नित्य आनन्द कहा। **उसमें—शीघ्र प्रवेश कर।** लो, यह आवश्यक (अधिकार) का अन्तिम (श्लोक)। आहाहा! यह समुद्र में मोती लेने जैसे गहरा उतरता है, जाता है, समुद्र के तल में। नीचे मोती पड़े हों न! आहाहा! इसी प्रकार चैतन्य के तल में जा, अन्दर जा, शीघ्र प्रवेश कर, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा दिव्य आनन्दवाला और दिव्य ज्ञानवाला प्रभु स्वयं है। उसमें अन्तर में जा, गहरे-गहरे अन्दर जा। वहाँ भगवान पूर्णानन्द विराजता है। आहाहा! कठिन बात, भाई! **शीघ्र प्रवेश कर।** विलम्ब न कर, आलस्य न कर, प्रमाद न कर, वायदा न कर—ऐसा कहते हैं। आहाहा! आज नहीं, कल बात। कल नहीं, फिर बात। यह काल का वायदा दे, वह काला कहलाता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! धन्य रे धन्य!

'आज ही' आता है न प्रवचनसार में नहीं अन्त में? 'आज ही' दो गाथा में आता है। यह शीघ्र कर, ऐसा इसका अर्थ। वायदा न कर, किश्तें न पाड़। किश्तें पाड़ते हैं न? एक वर्ष में इतने दूँगा, दूसरे वर्ष में इतने दूँगा। शीघ्र स्वरूप में जा। आहाहा! जहाँ परम

दिव्य ज्ञान और आनन्द पड़ा है। आहाहा! तुझमें तू जाकर तुझमें समा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? मार्ग तो ऐसा है, भाई! आहाहा! पर के लक्ष्य से, व्यवहार के लक्ष्य से यह प्राप्त हो, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? लगे तो दुर्लभ और अलभ्य जैसा लगे उसे। अलभ्य कहाँ? वस्तु स्वयं है न, प्रगटरूप परमात्मा स्वयं विराजता है स्वयं अपने में। वहाँ जा, वहाँ जा, वहाँ जा। अन्दर गहरा उतर। तुझे आत्मा का लाभ होगा। कहो, समझ में आया? बाहर के विकल्प से हट जा। लो, यह आवश्यक अधिकार पूरा हुआ।

इस प्रकार, सुकविजनरूपी कमलों के लिए जो सूर्य समान हैं... यह कवि तो बहुत है सही न, इसलिए फिर ऐसा डाला। **और पाँच इन्द्रियों के विस्ताररहित देहमात्र जिन्हें परिग्रह था...** नग्न मुनि थे पद्मप्रभमलधारिदेव दिगम्बर मुनि, उनकी यह टीका है। कुन्दकुन्दाचार्य भी नग्न दिगम्बर मुनि ही थे। जैनदर्शन में अनादि की सन्तों की बाह्य की दशा अत्यन्त नग्न ही होती है। समझ में आया? देहमात्र जिन्हें परिग्रह था। श्रीमद् में भी आता है न देहमात्र... देहमात्र संयम का हेतु, दूसरा कोई नहीं। इसका अर्थ कि कुछ नहीं, वस्त्र-पात्र कुछ नहीं। ऐसा आया सब बहुत गहरा-गहरा डाला है, परन्तु लोग पकड़ नहीं सके। वापस वहाँ डाले उसरूप से। 'जाति वेश का भेद नहीं, कहा मारग जो होय...' वहाँ डाले कि जाति चाहे जो हो, वेश भी चाहे जो हो। वहाँ ऐसा डाले। परन्तु यहाँ कहते हैं कि 'देहमात्र संयम का हेतु होय।' दूसरा कोई हो नहीं। अब इसे पकड़े नहीं, उसको पकड़े।

मुमुक्षु : नग्नभाव भी कहा न।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और अलग। वह और नग्नभाव तो बाहर से कहते हैं। शरीर नहीं। खबर है, खबर है न सब।

'नग्नभाव, मुंडभाव सह अस्नानता...' भाव से भी नग्न। वहाँ द्रव्य-भाव को... यहाँ भाव से है। वह तो द्रव्य-भाव संयममय शुद्ध... यह वहाँ डाला निर्ग्रन्थदशा में। बाद के पत्र में डाला है। रत्नकरण्डश्रावकाचार। वह कैसा? रत्नकरण्ड (श्रावकाचार) इसका एक अर्थ किया है उसमें। देव ऐसे होते हैं जिन्हें अठारह दोष नहीं। पीछे में

आता है पत्र में। अभी नया प्रकाशित हुआ न। ... सच्चा था, वह किया या खोटा किया? देव ऐसे होते हैं कि जिन्हें आहार नहीं, पानी नहीं, रोग नहीं। लिखा है एक पत्र है पूरा अन्तिम। इस ओर पृष्ठ पर है। यह नया प्रकाशित हुआ उसमें, हों! है न सब देखे हैं न एक-एक वहाँ। समझ में आया? देव उसे कहते हैं कि जिसे शरीर में रोग न हो, जिसे क्षुधा न हो, तृषा न हो। ऐसे अठारह दोष हैं। स्पष्ट दिगम्बर प्रमाण अठारह दोष का वर्णन किया है वहाँ। समझ में आया? यही था न उनका सच्चा इसलिए... पहले जरा फेरफार था, सब अन्तर। पश्चात् बाद में निकल गया है। समझ में आया? मार्ग तो भाई है, वह रहेगा। उसमें किसी का घालमेल करने से कोई फेरफार हो, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

यहाँ देहमात्र परिग्रह है, **ऐसे पद्मप्रभमलधारिदेव द्वारा रचित नियमसार की तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में (अर्थात् श्रीमद्भगवतकुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री नियमसार परमागम की निर्ग्रन्थ मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेवविरचित तात्पर्यवृत्ति नाम की टीका में) निश्चयपरमावश्यकाधिकार नाम का ग्यारहवाँ श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ।** लो, एक बारहवाँ (अधिकार) रहा अब। २९ गाथायें रहीं। यह अधिकार जरा वह (सूक्ष्म) पड़ेगा, धीरे से सुनना।

मुमुक्षु : सरल करके समझाना।

— १२ —
शुद्धोपयोग अधिकार

अब, समस्त कर्म के प्रलय के हेतुभूत शुद्धोपयोग का अधिकार कहा जाता है। मूल तो यहाँ ज्ञान-केवलज्ञान और केवलदर्शन (रूप) शुद्धोपयोग की व्याख्या है। उसमें केवलज्ञान और केवलदर्शन, वह शुद्धोपयोग, उसकी इसमें व्याख्या है। इसमें भी गड़बड़ है न, इसलिए स्पष्ट करते हैं। कितने ही कहते हैं कि ज्ञान का—केवलज्ञान का उपयोग समय केवलदर्शन का उपयोग केवली को नहीं होता। श्वेताम्बर में ऐसा है। केवलज्ञान का उपयोग, तब केवलदर्शन का नहीं (और) केवलदर्शन का, तब केवलज्ञान का नहीं। यह बात खोटी है, बनायी हुई है, कल्पित है। वह यहाँ कहेंगे इसमें। समझ में आया? एक ही समय में, केवलज्ञान और केवलदर्शन का उपयोग एक ही समय में केवली को समकाल में होता है। समझ में आया? ऐसा फेरफार समझे, वह देव के स्वरूप को समझता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वस्त्र-पात्रसहित मुनिपना माने, वह गुरु के स्वरूप को समझता नहीं और व्यवहार से निश्चय धर्म होता है, (ऐसा माने), वह धर्म को भी समझता नहीं। समझ में आया? १५९ गाथा।

जाणदि पस्सदि सव्वं ववहारणएण केवली भगवं।
केवल-णाणी जाणदि पस्सदि णियमेण अप्पाणं॥१५९॥

यहाँ वहाँ से वापस शुरु किया है, देखो!

व्यवहार से प्रभु केवली सब जानते अरु देखते।
निश्चय नयात्मक द्वार से निज आत्म को प्रभु पेखते॥१५९॥

टीका : यहाँ, ज्ञानी को स्व-पर स्वरूप का प्रकाशकपना कथंचित् कहा है। किसी अपेक्षा से, ऐसा। स्व-परप्रकाशक (अर्थात्) अपना प्रकाशक और पर का प्रकाशक, इस प्रमाण कहना, वह भी एक व्यवहार है और वह स्व-परप्रकाशक अपने ज्ञान को प्रकाशता है और अनन्त गुण को प्रकाशता है, यह निश्चय स्व-परप्रकाशक है। समझ में आया? यह वस्तु का स्वभाव है, ऐसा वर्णन करते हैं। **स्व-परप्रकाशकपना**

कथंचित् कहा है। अलग-अलग अपेक्षा से, ऐसा। भगवान के ज्ञान-दर्शन में स्व के अतिरिक्त पर भी ज्ञात होता है, ऐसा स्व-परप्रकाशकपना भी व्यवहार से कहा जाता है और निश्चय में स्व-अपने ज्ञान को जानना, वह स्व और अपने अनन्त गुण को जानना, वह पर। ऐसा भी स्वरूप का निश्चय से स्व-परप्रकाशकपना उसमें होता है। गजब यह!

'पराश्रितो व्यवहारः (व्यवहार पराश्रित हैं)'... यह मूल सिद्धान्त है। **ऐसा (शास्त्र का) वचन होने से, व्यवहारनय से वे भगवान परमेश्वर परमभट्टारक आत्मगुणों का घात करनेवाले घातिकर्मों के नाश द्वारा...** आहाहा! कहो, आत्मगुणों का घात करनेवाले घातिकर्मों के नाश द्वारा... एक-एक वाक्य अपेक्षित है। गुणों का घात होता नहीं कभी। उसकी पर्याय का घात हो, उसे गुणों का घात कहा। और 'घात करनेवाले' एक शब्द निमित्त से। 'घातिकर्मों का नाश', भगवान ने घातिकर्मों का नाश किया, यह बात भी निमित्त से है। जड़कर्म की अवस्था का आत्मा नाश कर सकता नहीं। समझ में आया? परन्तु भावघातिकर्मों का नाश होने से जड़घातिकर्म उनके कारण से वहाँ कर्मरूपी पर्याय बदलकर अकर्मरूप हो जाती है, उसे नाश किया—ऐसा कहा जाता है। भारी कठिन काम जैनदर्शन को समझना, उसके कथनों की अपेक्षा को समझना।

इन्द्रजालिया जैसे नय हैं, ऐसा कहते हैं। समझे तब तो उसका स्पष्टीकरण हो जाये सब। परन्तु न समझे तो उसे लगे कि यह क्या परन्तु? घड़ीक में ऐसा कहे, घड़ीक में ऐसा कहे, उसका कुछ ठिकाना नहीं। तुझे समझने में ठिकाना नहीं, इसलिए ऐसा लगता है। वहाँ तो है, वैसा है। आहाहा! कहो, समझ में आया? वह भगवान परमेश्वर, परम ईश्वर के धनी, परमपूज्य, भट्टारकसूर्य, परमसूर्य **आत्मगुणों का घात करनेवाले घातिकर्मों के नाश द्वारा प्राप्त...** आत्मगुणों का घात करनेवाले घातिकर्मों के नाश द्वारा... उसमें से कोई कहे कि घातिकर्म का नाश हो तो यह होता है। परन्तु यहाँ तो घातिकर्मों के नाश द्वारा (कहा), इसका अर्थ कि स्वयं घातिकर्मों का नाश किया। समझ में आया? नाश द्वारा प्राप्त—उसके व्यय द्वारा उत्पाद। किसका?

सकल-विमल केवलज्ञान और केवलदर्शन... आहाहा! अरे! आत्मा की इतनी महिमा पर्याय की, इसे अभी बैठनी चाहिए न! भगवान आत्मा का एक समय का ज्ञान

सकल-विमल केवलज्ञान। आहाहा! एक आत्मा, उसकी एक समय की पर्याय सकल-विमल केवलज्ञान **और केवलदर्शन द्वारा त्रिलोकवर्ती...** यह व्यवहार से तीन काल और तीन लोक को—त्रिलोकवर्ती और त्रिकालवर्ती (कहा अर्थात्) तीन लोक में वर्तनेवाले और तीन काल में रहनेवाले। आहाहा! भगवान आत्मा केवलज्ञानी परमात्मा निजस्वरूप का आराधन करके जिसने केवलज्ञान को प्राप्त किया और घातिकर्म का अथवा भावघाति का व्यय किया, उसमें जड़कर्म उसके कारण से व्यय (हुए)। ऐसे भगवान को केवलज्ञान, केवलदर्शन द्वारा... यह दोनों पर्यायें हैं। केवलज्ञान और केवलदर्शन, यह पर्याय है, अवस्था है; गुण नहीं। गुण तो त्रिकाल ज्ञान, दर्शन को गुण कहते हैं। नयी दशा प्राप्त हो, वह गुण नहीं। आहाहा! पर्याय, उस पर्याय द्वारा त्रिलोकवर्ती—तीन लोक में वर्तनेवाले, तीन काल में वर्तनेवाले... आहाहा! गजब बात!

तीन काल को वर्तनेवाले जाने न भगवान ने? तब अन्तिम पर्याय कौन सी, वह भी जानी या नहीं? अन्तिम पर्याय कहते ही तेरा तत्त्व खोटा पड़ता है। त्रिकाल है, वह तो। अन्तिम और कैसी? समझ में आया? अन्तिम कहने से समाप्त, फिर कुछ था या नहीं? द्रव्य से नहीं, पर्याय कुछ नहीं? तो त्रिकाल रहा कहाँ से? कठिन मार्ग है, बापू! उसे अभी (बैठना कठिन पड़े)। समझ में आया? **तथा त्रिकालवर्ती सचराचर...** (अर्थात्) गतिमान और स्थिर... **द्रव्य-गुण-पर्यायों को...** तीन कालवर्ती और त्रिलोकवर्ती पर्यायों को... द्रव्य-गुण तो सामान्य, पर्याय विशेष। तीन काल-तीन लोक में वर्तनेवाले द्रव्य-गुण-पर्यायों को एक समय में जानता है। आहाहा! वह व्यवहार कहलाता है। परवस्तु को जानता है, ऐसा कहना, वह व्यवहार है, ऐसा कहते हैं, व्यवहार आश्रित। इसलिए '**पराश्रितो व्यवहारः**' (कहा है)। यह अधिकार सूक्ष्म पड़ेगा थोड़ा, परन्तु अब सुनना तो सही। उस बार यह पढ़ा नहीं था, नहीं? नहीं पढ़ा था, छोड़ दिया था दो-तीन अधिकार। अजीव अधिकार, व्यवहार अधिकार और यह (अधिकार)। पूरा तो करना है एक बार पूरा।

कहते हैं कि ऐसे सर्वज्ञ परमेश्वर परमात्मा ने व्यवहार से क्या जाना? कि तीन काल, तीन लोक में वर्तनेवाले द्रव्य-गुण और पर्याय। द्रव्य अर्थात् वस्तु, गुण अर्थात् उसकी शक्ति, पर्याय अर्थात् उसकी दशा। तीन काल में वर्तनेवाले को एक समय में

जाना। तब अन्तिम समय की पर्याय यह है, ऐसा जाना या नहीं उसमें? ... भविष्य में अन्तिम—छेल्ली यह पर्याय लो। परन्तु अन्तिम पर्याय... आखिरी पर्याय (कहने से) पूरा भविष्य का अनन्त काल उसमें कहाँ आया? आहाहा! वह तो ऐसा का ऐसा तीनों काल में जिस प्रकार से है और क्षेत्र भी जिस प्रकार से अन्त बिना का है, उसे उस प्रकार से जाना है। आहाहा!

ऐसे प्रश्न आये हैं अभी। वह इन्दौरवाला पूछता है कि सिद्ध ऐसे होते हैं—अनादि से सिद्ध हों तो तुम एक ओर कहो कि संसारी हो, वह सिद्ध होता है। पुनश्च कहो कि और भव्यजीव कितने ही सिद्ध होते हैं और कितने ही नहीं होते। इससे जीव की जाति तुम्हारे तीन प्रकार की करनी पड़ी। भव्य, दूरभव्य और अभव्य। अरे भगवान! क्या कहता है तू यह? आहाहा! ...! सर्वज्ञ के सम्बन्ध में भारी गड़बड़ जगत में। अभी उसकी पर्याय का ऐसा सामर्थ्य है... पर को जानना, वह व्यवहार; स्वयं को जानना, वह निश्चय। क्योंकि पर में तन्मय होकर नहीं जानता। ज्ञात सब होता है।

मुमुक्षु : .... व्यवहार अर्थात् खोटा?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा होगा? उसकी बात कहाँ है? यह तो तन्मय होकर नहीं जानता, इसलिए व्यवहार (कहा है)। खोटे ... उल्टे धन्धे करते हैं। व्यवहार किस अपेक्षा से (खोटा)? पर को जानना, वह खोटा। वास्तव में स्वयं को जानता है, ऐसा। अपने को जानता है वह। ज्ञान की पर्याय में जानने पर तीन काल, तीन लोक उस पर्याय को जानने पर ज्ञात हो जाते हैं। समझ में आया? आहाहा!

पानी की स्वच्छता की लहरें चलती हों पानी का प्रवाह, रात्रि का भाग हो, चन्द्र खिला हो। तो उस पानी में पानी को देखने से पानी में चन्द्र, तारे आदि जो हैं, वे सब ज्ञात हो जाते हैं। वह पानी की ही पर्याय है। वहाँ कहाँ चन्द्र है? परन्तु वह पानी की पर्याय ऐसे देखने पर वह ऊपर के जितने तारा आदि उसमें ज्ञात होते हैं, वह सब पानी की पर्याय है। समझ में आया? इसी प्रकार लोकालोक को जानना, वह आत्मा की एक पर्याय है। पर्याय को जानने पर वह ज्ञात हो जाता है। आहाहा! समझ में आया? मूल वस्तु क्या, उसकी दशा क्या, शक्ति क्या—उसकी खबर नहीं होती और चलो धर्म करते हैं। आहाहा!

और कहे, तीन कालवर्ती को जाने तो तीन काल का अन्त आ गया या नहीं? इसमें—ज्ञान में अन्त आ गया न? तीन काल को जाना, भविष्य भी जाना न पूरा। अन्तिम में अन्तिम, अन्तिम में अन्तिम जाना। ऐई! अन्तिम का अन्तिम है ही कहाँ? आहाहा! कठिन बात, भाई! मूल आत्मा के पूरे तत्त्व की बात में बहुत अन्तर है। समझने में अन्तर और फिर कहे कि हम बराबर जानते और मानते हैं भगवान को। बापू! तू आत्मा को ही मानता नहीं। आत्मा की एक समय की दशा तीन काल को जाने, उसमें अन्तिम-बन्तिम होती नहीं। ऐसी जो 'यह अन्तिम' माने, वह अन्तिम माने तो उसने जाना कहलाये (ऐसा माननेवाले को) उस केवल की पर्याय की प्रतीति ही नहीं है। यह पर्याय की प्रतीति नहीं, तो द्रव्य की प्रतीति तो है नहीं। समझ में आया?

और **एक समय में जानते हैं और देखते हैं।** यह व्यवहार से कहा। पर को कहा न! तीन कालवर्ती और तीन लोकवर्ती पदार्थों को जाने-देखे, उसे ऐसा कहना, वह व्यवहार है। पर है न, पर। और पर में जानते हुए पर में तन्मय नहीं होता, इसलिए व्यवहार से जानता है, ऐसा कहने में आता है। जानता है वह बराबर है, परन्तु पर को जानता है, ऐसा कहना, वह व्यवहार है। अब निश्चय से बात करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

-:प्रकाशकः-
श्री कुंदकुंद-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,
विले पार्ला, मुंबई
www.vitragvani.com